



देवत-संहितान्तर्गत

# मरुदेवताका मंत्र-संग्रह ।

मरुत देवताका  
हिन्दी अनुवाद ।

( धारा, प्रियेणी और स्वयंकरण व शाप )



लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
स्वाध्याय-मण्डल, आंध्र ( जि० सातारा )

प्रथम १९३५, सातव २०००, सन १९४३

संपादन

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

सहसंपादन

पं० दयानन्द गणेश धारेभर, B. A.



५२

मुद्रक व प्रकाशक

वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.

भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडळ,

औंध ( जि० सातारा )

# वीर मरुतोंका काव्य ।

वीररसपूर्ण काव्यके मनन से उपलब्ध बोध ।



हम पहले ही मरुत-देवता के मन्त्रों का अध्ययन, अथ और शिवजी काँवर के पुके हैं। वनों के अर्थका विचार, सुभाषितों का निर्देश एवं पुनरुक्त मन्त्रों का समन्वय भी प्यानपूर्वक हो चुका है। अब हमें संश्लेष में देवता है कि उन सब का प्यानपूर्वक अध्ययन कर लेनेसे हमें कीर्तना बोध मिल सकता है। हम मरुत-काव्य में अन्वय काव्योंकी अपेक्षा तो एक अन्वी विभक्तता हीक पढती है, यह वी है कि इस काव्य में-

महिलाओंका वर्णन नहीं पाया जाता है ।

हिमी भी वीर-गाथा में नायियों का उल्लेख एक न एक ंग से अवश्य ही उपपन्न होता है। पंचमदासाय्य या अन्य काव्यों का निरीक्षण करनेपर ज्ञान होता है कि उन में वीरों के वर्णन के साथ ही साथ उनकी प्रियियों का बन्धान अवश्य ही किया है। पियों का वर्णन न किया हो ऐसा शायद एक भी वीर-काव्य नहीं पाया जाता है। यदि हम नियम या कोर्द अव्याज भी दी, तो उससे हम नियमकी ही सिद्धता होती है, ऐसा कहना पडेगा। उदा- भग २७ ऋषियोंने हम मरुत-विषयक वादर का रत्न किया है ऐसा जान पडता है ( देवी पृष्ठ १५४ ); और अगर हम संख्या में मरुतियों का भी अन्तर्भाव किया जाय तो समूचे ऋषियों की संख्या ३४ हो जाती है। यह चदे ही आशय की बात है कि इतने इन ३४ ऋषियों के निर्मित काव्य में एक भी जगह मरुतों के स्तंभत्व का निर्देश नहीं किया है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि ऋषि स्तंभत्व का वर्णन ही न करते थे, क्योंकि इन्हीं ऋषियों ने इन्द्रका वर्णन करते समय किन्हीं शंताओंमें उन पर स्तंभत्वका आरोप किया है। मिन ऋषियोंने इन्द्र का स्तंभत्व बालाने में शान्ताहारी नहीं की, वे ही मरुतों का वर्णन करनेमें उग्रका केदा मात्र भी उल्लेख नहीं करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मरुतों के अनुत्तमानपूर्ण वर्णन में स्तंभत्व के लिए बिलुक्त जगह नहीं थी। प्यान में रहे कि मरुत इन्द्र के सेनिट हैं और वे अपने सेनिकीय जीवन में स्तंभत्व से कोसों दूर रहते थे। आज हम योप के तथा आस्ट्रेलिया सरस समय गिने जानेवाले राष्ट्रों के सैनिकों का अवलोकन करते हैं, तो पता चकता है कि यदि वे नगरों में पुराने-दिने लगे और कहीं महिलाओं पर उनकी निगाह पड जाए तो आश्चर्य एवं उच्युत्कण्ठपूर्ण प्रताप करने में दिच-दिचाने नहीं। यह बात सबको ज्ञात है, अत हम मरुतव्य

में अधिक लिराना उचित नहीं जँचता । हाँ, इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इन सभ्य पाश्चात्यों को अपने सैनिकों के महिष्ठा-विषयक संयम के बारे में अभिमानपूर्वक कहना दूभर ही है ।

लेकिन मरतों के वैदिक काव्य में रंगमय के वर्णन का पूर्णतया अभाव है । यह तो विमुक्त वीरकाव्य है । ऐसा वह बिना नहीं रहा जाता कि हम भारतीयों के लिए यह बटे ही गौरव एवं आत्मसंमान की बात है । यूँ कहने में कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती है कि, जो संयमपूर्ण जीवन बिताना सुखमय योद्धवीय सैनिकों के लिए असंभव तथा दूभर हुआ, यही इन मरतों के लिए एक साधारणसी बात थी ।

हम मसूजे काव्यमें नारिणाँवे सम्बन्धमें सिर्फ १६ उल्लेख पाये जाते हैं, जिनका यहाँपर विचार करना उचित जान पड़ता है ।

### नारीके तुल्य तलवार ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योवा । ( ऋ० ११६७१३ )

' वीरों की तलवार ( परदेमें रहनेवाली ) मानव-स्त्रीके गुण्य लुक छिपकर भिषान में रहती है ।' यहाँ निर्देश है कि कुछ मानव-नारिणाँव पर में गुप्त रूप से निवास करती थीं । येना, यह वर्णन तो परदा-प्रथा के समझक हीन पड़ता है । तलवार तो हमेशा भिषान में पड़ी रहती है, लेकिन केवल छद्माई के भाँवपर ही पाइर आ जाती है, वीर उसी प्रकार घरों में अदृश्य एवं गुप्त रूप से रहनेवाली महिलाएँ धार्मिक अवसरों पर ही सभासमाजों में चली आती थीं, यही हम उपना का आशय दिखाई देता है । प्रतीत होता है कि उस काल में ऐसी प्रथा प्रचलित रही हो कि किन्हीं खास अवसरों पर जैसे धर्मोत्सव या सम्मेलन आदि के समय स्त्रियों को उपस्थित होने में कुछ भी नडाउट नहीं थी, परन्तु अन्यथा देविणाँव घरों के भीतर ही का-यापन करती थीं ।

उपयुक्त वर्णन तो सती साधवाँ महिला के लिए लागू पड़ता है और इसके भतिरिक्त अन्य प्रकार की स्त्री को ' साधारण स्त्री ' कहा गया है । जिसने सतीर में शूद्र शोउ दिया हो वह ' साधारण स्त्री ' कहलाती थी ।

### साधारण स्त्री ।

साधारण्या इव मरतः सं मिमिक्षुः ।

( ऋ० ११६७१४ )

' वायुगण चादे जिस भूमि पर जल की वर्षा करते छुटते हैं, जिस प्रकार साधारण कोटि का पुरुष साधारण स्त्री से यथेच्छ वर्णन करता है ।' इस उपमा में साधारण स्त्री का उल्लेख आया है । इयभिचारवर्गमें प्रयुक्त पुरुष किसी भी साधारण स्त्री से समागत करता है; उसी तरह भेष चाहे जिस तरह की भूमि हो, उसपर वर्षा करता है । परन्तु जो सदाचरणी मानव है, वह अपनी शुद्धशीलसंपन्न नारी से ही नियमित ढंगसे व्यवहार करता है । इस वर्णनके मूनेपर स्त्रियों एवं पुरुषों के दो तरह के विभेद हमारे सामने उठ खड़े होते हैं—

१. एक विभाग में उन स्त्रियों का वर्णन है, जो हमेशा घर के अन्दर अन्त पुर में निवास करती हैं और गृहस्थ मौके पर धार्मिक समारंभों में ही समाजों में प्रकट होती हैं । ऐसी स्त्रियों से सदाचरणी पति धर्मांनुकूल व्यवहार प्रचलित रखते हैं ।

२. दूसरी श्रेणी में साधारण स्त्रियों का अन्तर्भाव हुआ करता है, जो कि हमेशा बाहर घूमा करती तथा पुरुषों से अनियमित वर्णन रख लेतीं ।

वेदने प्रथम विभाग में आनेवाली ( गुहा चरन्ती योवा ) अन्त पुर में निवास करनेवाली महिलाओं की प्रशंसा की है और अन्य साधारण स्त्रियों की निन्दा की है । पहिले प्रकार की सती साधवाँ महिलाएँ जब सभासमाजों में आ दाखिल होती हैं, तब ( माते पशुश्लकी इशान् । ऋ. ८।३।१९ ) उन की दोग तथा पिंडलियाँ रहिगोचर न रहने पायें, ऐसी आज्ञा वेदने दी है । वेद में ऐसे भी आदेश पाये जाते हैं कि जनता के मध्य संचार करने समय नारिणाँव को सतर्क रहना चाहिये कि कहीं उन का अंतोपग्न शील न पड़े इसलिये अपना समुदायीर नलीभाँति बर्तों से ढँकना चाहिये ।

उत्तम माताओंके गिलाडी पुत्र ।

शिशूलाः न क्रीळाः सुमातरः ( ऋ. १०।७।८६ )

' उत्तम भेषी के माताओं के पुत्र बिनाही होते हैं ।'

ये उत्तम माताएँ अर्थात् ही ऊपर बतलायी हुई साध्वी महिलाओं में पाई जाती हैं। इन्हें 'सुमाता' कहा है। दूसरी जो साधारण महिलाएँ होती हैं, व सुमाता नहीं बन सकती। इस से स्पष्ट है कि, उत्तम मरुतान होने के लिये सयमसील बर्तन की आवश्यकता है।

### महिलाओं के समान वीर अलंकृत तथा विभूषित होते हैं।

मरुतों के वर्णन में धीरे धीरे उपाय वर्णन आया है कि, ये वीर सैनिक अपने आपकी धियों के समान विभूषित करते हैं—(प्रये शुभमन्तजनया न। क्र ११८५।) 'सिद्धों की तरह ये वीर अपने शरीरों की मजाबट रूब कर लेते हैं।' हम देखते हैं कि आधुनिक युगमें योरपीय प्रणालीके अनुसार सुमग्न होनेवाले सैनिक भी महिलाओं की तरह ही रूब बनावर्तमान करते हैं। प्रत्यक्ष आभूषण दर किस्मका हथियार, दरपक तरह का कपड़ा साफ सुथरे, रूब हाथपोंछ कर रखे हुए, व्यवस्थित तथा चमकीले ढाँकर ही रूब मच्छी तरह दीर्घ पड़े इस ढंग से धारण कर ली जादि। हम अनुशासनका पाठ्य वर्तमानवालीन सेना में स्पष्ट दिव्यार्द देता है। महिलाएँ जिस प्रकार आईने में धारवार अपनी आकृति देखकर घेराभूषण कर लेती हैं और साकेतार्थक साजसज्जा कर सुकोपर ही रूब बन टावर मादर खली जाती हैं, ठीक वैसे ही ये वीर सिपाई यथेष्ट अलंकृत हो रूब टाट-बाट वा सापसमे जगमगाने-वाले हथियारों को तथा आभूषणों को धारण कर यात्रा करने निकल पड़ते हैं।

यहाँपर, आधुनिक योरपीय सैनिकों के वर्णन में तथा वेद में दृशांश उग से मरुतो के वर्णन में त्रिलक्षण समानता दिव्यार्द देती है जो कि सचमुच प्रेक्षणीय है। मरुतोंके इस सिंगारके सपथमें और भी उल्लेख पाये जाते हैं जिगमें से पुत्र एव उद्भूत किये जान हैं, सो देखिए—

यक्षदश न शुभयन्त मर्या ।

( क्र ७।५६।१६ ) ( ३६० )

गोमातर. यत् शुभयन्ते अञ्जिभि ।

( क्र १।८।१३ ) ( १०५ )

'यक्ष-समारभ देखने के लिये भये हुए लोग जिन प्रकार अलंकृत होकर अपनी घेराभूषण से सुमग्न बनकर

आया करते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि को माता माननेवाले वीर अपने गणवेश से सजे हुए रहते हैं।' मरुत् जो घेराभूषण करते हैं तथा अपनी जो शोभा घडाते हैं, वह सारी उनवे अपने गणवेशपर ही निर्भर है। मरुतो का गणवेश उन सय के किय समान ( अर्थात् युनिफॉर्म के तौरपर पाया हुआ ) रहता है। उन के जो शस्त्रास्त्र एव वीरभूषण है, उन से ही उनकी घेराभूषण एव सजावट सिद्ध हो जाती है। ये वीर मरुत् चाहे जैसी भूषण नहीं कर सकते, अगिउ डा का जो गणवेश निर्धारित हो चुका हो उमी से वह अलंकृत बरनी पडती है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि, आधुनिक सैनिकों के तुल्य ही इन्हें अपना गणवेश साफसुथरा एव जगमगावाला बनाकर रखना पडता था। हमी वर्णन को और भी देखिए—

स्त्रायुधास द्विगिण सुनिष्का ।

उत स्वयं तन्वः शुभमगाना ॥

( क्र ७।१६।११ ) ( ३१५ )

सस्य चित् दि तन्वः शुभमगाना ।

( क्र ७।५७।७ ) ( ३८७ )

व्यक्षप्रेभि. तन्वः शुभमगाना ।

( क्र १।६५।५ ) ( ४८४ )

'उत्प्रे हथियार धारण करेदारे, धष्ट मालाएँ पहनने-वाल तथा वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले ये वीर सुद ही अपने शरीरोंको सुशोभित करते हैं। यद्यपि ये सुगुप्त जगद रहते हैं, यद्यपि अपनी शरीरभूषण बराबर अलुण्ण बताये रखते हैं। अपने अन्दर विद्यमान शस्त्रोत्तले शरीरशोभा को ये उद्दिगण करते हैं।'

इस प्रकार इन मूर्च्छों में हम इन वीरों के निजी बाह्य शारीरिक भूषण तथा अलंकृति के मणधमें उल्लेख पाते हैं।

पिशा इव सुपिशा । ( क्र १।६४।८ ) ( ११५ )

अनु श्रिय धिरे । ( क्र १।५६।१० ) ( १६७ )

सुचन्द्रं सुपेदासं वर्णं दधिरे ।

( क्र २।३४।१३ ) ( २११ )

महान्त चि राजय । ( क्र ५।५५।१२ ) ( २६६ )

रुपाणि विप्रा द्दर्या । ( क्र ५।५२।११ ) ( २०७ )

'ये वीर पडे ही शोभायमान दिव्यार्द देते हैं, बडी शारी शोभा इन में हैं, अर्धिशोभाकी सुन्दर कविधारण

करते हैं । ये बहुत सुहाते हैं, सबे सुन्दर दीख पड़ते हैं । ' इस भाँति इन का वर्णन किया है । इन वर्णनों से इन वीरों की चारता पर स्पष्ट आलोकित्वा पड़ती है । इस से एक बात स्पष्ट होती है कि ये वीर मन्त्र भद्रपन से कोसों दूर रहा करते थे, सदैव अपने सुन्दर गणवेश से विभूषित हो स्ववसिष्ठत ढंग से रहा करते थे, अतएव उनका प्रभाव चतुर्दिक् फैल जाता था ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट दिखाई देता है कि, आधुनिक सैनिकों के समान ही वीर मरुतों का रहन-सहन था । इस सम्बन्ध में और भी कौनसी जाकारी प्राप्त होती है, सो देख लेना चाहिये ।

### एक ही घर में रहनेवाले वीर ।

सभी मरुतों के निवास के लिए एक ही घर बनाया जाता था, या एक बड़े विशाल घर में ये समूचे वीर रहा करते थे । इस सम्बन्ध के उल्लेख देखिए—

समोक्लस' इष्टुं दधिरे । ( क १६४१० ) ( ११७ )  
ऊरुक्षया. सगणा मानुपासः ।

( अर्थ ७७७३ ) ( ४४७ )

ए उरु खदा वृत्तम् । ( क १८५१६ ) ( १२८ )

उरु खदः चक्षिरे । ( क १८५१७ ) ( १२९ )

समानस्मात्सदसः । ( क ५८७१४ ) ( ३२१ )

' एक घर में रहनेवाले ये वीर बाण धारण करते हैं ।

इन के लिए बहुत बड़ा विस्तृत मकान तैयार किया जाता था । ' उसी प्रकार—

सनीळा मर्या स्वभ्या नरः ।

( क ५५६११ ) ( ३६५ )

सवयस. सनीळा. समान्या । ( क ११९५११ )

( इन्द्र ३७५० )

' ( स-नीळा ) एक घर में रहनेवाले ( मर्या ) ये मरुतों के लिए तैयार वीर अच्छे धोड़ोंपर बैठते हैं । ये सभी समान समान के योग्य हैं और समान अवस्थावाले हैं । ' यह समूचा वर्णन आधुनिक सैनिकों के वर्णन से मेल खाता है । आज दिन भी सैनिक एक मकान में ( एक बैरक में ) रहते हैं, सब की अवस्था भी लगभग एकसी रहती है, सब एक ही धेणी के होने के कारण अतिपम रूप से समान के योग्य समझा जाते हैं, उन में उंच

नीच के भाव नहीं के बराबर होते हैं, क्योंकि उन की समानता सर्वमान्य होती है ।

### संघ बनाकर रहनेवाले वीर ।

ये वीर मरुत् सांघिक जीवन बिताने के आदी थे । सात सात की कतार में चलते हुए, चढाई करते समय सब मिलकर एक कतार में शयुद्धपर टूट पड़नेवाले थे । इस के उल्लेख देखिए—

मारुताय शार्घाय हृष्या मरुष्वम् ।

( क ८१२०१९ ) ( ९० )

मारुतं शार्घं अभि प्र गावत । ( क. १३७११ ) ( ६ )

मारुतं शार्घः उत् शंस । ( क ५५२१८ ) ( २२४ )

घन्दस्व मारुतं गणम् । ( क. १३६८१ ) ( ३५ )

मारुतं गणं नमस्य । ( क ५५२११३ ) ( २२९ )

सप्तय मरुतः । ( क ८१२०१२३ ) ( १०४ )

गणध्रियः मरुतः । ( क १३६४९ ) ( ११६ )

' मरुतों के संघ के लिए अन्न का समझ करो, मरुतों के संघका वर्णन करो, मरुतों के समुदाय के लिए अभिवादन करो, सात सात की पंक्ति बनाकर ये चलते हैं और समुदाय में ये सुहाते हैं । ' उसी प्रकार—

मारुतं गणं सधृत । ( क १६४११२ ) ( ११९ )

पृष-व्रातासः पृषतीः अयुष्वम् ।

( क १८५१४ ) ( १२६ )

स हि गणः युवा । ( क १८७१४ ) ( १४८ )

पृषा गण अधिता । ( क. १८७१४ ) ( १४८ )

व्रातं व्रातं अनुक्रामेम । ( क ५५२१११ ) ( २४४ )

' मरुतों के समुदाय की प्राप्ति करो । यह संध ( पृष-व्रातास ) चलिष्ठों का है । यह अपने रथ की धरनेवाली घोड़ियों या हस्तिनिर्वा जोतता है । यह युवकों का समुदाय है जो हमारी रक्षा करा है । इस समुदाय के साथ अनुक्रम से हम चलने दें । '

उपर्युक्त मन्त्रोंमें दर्शाया है कि ये वीर सांघिक जीवन बितानेवाले और सामुदायिक उगपर कार्य करनेवाले हैं । संध बनाकर रहना, तुल्य वेदा धारण करना, सात सातकी कतार में चलना, सब के सब पुरुष होने या समान अवस्थावाले होने अर्थात् हमें छोटे पाठक एवं पुरु मनुष्यों का अभाव तथा समूची जाता की रक्षा करने का

गुहार कार्यभार कंधे पर ले लेना, यह सारा का सारा वर्णन वर्तमानकालीन सैनिकों के वर्णन के तुल्य ही है ।

( १ ) शार्ध, ( २ ) द्रात और ( ३ ) गण, इस प्रकार इनके समुदाय के तीन प्रकार हैं । गण में ८०० या ९०० सैनिकों की संख्या का अन्तर्भाव होता होगा, ऐसा पृष्ठ ९६ पर दर्शाने की चेष्टा की है । पाठक धृष्ट उसे देख लें । उसी प्रकार पृष्ठ १६४-१६६ पर एक चित्रद्वारा यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि इन गणों में मरतू किस ढंग से खड़े रहा करते थे । पाठक उस समूचे वर्णनको अवश्य देख लें । हमारा अनुमान है कि शार्ध और द्रात में संख्या कुछ अंश तक अपेक्षा कृत म्यून हो । कुछ भी हो, अधिक निश्चिन प्रमाण मिलने तक इस संकेतमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है ।

इससे एक बात मुनिश्चित ठहरी कि मरतू संघ बनाकर रहा करते थे । इतना जान लेने से यह सहज ही में ज्ञात हो सकता है कि वे एक ही घर में रहा करते थे और एक पंक्ति में सात सात वीर खड़े हुआ करते थे ।

### सभी सहश वीर ।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास पते ।

सं भ्रातरौ वावृधुः सौमगाय । ( क्र. ५।६०।५ )

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो-

ऽमध्यमासो महसा विवावृधुः । ( क्र. ५।५९।६ )

' ये सभी वीर मरतू साम्यवादी हैं क्योंकि इनमें कोई भी ( अज्येष्ठासः ) उच्चपद पर बैठनेवाला नहीं तथा ( अकनिष्ठासः ) न कोई निम्नश्रेणी में गिना जाता है और ( अमध्यमासः ) कोई मँसले दर्जेका भी नहीं पाया जाता है । ये सब ( भ्रातरः ) भापस में भ्रातृत्व वर्ताने करते हैं, ये साम्यावस्था का उपभोग लेनेवाले धनुषगण हैं । ये सभी इकट्ठे होकर ( सौमगाय सं वावृधुः ) अपने उत्तम भाग्य के लिए अतिरोध-भाव से मली भौति चेष्टा करते हैं ।'

मवल्य यही है कि, ये सभी वीर समान योग्यतावाले हैं । समान भाग्यवाले, समान डीलकौलवाले तथा एक ही अभ्युदय के कार्य के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले ये वीर हैं । पाठक अवश्य देख लें कि, यह समूचा वर्णन आधुनिक सैनिकों के वर्णन से कितना अभिन्न हैं । सब का गणवेश समान, सब का रहनसहन समान, सबके हथियार समान,

रहने के लिये सब को एक ही घर, एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये सब वीरों का एक कार्य में सतर्कतापूर्वक जुट जाना, इस भाँति यह मरुतोंका वर्णन अर्थात् ही आधुनिक सैनिकों के वर्णन से आश्चर्यजनक साम्य रखता है । दोनोंमें किसी तरह की विभिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है । अपितु अनुदी समता दिखाई देती है ।

### मरुतों का गणवेश ( या युनिफार्म ) ।

मरतू देवराष्ट्र के सैनिक हैं । देवना चाहिए कि, इनका गणवेश किय तरह का हुआ करता था ।

### सरपर शिरस्त्राण ।

ये वीर अपने मस्तकपर शिरस्त्राण या साका रख लेते थे । शिरस्त्राण लोहे का बनाया हुआ तथा सुनहली बेल-जुटी से सुशोभित रहता और अगार साफा पहना जाता तो वह रेशमी होता तथा पीठपर उस का कुछ अंश छूटा रहता था । इस विषय में देखिए—

शीर्षन् हिरण्ययोः शिप्राः व्यञ्जत ।

( क्र. ८।७।२५ ) ( ७० )

हिरण्यशिप्राः याध । ( क्र. २।३।३१ ) ( २०१ )

शीर्षेसु नृम्णा । ( क्र. ५।५७।६ ) ( २८९ )

शीर्षेसु चितता हिरण्ययोः शिप्राः ।

( क्र. ५।५४।११ ) ( २६० )

' सरपर रखा हुआ शिरस्त्राण सुनहली बेलजूटीसे सुशोभित हुआ करता और रेशमी साँके भी पहने जाते थे ।' इस से ज्ञात होता है कि, उन के गणवेश में शिरोभूषण किस ढंग का रहा करता था ।

### सचका सहश गणवेश ।

ये अञ्जिभिः अजायन्त । ( क्र. १।३७।२ ) ( ७ )

एषां अञ्जि समानं रुक्मासः विभ्राजन्ते ।

( क्र. ८।२०।११ ) ( २२ )

वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः व्यञ्जते ।

( क्र. १।२६।१४ ) ( १११ )

गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते ।

( क्र. १।८।५३ ) ( १२५ )

पक्ष.सु रुक्मा अंसेषु पताः रमसासः अञ्जयः ।

( क्र. १।१६।१० ) ( १६७ )

ते क्षोणीभिः अरण्यभिः अञ्जिभिः ववृधुः ।

( ऋ २।३।१३ ) ( २११ )

अञ्जिभिः सचेत । ( ऋ. ५।५।१५ ) ( २३१ )

ये अजिपु रुम्नेपु रादिपु स्रक्षु श्रायाः ।

( ऋ. ५।५।३४ ) ( २३७ )

‘ ये वीर अपने अपने वीरभूषणोंके साथ प्रकट होते हैं । इनके गणवेश सब के लिए सद्य बनाये दीप्त पड़ते हैं और इनके गलेमें सुवर्णहार सुदाते हैं । भौति भौति के आभूषणोंसे ये अपने शरीरों को सुशोभित करते हैं । भूमि को माता समझनेवाले ये वीर अपने गणवेशों से स्वयं सुशोभित होते हैं । इनके वक्ष स्थल पर मालाएं तथा कर्णों पर गणवेश दिए जाते हैं । ये केसरिया वर्ण के गणवेशों से युक्त होकर अपनी शक्ति बढाते हैं । ये सदा गणवेशों से युक्त होते हैं और ये वस्त्रालकार, स्वर्णमुद्राओंके हार, बलयकटक एवं मालाएं पहनते हैं । ’

उपसृक्त अवतरणों से उनके गणवेश की बहना भा सकती है । ‘अञ्जि’ पदसे गणवेशका बोध होता है । उनके कपडे केसरिया वर्ण के तथा तनिक रक्तिम आभावाले होते थे । ‘अरण्येभि क्षोणीभिः’ इन पदों से स्पष्ट सूचना मिलती है कि उनका पहनावा अरण्य-केसरिया वर्णवाला हुआ करता था । वे वक्ष स्थलों पर स्वर्णमुद्रा सद्य अलंकारोंके गहने पहनते जो उनके केसरिया कपड़ों पर खूब सुहाने लगते थे । हाथोंमें तथा पैरोंमें बलयकटक आभूषण सुहाते थे । नासद ये विशेष कार्यवाही करनेके निमित्त मिले हुए वीरवदसक आभूषण हों । इनके अतिरिक्त ये पुष्प-मालाएं भी धारण कर लेते । इनके ह्रम गणवेश के धार में निम्न मन्त्र देवनेयोग्य हैं ।

शुभ्रसाद्य ... एजथ । ( ऋ ८।२०।४ ) ( ८५ )

रक्षमवक्षसः । ( ऋ ८।२०।२१ ) ( २०० )

( ऋ २।३।३२ )

यक्ष सु शुभे रक्षमान् अधियेतिरे ।

( ऋ. १।६।४ ) ( १११ )

यक्ष सु विरक्षमतः दधिरे ।

( ऋ १।८।५।३ ) ( १२५ )

रुम्ने आ यिद्युत असृक्षत ।

( ऋ ५।५।२।६ ) ( २०२ )

पासु पादपः यक्ष सु रक्षमाः ।

( ऋ ५।५।११ ) ( २६० )

रक्षमवक्षसः वयः दधिरे । ( ऋ ५।५।५।१ ) ( २६५ )

रक्षमवक्षसः अश्वान् आ युञ्जते ।

( ऋ. २।३।४।८ ) ( २०६ )

‘ इनके वक्ष स्थल पर स्वर्णमुद्राओंके हार रहते हैं । पैरों पर नूपुर और उरोभाग में मालाएं रहती हैं जो कि जगमगाती हैं । ये आभूषण बिलकुल स्वच्छ एवं शुभ्र होते हैं और बिजलीके तुल्य चमकते हैं । गलेमें हार धारण करनेवाले ये वीर अपने रथोंमें घोड़े जोतते हैं । ’

इस वर्णन से इनके गणवेश की कल्पना की जा सकती है । शरीरपर केसरिया रंग के कपडे, वक्ष स्थलपर स्वर्ण-मुद्राहार, हाथपैरोंमें वीरत्वनिर्दोषक बलयकटक या कंगन सभी साफ सुधरे, चमकीले एवं दामिनीके तुल्य जग-मगानेवाले रहा करते । ये सातसातकी पंक्ति बनाकर खड़े रहा करते और दोनों ओर दो पाश्र्वरक्षक अस्थित रहते । इस भौति सात वतारोंका सृजन हो जाता और जब बड़ी सजबज एवं डाटघाट से ये वीर सज्ज हो जाते तो ( गण-धियः ) सबके कारण ये बहुत सुहाने लगते । उनकी शोभा आधुनिक सुसज्ज सेनाके समकक्ष हो जाती है ।

हथियार ।

भाले ।

ये ऋष्टिभि अजायन्त । ( ऋ० १।३।७।२ ) ( ७ )

वाहुपु अधि ऋष्टय दधिद्युतति ।

( ऋ ८।२०।११ ) ( १२ )

अंसेपु ऋष्टय नि मिमुक्षु । ( ऋ. १।६।४।४ ) ( १११ )

भ्राजटष्टयः उञ्जिघ्नते । ( ऋ. १।६।५।१ ) ( ११८ )

भ्राजटष्टयः स्पये महिर्यं पनयन्त ।

( ऋ १।८।७।३ ) ( १४७ )

भ्राजटष्टयः दृष्ट्वानि चित् अचुच्यवुः ।

( ऋ १।१।६।४।४ ) ( १८६ )

भ्राजटष्टयः मरुतः आगन्तवः ।

( ऋ. २।३।४।५ ) ( २०३ )

भ्राजटष्टयः वय दधिरे । ( ऋ ५।५।५।१ ) ( २६५ )

ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते । ( ऋ १।८।५।४ ) ( १२६ )



कश्चिदग्निः रथेभिः जायात ।

( ऋ. १।८।१ ) ( १५१ )

सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिक्

ऋष्टिः येपु सं मिम्यक्ष । ( ऋ. १।१६।३ ) ( १७४ )

ऋष्टिविद्युतः मरतः । ( ऋ. १।१६।५ ) ( १८७ )

ये ऋष्टिविद्युतः नमस्य । ( ऋ. ५।५२।३ ) ( २२९ )

युधा आ ऋष्टीः अस्सृत । ( ऋ. ५।५२।६ ) ( २३७ )

यः अंसेपु ऋष्टयः, गमस्त्वोः अग्निभ्राजस विद्युतः ।

( ऋ. ५।५३।१ ) ( २६० )

‘ये वीर अपने भाले लेकर प्रकट होते हैं । इनकी भुजा-  
धोपर तथा कंधोंपर भाले द्योतमान हो उठे हैं । तेजःपुञ्ज  
हथियारों से युक्त होकर ये वीर अपने महत्त्व को बढाते  
हैं । चमकनेवाले हथियार लेकर ये वीर रथपरसे आते हैं ।  
इन के हथियार बडिया, सुदढ, सुतीक्ष्ण, सोने के  
तुल्य चमकनेवाले होते हैं । चमकीले भालों से युक्त  
ये वीर स्थिर नाभुको भी विकम्पित कर देते हैं । कंधोंपर  
भाले रखे हुए हैं और इनके हाथों में तलवार रहती है ।’

ऋष्टि का अर्थ है भाला, कुल्हाडी, परशु या तक्षम मुष्टि  
में पकड़नेयोग्य हथियार । जब क्षैतिक भाले लेकर खड़े  
होते हैं तब कंधों पर अपने भालों को रख लेते हैं । उस  
समय का वर्णन इन मंत्रों में है ।

कुठार या परशु ।

ये वाशीभिः अजायन्त । ( ऋ. १।३।७ ) ( ७ )

हिरण्यवाशीभिः अग्नि स्तुपे । ( ऋ. ८।७।२ ) ( ७७ )

ते वाशीमन्तः । ( ऋ. १।८।५ ) ( १५० )

यः तनुपु अधिवाशीः । ( ऋ. १।८।३३ ) ( १५३ )

ये वाशीपु धन्वसु श्रायाः । ( ऋ. ५।५३।४ ) ( २३७ )

‘वाशी का अर्थ है कुल्हाडी या परशु । यह मरतों का  
एक शस्त्र है । परशुसहित ये वीर प्रकट होते हैं । इन  
कुल्हाडियों पर तुलहली पच्चीकारी की जाती थी । ये  
वीर हमेशा अपने पास कुठार रख लेते हैं । समीप तीक्ष्ण  
कुठार एवं बडिया धनुष्य रखते हैं ।

इन वर्णनों से पाठकों को इनके कुठारों की कल्पना  
आजायगी । इनके हथियारोंमें भाले, कुठार एवं धनुष्यों  
का अन्तर्भाव हुआ करता था । साथ ही तलवार भी रहा  
करती थी ।

तलवार, वज्र ।

वज्रहस्तैः अग्नि स्तुपे । ( ऋ. ८।७।३२ ) ( ७७ )

विद्युद्धस्ता । ( ऋ. ८।७।२५ ) ( ७० )

हस्तेषु कृतिः च सं दधे । ( ऋ. १।१६।३ ) ( १८५ )

स्वधितिवान् । ( ऋ. १।८।७ ) ( १५७ )

‘ये वीर हाथ में तलवार या वज्र धारण करनेवाले हैं ।  
बिजली के तुल्य हथियार इन के हाथ में पाया जाता है ।  
तेज धारवाली, तुरन्त काट देनेवाली तलवार ये वीर  
धारण करते हैं ।’

‘कृति’ का अर्थ है, तीक्ष्ण धारवाली तलवार । वज्र  
भी एक हथियार है जो पहिये के भाकारवाला होता हुआ  
तेज दन्दानेदार बनता है । पर कई स्थानोंपर अस्पन्त  
सुतीक्ष्ण तलवार को भी वज्र कहा है ।

हथियार ।

ऋभुक्षण ! हवं वनत । ( ऋ. ८।७।९ ) ( ५४ )

ऋभुक्षणः ! प्रचेतसः स्थ । ( ऋ. ८।७।१२ ) ( ५७ )

ऋभुक्षणः ! सुदीतिभिः धीलुपविभि आगत ।

( ऋ. ८।२।१२ ) ( ८३ )

गमस्त्वो, इपुं दधिरे । ( ऋ. १।६४।१० ) ( ११७ )

हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् पश्यन् ।

( ऋ. १।८।५ ) ( १५५ )

यः क्रिविर्दती दिद्युत् रदति ।

( ऋ. १।१६।६ ) ( १६३ )

यः अंसेपु तविपाणि आदित ।

( ऋ. १।१६।९ ) ( १६६ )

पविषु अधि शूराः । ( ऋ. १।१६।१० ) ( १६७ )

यः ऋञ्जती शय । ( ऋ. १।१७।२ ) ( १९६ )

चक्रिया अवसे आववर्तत् । ( ऋ. २।३।१५ ) ( २१२ )

धन्वना अनु यन्ति । ( ऋ. ५।५३।६ ) ( २३९ )

विद्युता सं दधति । ( ऋ. ५।५४।२ ) ( २५१ )

यः हस्तेषु कशाः । ( ऋ. १।३।७ ) ( ८ )

‘ये शस्त्रपारी वीर हैं । बडिया, तीक्ष्ण धारावाले शस्त्र  
लेकर तुम शूर भाओ । तुम हाथ में बाण धारण करते हो ।  
तुम्हारे हथियार सुवर्णविभूषित फौलाद की-बनी दंष्ट्रतुल्य  
विभागों से अलंकृत हैं । तुम्हारा दन्दानेदार बिजली की

उरुह वेजस्वी शस्त्र शत्रुके डुकडे कर रहा है । तुम्हारे कंधों पर हथियार लटक रहे हैं । तुम्हारे हथियार तीक्ष्ण धाराओं से युक्त हैं । तुम्हारा हथियार वेगपूर्वक शत्रुदल पर जा गिरता है । तुम्हारे पहिये जैसे दिखाई देनेवाले आयुध से तुम जनता की रक्षा करते हो । धनुषांरी बन कर तुम यात्रा करते हो । तुम्हारा सघ वज्रस्वी चत्रों से सुसज्ज होता है । तुम्हारे हाथों में चाकू है ।'

इन मन्त्रांशो मे मरुतों के अनेक हथियारों का निर्देश देव्यने मिलता है । इन्द्रानेदार वज्र और पहिये, बाण, शर, धनुष्य, तलवार, छोटोमोटे लंबी या छोटी मूटवाले हथियारों का उल्लेख है । इस से मरुतों के हथियारो एवं उन के गणवेश की अच्छी कटरना की जा सकती है ।

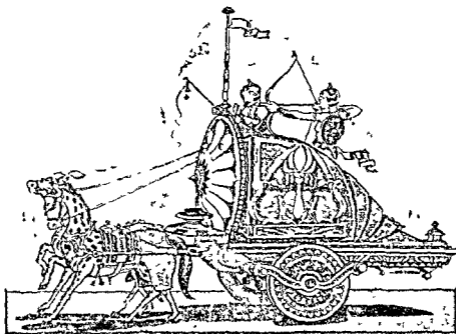
सुदृढ मजबूत हथियार ।

घ आयुधा स्थिरा । ( ऋ. १।३।१२ ) ( ३७ )

घः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा ।

( ऋ. ८।२।१२ ) ( २३ )

' मरुतों के हथियार बडे ही सुदृढ हुश्रा करते और उन के रथों पर स्थिर याने न हिलनेवाले धनुष्य बहुतसे रखे जाते थे ।' यहाँपर चल् तथा स्थिर दो मकार के धनुष्य हुआ करते ऐसा जान पडता है । ध्वजस्तंभों से बाँधे धनुष्य स्थिर और धीरोने अपने साथ रखे हुए धनुष्य चल् कहे जा सकते हैं । स्थिर धनुष्योंपर दूरतक फेंकनेके लिए बडे बाण एवं घडाके से टूट गिरनेवाले गोळक भी लगाये जाते । चल् धनुष्यों से प्रायः सभी परिचित होंगे । ऐसा जान पडता है कि, केवल महारथी या अतिमहारथी ही स्थिर धनुष्यों को काम में ला सकते थे ।



मरुतों का घोडे जोता हुआ रथ ।

मरुतों का रथ ।

मरुतां रथे शुभं शर्थं अग्नि प्रगायत ।

( ऋ. १।३।११ ) ( ६ )

' मरुतों का चल रथों में मुद्दानेवाला है ।' वह सच-

मुच वर्णन करनेयोग्य है । ये धीरे रथों में बैठकर अपना चल प्रकट करते हैं ।

एषां रथाः स्थिरा सुसंस्कृताः ।

( ऋ. १।३।१२ ) ( ३१ )

मर्तः घृषणभ्येन घृषणसुना घृषणामिना रथेन  
आगत । ( ऋ ८।२०।१० ) ( ९१ )

घन्धुरेषु रथेषु घः आ तस्थौ ।

( ऋ १।६७।९ ) ( ११६ )

विष्टुन्मग्निं स्वर्कैः ऋष्टिमग्निं अश्वपर्णं, रथेभि  
आ यात । ( ऋ १।८८।१ ) ( १५१ )

घः रथेषु विश्वानि भद्रा । ( ऋ १।१६६।९ ) ( १६६ )

यः अक्ष चक्रा समया वि ववृते । , , ,

मर्तः रथेषु अश्वान् आ युंजते ।

( ऋ २।७।८ ) ( २०६ )

रथेषु तस्थुः यतान् वक्ष्या यमु ।

( ऋ ५।५३।२ ) ( २३५ )

युष्माकं रथान् अनु दधे । ( ऋ ५।५३।५ ) ( २३८ )

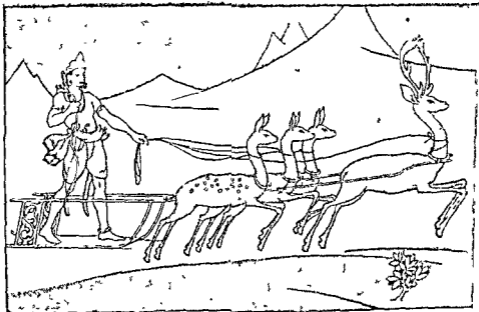
शुभं यातां रथाः अनु अवृष्टत ।

( ऋ. ५।५३।१-२ ) ( २६५-२७३ )

इन धीरों के रथ बड़े ही सुदृढ़ हुआ करते हैं । इनके  
रथों के घोड़े बलिष्ठ और उनके पहिये मजबूत दगड़े बनाये

होते हैं । इनके रथों में बैठने की जगहें कई होती हैं ।  
इनके रथों में तेजस्वी तथा बढिया इधियार रचे जाते हैं  
और घोड़े भी जोते जाते हैं । इनके रथों में सब कुछ अच्छा  
ही होता है । इनके रथों का धुरा एवं उसके पहिये की  
समय पर घूमते रहते हैं । ऐसे रथों में बैठनेवाले इन धीरों  
के समीप भला कौन जा सकता है ? हम तुम्हारे रथों के  
पीछे चले आते हैं । भलाई करने के लिए जानेवाले तुम्हारे  
रथों को देखकर जनता उनके पश्चात् चलने लगती है ।

इस वर्णन से मर्त्यों के रथ की कल्पना की जा सकती  
है । बैठने के लिए मर्त्यों के रथों में कई स्थान रहते हैं,  
जिन पर रथारोही घोर बैठ जाते हैं । मर्त्यों के रथ बड़े  
सुदृढ़ दग से तैयार किए जाते हैं अर्थात् उनका छोटाना  
हिस्सा भी मुटिमय नहीं रहता है चाहे पहिया, धुरा या  
अन्य कोई कीलपुजा हो । युद्धभूमि में भीषण सघर्ष तथा  
मार काट में वे ठिक सके इस हेतु को ध्यान में रखकर वे  
अत्यन्त स्थायी स्वरूप के बनाये जाते हैं । इन रथों में  
घोड़े तथा कभी कभी हरिनियाँ भी जोती जाती थीं ।  
देखिए ये उल्लेख—



मर्त्यों का चक्ररहित और हरिणवृक्त रथ ।

हरिणां से खींचे जानेवाले रथ ।

मरुतोंके रथ हरिनियों एवं बारहसौनोंसे खींचे जाते थे  
ऐसा वर्णन निम्न मंत्रांशोंमें है। पाठक उनका विचार करें।

ये पृथ्वीभिः अजायन्त । ( ऋ. १।३।०।२ ) ( ७ )

रथेषु पृथ्वीः अयुग्धम् । ( ऋ. १।३।१।६ ) ( ४१ )

एषां रथे पृथ्वीः । ( ऋ. १।८।५।५ ) ( ७३ )

रथेषु पृथ्वीः प्र अयुग्धम् । ( ऋ. ८।७।२।८ ) ( १२७ )

रथेषु पृथ्वीः आ अयुग्धम् ।

( ऋ. १।८।५।४ ) ( १२६ )

पृथ्वीभिः पृक्षं याय । ( ऋ. २।३।४।३ ) ( २०१ )

संमिश्राः पृथ्वीः अयुक्षत । ( ऋ. ३।२।६।४ ) ( २१४ )

रोहितः प्रथीः वहति । ( ऋ. १।३।१।६ ) ( ४१ )

प्रथीः रोहितः वहति । ( ऋ. ८।७।२।८ ) ( ७३ )

‘ रथ में धक्केवाली हरिनियाँ जोती हुई हैं और उनके  
आगे एक बारह सौगा रखा हुआ है । यह एक इस भाँति  
दशिनयुक्त मरुतों का रथ है जो पहियों से रहित होता  
है । देखो—

सुषोमे शर्याणावति आर्जाके पश्यावति ।

ययुः निचक्रया नरः । ( ऋ. ८।७।२।९ ) ( ७४ )

‘ चक्ररहित रथपर से चरिया सोम जहाँपर होता हो,  
ऐसे स्थानपर शर्याणा नदी के समीप ऋजीक के प्रदेश में  
नरत्त जाते हैं । ’

जिस स्थानपर चरिया सोम मिलता है वह समुद्र की  
सतहसे १६००० फीट ऊँचाईपर रहता है । यहाँ का सोम  
अधुपृष्ठ माना जाता है । चूँकि यहाँ ‘ सु-सोम ’ कहा  
है इसलिये ऐसे स्थानों का विचार करने की कोई आवश्य-  
कता नहीं रहती है जहाँपर घटिया दूर्जों का सोम मिलता  
हो । इतने अत्युच्च भूविभाग में ये मरुत् पहियों से रहित  
रथपर से संचार करते हैं । कोई आश्रम की घात नहीं अगर  
वह स्थान बर्फ से पूर्णतया ढका हो । ऐसे हिमाच्छादित  
भूभागों में चक्रहीन वाहनों को चूणसारण या हरिनियों  
खींचती हैं और आज ट्रिन भी यह दृश्य देखा जा सकता  
है । रूस के उत्तर में जहाँपर खूप बर्फ जमी रहती है इस  
कारण ही गादियाँ, जिन्हें आंस्क भाषा में ( Sledge )

‘ स्लेज ’ कहते हैं, आज भी प्रचलित है जिन्हें बारह सौगा  
या हरिनियाँ खींचती हैं ।

इस से प्रतीत होता है कि, मरुत् बर्फीले स्थानों में  
रहते हो । मरुतों के रथों में घोड़ों तथा घोड़ियों को भी  
जोतते थे । शायद, बर्फ का अभाव जहाँपर हो ऐसे स्थानों  
में पहुँचनेपर इस ढंग के रथोंका उपयोग किया जाता हो  
और हिमाच्छादित, निविड हिमस्तरों की जहाँ प्रचुरता हो  
ऐसे प्रदेशों में ऊपर बतलाये हुए हरिणोंद्वारा खींचे जाने-  
वाले रथों का उपयोग होगा हो ।

अश्वरहित रथ ।

इस के सिवा मरुतों के समीप ऐसा भी रथ विद्यमान  
था जो बिना घोड़ों के चलता था, अर्थात् चावूक की आव-  
श्यकता नहीं हुना करती थी । देखिये, वह मन्त्र यं दै-

अनेनो वो मरुतो यामो अस्तवन्भवश्चिदू यम-  
जत्यरथी । अनवसो अनमीदू रजस्तूर्वि  
रोदसी पथ्या याति साधन् ॥

( ऋ. ६।६।१० ) ( ३४० )

‘ हे वीर मरुतो ! यह तुम्हारा रथ ( अन्-एनः ) शिल्-  
कुल निर्दोष है और ( अन्-अथ ) इस में घोड़े जोते नहीं  
हैं तिसपर भी वह ( अजति ) चलता है, संचार करता  
है तथा उसे ( अ-रथी ) रथ में बैठनेवाला वीर न हो  
तो भी अर्थात् एक साधारण सा मनुष्य भी चला सकता  
है । ( अन्-भवसः ) इसे किसी पृष्ठ-रक्षक की आवश्यक-  
कता नहीं रहती है, ( अन्-अभीष्टु ) यह लगाम, बन्धा  
आदि से रहित है, ऐसा यह रथ ( रजस्तू ) बड़े वेग से  
गई उड़ाना हुआ ( रोदसी पथ्या ) आकाश एवं पृथ्वी के  
मध्य विद्यमान मार्गों से ( साधन् याति ) अपना अभीष्ट  
सिद्ध करता हुआ चला जाता है ।

यह मरुतों का रथ आधुनिक ‘ मोटर ’ के तुल्य कोई  
वाहन हो ऐसा हील पड़ता है जो घोड़े, लगाम तथा पृष्ठ-  
रक्षक के अभाव में भी भूक उड़ाना हुआ वेगपूर्वक आगे  
बढता है । अर्थों के न रहने से साथ लगाम रखने की  
कोई आवश्यकता नहीं है और खींचनेवाले न रहनेपर भी  
भीतर रखे हुए यांत्रिक साधनों से ध्वनिमय नभ करता  
हुआ यह रथ वेग दौड़ता है । भूक उड़ाने जाने का मत-

क्य वही है कि, उस का वेग बड़ा ही प्रचंड है । क्योंकि तीम वेग के न होनेपर धूलि का उड़ाया जाना संभव नहीं है ।

( रजस्तुः ) का दूसरा अर्थ योंही हो मगना है कि अंत-रिक्षमें से स्वरापूर्वक जानेवाला । ऐसा अर्थ कर लेने से, ( रजस्तुः रोदसी पथा याति ) सुलोक एतं भूलोक के मध्य अन्तरिक्ष की राहसे यह रथ चला जाता है, ऐसा अर्थ हो सकता है । ऐसी दृश्यामें इस रथ को आकाशवाय, 'एभरोह्येन' मानना आवश्यक है । अगर इसे दम कविकल्पना मानें, तो भी विमानों की सूचना स्पष्टतया विद्यमान है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । इस मन्त्र में निर्दिष्ट यह रथ भले ही विमान हो, या मोटर हो, पर स्पष्ट तो यही है कि बिना अर्थों की सहायता के यह बड़ी क्षीयता से गतिमान हुआ करता है ।

कहूँ मंत्रों में ' वाज पंठी की तरह वीर मरत आते हैं ' ऐसा वर्णन किया है- यह निर्देय भी मरतों के आराधना-संचार को और अधिक स्पष्ट करता है ।

अब तक के वर्णन से पाठकों को स्पष्ट विदित हुआ ही होगा कि मरतों के समीप चार प्रकार के वाहन थे, [ १ ] अश्वसंचालित रथ, [ २ ] हरिणियों तथा कृष्णसार मृग से खींचा हुआ, घनीभूत हिम के स्तरपर से घसीटते जाने-वाला रथ, [ ३ ] बिना अश्वोंके परन्तु बड़े वेगसे चतुर्दिक् धूलि उड़ाते हुए जानेवाले रथ और [ ४ ] आरामानमें उड़ते जानेवाले वायुपान ।

### शत्रु पर किया जानेवाला आक्रमण ।

मरत दानुसेना पर हमले करने में बड़े ही प्रवीण थे और इनकी इस भाँति चढाई के बारेमें किया हुआ विधिब वर्णन देखनेयोग्य है । यानगी के तौर पर देख लीजिए-

प यामः चित्रः । ( क. १।१६६।४; १।७२।१ )  
( १६६।१९५ )

यः चित्रं याम चेतिते । ( क. २।३७।१० ) ( २०८ )

' तुम्हारी हमला बड़ा ही अचम्भे में डालनेवाला होता है । ' जिससे जनता आश्चर्यचकित हो दाँतोंतले ऊँमली प्याये बैठी रहे, ऐसे आक्रमण का सूत्रपात ये वीर मरत करते हैं । उसी प्रकार-

य उग्राय यामाय मन्यवे मानुष नि दध्रे ।

( क. १।३७।७ ) ( १७ )

येपां यामेषु पृथिवी भिया रेजते ।

( क. १।३७।८ ) ( १८ )

व. यामेषु भूमि. रेजते । ( क. ८।२०।५ ) ( ८६ )

य यामाय गिरि नि वेमे । ( क. ८।७।५ ) ( ५० )

य' यामाय मानुषा अर्थीभयन्त ।

( क. १।३९।६ ) ( ४१ )

' तुम्हारी चढाईके मौकेपर मानव वहाँ न कहीं किसी के सहारे रहने लगते हैं । तुम्हारे हमले से पृथ्वीतक काँपने लगती है । तुम्हारे आक्रमण से पहाड़तक छुपचाप हो जाते हैं ताकि वे न गिर पड़े । तुम जब चाहा गुफारने हो तब मानव भयभीत हो उठते हैं । '

इन वीरों का ऐसा प्रबल आक्रमण हुआ करता है । इस विद्युदाक्रमण के सम्मुख बलिष्ठ दानु भी तुफान में तिनके के समान कहीं के कहीं उड़ जाते हैं और अ-पदस्थ हो जाते हैं । देखिए न-

दीर्घं पृथुं यामभि प्रच्यातयसित ।

( क. १।३७।११ ) ( १६ )

यत् यामं अचिध्वं पर्वता नि अहासत ।

( क. ८।७।२ ) ( ४७ )

यत् यामं अचिध्वं इन्दुभि मन्दध्वे ।

( क. ८।७।१४ ) ( ५९ )

' तुम्हारी चढाईको के फलस्वरूप बड़े तथा सुदृढ दानु को भी तुम पदभ्रष्ट करते हो और पहाड़ भी विकम्पित हो उठते हैं । जब तुम आक्रमणार्थ बाहर निकल पड़ते हो तो पहले सोमपान कराये दायित होते हो और पश्चात् दानु पर टूट पड़ते हो । '

इससे विदित होता है कि एव बार यदि मरतों का आक्रमण हो जाए तो दानु का संपूर्ण विनाश होना ही चाहिए, दुर्भाग्य पूरी तरह मरिषामेट होगा इतना प्रभाव-शाली यह होता है ।

मरत मानव ही थे ।

पहले महर्षि मार्क, गानपरोटि के थे, परन्तु उन्होंने अपनी मूर्ता से भाँति भाँति के कर्म कर दिखलाये, अतः

वे भ्रमरपन को पाने में सफल हो गये । देखिए—

य्यं मर्तास स्यातन, व स्तोता अमृतः स्यात् ।

( ऋ. १।३।८।३ ) ( २४ )

रुद्रस्य मर्या दिव जञ्चिरे । ( ऋ. १।६।४।२ ) ( १०९ )

‘ तुम मर्या हो लेकिन तुम्हारा स्तोता भ्रमर होता है ।

तुम रुद्र के पाने वीरभद्र के मानव हो, मरणधर्मा हो, पर

तुम कार्य इत तरद करते कि मानों तुम्हारा जन्म स्वर्गों में

धुलोक में हुआ हो । ’ उसी प्रकार—

मरुत सगणा मानुषास ।

( अथर्व. ७।७।५ ) ( ४४७ )

मरुत- विश्वरूप्यः । ( ऋ. ३।२।६।५ ) ( २१५ )

सभी गणों के साथ समवेत वे मरुत मानव ही हैं और

सभी कृषिकर्म करनेवाले काश्तकार हैं । ये गृहस्थाश्रमी

भी हैं । देखिए—

गृहमेधास आगत मरुतः । ( ऋ. ७।५।१।० ) ( ३९२ )

‘ ये मरुत गृहस्थाश्रम में श्रवण करनेवाले हैं, वे हमारी

ओर आ जायें । ’ निरस देह, ये विवाहित हैं भ्रतएव इ-हैं

परनीपुत्र कहा गया है ।

युवान निमिश्ठा पञ्जा युवर्ता शुभे अस्थापयन्त ।

( ऋ. १।६।७।६ ) ( १७७ )

स्थिरा चित् घृषमना अहंयु सुभागा जनी

घहते । ( ऋ. १।१।७।७ ) ( १७८ )

तुम युवक वीर मिल सदवास में रहनेवाली, पत्नीपद

पर आरूढ पुरती को शुभमन्त्रकर्म में साथ ले चलते हो

और वसे अच्छे कर्म में लगाते हो । तुम्हारी पत्नी अच्छी

भाग्यादिनी ही है और वह अच्छी स-तान से युक्त है । ’

इससे स्पष्ट है कि ये विवाहित हैं ।

मरुतों की विद्याविलासिता ।

वीर मरुत ज्ञानी और कवि ये ऐसा वर्णन उपलब्ध

होता है । देखिए—

ज्ञानी ।

प्रचेतस मरुत न आ गन्त ।

( ऋ. १।३।१।० ) ( ४४ )

प्रचेतस भानवति । ( ऋ. १।६।४।८ ) ( ११५ )

ते ऋध्वास दिवः जञ्चिरे । ( ऋ. १।६।४।२ ) ( १०९ )

‘ वीर मरुतो! तुम विद्वान् हो, तुम हमारे निकट चले

आओ, तुम उरुचकोटि के ज्ञानी हो । ’ विद्वान् होने के

कारण वे मरुत दूरदर्शी भी हैं ।

दूरदर्शी ।

दूरे दृष्टा परिस्तुभ । ( ऋ. १।१।६।१।१ ) ( १६८ )

‘ ये वीर दूरदर्शिता से सपन्न होने के कारण पूर्णतया

सरादर्शी हैं । ’ विद्वता तथा दूरदर्शिता से भक्तकृत होने

के कारण ये अच्छी प्रभावशाली चक्रवृत्ता देने की क्षमता

रखनेवाले हैं ।

धुवाँधार चक्रवृत्ता देनेवाले ।

सुजिह्वा आसमि स्वरितार ।

( ऋ. १।१।६।१।१ ) ( १६८ )

‘ उन वीर मरुतों की वाणी बनी अच्छी है भ्रत उनके

मुँहसे मधुर एवं सुरभर चक्रवृत्ता धाराप्रवाहरूप से निकलती

है । इन मरुतों में कविचरणात्ति पाई जाती है ।

कवि ।

ये ऋष्टिविद्युतः कवय सन्ति देप्रस ।

( ऋ. ५।५।२।१ ) ( २२९ )

नरो मरुत सत्यधुत कवयो युवान ।

( ऋ. ५।५।७।८ ) ( २९१ )

मरुत कवयो युवान । ( ऋ. ५।५।८।३ ) ( २९४ )

( ऋ. ५।५।८।८ ) ( २९९ )

स्वतयस कवय मरुत । ( ऋ. ७।५।१।१ ) ( ३९३ )

कवयो य इन्वय । ( अथर्व. ५।२।७।३ ) ( ४४२ )

ऋतज्ञा ( २०१ ) घेषस ( २५५ ) विचेतस ( २६२ )

‘ ये मरुत ज्ञानी, कवि एवं अपनी साधनिकाके लिये

विख्यात हैं । ये युवक तथा कलिष्ठ हैं । बुद्धिमत्ता भी इन

में कृत्ररका भरती होती है, उदाहरणार्थ—

बुद्धिमानी ।

य्यं सुचेतुना स्मर्ति विपर्तन ।

( ऋ. १।१।६।१।६ ) ( १६३ )

धियं धियं देपया धधिधे ।

( ऋ. १।३।३।१ ) ( १८२ )

य सुमति ओसु जिगातु ।

( ऋ २।२४।५ ) ( २२३ )

सूर्य मे प्रधोचन्व । ( ऋ ५।५२।१६ ) ( २३० )

‘ ये अपनी अच्छी बुद्धिमत्ता के कारण जनता में सु-बुद्धिका प्रचार एवं बुद्धि करते हैं, इन में हरएक मे दिव्य-भावयुक्त बुद्धि निवाम कारणी है, ये अच्छे विद्वान्, उच्च कोटिके यत्ना और सुबुद्धि देनेवाले भी हैं । ’ बुद्धिमानीके साथ इन में साहसिकता भी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है ।

साहसीपन ।

धृष्टयुया पावति । ( ऋ ५।५२।२ ) ( २१८ )

‘ ये अपने धैर्ययुक्त धर्पणसामर्थ्य से सब का संरक्षण करते हैं । ’ ये बड़े सामर्थ्यवान् हैं—

सामर्थ्यवन्ता ।

शक्तिन मे शतां ददु । ( ऋ. ५।५२।१७ ) ( २३३ )

‘ इन सामर्थ्यशाली वीरोंने मुझे सौ गायों का दान दिया । ’ इस प्रकार इन की शक्तिमत्ता का वर्णन है । ये बड़े उत्साही वीर हैं ।

उत्साह तथा उमंग से लवालब भरे ।

समन्यव ! मापस्यात । ( ऋ ८।२०।१ ) ( ८० )

समन्यव मरुत ! गाव मिथ रिहते ।

( ऋ ८।२०।२१ ) ( १०२ )

समन्यव ! पृक्षं याथ । ( ऋ २।३४।३ ) ( २०१ )

समन्यव ! मरुत. न सघनानि आगन्तव ।

( ऋ २।३४।६ ) ( २०४ )

‘ ( स-मन्यव ) हे उत्साही वीरो ! तुम हम से दूर न रहो । तुम्हारी गौएँ प्यारसे एक दूसरेको चाट रही हैं । तुम भक्त का समूह करने जाओ । ‘ स-मन्यवः ’ का मतलब है उत्साही, क्रोधपूर्ण, जोशीला याने जो दूसरों के किए अपमान को बरदाश्त नहीं कर सकते ऐसे वीर । इन वीरोंमें उग्रता भरी पड़ी है ।

उग्र वीर ।

उग्रस तनूपु नकि येतिरे ।

( ऋ. ८।२०।१२ ) ( ९३ )

धमा मरुत ! तं रक्षत ।

( ऋ १।१६।८ ) ( १६५ )

‘ ये उग्रस्वरूपवाले वीर अपने शरीरों की कुछ भी परवाह नहीं करते । हे उग्र प्रकृति के वीरो ! तुम उस की रक्षा करो । ये वीर बड़े उद्योगी भी हैं ।

उद्यम में निरत ।

शिमीवतां शुभ्रं विद्य हि । ( ऋ ८।२०।३ ) ( ८४ )

‘ इन उद्योग मे लगे वीरों का बल हमें विदित है । ’ परिधमी जीवन चिताने के कारण इन का बल बढ़-चढा होता है । निरलस उद्यम करने से जो बल बढ़ता है वह मरुतों में पाया जाता है । ये बड़े कुशल भी हैं ।

कुशल वीर ।

ये वेधस नमस्य । ( ऋ. ५।५२।१४ ) ( २२९ )

वेधस ! य शर्ध अम्राजि ( ऋ ५।५४।६ ) ( २५५ )

सुमाया मरुत न आयांतु ।

( ऋ. १।१६।१२ ) ( १७३ )

मायिन तयिपी. अयुग्ध्वम् ।

( ऋ १।६४।७ ) ( ११४ )

‘ ये वीर ज्ञानी हैं, इसलिये इन्हें प्रणाम करो । हे ज्ञानी वीरो ! तुम्हारा सब बहुत सुहावा है । ये अच्छे कुशल मरुत हमारी ओर आजायें । ये कारीगर अपनी शक्तियों से युक्त हैं । ’ इस प्रकार उनकी बुद्धवताका वर्णन किया हुआ है । ये बड़े कथामिय भी हैं अर्थात् कहानियों सुनना इन्हें बहुत भाता है ।

कथामिय ।

[ हे ] कथमिय । य सखित्ये क ओहते ।

( ऋ ८।५।३१ ) ( ७६ )

‘ हे प्यार से कहानी सुननेवाले वीरो ! कौनसा मित्र भला तुम्हें मिय है । ’ कथामिय पद का भावय है भौतिकी की वीरों की कथाएं या वीरगाथाएं सुन लेना जिन्हें अच्छा लगता हो । इस कथामियता में ही इन की शूरता का आदिष्टोत रखा हुआ है । भीमारों के उपचार करने में भी ये प्रवीण हैं ।

रोगियों की सेवा करने में प्रवीणता ।

मायतस्य भेषजस्य आ वदत ।

( क. ८१२०१२३ ) ( १०४ )

यत् सिन्धौ भेषजं, यत् असिक्न्यां, यत् समुद्रेषु  
यत्पर्वतेषु चिन्धं पश्यन्तो विभृथा तनुष्या । नः  
आतुरस्य रपः क्षमा विन्दुतं पुनः इफक्तं ।

( क. ८१२०१२६ ) ( १०७ )

‘ पवनमें जो औषधिगुण है उसे यहाँ ले आओ । सिन्धु, समुद्र, पर्वत, असिक्नी नामक स्थलों में जो कुछ दवाई मिल जाए उसे तुम देख लो तथा प्राप्त करो । वह समूचा निराल कर अपने समीप संग्रह कर रखो । हममें जो बीमार पड़ा हो उस के देह में जो गुटि हो उसे इन औषधों से दूर करो और कुछ टूटाफूटा हो वो उसकी मरम्मत कर दो ।

तिल्लाडी ।

इन धीरों में तिल्लाडीपन की कुछ भी न्यूनता नहीं है । इन संबंध में कुछ प्रमाण देखिए—

क्रीळं माहृतं शर्धं अभि प्रगायत ।

( क. ११२०११ ) ( ६ )

यत् शर्धं क्रीळं प्रशंस । ( क. ११२०१५ ) ( १० )  
ते क्रीळयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

( क. ११८०१२ ) ( १४७ )

क्रीळा विदयेषु उपक्रीळन्ति ।

( क. १११६६१२ ) ( १५९ )

‘ क्रीडा में श्रद्धा होनेवाला मरतों का सामर्थ्य सचमुच वर्णनीय है । वे क्रीडामक मनोवृत्तिवाले हैं इससे उनकी मद्दनीयता प्रकट होती है । युद्ध में भी वे इस तरह जुझते हैं कि मारों में खेल ही रहे हों । वीर हमेशा तिल्लाडी बने रहते हैं । इनके तिल्लाडीपनमें भी वीरता एवं शौर्यका ही आविर्भाव हुआ करता है । ’

नृत्यप्रियता ।

नृतयः मरतः । मरतः यः भ्रातृत्वं आ अयति ।

( क. ८१२०१२२ ) ( १०३ )

‘ मरत् नृत्य में बड़े कुशल हैं । भाव तक इनसे इसी कारण निम्नता प्रत्यापित करना चाहते हैं । ’ साधारण

गन्धर्ष भी ऐसे उच्च कोटि के वीरों के संपर्क में सिर्फ उनकी नृत्यचातुरी के कारण आना चाहता है । इससे ज्ञात होता है कि इनकी कुशलता में भाकर्षणशक्ति कितनी बड़ी होगी ।

गानेबजाने में प्रावीण्य ।

ऐसा हील पदता है कि ये वीर बाजा बजाने में भी कुशल थे, देखिए—

हिरण्यये रये कोशे वाण अज्यते ।

( क. ८१२०१८ ) ( ८२ )

घार्णं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ।

( क. ११८५-१० ) ( १३९ )

‘ सोने से मढ़े हुए रथ में बैठकर ये वाण नामक बाजा बजाने लगते हैं और चेतोहारी गायन का प्रारंभ करते हैं । इस भाँति वीर मरत् गायनवादन-पटुता के कारण बड़ाही सुखमाल जीवन बिताने हैं और दुःख या उदासीनता इनके पास फटकने नहीं पाती ।

ऊपर वीर मरतोंमें विद्यमान सद्गुणोंका दिग्दर्शन किया जा चुका है । आता है कि पाठकद्वन्द्व के सम्मुख मरतोंका व्यक्तिमत्त्व स्पष्टतया स्पष्ट हुआ होगा । पाठकों से प्रार्थना है कि वे स्वयं भी इस संबंध में अधिक सोच लें ।

प्रबल शत्रु को जड़मूल से उखाट फेंक देनेवाले वीर ।

ये वीर मरत् अपने प्रभावशाली हैं कि स्थिरीभूत शत्रु को भी अपनी जगह परसे समूल उखाट देते हैं । देखिए—  
( हे ) नरः ! यत् स्थिरं पराहत ।

( क. ११२५३ ) ( ३८ )

गुरु धर्तयथा । ( क. ११२५३ ) ( ३८ )

स्थिरा चित् नमयिष्णयः । ( क. ८१२०११ ) ( ८२ )

यत् पञ्च, द्विपानि चि पापतत् ।

( क. ८१२०१४ ) ( ८५ )

अच्युता चित् ओजसा प्रच्यवन्तः ।

( क. ११८५४ ) ( १२६ )

एषां अजमेषु भूमिः रेजने । ( क. ११८०१३ ) ( १४७ )

‘ हे नेता वीरों ! तुम स्थिर हृदयन को भी दूर हटाते



हो, बड़े प्रबल शत्रु को भी हिया देते हो, रिधर शत्रु को भी ह्मकाते हो । जय तुम चढाई करते हो, तय टापूतक गिर पडते हैं । अविचलित शत्रु को अपनी शक्ति से विकपित करा देते हो । इनके आक्रमण के समय जमीन एक दिक उठती है ।'

इस प्रकार ये धीर अपने प्रभाव से समूचे शत्रु को तहसतहस कर डालते है ।

### भव्य आकृतिवाले वीर ।

मर्तों की आकृति बड़ी भव्य हुआ करती थी, इस विषय के वर्णन देखिये ।

ये शुभ्रा घोरवपसे सुक्षत्रासो रिशादस ।

क्र ८१०३१४ ( अग्नि २४४७ )

सरवान घोरवर्षस । (१०९) क्र. ११६४२

मृगा न भीमा । (१९९) क्र २३४११

' ये धीर गौरवर्णवाले पृथ भव्य शरीरों से युक्त हैं । वे अच्छे क्षत्रिय हैं और शत्रु का पूर्ण विनाश करनेवाले हैं । वे बलिष्ठ तथा बृहदाकार शरीरवाले हैं । सिंह की न्याईं ये भीषण दिखाई देते हैं ।'

पीछ कहा जा चुका है कि, ये सभी युववृद्धता में विद्यमान हैं । यह बात सबको मित्रित है कि, सेनाओं में युवक ही गर्ती किये जाते हैं ।

### रक्तिमामय गौरवर्ण ।

मर्तों के वर्णन से जान पडता है कि, ये गौर वदन वाले पर तनिक लाकृतिमामय आभासे युक्त थे । देखिये-

शुभ्राः । (७०), क्र ८१०२५, (७३), ८१०२८ (५९), ८१०१४, (१२५), ११८५३, (१७५), ११३६७४ अहणत्सय । (५२) ८१०३

स्पष्ट हुआ कि, मरुत् गौरकाय थे, एष लाकृतिमापूर्ण छवि उन के शरीरों से फूट निकलती थी ।

### अपने तेज से चमकनेहारे वीर ।

ये सदा अपने तेज से द्योतमान हो उठते थे, ऐसा वर्णन उपलब्ध है ।

ये स्वभानवः अजायन्त । (७), क्र ११३०२

स्वभानव धन्वसु ध्याया' । (२३७), क्र ५५३३४

मरुत् प्र० ३

स्वभानवे वाचं प्र अनज । (२५०), ५५४११

येपं प्राहृतं गणं वन्द्युः । (३५) ११३८१५

ते भानुभिः त्रि तस्त्रियरे । (५३), ८१०८

चित्रमानवः तद्विपी अयुग्ध्वम् ।

(११४) क्र. ११६४१०

चित्रमानव अवसा आगच्छन्ति ।

(१३३) क्र ११८५११

अहिभानव मरुत । (१९५) ११०२११

अग्निश्रियः मरुतः । (२१५) ३१२६५

' ये धीर मरुन अपने निजी तेज से प्रकट होते हैं । ये धनुष्यों का आश्रय लेकर पराक्रम कर दिखलाते हैं । उन तेजस्वी वीरों का वर्णन करो । समूचे मर्तों का तय तेजस्वी है । ये अपने तेज से विशेष दग से चमकते हैं । उन का तेज अनोखे दग से चमकता है । ये अग्निरूप तेजस्वी हैं और उन का तेज कभी न्यून नहीं होता ।'

यह सारा वर्णन उन धी तेजस्विता को हीन तरह बालाता है ।

### अन्न उत्पन्न करनेहारे वीर ।

पहले कहा जा चुका है कि, [ मरुत विश्व-कृष्टयः । (२१५) क्र ३१२६५ ] मरुत् सभी किसान ह । अतः स्पष्ट है कि धान्य का उत्पादन करा उन के अनेकविध ऋत्यों में अन्तर्भूत था । निम्न मंत्रों से देखनेयोग्य है—

वयः धातार । (८०) क्र ८१०३५

पिप्युषी इपं घृक्षन्त । (४८) क्र. ८१०३३

ते इवं अभि जायन्त । (१८४) क्र ११३६८१

नमस इत् घृधासः । (१९४) क्र ११२७३२

घयोवृध परिज्यय । क्र ५५५४२

' मरुत् अन्न का धारण करते हैं, पुष्टिकारक अन्न का उत्पादन करते हैं । ये अन्न का उत्पादन करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं । ये अन्न की वृद्धि करनेवाले होते हुए धीर मरुत् धारों और घूमते रहत हैं ।'

ऐसे वर्णन पाय जाते हैं, जिन से धीर मर्तों का अन्नोत्पादन सिद्ध होता है, अत स्पष्ट है, ये सभी ( कृष्टय ) याने कृषिकर्म में निरत काश्तकार हैं ।

‘ गायोंका पालन करते हैं ।

कृपक होने के कारण मरुत् सेती करते हैं, धान्य की उपज बढ़ाते हैं, अन्नदान करते हैं, तथा गोपालन भी करते हैं । इस सम्बन्ध में देखिए—

घः गावः वय न रण्यन्ति ? (२२) ऋ. १।२।८२

‘ तुम्हारी गौएँ मला क़िधर नहीं रँभाती हैं ? ’ अर्थात् मरुतों की गौएँ हर जगह घूमती हैं और सहर्ष रँभाती हैं । उसी प्रकार—

इन्धन्वभिः रण्यदूधमि धेनुमि आगन्तन ।

(२०२) ऋ. २।३।५५

धेनुं ऊधनि पिप्यत । (२०४) ऋ. २।३।४६

पृथ्व्याः ऊधः दुहुः । (२०८) ऋ. २।३।१०

‘ तेजस्वी एवं प्रसंसनीय बड़े बड़े धनों से युक्त गौओं के साथ हमारे समीप आओ । गौके धन को दूधभरा घर ढालो । उन्होंने गौके धन का दोहन किया । ’ ऐसे वर्णन मरुत्सूक्तों में पाये जाते हैं । ये वीर गायको मातृ-वत् पूज्य समझते हैं । देखिए—

गां मातरं घोचन्त । (२३२) ऋ. ५।५२।१६

‘ गौ हमारी माता हैं, ’ ऐसा वे कह चुके । गौ का दोहन कर के ये दूध पीते हैं और पुष्ट होते हैं ।

पृथ्विमातरः ! घः स्तोता अमृतः द्यात् ।

(२४) ऋ. १।३।८४

पृथ्विमातरः इपं धुक्षन्त । (४८) ऋ. ८।७।३

पृथ्विमातरः उद्वीरते (६२) ऋ. ८।७।७

पृथ्विमातरः धियः दधिरे । (१२४) ऋ. १।८।५२

गोमातरः अजिभिः शुभयन्ते । (१२५) ऋ. १।८।५३

‘ गोमातरः ’ तथा ‘ पृथ्विमातरः ’ दोनों पदों का अर्थ गौ वी माता माननेहारे और भूमि को माता समझनेवाले ऐसा हो सकता है । यहाँ दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं । कारण, ये वीर गोभक्त तो थे ही, लेकिन मातृभूमि की उपासना भी बड़ी लगन से किया करते थे । मातृभूमि की सेवा करनेके लिए ये हमेशा अपना प्राण निचावर करने को तैयार रहा करते थे । इनके वर्णन पढ़ने से साफ साफ प्रतीत होता है कि, रामु को दूर हटाकर मातृभूमि को सुखी एवं संपन्न करने के लिए ही इनकी सम्पत्ती प्रशस्त, वीरता

तथा धैर्य का उपयोग हुआ करता ।

चूँकि ये कृपक, सेती करनेवाले एवं अन्न की उपज बढ़ानेहारे थे, इसलिये गौ की रक्षा करना इन के लिए अनिवार्य था, क्योंकि गौओं की उन्नति होने से कृषिकार्य के लिए आवश्यक, उपयुक्त बैलों की सृष्टि हुआ करती है ।

मरुतों के घोड़े ।

मरुतोंके समीप बघिया, भली भौति लिखाये हुए अच्छे घोड़े थे । हमने देख लिया कि, ये गायों को रख लेते थे और गो-पालनविद्या में निष्णात थे । अब उन के अर्षों का विचार कर लेना चाहिए ।

घः अर्षाः स्थिराः सुसंस्कृताः । (३२) ऋ. १।३।८।१२  
द्विरपयेपाणिभिः अर्षैः उपागन्तन ।

(७२) ऋ. ८।७।२७

घृषणभ्वेन रथेन आ गत । (९१) ऋ. ८।२।०।१०

आदणीपु तथिषीः अयुग्म्वम् । (११४) ऋ. १।६।१।७

घः रघुष्यद्ः ससयः आ घहन्तु । ऋ. १।८।५।६

सः गणः पूषद्वभः । (१५१) ऋ. १।८।८।१

ते अरणेभिः पिशांगैः रथतूर्भिः अर्षैः आ यान्ति ।

(१५२) ऋ. १।८।८।२

अतयान् ह्य अर्ष्यान् उदान्ते

आशुभिः आजिपु तुरयन्ते । (२०२) ऋ. २।३।४।३

‘ तुम्हारे घोड़े सुदृढ तथा सुसंस्कृत हैं । जिन घोड़ों के पैरों में सुवर्णजडित अलंकार ढाले गये हों, ऐसे घोड़ों पर बैठकर हथर आओ । जिस में बलिष्ठ घोड़े लगाये हों, ऐसे रथ से हथर आओ । लाल रंगवाली घोड़ियों में जो बलिष्ठ घोड़ियाँ हों, उन्हें ही रथ में जोड़ो । शीघ्र गतिवाले घोड़े तुम्हें हथर ले आयें । इस मरुत्सूक्तके समीप धन्वेवाले घोड़े हैं । शक्ति भाभावाले तथा भूरे रंगवाले घोड़ों से रथ शीघ्र चलकर तुम हथर आओ । घुटदौड़ में घोड़े जैसे बलिष्ठ बनाये जाते हैं, वैसे ही तुम अपने घोड़ों को पुष्ट रखो । त्वरित जानेवाले घोड़ों से ये वीर लड़ाई में जय-प्राप्ति करते हैं, बहुत शीघ्र युद्ध में जाते हैं । ’

इन वचनों में मरुतों के घोड़ों का पयति वर्णन है । ये घोड़े लाल रंगवाले, भूरे, धन्वेराले और बहुत बलवान होते हुए घुटदौड़ के घोड़ों के समान त्वर चपल होते हैं ।

ये डीक डीक मित्राये हुए भत सभी भण्डे गुणों से युक्त होते हैं । युद्धों में इन घोड़ों की चरन्त्रता दृष्टिगोचर हुआ करती है । इन वर्णनों से महर्तों के घोड़ों के सम्बन्ध में अनुमान करना कठिन नहीं है । और भी देखिए—

पुवद्भ्यास आ घवक्षिरे । (३००) क २३४४  
पुवद्भ्यास विदधेयु गन्तारः । (२१६) क ३२६१९  
अभ्ययुजः परिजय । (२९१) क ५५४२  
घः अश्या न ध्रधयस्त । (२५९) क ५५४१०  
सुयममिः आशुमि अश्वे इयन्ते ।

(२६५) क ५५५५१

मगत रघेयु अभ्याम् आ युजते । (१०६) क २३४८

' घन्नेवाले घोड़े जोतकर य वीर वर्णों में या युद्धों में चले जाते हैं । घोड़े सेवार रत्न य चट्टे और घूमते हैं । तुम्हारे घोड़े थक नहीं जाते । स्वामीन रहनेवाले प्य प्यारपूर्वक जानेवाले घोड़ों से ये यात्रा करते हैं । मरतू वीर रथों में घोड़े जोत लिया करते हैं । ' वसी प्रकार—

घ अभीश्राव ह्यिरा । (३२) क १३८१२

' तुम्हारे लगाम स्थिर पाये न टूटनेवाले होते हैं । ' इन घघनोंसे पादकवृन्द भली भाँति कदवाना कर सकते हैं कि, वीर महर्तों के घोड़े किस ढंग के हुआ करते थे ।

### इन वीरों का बल ।

महर्तों के यत्नों में महर्तों के बल का उल्लेख भी ८ बार पाया जाता है । कुछ मन्त्रान देखिए—

माहते बलं अभि प्र भायत । ( ६ ) क १३०११  
माहते शार्घ्ये स्व प्रये । ( १९८ ) क. २३०१११  
युष्माकं तपिवी पनीयसी । (३७) क. १३२१०  
य बलं जनान् अचुच्यवीतन । गिरीन् अचुच्य  
पीतन । ( १७ ) क. १३०१२  
उप्रवाह्व तनू नकि येतिरे ।

( ९३ ) क ८१२०१२

' महर्तों के बल का वर्णन करो; उन का सामर्थ्य मराद-नीप है; उन का बल सारे शत्रुओंको हिला देता है; पहाड़ों को भी विकरित करा देता है, उन का बाहुबल बड़ा भारी है और लड़ते समय ये अपने शत्रुओं की शक्ति भी पहाड़ नहीं करते हैं । '

हम भौतिक वीर बलिष्ठ और अपनी शरीररक्षा की शक्ति भी पचाँद न करते हुए लड़नेवाले थे, अतएव घडा ही प्रभावोपादक युद्ध प्रवर्तित कर लेते थे । मय तो उन्ट कभी प्रवर्तित ही नहीं हुआ करता । निर्भयताये ये मूर्तिमान भयवार ही थे । निम्न मन्त्रान महर्तों के, मन की स्तितिव करनेवाले तथा दिक्पर गहरा प्रभाव डालनेवाले, सामर्थ्य का रस निर्रत करते हैं—

महर्ता उग्रं शार्घ्यं विभ्र हि । (८४) क ८१२०३  
अमघन्त मदि धियं यदन्ति ।

( ८८ ) क ८१२०७

शूराः शयसा अहिमन्यव ।

( १२६ ) क १६४१९

अनन्तशुभा-तपिवीमि संमिष्टा ।

( ११७ ) क १६४१०

ते स्वतवसः अशर्धन्त । ( १२९ ) क १६५१७

य तानि सना पौरुष्या । ( १५७ ) क ११२२१८

वीरस्य प्रथमानि पौरुष्या यितु ।

( १६४ ) क. ११६६१७

नयैपु याष्टुप भूरीणि मन्त्रा ।

( १६७ ) क ११९९१०

य शयस अन्तं अन्ति आरात्ताच्चित्तु

नदिनु आपु । ( १८० ) क ११९०१९

तुविजाता ह्वहानि अचुच्यतु ।

( १८६ ) क ११९११४

धृष्णु औजस गा अपाधृषत ।

( १९९ ) क २३४११

औजसा अर्द्धि भिन्दन्ति । (३०५) क ५५२१०

य वीर्यं दीर्घ ततान । ( २५४ ) क. ५५४१५

" महर्तों के उग्र सामर्थ्यसे हम परिभा हैं, ये सामर्थ्य-वाली होनेके कारण बड़ा भारी यश पाते हैं, ये शूरा हैं और अपने अन्दर विद्यमान सामर्थ्य से ये हीरोताह कभी नहीं घबरेते हैं; इनके सामर्थ्यों की कोई सीमा या अन्त नहीं, तथा इनकी शक्तियाँ भी बहुतही हैं; आग सामर्थ्य से ये बढते हैं ये तो इतके हमेशा के पौरुषपूर्ण कार्यकलाप हैं; वीरों के ये प्रारम्भिक पौरव हैं । इन वीरों के बाहुभा में बहुत से द्वितकार्य सामर्थ्य स्थि पड़े हैं; तुम्हारे बल का

अन्त ममश जेना, चाहे दूर से हो या समीर से, अतमय ही है; बल के लिए विरतात वे वीर प्रबल दुश्मनों को भी विचलित कर देते हैं, बगदग दिखा देते हैं, अपनी दाकिसे ही तो इन्होंने शत्रुओं के बधन से गौर्भों को छुड़ा दिया और भोजविरता के कारण पड़ावों को भी तोड़ टाकते हैं, तुम्हारा सामर्थ्य बहुत दूर तक फैला है । ”

इन मन्त्रभागोंमें इन वीर मरुतों के प्रभावोत्पादक बल एवं सामर्थ्यका वर्णन किया हुआ पाठकों को दिखाई देगा, जो कि सचमुच मननीय है ।

### मरुतों की संरक्षणशक्ति ।

वीर मरुत बलवान् एवं चतुर होर हृदयजनताका संरक्षण करने का भार अपने ऊपर ले लेनेमें तत्परता दर्शाते हैं । इस समय में आगे दिये हुये वाक्य देखने योग्य हैं—

( हे ) महत ! असाभिभि ऊर्तिभि न आगन्त ।

( ४४ ) ऋ १।३.१।९

ऊतये युष्मान् नक्तं दिवा ह्ययामहे ।

( ५१ ) ऋ ८।७।६

वृत्रतूयै इन्द्रं अनु आयन् । ( ६९ ) ऋ ८।७।४

स व ऊर्तिपु सुभग आस । ( ९६ ) ऋ ८।१०।५

ऊमास गाय योयं अरासत ।

( १६० ) ऋ १।१६।१

य अभि=हुते अघात् आयत, य जनं

तनयस्य पुष्टिपु पाधन, त शतभुक्तिभि.

पृष्टिं रक्षत । ( १६५ ) ऋ १।१६।८

मरुत उचोभि आ यान्तु ।

( १७३ ) ऋ १।१६।२

य ऊर्ता चित्र । ( १९५ ) ऋ १।१७।१

न रिप रक्षत । ( २०७ ) ऋ २।३।९

स्वेषं अय ईमहे । ( २१५ ) श।२।५

ते यामन् रमना सा पान्ति ( २१८ ) पा।५।२

ये मानुषा युगा रिप आ पान्ति । ( २२० ) पा।५।४

( हे ) सद्य ऊतय 'द्रविणं यामि । ( २६४ ) पा।५।१५

य प्रायश्चे स सुधीर अतति । ( २४८ ) पा।५।५

“ हे वीर मरुतो ! अपनी समूची संरक्षणशक्तियों से युक्त होकर तुम हमारे पाम आभो, हमारे संरक्षण हों,

इसलिए हम तुम्हें रातदिन बुलाते हैं, वृत्र का वध करते समय इन्द्र को तुमने मदद दी, वह तुम्हारी संरक्षण—छत्र छाया में सौभाग्यशाली हो गया, संरक्षण करनेहारे इन वीरोंने धन की पुष्टि कर डाली; जिसे, तुमने विनाश और पाप से बचाया था और जिसे तुमने इस देतु से बचाया था कि वह अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण भली भाँति कर ले, उसे तुम संकटों उपभोगमाधनों से परिपूर्ण गर्दों से सुरक्षित रख लेते; अपने संरक्षक साधनों से युक्त होकर मरुत हमारे निकट आ जाँय, तुम्हारा संरक्षण बड़ा अनुश्रु है; दैतकों से हमें बचाओ, हमें तुम्हारे तेजस्वी संरक्षण की आवश्यकता है, वे हमका करते समय स्वयं ही रक्षा का प्रबंध कर लेते हैं; वे वीर सभी मानवी युगोंमें दैतकों से बचाते हैं, हे तुम्हारे बचानेवाले वीरों ! मैं द्रव्य पाता चाहता हूँ, निम की तुम रक्षा करते हो, वह उत्कृष्ट वीर बनता है । ”

इस से स्पष्ट होता है कि, इन्द्र को भी मरुतों की मदद मिल चुकी थी और उसी तरह अन्य लोग भी मरुतों की सहायता से काम उठाते आये हैं । पान में रहे कि, वे वीर अपनी दाकियोंसे और संरक्षण की आयोजनाओंसे अविद्यमभाव से सब को सहायता देते हैं । कभी दुर्ग में रहते हुए तो कभी रथारूढ होकर यात्रा करते हुए स्वयं घटनास्थलपर उपस्थित रहकर ये रक्षार्थियोंको संरक्षण देते हैं । इन सूक्तों में निर्देस मिलता है कि, कइयोंको मरुतों की मदद मिल चुकी थी, जो कि इस दृष्टिकोण से देखनेयोग्य है । यहाँपर प्रमुख बात यह है कि, रक्षार्थी चाहे रक्षक हो या साधारण मानव पर सभी समान रूपसे मरुतों की सहायता से लाभान्वित हो चुके हैं ।

### मरुतों की सेना ।

मरुत तो सुद ही सैनिक हैं । वे साठसात की पक्ति बनाकर चला करत हैं और इनकी पूर्वी कतारें ७ रहा करती हैं । सब मिलाकर ४९ सैनिकों का एक छोटा विभाग बन जाता । हर कतार में दोनों पार्श्वभागों के द्विप दो पार्श्वरक्षक नियुक्त होते थे । सात पक्तियों के १४ पार्श्व रक्षक रहते । सैनिक ४९ और १४ पार्श्वरक्षक मिलाकर ६३ मरुत एक छोटे से सय में पाय जाते । ६३ मरुतोंके

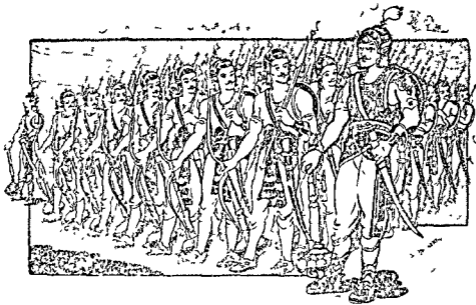
इस संघ को 'शार्ध' नाम दिया गया है । (६३ × ७) = ४४१ सैनिकों का अथवा ७ दायों का एक 'त्रात' और (६३ × १४) = ८८२ सैनिकों या १४ दायों का या दो दायों का एक 'गण' हुआ करता । इस प्रकार इन सैनिकों की यह संघमंशदा है, जो ऐसी बनी हुई है कि, हम में क्या न्यून या अधिक है, सो अन्य प्रमाणों से ही निर्धारित करना ठीक होगा । इस दृष्टि से मंत्रों में पाये जानेवाले इन दृष्टियों का मर्म जानना चाहिये । अस्तु, मरतों की सेना के बारे में निम्नलिखित वचन देखिये—

स्थानां शार्धं प्रयन्ति । (२४३) क ५।५।१।०

'तुम्हारे सशस्त्र के लिये लड़नेवाले सैनिकों को प्राप्त करे; तुम्हारे शार्ध और गणविभागों के पीछे हम खुद ही चलते हैं; वे वीर रथों के विभाग को पहुँचते हैं ।'

इस स्थानपर सिपाहियों के विभाग को सूचित करने-वाले 'शार्ध तथा गण' दो पद पाये जाते हैं । इन सैनिकों का प्रभाव किस ढंग का बना रहता है, सो देख लीजिए—

यः अमाय यातत्रे धौ उत्तरा जिहीते । (८७) क ८।२।०।६



### मरतों का एक संघ ।

पृथिनः मरतां श्वेषं अनीकं अस्तु ।

(१९१) क १।१।६।१०

'मातृभूमिने मरतों के हम तेजस्वी सैन्य को उत्पन्न किया । अर्थात् यह सेना मातृभूमि के लिये ही अस्तित्व में आती है और इस सेनाका भङ्गी भौति संगठन हो चुकने पर मातृभूमि तथा उस के सभी पुत्रों यात्रे समूची जनता का संरक्षण करनेका गुदतर कार्यभार हम के दायों में सौंप दिया जाता है । देखिए—

घ. श्रुतस्य शार्धान् जिन्वत । (६६) क ८।०।२।१

यः शार्धशार्धं गणंगणं अनुक्रामेम

(७५५) क ५।५।१।१

'तुम्हारे सैनिक भागे नष्ट चले, इस दंतु आराधना ऊँचा ऊँचा हो जाता है ।' इस तरह खुद आकाश ही हम सेना को आगे निकल जाने के लिये सुक मार्ग बना देता है । मरत सेनाका प्रभाव इतना सर्वंकष और प्रमाथी है । जिस किसी दिशा में यह सेना चली जाए, उधर इसे रुकावट नहीं महसूस करनी पड़ती है और प्रगति के लिये मार्ग खुला दीज पड़ता है । यह सशस्त्र वृद्ध प्रभावताली शौर्य का ही नतीजा है ।

### विजयी वीर ।

वे वीर सर्वत्र विजयी बनते हैं, तथा इनका प्रभाव भी बरा ही पचत है । इस विजय के कारण इनकी सेना में

एक तरह की भनोसी शोभा फैलती है—

अनीकेषु अधि धियाः । (१३) ऋ. ८।२०।१२

‘ इन के सैनिकों के मोर्चेपर विशेष शोभा या विजयधी रहती ही है ’ अर्थात् इनकी सेनामें इतना प्रभाव विद्यमान रहता है कि, निधय से विजयधी मिलेगी, ऐसा कहा जा सकता है ।

धाराचरा गा अपावृषयत । (११९) ऋ २।३।१

‘ युद्ध के मोर्चेपर—अप्रमाण पर—अपरिग्रह हो धेच्छ ठहरे हुए वीर शत्रु के कारागृह से गौर्षोको सुरा देते हैं । ’  
ये वीर—

श्रामजित अस्वरन् । (२५७) ऋ ५।५।४

‘ शत्रु से गाँव जीत लेनेपर बड़ी भारी गर्जना करते हैं । ’ यह निस्सन्देह विजय पाने की गर्जना या दहाह है ।

( हे ) जीरदानव । युष्माकं रथान् अनुद्धे ।

( २३८ ) ऋ ५।५।५

जीरदानव ! पृथिवी मरुद्भ्य प्रवस्वती ।

( २५७ ) ऋ ५।५।८

जीरदानव ! आ वषक्षिरे । ( २०२ ) ऋ २।३।४

‘ शीघ्र विजय पानेहारे वीरो ! तुम्हारे रथों के पीछे मैं चलता हूँ, मैं तुम्हारा अनुसरण करता हूँ, पृथिवी मरुतों के लिए सरल और सोपा मार्ग बना देती है । ’

चाहे जिधर ये मरुत् चले जायें, उन्हें कहीं भी विघ्न बाधा या अडचनरोके नहीं रखती । इन के मार्ग पर के सभी ऊपदखावट स्थान, बीहड़ पहाड़ या टीले दूर हुआ करते और ये वीर इच्छित स्थानतक इगनी आसानी से जा पहुँचते हैं कि, मार्गों ये सभी सीधी राहपर से जा रहे थे ।

शत्रुओं का विध्वंस ।

इन मरुतों का एक प्रमुख कार्य अर्थात् ही शत्रुओं का विनाश करना है और इन के वर्णनपरक सूक्तों में इस का पस्वान हर जगह किया है । इस सम्बन्ध के मन्त्रों अथ देखिए—

रिशादसः ! य शत्रु न विविदे ।

( ३९ ) ऋ १।१९।४

रिशादस ! ( ११२ ) ऋ १।६।५

‘ ये शत्रु को समूह विध्वस्त करनेहारे वीर सैनिक हैं, अतः इन्हें ‘ शत्रुभक्षक = ( रिशादस ) ’ कहा है । ये शत्रु को मार्गों खा जाते हैं, अत कोई शत्रु शेष नहीं रहने पाता । ये कहीं भी गमन करें, पर शायद ही इन्हें किसी एकाध जगह दुर्गमन मिले ।

विश्वं अभिमातिनं अपयाधन्ते ।

( ६२५ ) ऋ १।८।५।३

तं तपुषा चन्दिया अभिपर्वयत, अदासः

वध आ हन्तन । ( २०७ ) ऋ २।३।९

‘ ये वीर समूचे दुर्गमों को मार भगते हैं, वे वीरो ! तुम दुर्गम को परिताप देनेहारे पहियेदार हथियार से धेर लो और पेड़ शत्रु का विध्वंस करो । ’

इस भाँति, पूरी तरह शत्रु को सटियाभेट कर देने की जो क्षमता वीर मरुतों में है, इस का निम्न वेदके सूक्तों में पाया जाता है ।

दुर्गमों को रूतानेवाले वीर ।

मरुतों को रुद्र भी कहा है, जिसका आशय है, ( रोद-यति इति ) रूतानेवाला याने दुरासना एवं दुर्जन शत्रुओं को रूतानेवाला । चूँकि ये शूर तथा शत्रुदल का सपूर्ण विध्वस्त करनेवाले हैं, इसलिए यह नाम बिल्कुल सार्थक जान पड़ता है । देखिए—

( हे ) रुद्राः ! तपियो तगा अस्तु ।

( ३९ ) ऋ १।१९।४

इस के अतिरिक्त ( ४२ ) ऋ १।९।७, ( ५७ ) ऋ. ८।७।२ ( ८३ ) ऋ ८।२०।२, ( १५९ ) ऋ १।१६।३, ( २०७ ) ऋ २।३।९ इन में तथा इसी भाँति के अनेक मन्त्रों में मरुतों को ‘ रुद्र ’ नाम से पुकारा है । बेतक, यह ऋत् उन की प्रचण्ड वीरता को व्यक्त करता है ।

मरुतों की सहनशक्ति ।

ध्यान में रहे कि, दो प्रकार का सामर्थ्य वीरों में पाया जाता है । जब वीर सैनिक शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्र पाव कर दें, तो उस तीव्र दमले को बरदास्त न कर सकने के कारण शत्रुसेना विनष्ट हो जाए। इसे ‘ असह्य ’ सामर्थ्य कहना चाहिए और दूसरा भी एक सामर्थ्य इस विरम का होता है कि, दुर्गम चाहे कितना ही प्रबल

हमका चढाना शुरू को, लेकिन अपनी जगह भटल एवं अदिग रूप से रहना और अपना स्थान किसी तरह न छोड़ देना, सम्भव होता है । यह सामर्थ्य 'सह या सह-मान' पदों से सूचित किया जाता है । यह भी मरुतों में पूर्णरूपेण विद्यमान है । देखिए—

मुष्टिहा इव सहाः सन्ति । (१०२) ऋ. ८।२०।२०

'मुष्टियुद्ध खेलनेवाले वीर की तरह ये सभी वीर सहनशक्ति से युक्त हैं ।' यह सुतरां आवश्यक है कि, धीरों में सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में रहे, क्योंकि उन्हें विभिन्न तथा प्रतिक्लृप्त दशाओं में भी अविचल रूप से बटे रहकर कार्य करना पड़ता है । शीतोष्ण सहिष्णुता याने कष्टों का जाड़ा और झुलसानेवाली धूप बरदाश्त करना पड़ता, जैसे ही शत्रु के तीव्रतम आघातों की पर्याप्त न करते हुए बटे रहने की भी जरूरत होती है । इस तरह कई ढंग से सहनशक्ति काम में लाई जा सकती है ।

ये वीर पर्वतों में घूमा करते ।

पहाड़ों में संचार करने, धीहट जंगलों में घूमने आदि कार्यों से और श्वायाम से शरीर सुदृढ़ तथा कष्टसहिष्णु बनता है । इसीलिए वीर सैनिक पार्वतीय भूमिभागों में चलते फिरते हैं, इस विषय में निम्न निर्देश देखिए—

पर्वतेषु वि राजध । (४६) ऋ. ८।७।१

यनिर्न ह्यसा गृणीमस्ति । (११९) ऋ. १।६४।१२

'वीर मरुत् पहाड़ों में जाते हैं और वहाँ मुहाते हैं, वनों में गये हुए मरुत्तों का वर्णन करता हूँ ।' ऐसे वृद्ध के वर्णन देखने पर यह स्पष्ट होता है कि, ये वीर पर्वतों तथा जंगल वनों में संचार किया करते थे । धीरों को और विशेषतया सैनिकों को इस प्रकार का पर्वतसंचार करना बहुत हितकारक तथा आवश्यक होता है । क्योंकि ऐसा करने से कष्टसहिष्णुता बढ़ जाती है ।

स्वयंशासक वीर ।

ये वीर स्वयं ही अपना शासन करनेवाले हैं । इन पर अन्य किसी का शासन प्रस्थापित नहीं हुआ था । इस बात का निर्देश करनेवाले मंत्रांश नीचे दिये हैं ।

अराजिनः घृणिण पौरुष्यं चक्राणाः

घृत्रं पर्यशः वि ययुः । (६८) ऋ. ८।७।२३

'ये अराजक वीर बड़ा भारी पौरुष करते हुए वृद्ध के टुकड़े टुकड़े कर चुके ।' मरुतों के लिए यहाँ पर 'अ-राजिनः' पद आया है । जिन में राजा का अभाव हो, वे 'अ-राजिनः' कहलाते हैं । आज भी भारत में राज-निहीन जातियाँ पाई जाती हैं, जिन में एक प्रमुख शासक नहीं रहता, अपितु समूची जाति ही अपने शासन का प्रबन्ध आप कर लेती है, जिसे महाराष्ट्र में 'देव' कहते हैं । अर्थात् सारी जाति ही जाति का शासन करती है । जिन गिर्राँदों में ऐसा प्रबन्ध नहीं रहता उन में कोई न कोई एक नियन्ता या शासक के पद पर अधिकृत रहता है और ऐसे मानवसमूहों को 'राजिक' याने राजा से युक्त कहते हैं । जिन मानवसमुदायों में राजसंस्था का अभाव हो, वे स्वयंशासित हुआ करते, इसीलिए इन्हें 'स्व-राजः' ऐसा भी कहते हैं ।

ये आश्वत्थाः अमचत् घृहन्ते

उत ईशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥

(२२२) ऋ. ५।५।८।१

अस्य स्वराजः मरुतः विवस्ति ॥

(३९८) ऋ. ८।९।४।४

'ये सुद ही अपना शासन करनेवाले मरुत् जबद जानेवाले घोड़ों पर बैठकर जाते हैं और अमृतत्व के अधि-पति हैं, ये स्वयंशासक मरुत् इस सोम के रसका आस्वाद लेते हैं ।' यहाँ पर 'स्वराज' पद का अर्थ है, स्वयंशासक या अपने निजी प्रकाश से द्योतमान । ये स्वयं ही अपने ऊपर शासन चला लेते थे, इस विषय में दूसरे वचन देखिए—

स हि स्वसुत् युवा गणः ।

तविपीभिः आवृतः अया ईशानः ॥

(१४८) ऋ. १।८।७।४

ईशानकृतः । (११५) ऋ. १।६।४।५

'यह युवक मरुतोंका संघ अपनी निजी मेरणासे चलने-पाळा और विविध शक्तियों से युक्त है, इसीलिए वह समूह (ईशानः) स्वयं अपना ईश है, अर्थात् सुद ही शासक बना हुआ है; ये वीर शासकों का सृजन करनेवाले हैं ।' यह घटे ही महाव की बात है कि, जो विविध सामर्थ्यों से युक्त तथा स्वयंप्रेरक होता है, वह स्वयं ही अपना प्रभु

बनता है और शासकों का सृजन करता है; मत्स्य यही कि, उस पर अन्य कोई प्रभुत्व नहीं रख सकता, क्योंकि उसमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि राजा का निर्माण कर ले । ये वीर अपना निर्धनत्व स्वयं ही कर लेते हैं ।

स्वयतासः प्र अधजनन् (१६१) ऋ. १।१६६।४

‘ ये खुद ही अपना नियमन करते हैं और दुःखनों पर वेगपूर्वक हमला चढ़ाते हैं । ’

इस भौति यह सिद्ध हुआ कि, मरुत् गणदेव हैं याने इन में गणशासन प्रचलित है और कोई एक व्यक्ति इन का शासन नहीं करता है, लेकिन ये सभी मिलकर इन्द्र को सहायता पहुंचाते हैं । वैदिक साहित्य में मरुतों के सिवा अन्य कई गणदेव पाये जाने हैं, उदाहरणार्थ, वसु, रद्र, आदित्य आदि जिन का विचार उस उस देवताके प्रसंग में किया जायगा । यहाँपर तो हमें सिर्फ मरुतों का ही विचार करना है ।

मरुत्-गण का महत्त्व ।

वैदिक वाङ्मय में मरुत्गण का महत्त्व बताने के लिये सूत्र बड़ा चढ़ा वर्णन किया है । देखिए—

ते महिमानं आशत । (१२४) ऋ. १।८५।२

ते स्वयं महित्वं पनयन्त । (१४७) ऋ. १।८७।३

ये महुा महान्तः । (१६८) ऋ. १।१६६।३

एषां मरुतां सत्यः महिमा अस्ति ।

(१७८) ऋ. १।१६७।७

महान्तः विराजथ । (२६६) ऋ. ५।५२।२

‘ ये वीर मरुत् बढप्पन को प्राप्त होते हैं; ये स्वयं ही अपने कार्य से बढप्पन पाते हैं; वे अपने निजी बढप्पनसे महान हो चुके हैं, इन मरुतों का बढप्पन सत्य है, बडे होकर ये प्रकाशमान हुए हैं । ’

स्वान में रहे कि वैदिक सूक्तों में इनके महत्त्व की जो मान्यता मिल चुकी है, वह केवल इनके शूरतापूर्ण विविध पराक्रमी कार्यकलाप के कारण ही है ।

अच्छे कार्य करते हैं ।

यह विनये प्रेक्षणीय बात है कि, ये वीर मरुत् हमेशा शुभ कार्य करने के लिए बडे सतर्क रहा करते; देखिए—  
यत् इ शुभे युञ्जते । (१४७) ऋ. १।८७।३

शुभे वरं कं आयान्ति । (१५२) ऋ. १।८८।२

शुभे संमिश्राः । (२१४) ऋ. ३।२६।४

शुभे तमना प्रयुञ्जत । (२२४) ऋ. ५।५२।८

शुभं यातां रथा अन्वघृत्सत । (२५७) ऋ. ५।५४।८

‘ ये वीर शुभ कार्य करने के लिए सज्ज होते हैं; ये वीर शुभ कृत्य तथा श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए ही आते हैं; शुभ कार्य पूरा करने के लिए ये इच्छे हुए हैं; ये खुद ही अच्छे कार्य के लिए लुट जाते हैं; शुभ कार्यसमाप्ति के लिए जब ये जाते हैं, तब इनके रथ पीछे चल पड़ते हैं । ’

शुभ कार्यसे तात्पर्य है, जनताका कल्याण ही ऐसा कार्य जिसे कर्तव्य समझ कर ये वीर करने लगते हैं, देखिए—

तृणस्कन्दस्य विशाः परिवृत्ता, नः ऊर्ध्वान्कर्ता ।

(१९७) ऋ. १।१७२।३

‘ तिनके की नाईं सूही विनष्ट होनेवाले प्रजाजनों की रक्षा चारों ओरसे कीजिये और हमारी प्रगति कीजिए । ’ साधारणतया वान तो ऐसी है कि, जनता तिनके के समान बिली हुई होने से आसानी से विनष्ट हो सकती है, पर जिन तरह बिले तिनकों को एक जगह बाँध लेनेसे एक रस्ता बनता है, जो हाथी को भी जकड़ता है; वैसे ही प्रजा में भी ऐसी शक्ति है, परन्तु अगर वह बिखर जाए, तो विनष्ट होती है । इन प्रजाजनों का विनाश न हो, इसलिये उन्हें पूर्णतया वेष्टित कर एकता के सूत्र में पिरोने से उनकी प्रगति करना सुगम होता है और यही शुभ कार्य है । इसी प्रकार—

नृपायः मरुतः । (११६) ऋ. १।६४।९

‘ मानवों के साथ रहकर उनकी सहायता करनेवाले वीर मरुत् हैं । ’ शूर वीरों का यही श्रेष्ठ कर्तव्य है कि वे मानवों के निकटतम संपर्क में रहे और उन्हें प्रगति का मार्ग दर्शाये । चूँकि ये वीर मरुत् अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं, इसीलिए इनके महत्त्व का वर्णन वेद में हुआ है ।

शत्रुदल से युद्ध ।

मरुत् ( मरु-उत् ) मरनेतक, मौतके मुँह में समाये जानेतक ठठकर शयुसेना से जुसते हैं अथवा ( मा-रुत्=मरुत् ) रोने बिलछने के बजाय प्रतिकार करने में अपनी सारी शक्ति लगा देने हैं । इसी कारण से ये मरुतों



शूरा के लिए विरथात हो चुके हैं । इन का युद्ध-कौशल बड़ा ही विस्मयजनक है । निम्ननिर्देश देता है—

अग्निगायः पर्वता इव मज्जना प्रच्यावयन्ति ।

(११०) ऋ १६४१३

युवानः मज्जना प्रच्यावयन्ति ।

(११०) ऋ १६४१३

‘ आगे बग्नेवाले ये वीर अपनी जगह पहाड़ की नाई स्थिर रहकर धपने मामर्ष्य से दुश्मन को हिला देते हैं । ’

ये वीर—

पर्वतान् प्र चेषयन्ति । (४०) ऋ, ११३१५

‘ पहाड़ की तरह सुस्थिर पृथ अग्नि दानुको भी यरथर व-वायमान बना देते हैं । ’ इन का पराक्रम इतना प्रचंड है और उसी प्रकार—

( हे ) तविपीयच । यत् यामं अचिभ्रं

पर्वताः नि उहासत । (४७) ऋ १०७१२

‘ हे बलिष्ठ वीरो ! जब तुम हमले चलाते हो, तब पहाड़ के तुल्य स्थिर प्रतीत होनेवाले प्रयत्न दानुओं को भी उगड़ग हिला देते हो । ’

दृणि पौंस्यं चक्राणा पर्वतान् वि यमु ।

(८८) ऋ ८०७१३

‘ पड़ा भारी पौरुष करनेवाले तुम वीर सैनिक पहाड़ों को भी तोखर आगे निकल जाते हो । ’

अयासः स्वसूतः षडज्युतः दुध्रकृतः प्राज-

दृष्टय आपथ्यः न पर्वतान् हिरण्ययेभिः

पविभिः उज्जिघ्नन्ते ॥ (११८) १६४११

‘ हमला करनेवाले, अपनी आघोजना के अनुसार प्रगति करनेवाले, स्थायी युद्धमर्तों को भी उखाड़ फेंकनेवाले, जिनके आगे जाता दुश्मन के लिए अभय है ऐसे, तेज पुंज हथियार धारण करनेवाले, राहपर पड़ा हुआ टिकना जिस तरह इटाया जाता है, वैसे ही पर्वतों को, सुवर्णविभूषित रथ के पहियों से या चक्राकारवाड़े हथियारों से उड़ा देने हैं । ’ इन का पराक्रम ऐसा ही विलक्षण है ।

( हे ) धृतयः ! मानं परावतः इस्था प्र अत्यथ ।

(३६) ऋ ११३११

‘ हे दानुदल को विक्रित करनेवाले वीरो ! तुम अपना हथियार बहुत दूर से भी इधर फेंक देते हो । हम तरह तुम्हारा अस्त्र फेंक देने का सामर्थ्य है । ’

( हे ) धृतयः ! परिमन्यते इपु न क्षिपं सुजत ।

(४५) ऋ ११३११०

‘ हे दानुदलको हिला देनेवाले वीरो ! चारों ओरसे बेनेवाले दानु पर जिस तरह पाग छोड़े जाते हैं, वैसे ही तुम तुम्हारे दानुको ही दूरसे दानुपर छोड़ दो । अर्थात् तुम्हारा पृथ दुश्मन उस दूरसे दानुसे लगने लगेगा, जिस के फट-स्फट्य दोनों आपसमें उदाहर हतयत्न हो जायेंगे और उनके क्षीण होनेपर तुम्हारी विजय आसानी से होगी । ’ दानुको दानुसे भिद्यन्त करने का यह उपाय सचमुच बहुत विचारणीय है । युद्धका यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण दाय-पेच है ।

पर्यां यामेपु पृथिवी भिया रेजते ।

(१३) ऋ, ११३०८

‘ इन वीरोंके साक्षात्कार के समय समूची पृथ्वी मारे दर के काँप उठती है । ’ इन का हमला इतना तीव्र हुआ करता है ।

शूरा इव युयुधय न जग्मयः, शकश्यव न

पृतनान्नु येतिरे । राजानः इव त्रैपसंदशः

नरः, मरद्भय- विश्वा भुवना भयन्ते ॥

(१३०) ऋ ११५५८

‘ शूरोके समान और युद्धो-मुरु रणवीरु लोपादियों के तुल्य दानुसेना पर दृढ़ धरनेवाले तथा यज्ञ की इच्छा करनेवाले वीरों के जैसे ये वीर मरर समरभूमि में यज्ञी भारी शूरा दिखाते हैं । नरोंके के तुल्य तेजमरे दिखा देनेवाले ये वीर हैं, इसीलिए सारे भूत इन वीर महर्षी से भयभीत हो उठते हैं । ’

इस भाँति इन वीरोंकी युद्धवेष्टाओं के वर्णन वेदमंत्रों में पाये जाते हैं, जो कि सभी ध्यानपूर्वक देखनेयोग्य हैं ।

मरुत वीरों का दानृत्य ।

वीर मरत चडे ही उदार प्रकृतिवाले हैं, तथा एन गुणे दिल से दान देने के कारण ‘ सु-दानव ’ पद से इन्हें सम्बोधित किया है, जिस का कि अर्थ है ‘ यडे बरडे दागी । ’ नरुतों के चुत्तो में यद विशेषण इन्हें फई वार दिया गया है ।

सुदानवः । (५) ऋ. १।५।२, (४५) ऋ. १।३५।१०; (५७) ऋ. ८।७।१२; (६४) ऋ. ८।७।१५ आदि। इस तरह यह पद महर्षों के लिए अनेक बार सूक्तों में प्रयुक्त हुआ है। उसी प्रकार—

एषां दाना मद्गा । (१५) ८।२०।१४

यः दानं प्रतं दीर्घम् । (१६९) ऋ. १।१६६।२

‘ इन वीरों का दान बहुत बड़ा है और देन देने का प्रत वडा प्रचंड है। ’ इन के दायाव का वर्णन मरु-सूक्तों में इस तरह पाया जाता है। वीर पुरुष हमेशा उदारचेता बने रहते हैं। जिस अनुपात में दूरता अधिक, उतने अनुपात में उदारता भी ज्यादा बढ़ाई जाती है। यह स्पष्ट है कि, महर्षों की दूरता उच्च कोटिकी थी और दायाव भी बहुत बड़ाचड़ा था।

### मानवों का हित करनेहारे वीर ।

‘ नर्य ’ पद, ( नराणां हिते रत ) मानवों के हित करने में तत्पर, इस अर्थ में वेदों में अनेक बार पाया जाता है। महर्षों के लिए भी इस पद का प्रयोग किया है। देवो (१६०) ऋ. १।१६६।५ और उसी प्रकार—

नर्येषु दाहुषु भूरीणि भद्रा । (१६७) ऋ. १।१६६।१०

‘ मानवों के हितार्थ कार्यनिगमन करने वीरों की भुजाओं में बहुतसे हितकारक सामर्थ्य विद्यमान हैं। ’ ये वीर मानवों को सुख देने हैं, इस संबंध में यह मंत्र-भाग देखिए—

( हे ) मयोभुयः ! शिवाभिः नः मयः भूत ।

( १०५ ) ऋ. ८।२०।२४

‘ सब को सुख देनेवाले हे महर्षो ! अपनी कल्याण-कारक शक्तियों से हमें सुख देनेवाले बनो । ’

अस्मे इत् च सुमनं अस्तु । (२४२) ऋ. ५।५३।९

‘ हम सभी को तुम्हारा सुख प्राप्त होवे । ’ महर्ष सुखी मानवजाति को सुख देते हैं और वह हमें उन से मिल जाय। सुख देना महर्षों का धर्म ही है और वे हमेशा उस कार्य को निभाते ही रहेंगे; परन्तु ठीक समयपर उनके साथ रह कर वह उन से प्राप्त करना चाहिए। ये सदैव साधर्म करते रहते हैं।

सुद्वंससः प्र शुभ्रान्ते । (२२३) ऋ. १।८५।१

‘ ये शुभ कार्य करनेवाले वीर अपने शुभ कार्यों ही

सुदाते हैं। ’ मानवों के हित जिनसे हों, वे ही शुभ कार्य हैं।

### कुलीन वीर ।

वीर मरु उरुघट परिवार में जन्म लेते हैं, इसलिये वेदने उन्हें ‘ मुजाताः ’ उपाधि से विभूषित किया है।

मुजातासः नः भुजे नु । (८९) ऋ. ८।२०।८

मुजाताः मरुतः तुविद्युग्नासः अद्रि धनयन्ते । ( १५३ ) ऋ. १।८८।३

मुजाताः मरुतः ! यः तत् महित्वनम् ।

( १६९ ) ऋ. १।१६६।२२

‘ उरुघट परिवार में उत्पन्न वे वीर बहुत बड़े हैं। वे स्वयं तेजस्वी होने के कारण परंत को भी घन्य करते हैं। ये कुलीन वीर अपनी शक्ति से महर्ष को प्राप्त होते हैं। ’ इस प्रकार इनकी कुलीनताका बखान वेदने किया है।

### ऋण चुकानेवाले ।

ध्यानमें रहे, ये वीर ऋण करते नहीं रहते, अपितु मरुत उसे चुकाते हैं। इनकी मनोवृत्ति ऐसी है कि किसी के भी ऋणो न रहें, इसलिये उऋण होनेकी चेष्टा करते हैं। देखिए—

ऋण-यावा गणा अविता । (१४८) ऋ. १।८७।४

‘ ऋण को चुकानेवाला यह वीरों का संघ सब का संरक्षण करनेवाला है । ’ यहाँपर बतलाया है कि ऋण चुकाना महत्वपूर्ण गुण है, जो इनके वीरत्व के लिए बड़ा ही भूषणास्पद है। निरसन्देह, ऋण चुकाना गामरिक लोगोंके लिए बड़ा भारी गुण है।

### निर्दोष वीर ।

अवतक का महर्षोंका वर्णन देता जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये पूर्ण रूपसे दोषरहित हैं। किसी भी प्रकार की त्रुटि या ग्न्यता बन में नहीं पाई जाती है। इस संबंध में निम्नलिखित वेदमन्त्र देखिए—

अनवद्यैः गणैः । (३) ऋ. १।६।८

स हि गणः अनेद्यः । (१४८) ऋ. १।८७।४

ते अरेपसः । (१०९) ऋ. १।६४।२

अरेपसः स्तुहि । (२३६) ऋ. ५।५३।२

‘ महर्षों का यह संघ निताम्न निर्दोष पूर्व अनिन्दनीय

है। पाप से कोसों दूर तथा अपवादरहित हैं। ऐसे निरा-  
गस वीरों की सराहना करो।'

जो वीरों से बिलकुल अछूते हों, उन की ही स्तुति  
करनी चाहिए। यूसी किमी की सुशामद या चापल्वी  
करना ठीक नहीं। जैसे ये वीर निर्दोष आचरणवाले  
होते हैं, वैसे ही ये निर्मल या साफसुधरे भी रहा करते।  
उदाहरणार्थ—

अरेणवः दृढहानि अनुच्युवः ।

(१८६) क्र. ११६८।४

'ये साफसुधरे वीर सुदृढ विरोधियों को भी पदच्युत  
कर देते हैं।' यहाँपर 'अ-रेणवः' पदका अर्थ है वे, जिन  
के शरीरपर धूल न हो; देहपर, कपड़ोंपर, द्रवियोंपर  
धूलिकण नहीं दिखाई पड़े। ऐसे वीर जो अत्यन्त सफाई  
तथा बलबलपान अक्षुण्ण बनाये रहते हैं। उसी तरह-  
ते पररण्यां शुभ्युवः ऊर्णा वसत ।

(२२५) क्र. ५।५२।२

'ये वीर पररणी नदी में नहा धोकर साफसुधरे मनकर  
ऊनी कपड़े पहन लेते हैं।' इस ऊनी वस्त्राचारण वे प्रमाण  
से स्पष्ट होता है कि ये वीर शीत कटिबन्ध में निवास  
करते थे। पररणी नदी शीतप्रधान भूमिभाग में बहती  
है, सो स्पष्ट ही है। पहले रथों का बखान करते हुए हम  
बतला चुके कि हरिणोंद्वारा खींचे जानेवाले तथा पहियों  
से रहित यादनों का उपयोग वीर मरुत् कर लिया करते  
थे। ऐसे यादन बर्फीले भूभागोंपर ही अधिक उपयुक्त  
हुआ करते, अतः यह भी एक प्रमाण है कि ये वीर शीत-  
कटिबन्ध के निवासी थे।

मरुतों का संपर्क ।

चूँकि मरुतों में इतने विविध सद्गुण विद्यमान हैं, अतः  
उनके सहवास में रहने से सभी लाभ उठा सकते हैं, यह  
वशाने के लिये निम्न नवम उद्धृत किये जाते हैं।

यः आपित्वं सदा निभ्रुवि अस्ति ।

(१०३) क्र. ८।२०।२२

यस्य क्षये पाद्य स सुगोपातमो जनः ।

(१३५) क्र. १।८५।१

स मरुत् सुभगः अस्तु, यस्य प्रयासि पर्यथ ।

(१४१) क्र. १।८५।७

'इन वीरों की मित्रता स्थिर स्वरूप की है, इनकी  
मित्रता चिरंतन स्वरूप की है। जिस के घर में ये सोमरस  
का पान करते हैं, वह पुष्प अत्यन्त सुरक्षित रहता है,  
जिसके घर जाकर ये वीर अन्नग्रहण करते हैं, वह सचमुच  
भाग्यवान् पने।'

य वा नूनं असति, स वः ऊतिपु सुभगः आस ।  
(९६) क्र. ८।२०।१५

'जो इन वीरों का ही बनकर रहता है, वह इनके  
संरक्षणों से अकुतोभव होकर भाग्यवाली बन जाता है।'  
उसी तरह—

युष्माकं युजा आध्रुवे तथिपी तना अस्तु ।

(१९) क्र. १।३१।२

'जो तुम्हारे साथ रहता है, उस का बल तुम्हारे ही  
पग्निर्वाँ उदाने के लिये बढ़ता ही रहता है।'

यस्य वा हृदया पीतये आगय, सः युष्मै  
याजसातिभिः व सुम्ना अभि नशत् ।

(५७) क्र. ८।२०।१६

'हे वीरों! जिस के घर में तुम हविष्याद्य वा प्रसादका  
सेवन करने के लिये जाते हो, वह रसों से और अन्नो से  
तुम्हारे दान किये हुए विविध सुखों का उपभोग करता है।'

इस प्रकार, मरुतों के अनुयायी होने से आगमिजत धन  
जाने की सूचना घेदने दी है।

मरुतों का धन ।

ध्यान में रहे कि मरुत् विजयी वीर हैं, जिन के सम्ब-  
न्धमें पराभव के लिये स्थान नहीं है और बड़े भारी उदार  
होते हुए अनुभव दानश्रुता व्यक्त करते हैं, अतः ऐसा  
अनुमान करने में कोई आपत्ति नहीं कि असीम धनवैभवं  
उन के निकट हो। देखा जाय कि मरुत्सूतों में उाकी  
घनिकता के बारे में क्या कहा है—

मरुत्-मंत्रमद्द (२) १।६।६ में 'चिद्दहसु' ऐसा  
गुणबोधक पद इन वीरों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस पद  
का अर्थ धन की योग्यता भली भाँति जाननेवाला यादने धन  
पाना और उसकी योग्यता पदचानना भी स्पष्टतया सूचित  
होता है। मरुतों में वह गुण विद्यमान है, सो उनके धन-  
संग्रह पाने तथा धन का वितरण करने से स्पष्ट होता है।

घात किस भाँति का हो, इस संबंधमें निम्न मन्त्र बड़ा अच्छा बोध देता है ।

( ६ ) महतः ! मद्घृतं पृथुं विश्वघायसं  
रयिं आ इत्यतः । (५८) ऋ. ८।१।१३

' हे वीर नरतों ! शत्रु के घमंड को हटानेवाले, हमें पर्याप्त प्रतीत होनेवाले, सब का धारणपोषण करनेवाले धन का दान करो । ' यहाँ पर ठीक तौर से बताया है कि धन किस तरह का हो । जिस धन से शत्रु का घमंड या वृथा भिमान उठर जाए, इस ढंग की धारणा हममें बढानेवाला पर हम में घमंड न पैदा करनेवाला धन हमें चाहिए । सभी तरह की धारणशक्ति को सुदृढित करनेवाला, हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति भली भाँति करनेवाला धनकेभव प्राप्त हो । अर्थात् ही जिस धनको पाने से गर्व, अभिमान घडनर भाँति भाँति के प्रमाद हो, जो क्षयर्याप्त होता है, तथा जिस से अपनी शक्ति क्षीण होती रहे, ऐसा धन हम से कोसो दूर रहे । हर वोट घात के द्रव गुणों को सोचकर देखे । ऐसे उद्वृत्त धनको नरर हमेशा साथ रख लेते हैं ।

रयिभिः विश्ववेदसः । (११७) ऋ. १।६४।१०

ऐसे धन मरतो के निकट पर्याप्त मात्रा में रहते हैं, इसलिये कहा है कि ' मरत सर्वधनसम्पन्न हैं । ' धन के गुणों एवं अवगुणोंको यत्नानेवाला दुरु और मंत्र देखिए-

( ६ ) महत ! जस्मासु स्थिरं वीरवन्तं श्रुतीनाहं  
शतितं सहस्रिणं शूश्रुवांसं रयिं धत्त ।

( १२२ ) ऋ. १।६४।१५

' हे वीर नरतों ! हमें यह धन दो, जो स्थायी स्वरूप का हो, शीरों से युक्त हो शत्रु का पराभव करने के सामर्थ्य से पूर्ण तथा मैकड़ों और हजारों तरह का यत्न देनेवाला हो । ' धन का स्वरूप कैसे रहे, सो यहाँपर बताया है । धा तो किसी तरह मिल गया, लेकिन गुणत खर्च होने से चला गया, ऐसा धनमगुर न हो, यह पुत्रपुत्रपुत्र विधवा भान हो और चिरकालतक उस का उपयोग किया जा सके । वर वीरतापूर्ण भाव बढानेवाला हो, नकि कायरताके विचार । धन कमाने के याद उस की रक्षा करने का सामर्थ्य भी बढता रहे और धनकी मात्रा बढने से अधिक धीर सतान उपपन्न हो । नहीं तो ऐसी अनवस्था होगी कि ह्मपर धनकेभव बढता है, पर शिशुनिक या सन्नाहीन हो

जाने का दर है । विरोधियों का प्रतिकार करने की क्षमता भी बढती रहे और यशस्विता भी प्रतिफल वर्धिष्णु हो । जिस धन से ये सभी अभीष्ट बातें प्राप्त हों, यही धन हमें मिल जाए । यह धन सहस्रविध दुभा करता है, जिस की आवश्यकता सब को प्रतीत होती है । धन का तात्पर्य सिर्फ रचना, भाना, पार्ह में नहीं अपितु जिससे मानव धन्य हो जाए, यही सच्चा धन है । उसी तरह-

सर्ववीरं अपत्यसाचं धृत्यं रयिं  
द्विषेद्विषे नशामहे । (१२८) २।३०।११

' सभी वीरों से, पुत्रपौत्रों से अन्वित, यश देनेवाला धन प्रतिदिन हमें मिल जाए । ' शत्रुणा देया जाता है कि धन अधिप प्राप्त होने पर शूरता घट जाती है और सन्तान पैदा करने की क्षति भी न्यून हो जाती है । यह दोष रक्षासहन तुष्टिमय होने से हुआ करता है । ऐसा दोष न हो और धन पानेके साथ ही उसकी रक्षा करनेका बल भी तथा सुसन्तान उपपन्न करने का सामर्थ्य भी वर्धिष्णु होता रहे, इस भाँति सामर्थ्यशाली धन का समर्थ किया जाय । और भी देखिए-

यत् राध ईमहे तत् विश्वायु सौभगं  
अस्मभ्यं पत्तन । (२४६) ऋ. ५।५३।१३

' जिस धन की कामना हम करते हैं, वह दीर्घ जीवन देनेवाला एवं पट्टिया सौभाग्य बढानेवाला हो । ' उसी तरह-  
यूयं स्पर्हवीरं रयिं रक्षत । (२६३) ऋ. ५।५४।१४

' तुम स्पृहणीय वीरों से युक्त धनका संरक्षण करो । '

अनवभ्राराधस । (१६४) ऋ. १।१६।७

अनवभ्राराधस आ पवश्रिरे ।

( २०२ ) ऋ. २।३४।४

' ( अन्वय भ्राराधस, ) जिस का धन कोई छीन नहीं सकता, जो धा पतन की ओर नहीं ले जाता, यह धन प्राप्त हो । ' धा जरूर समीप रहे, लेकिन वह इस तरह प्रतियत्न पोषण रहे । धनके आधिक्यसे अपने प्रतियत्नपर रोधे नहीं उठ सके होने चाहिए । धन के बारे में जो यह चेतावनी दी गयी है, यह सभी को शपापूर्वक सोचनेयोग्य है और धृष्टिपेया स्पृहणीय धन वीर मरतों के निकट रहना है, इसलिये वैदिक सूक्तों में मरतों का महत्त्व बतलाया है ।

### मरुतों का स्वभाववर्णन ।

उपयुक्त वर्णन से इतना स्पष्ट हुआ है कि ये वीर लैंगिक मरुत एक घासे- ( Parrick ) बैरफ में निवास करते थे; मदिहाराओं की तरह विभूषित तथा अलंकृत हो, वडी सज्जज से बाहर निकल पडते, भवने रक्षों, हथियारों तथा आयुधों को साफसुधरे एवं चमकीले रखते, संघ बना कर यात्रा करते और सांघिन या सामूहिक हमले चढाया करते । शत्रुदल पर सामूहिक चढाई करने के कारण इन वीरों के सम्मुख बटकर लडना शत्रु के लिए असम्भव तथा दूभर हुआ करता । इसलिए शत्रुसेना उत्तर-नतमस्तक हो, टिकना असम्भव होनेसे, आत्मसमर्पण करती या हट जाती । सभी मरुत साम्प्रवाद को पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत करते थे, जथाए जिसे तरह की विपयता उन में नहीं पायी जाती थी । सभी युवावस्था में रहते थे और इनका स्वरूप उग्र तथा प्रक्षरों के दिल में तनिक नीतियुक्त भावर वा सूजन बरनेवाला था । इन का डीलडौल भय्य था ।

मरुतों पर शिरास्त्राण रखे होते या कभी रेशमी साजे धाँपा करते । सब का पहनाना सुदृश्यरूप दीप्त पडता था । भाला, बरछी, कुठार, धनुष्यबाण, पशु, वज्र, स्यग् एवं चक्र आदि आयुध इन के निकट रहते । ये सारे शस्त्रास्त्र बडे ही सुदृढ एवं कार्यक्षम रहते । इन के रथों तथा वाहनों को कभी घोडे र्छींचो, तो कभी चारहसीने या कुण्णसार सृग र्छींच लेते । वर्षादि प्रदेशों में चक्रुडनि रथों का और कभी बिना घोडोंके वज्रसंचालित एव बडे वेगसे गद उडाते जानेवाले वाहनों का भी उपयोग किया जाता था । शायद ये पछी की मद्द से आसामागसे जानेवाले गायुयान सशय रथों को काम में लाते । इन के वाहन इस प्रकार चार ताडे के हुआ करते थे ।

ये बडे ही विलक्षण वेग से शत्रुपर धावा करते और उन के इस अचम्भे में डालनेवाले वेग से शत्रु तो हक्का-पक्का रह जाता, पर अन्य सत्तर भी क्षणमात्र धरा उठता । यही कारण था कि इनके प्रबल आक्रमणों के या विसुद् बुद्ध ( Blitz ) के सम्मुख क्या मजाल कि कोई शत्रु टिक सके । इन का आघात इतना प्रखर हुआ करता कि चिराङ्ग से अपना आसन स्थिर स्थिरे हुए शत्रु को भी

ये विचलित तथा धरापायी बना देते ।

मरुत मानवकैटि के ही थे, परन्तु ऊन्हा पराक्रम दर्शाने से इन्हें देशैव का अधिकार प्राप्त हुआ था । वेद में ऋशुभो के बारे में भी ऐसे ही लेखिन ज्यादाह स्पष्ट उल्लेख पाये जाते हैं, अर्थात् प्रारम्भ में ऋशु शिट्टपविद्यानिष्णात कारी गर मानव थे, परन्तु भागे चलकर उन्हें देवों के शप में नागरिकरण के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए थे ।

ऐसा दिवाई देता है कि मरुतों के घारे में भी एहूत कुछ ऐसी ही घटना हुई हो । देवों के सघ में जान पडता है कि त्रिशेप अधिहार सब को समान रूप से नहीं प्राप्त हुआ करते, जैसे 'अश्विनौ' वैश्ववीय व्यवसाय में लगे रहने और वे दोनों सभी मानवों के घर जाकर चिहिरसा कर लेते, इसलिए उन्हें वज्रमें शविर्भाग नहीं मिला करता था । लेकिन कुछ काल के उपरान्त प्यवन प्रथि क्रो बुदापे के उंगुल में लुझकर फिर युवा बानों से उस के प्रपत्नों के परस्वरूप अश्विनो को उद अधिहार प्राप्त हुआ । पाठरों को अश्विनौ की प्रस्तावना में यह देखने मिलेगा । शीक उसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मरुत मर्यं, मानव या सभी काइतकार थे, लेकिन जब उन्हेंनि धीरतापूर्ण कार्यकलाप कर दिखाये, तब अथवा त्रिशेपतया इन्द्रके सैन्य में सम्मिलित होनेपर व देवपदपर अधिष्ठित हुए ।

मरुतों में विद्वत्ता, चतुर्घाई, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता एव साहदिकता दृष्ट कर भरी थी और वे उद्यमी, उस्तादी तथा पुष्टार्थी थे । वे धीरगाथाओं को दिलचस्पी से सुन केत थे और साहसी कथाओंके सुननेमें तल्लीन हुआ करत । वीमारों की चिहिरसा प्रथमोपचारप्रणाली से बरने में वे प्रीण थे और इस सषय में उन्हें कुछ औपधिधो का ज्ञान था ।

त्रिदिध क्रीडाओं में ये कुशल थे, तथा तृत्वविद्यासे भी भली भाँति परिचित थे । बाने बजाते हुए, तराने गाते हुए और राहपरसे चलते हुए भी वाद्य बजाने, तथा गीत गाते हुए निकट पडते ।

ये मरुत अति भय्य आकृतिवाले तथा गौरवर्ण से युक्त एवं तनिक रक्तिम आभामे विभूषित थे । बरने बन्दर विद्यमान तामधर्ण से इनका तेज बडा हुआ था । ये कृषि कार्यमें सलग होकर पल, साक एवं विविध खाद्य चीजोंकी

उपज्ज बढ़ाते थे। ये गोपालन के व्यवसाय को बड़ी अच्छी तरह निभा लेते थे, क्योंकि गोदुग्ध इनका बड़ा प्यारा प्य था। सोमरस में गायका दूध, गोदुग्ध का घना दही और सच्चा का आटा मिलाकर पी जाते थे। गाय तथा भूमि को मातृतुल्य भावुर की निगाह से देख लिया करते और मौका आनेपर मातृवर्ण गौ एवं मातृभूमि के लिए भीषण समर भी छेड़ दिया करते, जिन के फलस्वरूप इनकी ये माताएँ शत्रु के चंगुल से मुक्त हो जातीं ।

मरुतों के घोड़े बहुधा ध्वजेवाले हुआ करते और सुदृढ़ होते हुए पहाड़ों पर चढ़ने में बड़े कुशल होते थे। ये वीर अपने अश्वों को मजजून बनाकर अच्छी तरह सिखाया करते थे। मरुत् वीर अधविद्या में तथा गोपालन-कला में बड़े ही निपुण थे। वे जानते थे कि किन उपार्थों से गाय अधिक दूध देने लगती है, अतः इनके निकट दुग्धार गायों की कोई न्यूनता नहीं थी। ये वीर जिधर चले जाते, उधर अपने साथ ही आवश्यकतानुसार गायों के झुंड ले जाया करते। सुदृढ़भूमि में भी इन के साथ गोमूष विद्यमान होते, क्योंकि इन्हें ताजा गोदुग्ध पीनेके लिये अति आवश्यक था, ताकि इन धीरों की थकावट दूर हो सक एवं उरसाह बढ जाए ।

ध्यानमें रहे कि वीर मरुतोंका बल बड़ा ही प्रचंड था, जिसका उपयोग वे केवल जनताके संरक्षणार्थ ही कर लिया करते थे। इसी कारण से मरुतों का सैन्य अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था और इस सैन्यका विभजन दार्ध, मात तथा गण नामक संघों में किया जाता था, जिन में क्रमशः ६३, ४४१ तथा ८४४ सैनिक संघटित किये जाते थे ।

पुत्र में ठीक शत्रु के मुँह बाँधे खड़े रहकर अपने जीविन की कुछ भी परवाह न करके दुश्मनपर दूट पटना मरुतों के बायें हाथका खेल था। अतः इनके भीषण योगवान धावे के सम्मुख शत्रु की दशा बड़ी दयनीय हुआ करती। मरुत् अगर शत्रुओं पर हमले चढ़ाते, तो शत्रु जान बचाकर भाग निकलते। पर यदि शत्रु ही स्वयं मरुतों पर आक्रमण करने का साहस कर लें, तो वीर मरुत् इन आक्रमणों को विफल बनाकर दृष्टाते। इस भाँति मरुतों में द्विविध ताक्ति विद्यमान थी ।

ये वीर वनों एवं पर्वतों पर सधेष्ठ विहार कर लेते, क्योंकि समूचे भूमंडल पर इनके लिए आगम्य या बीहड़ स्थान था ही नहीं। इनके दिल में किसी विशिष्ट स्थान में जाने की लालसा उठ खड़ी हुई कि तुरन्त वे उधर जा पहुँचते; कारण सिर्फ यही था कि इन्हें रोकनेवाला तो कोई था ही नहीं। इनका भय इस तरह चतुर्दिक् फैला हुआ था ।

ये गणशासक थे। इनका सारा संघ ही इन पर शासन चला होता था और इन में श्रेष्ठ, मध्यम अथवा कनिष्ठ इस तरह भेदभाव नहीं था। जो कोई इनके संघ में प्रवेश कर लेता, वह समान अधिकारों से पानेवाला सदस्य माना जाता था ।

सभी मरुत् वीर समूची जनता का कल्याण करने का शुभ कार्य भली भाँति निभाते थे और इन्द्र के साथ रहकर वृषवधसदृश महासमर में इन्द्र को सहायता पहुँचाते। कभी कभी रुद्रदेव के अनुशासन में रहकर लडाईं टेढ़ देते, अतः इन्हें 'रुद्र के अनुयायी' नाम से विख्याति मिल चुकी थी ।

सारे ही वीर मरुत् कुलीन याने अच्छे प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न थे। ध्यान में रखना कि किसी भी हीन कुल में उत्पन्न साधारण व्यक्ति को इस संघ में स्थान ही नहीं मिलता था। ये सचाई के लिए लड़नेवाले थे और कभी किसीसे ऋण लिया हो, तो ठीक समयपर उसे चुकाते थे, इस कारण उनका साज अच्छा बना रहता ।

इन का यथावत दोषरहित हुआ करता, रहनसहन सुतराँ साफसुधरा था। समूचा पढ़नावा अत्यन्त जगमगानेवाला था, इस कारण दुर्लोकोंपर इन का रोह-दाह बड़ाही अव्याप्यता था। मरुत् धन का उत्पादन करनेवाले एवं धनकी योग्यता समझनेवाले थे, अतः अतीव उदारचेत्या और दान देने में कभी पीछे नहीं रहा करते ।

यद्यपि वीर मरुत् गर्व, मानवश्रेणी के थे, तो भी इन का चरित्र इतना दिव्य तथा उच्च कोटिका होता था कि जो कोई इनके काव्य का रचन करता, वह अमर हो पाता । यह सारा इनका स्वरूप-परिणत है और जो पाठक मरुतोंके सूक्तों का पठन ध्यानपूर्वक करेंगे, उन्हें यह यथान स्थान स्थानपर पढ़ने मिलेगा । पाठक विभिन्न मरुत्-सूक्तोंमें वसे

पढ़कर मरुतों की दूरता के वास्तविक महत्व को जान लें और धीमत्त्वपूर्ण क्षात्रकर्म में मरुतों के आदर्श को अपने समुत्तर रख लें ।

## मरुतों के सूक्तों में वीरों के काव्य का दर्शन ।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, मरु-काव्य वीररसपूर्ण प्राचीनतम वीरगाथा है, जिसे पढ़ते समय वीररसपूर्ण तेजकी शालोकरेखा मानस-क्षितिजपर जगमगाने लगती है ।

इस सबध में कुछ मन्त्रों के आशय नीचे अवलोकनार्थ दिये जाते हैं ।

१२. हे वीरो ! तुम्हारे उत्साहपूर्ण आक्रमण से भयभीत होकर मानव तो किसी जगह आश्रय या पनाह पाने के लिये जाते ही हैं; लेकिन पहाड़तक थरारने लगते हैं ।

१३ जिस समय तुम शत्रुपर धावा करते हो, तब किसी जराजीव वृद्ध को नाईं समूची पृथ्वी थरथर काँपने लगती है ।

३९. शत्रुओं की घडियाँ उड़ानेवाले हे वीरो ! सुलोकमें, अन्तर्दिक्ष में वा भूमदलपर कहीं भी तुम्हारा शत्रु शेष नहीं रहा है । जो तुम्हारे साथ रहते हैं, उन में भी शत्रुविषयस करने की शक्ति पैदा हुआ करती है ।

४५. हे दानी तथा शूर मरुतो ! तुम अस्त्र सामर्थ्य एवं भविकल बल से पूर्ण हो । हे शत्रु को विकपित करनेवाले वीरो ! शानी पुरवों-सज्जनोका द्वेष करनेहारे हुए शत्रुओं का घष हो इसलिये तुम दूसरे किसी दुश्मन को उन पर बाण को नाईं छोड़ दो, ताकि तुम्हारा एक शत्रु तुम्हारे दूसरे शत्रु से उग्रस्त हो जाए ।

६८. बल से निष्पन्न होनेवाले पौरुषमय कार्य पूर्ण करने वाले और स्वयंशासक द्त वीरोंने वृष के टुकड़े टुकड़े करके पहाड़ों में से भी राह बना डाली ।

७० विजली की तरह जगमगानेवाली शस्त्रसामग्री धारण करके लड़नेवाले ये वीर जो तेजस्वी और गौरवर्णवाले दिखाई देते हैं, अपने मस्तकोंपर सुवहली आभा से कांतिमान निरस्त्राण धारण करते हैं ।

८५ हे तेजस्वी तथा साफसुमेरे आभूषण धारण करनेहारे वीरो ! जब तुम शत्रुपर चढ़ाई करते हो तब तुम्हारी राह में आनेवाले टापू भी टूट गिरते हैं; रोड़े अटकानेके लिये कोई अजर खड़ा रहे, तो उह सकटमस्त हो जाते हैं, इस आक्रमण

के मौकेपर शाक्य तथा पृथ्वी बाँव उठती है और गर्द भी बहुत जोर से उड़ा करती है ।

८७ हे रणधौक्रे मरतो ! वीरो ! जिस वक्त तुम अपनी सारी शक्ति बटोरकर शत्रुपर आक्रमण करते हो, तब ऐसा जा पड़ता है कि उस ओरका आकाश ही तुम दूर होकर तुम्ह जाने के लिये मार्ग बना देता है ।

९२ हे बहादुरो ! तुम तब का गणपेदा समान है, तुम्हारे गले में सुवर्णहार पड़े हैं और तुम्हारी भुजाओंपर हथियार चोतमान हो उठे हैं ।

९३ ये उग्र एवं बलिष्ठ वीर अपने शरीरोंके रक्षण की पर्वाह न करते हुए अपना युद्धकार्य प्रशस्तित करते हैं । हे वीरो ! तुम्हारे रथोंपर स्थिर धनुष्य सुसज्ज हैं और सेना के अग्रभाग में तुम विजयी बनते हो ।

९११ अपने शरीरों की सुन्दरता बढ़ाने के लिये ये विविध वीरभूषण पहन लेते हैं, उनके वक्ष स्थलपर सुवर्ण-विरचित हार लटक रहे हैं, कर्धोंपर भाले सुहाते हैं । इस दग के ये वीर मानो सचमुच अपने अजूदे बल के साथ स्वर्गसे इस भूतलपर उतर पड़े हों, ऐसा प्रतीत होगा है ।

११६ सामुदायिक शोभा से सुहानेवाले, लोकसेवा करनेहारे, शूर, बलिष्ठ होने से जिनका उत्साहकभी घटता ही नहीं ऐसे महान वीरो ! तुम अपने पराक्रम की वजह से सुलोक एवं भूमदल सुखरित तथा निनादित बना देते हो । जब तुम अपने रथोंमें निजी आसनोंपर बैठते हो, तब तुम, मेघमदल में घोंधियाती हुई दामिनी की दमक के तुट्य, अतीव सुहाते हो ।

११७ विविध ऐश्वर्यों ने शोभायमान, एक घर में निवास करनेवाले, भौंति भौंति के बलों से सामर्थ्यवान प्रतीत होनेवाले, विशेष बलवान, शत्रुदलपर चतुराई से हथियार चँकते हुए, असीम बल से पूर्ण, वीरोंके आभूषणों से अलङ्कृत इन नेलाओंने अथ अपने हाथों में शत्रु का विनाश करने के लिये बाण का धारण कर लिया है ।

१६७ जनताके हितप्रद कार्य में जुटे हुए इन वीरों के बाहुओं में बहुतसी कल्याणकारक शक्तियाँ ठिपी पड़ी हैं । उनके वक्ष स्थलपर हार तथा कर्धोंपर विविध वीरभूषण एवं हथियार हैं । उन के वज्र की कई धाराएँ हैं और पछियोंके डैनों के तुल्य उन की शोभा बड़ी मली जान पड़ती है ।

१७४. डीऊ तरद हायमे पकडी हुई, सुन्दर आभावाली, सुवर्ण के समान चमकनेवाली तलवार, मेघ से विद्यमान बिजली की तरह हमेशा इन वीरों के निकट सुहावी है; अन्तःपुर से रहनेवाली साध्वी नारी जैसे गुप्त रूपसे भीतर ही मन्त्रेय संचार करती है, पर यज्ञ के अवसर पर समाज में व्यक्त होती है, वैसे ही उनकी तलवार भी हमेशा अपने मियान में गुप्त पडी रहती है, पर लड़ाई के मौकेपर बाहर आकर चमकने लगती है ।

१७५. हाँ, मानुभूमिने ही अपने संरक्षणार्थ, घटे भारी समर का सूत्रपात करने के लिए इन वेगवाली वीरों का यह घटा भारी सैन्य उपग्रह बिचा है । एक ही समय मिलजुलकर हमला चढ़ानेवाले इन वीरोंने बहुत बड़ा सामर्थ्य प्रकट कर डाला है और इन समूचे वीरोंने इसी सामर्थ्य में अपने अन्न की धारकशाक्ति का अनुभव ले लिया है ।

१७६. युद्ध के मोर्चेपर श्रेष्ठ ठहरे हुए, शत्रु का पूर्ण पराभव करनेवाले सामर्थ्य से युक्त, सिंहके समान भीषण दिग्दर्श देनेवाले, अपने प्रचंड बल से सबकी निगाह में वृत्तनीय धने हुए, अग्निपुत्र तेजस्वी, वेगवान, प्रभावोत्पादक सामर्थ्य से युक्त, ये वीर शत्रुओं के बन्दीगृह से अपनी यात्रों को सुझाते हैं ।

१७७. ये साहसी वीर द्वाशत चलसे युक्त हैं और ये शत्रु पर चढ़ाई करने समय हमेशा ही विजयशील सामर्थ्य से युक्त होकर समूची जगत का संरक्षण करते हैं ।

१७८. विशेष रूपसे सराहनीय कर्म करनेहार, तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले, वृक्षस्थल पर माला पहननेवाले ये वीर बहुत बड़ा बल धारण करते हैं । अच्छी तरह स्वाधीन रहकर गमन करनेवाले ये वीर योद्धावर बैठकर धर आते हैं । उनके रथ लोकहितार्थ जाते हुए उन्हीं को इष्ट स्थान तक पहुंचाते हैं ।

१७९. ये अपने सामर्थ्य से शत्रु का पूर्ण विनाश करते हैं और अपने आक्रमणों से पर्वतपुत्र्य लुहदाकार दुर्गोंको भी मटियामेट कर डालते हैं ।

१८०. भूमि की माता माननेवाले हे वीरो ! तुम्हारे निकट कुटारा, भाले, धनुष्य, दुर्गर, घोड़े, रथ, हथियार सभी बढिया दूजेंके साधन हैं । तुम अकृष्ट ज्ञानी हो और तुम हमेशा अच्छे कार्य ही करते हो ।

१८१. हे नेता वीरो ! तुम बहुत धनाढ्य, अमर, सन्धि-निष्ठ, यशस्वी, कवि, ज्ञानी, युष्क तथा प्रसंगनीय हो, तुम हमारी मदद करो ।

१८२. हे वीरो ! तुम जिसकी रक्षा करने हो और लड़ाई में जिसे तुम पचा लेते हो, उसका विनाश कभी नहीं होता है । यह जो तुम्हारी अपूर्व दंग की रक्षा करने की बुद्धि है, वह हमें मिल जाए । तुम जल्द हमारे पास आओ ।

१८३. ये वीर, वायु जैसे तिनके की उडा देता है उसी प्रकार शत्रुओंको उडा देते हैं और वेगवान होते हुए अग्नि-ज्वालानुदय तेज पुञ्ज दीक्ष पढते हैं । ये योद्धा अपने कवच पहनकर तथा युद्धों में जाकर बहुत ही प्रसंगनीय कार्य करते हैं; पिता के आशीर्वाद-पुत्र्य इनके दान अत्यन्त साहाय्यकारी होते हैं ।

१८४. रथों को घबरेवाले छोड़े जोतनेहार, भूमि को माता माननेहार, लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले, युद्धों में सहर्ष जानेवाले, अग्निपुत्र्य चोतमान, विचारशील, सूर्यवत् तेजस्वी ये वीर अपने सभी दैवी सामर्थ्यों के साथ हमारे निकट आ जायें ।

१८५. हे वरम स्वरूपवाले वीरो ! तुम ऐसे भीषण संग्राम में डटकर खड़े हुए हो, आगे बढ़ो, शत्रुओं का वध करो, दुश्मनों का पूर्ण पराभव करो । ये सराहनीय वीर हमारे शत्रुओं का वध कर डालें; इनका दूत भी शत्रुपर चढ जाए और उन का विनाश कर डाले ।

१८६. हे वीरो ! यह जो शत्रुकी सेना घटे वेगसे हमें जूनैती देती हुई हमपर टूट पडने आती है, उस सेना को भूश्रावण से अंधेरा बनाकर इस दंगसे विद्ध कर डालो कि समूची शत्रु-सेना भ्रान्त हो जाए और सभी सैनिक एक दूसरेको न पहचानते हुए बिलकुल सहभेसहमे रह जायें ।

१८७. हे शत्रु को रुझानेवाले वीरो ! तुम जब शत्रुपर हमला करने के लिये घबरेवाली हरिणियाँ अपने रथों में जोत लेते हो और शत्रुपर चढ जाते हो, उस समय मारे डरके सारे जंगल हिल जाते हैं तथा समूची पृथ्वी एवं अटल पर्वत भी थरथर काँपने लगते हैं ।

१८८. हे रणवीरु योद्धा लोगो ! तुम में कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ नहीं है, तुम सभी एक दूसरे से भाई-चारे का चर्चाव रखते हो और अपनी उपायि के लिये एक



हो प्रयत्न करते हो; रुद्र पुम्हारा पिता है और भूमि पुम्हारी माता है जो तुम्ह प्रकाशका मार्ग दिखलाती है ।

इस प्रकार इस वीर-काव्य में विद्यमान भोजस्वी विचार यहाँ माननी के तौपर दिया है । यहाँपर इस काव्य का बिल्कुल शब्दश अर्थ दिया है, तथा साधारणतया स्पष्ट दिखाई पड़नेवाला भाषार्थ भी दिया है । शब्दश अनुवाद अभ्यासक लोगों के लिए अत्यंत आवश्यक है और भाषार्थ भी उन्हीं के लिये उपयुक्त है । जो विशेष अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए निम्नो सहायक प्रतीत होगी पर जो वेदमंत्रों का विशेष गहन अध्ययन करना नहीं चाहते या जिन के समीप इतना अध्ययन करने के लिये समय नहीं उन के लिये सरल अनुवाद आवश्यक है । ऐसे सरल अनुवाद में आनेपीछे के सन्दर्भके अनुसार अधिक विचित्रता पड़ता है और यथान्तक कवि के मन का आशय पाठकोंके दिल में बैठ जाय इस हेतु कुछ अधिक्त वात सन्दर्भ के अनुसार लिखनी पड़ती है । हमने जानबूझकर यहाँ इतना और लगाता लिखा हुआ अनुवाद नहीं दिया और इस प्रथम संस्करण में शब्दश अनुवाद निम्नियों तथा अन्य साधनों के साथ स्वाध्यायशील पाठकों के लिये प्रयुक्त कर रखा है । द्वितीय संस्करण के आनरपर संभव हुआ तो वैसा सीधा अनुवाद दिया जायगा ।

### वेद का अध्ययन ।

आजकल सब लोगों की यह धारणा बनी हुई है कि, वैदिक संहिताओंके अध्ययन का अर्थ सिर्फ मन्त्र कठरथ कर लेने है और यह धारणा सदृशों यहाँ से चली आ रही है । इस का नतीजा यह हुआ है कि संहिताओं के अर्थ की ओर अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं होता है । यद्यपि बहुत अर्थों से विद्वान् माहज इन संहिताओं को कठरथ करते आये हैं पर अर्थके बारेमें अधिकों का धौदा सीम्य ही दृष्टिगोचर होता है । वर्तमान काल में ऋग्वेद ( शाकल ), यजुर्वेद ( तैत्तिरीय, वाजसनेयी एव काण्व ), सामवेद ( काथुमी ) और अथर्ववेद ( दौनक ) संहिताओंका अध्ययन प्रचलित है । अर्थात् कुछ माहज इन का पठन करते हैं लेकिन ऋग्वेद की संहितायन एव माहकल संहिता, यजुर्वेदकी मैत्रायणी, काठक, कापिष्ठल, कठ संहिता, सामवेद की राणायणी एव जैमिनीय संहिता तथा अथर्व-

वेदकी पिण्डलाद इन संहिताओंका अध्ययन तुलनाय ही है । अच्छा, जिन संहिताओं का पठन प्रचलित है ऐसी ऊपर पढ़ा गया है उन का अध्ययन भी बहुत से विद्वान् करते हैं, ऐसी बात नहीं । समूचे भारतवर्ष में ऐसे अच्छे वेदपाठी चाा या पाँच सौसे अधिक नहीं हैं और उच्चकोटि वेद्यापाठी तो पूरे सौ भी मिलना कठिन ही है । मालूम पड़ी कि, आधुनिक वेदाध्ययन का लोप यहाँक हुआ है ।

इस से स्पष्ट होगा कि, आधुनिक युग में वेदपठन का भविष्य या वर्तमानदशा तनिक भी उजल नहीं है, क्योंकि वेदाध्ययन तुल होना जा रहा है । जनता न ही वेदपाठी माहज के लिये तनिक आदर रहा हो तो भी यह नहीं के बराबर है क्योंकि उस ज्ञान का व्यवहार में तनिक भी उपयोग नहीं है, ऐसी ही सार्वधिक धारणा प्रचलित है ।

अगर प्राचीन कालत सार्थ वेदाध्ययनकी प्रथा जारी रह जागी तो बहुत कुछ संभव था कि, व्यवहार में उस का उपयोग स्पष्ट हुआ होत और आज जो यह गलतफहमी मंत्रसाधारण में पायी जाती है कि, वेदाध्ययन सुरार निरुपयोगी है, निर्मूल ठहरती या उत्पन्न ही नहीं होती । हम प्रतिवादन को स्पष्ट करने के लिये इन मन्त्रों के मन्त्रों का उदाहरण देंगे । यदि मन्त्रों के सूक्तों का अर्थ संहित अध्ययन करने की प्रणाली प्राचीनकाल से अस्तित्व में रहती तो संभव था कि उन में सूक्ति ढग से संकीर्णों की सार्थिक शिक्षा का प्रबंध करने की वदरना किसी न किसी को सूझती और ज्ञान्यद भारतीय परतों के संज्ञा में सातसात की पक्ति करना, सब का मिलकर समान गति से कूच करना, सब का पढ़ावा तद्वय होना और आठवीं नऊवीं सिपादियों वा समूह बनाकर हमले चढाना आदि महत्त्वपूर्ण प्रथाओं का प्रचलन शुरू होत ।

पर क्या कहें ? हिन्दुधर्म एव हिन्दुत्व की रक्षा के लिये अस्तित्व में आये हुए विधानगत वे साधारण में या उत्तुपरान्त कई क्षतादिश्यों के पश्चात् प्रस्थापित हुए मराठों के अथवा पेशवाओं के शासनकाल में मरुजोंकी सी सैनिक शिक्षा-प्रणाली कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी । विनय नगरके राज्य में वेदोपर भाष्य लिखनेवाले सायण साधन सदत बड़े आचार्य हुए जिन के वेदभाष्य प्रकृत होतपर भी वेदाध्ययन केवल यज्ञोत्क ही सीमित रहा । उस समय

भी वेदमार्गित एवं अनुदे बंग से सांघिक सामर्थ्य बढ़ाने-  
हारा मरतों का यह सैनिकीय शिक्षा का अनुशासन प्रत्यक्ष  
व्यवहारमें नहीं आ सका, अथवा यूँ कहें कि तब किंगी के  
ध्यान में यह बात नहीं आयी कि वैदिक सिद्धांतों को  
व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सकता है, तो यह प्रतिपादन  
सच ई से दूर नहीं होगा ।

हाँ, भी छत्रपति शिवाजी महाराज के काल से लेकर  
अन्तिम स्वतंत्र सातारा-नरदानक या प्रथम पेशवा से ले  
१८१८ तक के मराठी साम्राज्य के काल में वेदाध्ययन के  
लिए लक्षावधि रायोंका व्यवस्था हुआ, वेद कंठस्थ रखनेवाले  
प्राहणोंको खूब दक्षिणा मिली पर अन्तमें क्या हुआ? अन्तमें  
की बात इतनी ही है कि, किसी को भी यह कल्पना नहीं  
सूझी कि, अर्धमरिच वेदाध्ययन करनेवालों के लिये कुछ  
न कुछ प्रबंध करना चाहिये, या वैदिक साहित्य में लाभ-  
दायक मंत्र उपादेय कुछ हो तो इन्हें लेना चाहिए और  
तुल्य उसे व्यावहारिक स्वरूप दिया जाय । उस काल में  
वेद के बारे में बस यही धारणा प्रचलित थी कि, मन्त्र  
पंढार रहें और यज्ञ के मौखिक उन का उच्चारण किया  
जाय, बहुत हुआ तो मन्त्र-जागर के अवसरपर मन्त्रपठन  
करना उचित है ।

ऐसी धारणा से प्रभावित होने के कारण, श्रीमत्साय-  
णाचार्य के कालमें भी वेदभाव्य लिखा तो गया या तथापि  
उन वेदमें वर्णित सिद्धान्त व्यवहारमें नहीं आ सके, इतना  
नहीं किंतु अगर कोई उस काल में यह बातलानेका साहस  
करता कि वेदमंत्रोंमें निर्दिष्ट सिद्धांतों को कार्यरूप में  
परिणत करना चाहिये तो भी किसीका ध्यान दघर आकृष्ट  
नहीं होता, मंत्रों का उच्चारण केवल साधु वेदपठन का  
अवधिक प्रचार था और उसे सार्वत्रिक मान्यता मिल  
सुदी थी । ऐसी दशा का भारी दुष्परिणाम यही हुआ कि  
भारतीय नरतों के सैन्य प्रभावशाली बनने के बजाय  
असिंप्रिस्तर एवं निरपयोगी हुए ।

भारत में युरोपीय राष्ट्रों के लोगोंका पदार्पण हुआ जो  
अपने साथ निजी संघ-सैनिक-प्रणाली ले गये और वह  
भारत के असंगठित सैनिकों की अपेक्षा ज्यादा प्रभाव-  
शाली प्रतीत होनेके कारण श्री महादजी शिंदेने फ्रेंच सेना-  
पति को अपने यहाँ रखकर उसे अपने विचारियोंमें प्रचलित

करनेकी चेष्टा की, तो भी अन्य मद्रास सरदार हत शिक्षा  
में पिछड़े रहे । इसका परिणाम यही हुआ कि अन्त तक  
सिंधिया को फ्रेंचों की पराधीनता सहनी पड़ी । यह बात  
सब को ज्ञात थी कि सिंदे की सेना अधिक प्रभावोत्पादक  
हुई थी लेकिन उस प्रणाली का प्रचार किसीने नहीं किया  
था । अगर लोगों को परंपरागत रूप से यह बात विदित  
होगी कि वेद के मरुष्क्तोंमें यह संघ-सैनिक-प्रणाली  
वर्णित है तथा यह पूर्णतया भारतीय है तो प्रायः अनुभव  
से इसका अधिक प्रचार हो जाता जिसके परिणामस्वरूप  
योरपीयनों से लड़ते समय जो समस्या स्पष्ट अनुपात में  
हल हुई वही बहुधा सम परिमाणमें छूट गयी होती ।

सहस्रों वर्षों से मरहवता के मंत्रों को कंठ कहनेवाले  
प्राहण भारत में चले आ रहे थे और उन्होंने शब्दों के  
उलट पुलट प्रयोग मुत्तोज्ञत कर लिए पर मरतोंकी सैनिक-  
प्रणाली के सिद्धान्त अज्ञातदशा में रखकर केवल मंत्रों का  
उच्चारण किया । लेकिन एकने भी इस संघ-सैनिक-शिक्षण  
विज्ञान की ओर लक्ष्यमात्र भी ध्यान नहीं दिया । केवल  
मंत्रों को जपाना याद कर लेने से तथा ऊँची भाषाज में  
पढ़लेनेमात्र से अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होगी, ऐसे विश्वास  
के महारे ये हजारों वर्षों तक संसृष्ट रहे । इस असाधधानी  
का परिणाम यही हुआ कि भारतीयोंका क्षात्रवक्त्र न्यूनाति-  
न्यून होने लगा । अगर यह संघ-सैनिक-शिक्षा भारतीयों  
को प्राप्त होगी तो प्रति पीढ़ी में प्राप्त होनेवाले अनुभवके  
सहारे उसमें खूब उत्थति दी जाती । पर उत्थति के स्थान  
पर भारतीयों के अश्वघरिषत एवं असंगठित सैन्य को  
योरपीयनों के सिखाये हुए संघशासित सैन्य के समुत्त  
शिक्षता अर्धभव हुआ, जिससे अंततःपरम अज्ञातवर्ष परा-  
धीनता के दलदल में फँस गया । अर्धज्ञानपूर्वक अगर वेद  
का अध्ययन प्रचलित रहता और यदि किसी के ध्यान में  
यह बात पैठ जाती कि वेद के ज्ञान से व्यावहारिक जीवन  
में लाभ उठाया जा सकता है तो उपर्युक्त बात सहजही में  
किसी का ध्यान आकर्षित कर लेती और ऐसा हो जाने पर  
संगठित सैन्य का सृजन भारत में हो जाता ।

मरतों के मंत्रों का और इन्द्र देवता के मंत्रों का ज्ञान-  
पूर्वक पठन करनेवाले को सैनिकों का संघशासन कैसे किया  
जाय, सेना का संघ में विभजन किस ढंगसे हो सकता है

तथा सभी सैनिकों का तुल्य वैप कैसे हो, सच का प्रथम क्रिम तरह किया जा सकता और उनकी सामुदायिक शक्तियों का सांघिक उपयोग किस प्रकार करना ठीक है आदि महत्त्वपूर्ण बातों की कुछ न कुछ जानकारी अवश्य हो जाती । परन्तु दुर्भाग्य से, सदस्यों वयों से वेद केवल सुखोद्गत एव जगानी याद कर लेनेकी वस्तु बन गयी और वेदनिर्दिष्ट सैनिक-विद्या सुतरां अपनी होनेपर भी हमारे लिए यह एक परकीयसी हुई तथा यदि हमें यह भीसनी हो तो दूसरों की कृपा से ही यह साध्य हो सकती है । कारण इना ही है कि सजीव एव स्फूर्तिमय वैदिक युगसे केकर आज तक जो सदस्य सदस्य वयों की लकी चौड़ी खाई हमारे एव वेदकाक के बीच पडी हुई है उसके परिणाम-स्वरूप हमारे वे पुराने सरकार उतमाय से हो गये हैं और परंपरागत ज्ञानसचय से हम सर्वथेन वचित हो गये हैं । आज हमारी यह वास्तविक हालत है ।

पाठक देखें और सोचें कि यद का वास्तविक अर्थ हमें ज्ञात नहीं हुआ हमलिये राष्ट्रिय इतिसे हमारी कितनी यदी हानि हुई है तथा अब भी अपने ज्ञानभाण्डारमें इस वैदिक ज्ञान की वृद्धि करने का प्रयत्न करें ।

वैदिक ज्ञानके विचार से वर्तमानकालमें भी एक अत्यन्त उत्तम 'जीवन का तत्त्वज्ञान' प्राप्त हो सकता है । मरुत युग में प्रदर्शित सैनिकीय शिक्षा उस विशाल तत्त्वज्ञानका एक अतमात्र है और क्षात्र तत्त्वज्ञान में उसका स्थान बडा उँचा है ।

हाँ, यह बात सच है कि कठस्थ कर लेने से ही यद-सहितार्थें अब तक सुरक्षित रहें और इसका सारा धेय यद पाठ में समूचा जीवन बितानेहारे लोगों को मिलनाही चाहिये । यह सब थिलकुल ठीक है, क्योंकि अगर, वेदपाठ करने में महारू उण्य है ऐसा विश्वास न घटाया जाता तो वापद ही कोई वेद पढने में प्रयुक्त होता और वेद सदा के लिए उपेक्षित रहते । परन्तु यदि कहीं वेद के जीवित तत्त्व ज्ञान को अंधज्ञानपूर्वक व्यवहारमें लानेमें सफलता मिलती तो अपने क्षत्रिय धीर समूचे विश्व में विजयी हो जाते और भारतीय सस्कृतिपर जो आघात हुए वे न होते । भा स्पष्ट कहना चाहिये कि वेद के अर्थ की और भारतीयों ने जो ध्यान नहीं दिया उससे उन्हें महारू हानि एव क्षति

के सम्मुखीन होना पडा । भारतीयों के जीवन का सारा तत्त्वज्ञान ग्रन्थों में यद पडा रहा और भारतवासी उस भारी बोझ को ढोते हुए भी तनिक अना में भी उस तत्त्व-ज्ञान से लाभ नहीं उठा सके । क्या यह हानि अरुपरी है ? कदापि नहीं । नस्तु ।

जो प्राचीनकाल एव मध्ययुग से हो चुका उसकी ग्यादद छापीन करनेसे कोई प्रियेप लाभ नहीं हो सकता क्योंकि जो घटायाँ हो चुकीं वे अन्यथा नहीं हो सकीं । हाँ, अब मध्ययुग में तथा वर्तमानकालमें भी जीवित ज्ञान उजोतरी और हमारा ध्यान अविनाशिक आश्रित होना चाहिये ।

वेदमत्रो में जीवित सस्कृति का तत्त्वज्ञान है और यद केवल कर्म्य करने के लिए ही सीमित रहे सो ठीक नहीं; वास्तव में इस वैदिक तत्त्वज्ञान की सुदृढ नींवपर अपनी समाज रचना एव राष्ट्र निर्माणका विनाश मन्दिर उठ सदा हो जाय तो चाहिये तथा इस प्रकार अपने वैदिक तत्त्वज्ञान के आधार से सामाजिक युधटना एव राष्ट्रीय व्यवहार का सचलन होने तो सचमुच आधुनिक युग की अनेक जटिल समस्याएँ बडी सुगमता से हल हो सकती हैं ऐसा हमारा दृढ विश्वास है । भाग ससार में बलवाद, समाज-सत्तावाद, साम्यवाद, लोकतन्त्रवाद, साम्राज्यवाद आदि विविध यादोरी धूस नच रही है । मानवताति इतने यादों के मध्य अपना कोई निर्णय नहीं कर पाती, जित से समूचा मानवसमाज यदा दु,खी हो उठा है । अब भारतीय जाता देल ले कि, क्या इन सभी पूर्वोक्त परस्पर कट्टायमान यादों की अवेक्षा, आध्यात्मिक 'समस्तवाद' जा कि वेदों की बहुमूल्य दा है, यदि समार के सामने रखा जाय तो इस तत्त्वज्ञानके सहारे ससारके सभी उलझन में थालने वाले पेशीदे सवालों को आसानी से हल नहीं किया जा सकता है ? अवश्य हो सकता है, ऐसा दृढ विश्वास है ।

चूकि बहुत प्राचीन काल से यह निर्धारितता हो चुका था कि वेद का सिर्फ कठम्र करने के लिए ही है अत यद वैदिक तत्त्वज्ञान बहुत ही विचित्र हुआ है । अब भारतीयों का यह प्रमुख कर्तव्य है कि इस अमौलिक तत्त्वज्ञान को समूचे विश्व के सम्मुख अधिक चतुर्पूर्वक रखें और आगे बडना शुरु कर दें कि इस तत्त्वज्ञानके भलवृत्तेपर ही सत्यार के सभी भिन्न प्रभ हल किये जा सकत हैं ।

## वैश्वानर यज्ञ ।

हैं, यह बिल्कुल सत्य है कि वेद यज्ञके लिए हैं परन्तु “ यह यज्ञ मानव-जीवनरूपी विश्वव्यापक महायज्ञ है । ” यह यज्ञ हम वैश्वानर के लिए करना है। यह भारत में प्रचलित यज्ञ भारी व्यापक अर्थ हुआ ही गया और पश्चात् वैश्व अतिसीमित एव अतिसकुचिन अर्थ जनतामें रूढ हो गया, जब कि ये समूचे मन्त्र इन यज्ञों में ऊँची आवाजमें पढ़े जाने लगे। आज न जाने कितनी शताब्दियों से यह यही कार्यक्रम प्रचलित है। आज के दिन मौलिक तथा सच्चे व्यापक अर्थ की अक्षम्य उपेक्षा हो रही है, कोई भी उधर तनिर भी ध्यान नहीं देता है। इस महान् गुटि के कारण वैदिक तरवज्ञान बहुत पीछे रह गया है। अब हमें उचित है कि वेदमंत्रों के अर्थ देखकर वैश्वानर यज्ञ के स्वरूप में वैदिक तरवज्ञान की झाँकी प्राप्त करें और उसे मानवजाति के विचारार्थ धर दें। यह कार्य बड़ा ही प्रचण्ड है सही, लेकिन यदि बरने के लिए फटिवद्ध हो उठें तो अवश्य उसमें सफलता मिलेगी इसमें क्या संशय ?

## पुराणों का समालोचन ।

इस ग्रन्थ में हम मरुतों के मन्त्रों वा अर्थ पाठ्यों के लिए दे चुके हैं। यह अज्ञा होता अगर हम साथ ही साथ अनेक पुराण-ग्रन्थों में उपलब्ध मरुतों की कथाओंकी भी इस पुराण में रथान दे देते क्योंकि तब यह दर्शाना सुगम होता कि मूल वैदिक सिद्धान्तों को पुराणों के रचयिताओंने किम स्वरूप में परिवर्तित किया। पर इन दिनों मुद्रणार्थ वागज आदि सावन अति दुर्लभ होने के कारण ग्रन्थ का स्वरूप बदलाना असम्भव हुआ। इत्या ही आज हम कह सकते हैं कि द्वितीय संस्करण के मोक्षेपर यह सारी जानकारी दे दी जायगी। सभी अभिप्यकाक्षीन विचार उस समयकी जागतिक परिस्थिति पर ही निर्भर है।

## मरुद्देवता और युद्धशास्त्र ।

मरुद्देवता के मन्त्रों में मरुतों के यज्ञान करने के बदले से युद्धशास्त्र, युद्धसाधन, युद्धके दौब-पेव आदि का उल्लेख किया है। ऐसी बातों का स्पष्टीकरण भारतीय युद्धशास्त्र विषयक ग्रन्थों की दृष्टि से करना चाहिए और यह अधिक विस्तृत अभ्ययन की आवश्यकता रखता है। आज हमें

युद्धशास्त्र पर बहुतसा साहित्य उपलब्ध है और महाभारत आदि ग्रन्थों में स्थानस्थान पर विभिन्न निर्देश हैं। यदि इन सभी निर्देशों का सम्पूर्णरूपसे विचार किया जाय, तो बहुत कुछ चोच निकल सस्ता है, पर यह सब अभिप्य-कालीन स्थिति पर ही अवलम्बित है।

## निसर्ग में मरुतों का स्थान ।

सभी वैदिक देवता निसर्ग में अवस्थित हैं और इसी तरह मरुतों वा भी प्राकृतिक विश्वमें स्थान है, जो ‘ वर्षा कालीन वायुप्रवाह ’ से स्पष्ट होगा है। वर्षा होते समय मोषी एव वेगवान् पवन का बदना शुरु होता है। आकाश मेंवों से व्याप्त होता है, बिजली की कटक सुनाई देती है और प्रचण्ड तूफान का अवतरण होता है। ये प्रचण्ड ज्ञाशावात ही ‘ मरुत् ’ है, जो इनका घाह्य प्रकृति में दृश्यमान रूप है।

जिस समय प्रचल आँधी चलने लगती है, वेगवान् ज्ञाशावात बढ़ते हैं, तब बड़ेबड़े पेड़ जड़मूल से उलटकर टूट पड़ते हैं, वृक्षवनस्पति काँपने लगते हैं, कभी कभी तो बिजली के गिरने से बिनष्ट भी होते हैं। इस समय की स्थिति का वर्णन महापुद्ग के वर्णन से बहुत कुछ साम्य रहता है। नीपण महाममर में भी कह नहीं सकते कि कौन जीवित रहेगा वा कौन मौत के मुँह में समा जायेगा। विश्व में तूफानी वायुमण्डल तथा आँधी के जोरसे जो खलबली मचती है उस में और प्रचण्ड दुस्मनों से होनेवाली धीरों की गिटान में साम्य अवश्य ही दिखाई पड़ता है।

वैदिक कवियोंने मरुतों वा वर्णन मानवी स्वरूप में ही किया है। मरुतों के सूच पढ़ लेनेसे साफसाफ दिखाई देता है कि कुछ मन्त्रों में ज्ञाशावात का बतान किया है और कई मन्त्रों में स्पष्ट रूप से मानवी धीरोंका वर्णन किया है तो अन्य कुछ मन्त्रों में दोनों एक दूसरे के मिल गये हैं।

देवताओंके वर्णनको ‘ आधिदैविक ’, मानवीके वर्णनको ‘ आधिभौतिक ’ और आध्यात्मिक के वर्णनको ‘ आध्यात्मिक ’ कहने हैं। जो विद्वे में यही महापण्डमेंपाया जाता है, यह सिद्धान्त इस वर्णनके मूलमें है। इसी कारण किसी एक क्षेत्र में जो वर्णन किया हुआ हो, वही दूसरे क्षेत्र में

परिवर्तित कर दिखलाया जा सकता है । मरुत् अधिदैवत में 'वर्षाकालीन वायुप्रवाह,' अधिभूत में 'वीर क्षत्रिय' और अध्यात्म में 'प्राण' हैं । इस दृष्टिकोण से एक क्षेत्र का वर्णन दूसरे क्षेत्र के लिए भी लागू हो सकता है । इस संबंध को देख लेने से ज्ञात होगा कि मर्तों के वर्णन में वीरों का खलान किस तरह समाया हुआ है ।

पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'मरुत्' मरुत्, मानव, मनुष्य-श्रेणी के हैं ऐसा समझ कर उनका वर्णन इन मर्तों में किया है । इस मिश्रित वर्णन में वैदिक देवताओं का आविष्कारण विशेष स्वरूप से होता है । ठीक वैसे ही मानवजातिमें मरुत् देवता सैनिक क्षत्रियों के रूप में प्रकट होती है । इन्द्र देवता नरेद एवं सरदार के स्वरूप में और ब्रह्मणों में अग्नि, ब्रह्मणस्पति आदि देवता स्वयं स्वरूप धारण करते हैं । अतः उन इन देवताओं के वर्णन के

अवसर पर उस उस वर्ण के लोगों के कर्तव्य विशेषतया वर्णित किये जाते हैं । इसी रीतिसे मर्तों के वर्णन में सैनिकों की हैसियत से कार्य करनेवाले क्षत्रियों के कर्तव्य-कर्मों का उल्लेख किया है और इन वर्तों में क्षत्रियधर्म का स्पष्टीकरण हुआ है जिसका कि विचार पाठकों को आवश्यक करना चाहिये । अस्तु ।

अधिक विचार करने के लिए मरुदेवता का मंत्रसंग्रह पाठकों के सम्मुख रखा है । भाषा है कि इस तरह सोच-विचार करके निरपन्न होनेवाले मानवी क्षात्रधर्म की जान-कारी प्राप्त करने का प्रयत्न होगा ।

स्वाध्याय-संग्रह,  
आंध्र, जि. (सातारा)  
दिनांक १५/८/४३

निवेदक  
श्री० वा० सातघलेकर

# प्रस्तावनाकी अनुक्रमणिका ।

वीर महर्तों का काव्य ।	३	भव्य भाङ्गतिवाले वीर ।	१७
वीर काव्य के मनन से उपलब्ध बोध ।	५	रक्तिमामय गौरवर्ण ।	१९
महिष्कार्भों का चर्णन नहीं पाया जाता है ।	११	अपने तेजसे चमकनेहारे वीर ।	२१
नारी के तुल्य तलवार ।	४	अन्न उरपर करनेहारे वीर ।	२२
साधारण स्त्री ।	११	गायोंका पालन करते हैं ।	१८
उत्तम मात्सार्भों के खिलाडी युध ।	१३	महर्तोंके घोड़े ।	२३
महिष्कार्भों के समान वीर अलंकृत		इन धीरों का बल ।	२५
तथा विभूषित होते हैं ।	५	महर्तों की संरक्षणशक्ति ।	२०
एक ही घर में रहनेवाले वीर ।	६	महर्तों की सेना ।	२१
संघ बनाकर रहनेवाले वीर ।	११	विजयी वीर ।	२३
सभी सदस्य वीर ।	७	कृत्रुर्भों का विध्वंस ।	२२
महर्तों का गणवेश ।	११	युद्धमहर्तोंकी रहनेवाले वीर ।	२४
स्वपर शिरच्छाण ।	११	महर्तों की सहनशक्ति ।	२५
सब का सदस्य गणवेश ।	११	महर्तों का एवंतसंचार ।	२६
महर्तों के द्विधियार, कुटार, पशु, तलवार, पन्न ।	८-९	स्वयंशासक वीर ।	२७
सुदृढ मजबूत द्विधियार ।	१०	महर्त-गणका महत्त्व ।	२४
महर्तों का रथ ।	११	अच्छे कार्य करते हैं ।	२५
चक्रहीन रथ का चित्र ।	१३	दानुदकसे युद्ध ।	२६
दृष्टियों से छींचे जानेवाले रथ ।	१२	महर्त वीरोंका दानुध्व ।	२५
अश्वारूढ रथ ।	१३	मानवों का हित करनेहारे वीर । कुडीन वीर ।	२६
दानु पर किया जानेवाला आक्रमण ।	१३	क्षण बुझानेहारे । निर्दोष वीर	२७
महर्त मानव ही थे ।	१४	महर्तों का सम्पर्क । महर्तोंका धन ।	२८
महर्तों की विद्याविक्षासिता ।	१४	महर्तोंका स्वभाव-वर्णन ।	२९
जानी, दूरदर्शी, यत्ना, कवि, बुद्धिमानी,		महर्तोंके सूक्तोंमें वीरकाव्य ।	३१
साहस्यपन, सामर्थ्य, उरसाह, उग्र वीर, उद्यमी,		वेदका अध्ययन ।	३३
कुशल वीर, कथाम्रिय, राजोपचारप्रवीण, लिङ्गाढी,		पैधानर यज्ञ । पुराणोंका समालोचन ।	३४
नृसम्प्रियता, वादनपटुत्व ।	१४-१६	महर्तवता और बुद्धशास्त्र । निरुत्तममें महर्तोंका स्थान ।	३६
दानु को जड़सूक्ष्म से उखाड़नेवाले वीर ।	१५		

# मरुद्देवता का मन्त्रसंग्रह ।

अनुक्रमणिका ।

मरुद्देवता	पृष्ठ		पृष्ठ
१ विश्वामित्रपुत्र मधुच्छंदा ऋषि ( मंत्र १-४ )	१-२	२४ अग्निता	१०३
२ कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि ( मं० ५ )	३	२५ अग्निपुत्र वसुधुत	१०४
३ घौरपुत्र कण्व ऋषि ,, ( मं० ६-४५ )	४	,, इयावाध ,, ( ४४९-४५६ )	१०५
४ कण्वपुत्र पुनर्वसु ,, ( मं० ४६-८१ )	१६	अथर्वी ,, ( ४५७-४६४ )	१०६
५ कण्वपुत्र सोमरि ,, ( मं० ८२-१०७ )	२७	अग्निर्मरुतश्च ।	
६ गोतमपुत्र गोधा ,, ( १०८-१२२ )	३७	कण्वपुत्र मेधातिथि ,, ( ४६५-४७३ )	१०९
७ रहुगणपुत्र गोतम ,, ( १२३-१५६ )	४४	कण्वपुत्र सोमरि ,, ( ४७४ )	१०९
८ दिवोदासपुत्र परुच्छेप ,, ( १५७ )	५९	इन्द्रो मरुतश्च ।	
९ मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ,, ( १५८-१९७ )	७८	विश्वामित्रपुत्र मधुच्छंदा ,, ( ४७५-४७६ )	११०
१० हुनकपुत्र गृहसमद ,, ( १९८-२१३ )	८६	मरुत्वाग्निन्द्रः ।	
११ गाधीपुत्र विश्वामित्र ,, ( २१४-२१६ )	८७	कण्वपुत्र मेधातिथि ,, ( ४७७-४७९ )	११३
१२ अग्निपुत्र इयावाध ,, ( २१७-३१७ )	८७	मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ,, ( ४८०-४९१ )	११४
१३ अग्निपुत्र एवयामरुत ,, ( ३१८-३२६ )	१२४	इन्द्रामरुतौ ।	
१४ बृहस्पतिपुत्र संयुः ,, ( ३२७-३३३ )	१२८	भंगिरसपुत्र तिरक्षी ,, ( ४९८ )	११९
१५ बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ,, ( ३३४-३४५ )	१३०	मरुत्पुत्र हुतान ,, ,,	११९
१६ मित्रावरुणपुत्र कसिष्ठ ,, ( ३४५-३९४ )	१३४	मरुतों के मंत्रों के ऋषि और उनकी मंत्रमंथन	११४
१७ अद्विरसपुत्र पूतदक्ष ,, ( ३९५-४०६ )	१५१	मरुतों का संदर्भ	
विदु	१५४	ऋग्वेदवचन	११४
१८ भृगुपुत्र रघुमरुतिमि ,, ( ४०७-४२२ )	१६३	सामवेद	११७
वाजसनेयी यजुर्वेदमंत्र ,, ( ४२३-४२८ )	१६३	अथर्ववेद	११९
प्रजापतिः ,, ( ४२९, ४२८ )	१६३	वाजसनेयी यजुर्वेद वचन	११८
गाधीपुत्र विश्वामित्र ,, ( ४२४ )	१६३	काठक संहिता ,,	११९
सप्तर्षयः ,, ( ४२५-४२७ )	१६३	ब्राह्मण-मंत्र-वचन	२००
१९ अग्निपुत्र इयावाध ,, ( ४२९ )	१६७	भारण्यक ,, ,,	२०२
२० प्रथा ,, ( ४३०-४३३ )	१६९	उपनिषद् वचन	११९
२१ अथर्वी ,, ( ४३४-४३६ )	१६९	मरुतों के मंत्रों में सुभाषित	२०३
२२ शन्तातिः ,, ( ४३७-४३९ )	१७०	मधुच्छंदा, मेधातिथि, कण्वः	११९
२३ मृगार ,, ( ४४०-४४६ )	१७१		

	पृष्ठ		पृष्ठ
पुनर्वंश	२०६	इषावाण	२१६
सोमरि	२०८	पृथयामरुद्र, शंभुः	२२३
मोघा	२०९	भरद्वाज	२२४
गौतमः	२१०	वसिष्ठ	२२५
भगवतः	२१३	विन्दु, पृथक्श, ह्यूनरश्मि	२२७
गृहमदः	२१५	मरुदेवता-मन्त्रों में स्त्रीविषयक उल्लेख	२२९
विश्वामित्र	२१६	मरुदेवता-पुनरुक्त-मन्त्राः	२३०





देवत-संहितान्तर्गत

# मरुत् देवता का मन्त्रसंग्रह ।

[ अर्थ, भावार्थ और टिप्पणी के साथ ]

विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषिः । ( श्र० १।६।४, ६, ८, ९ )

( १ ) आत् । अह । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भस्त्वम् । आऽईरिरे ।  
दर्शानाः । नाम । युद्धिर्धम् ॥ ४ ॥

अन्वयः- १ आत् अह यक्षियं नाम दधानाः ( मरुतः ) स्व-धां अनु पुनः गर्भत्वं एरिरे ।

अर्थ- १ ( आत् अह ) स्वमुचही ( यक्षियं नाम ) पूजनीय नाम तथा यश (दधानाः) धारण करनेवाले वीर मरुत् (स्व-धां अनु) अन्नकी इच्छासे (पुनः) वार वार (गर्भत्वं एरिरे) गर्भवासिताको प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ- १ यथेष्ट अन्न मिले इस हालतसे पूजनीय नामोंके युक्त यशस्वी मरुत् फिर वार वार गर्भवासस्वीकारने के लिए तैयार हुए ।

टिप्पणी- [ १ ] मेघपक्षमें- भूमदल पर जो जल विद्यमान है, वह भापके रूपमें ऊपर उठ जाता है और वह वायु-मंडल की सहायता से मेघों में एकत्रित हुआ पाया जाता है । अथ अन्नका उत्पादन दो इस हेतु मेघमाला में जलरूपी शिथुका गर्भ रहता है । वीरपक्ष में- ब्रह्मण करनेयोग्य यश पानेवाले वीर पुरुष, अनता के लिए यथेष्ट अन्न मिल जाय, इसलिये भौति भौति के कार्य निष्पन्न कर देते हैं और शृणु के उपासित पुन गर्भवाता में रहकर उसी तरह कार्य करनेकी इच्छा करते हैं । अध्यात्ममें मरुत् 'प्राण' हैं, अधिभूतमें 'वीर सैनिक' हैं और अधिदेवतमें 'वायु' है । गर्भोंके इस काममें प्रमुखतया वीरोंका ही वर्णन यत्रतत्र पाया जाता है और कई संग्रहों में 'वायु' तथा 'प्राण' का भी ब्रह्मण किया गया है । हाँ, प्राणविषयक निर्देश बहुतही कम हैं । ( १ ) स्वधा (स्व-धा = स्वयं दधाति पुण्यातीति स्वधा) = जो अपना धारण तथा पोषण करता हो वह । अन्न, उदक, अपनी धारणशक्ति, आत्मशक्ति, निजसामर्थ्य, प्रणाली, नियम, सुख, आनन्द, स्वस्थान । स्वधां अनु = अन्न पानेके लिए, अपनी धारकशक्तिकी वृद्धि करनेके लिए । ( २ ) यक्षियं नाम = पूज्य नाम, वर्णन करनेयोग्य यश । वा० यजु० १७।८०-८५ तक मरुतोंके ४९ नाम दिये हैं । हरएक नाम मरुतोंका एकएक गुण बतलाता है और इस तरह वर्णनीय नाम धारण करनेवाले ये मरुत् हैं । ये नाम मनुष्यों की कर्तव्यचातुरी को स्पष्ट करनेवाली विभिन्न उपाधियाँ हैं । देखिए मन्त्र १४१ । ( ३ ) पुनः गर्भत्वं एरिरे = वारवार गर्भवासमें रहते हे याने किससे शरीर धारण करके वेही सहायनीय कार्यकलाप सुचाह रूपसे निभाते रहते हैं । देखिए अध्यात्ममें 'प्राण' बारबार संचार करके जीवजंतुओंको जीवन प्रदान करता है । अधिभूतमें यद्यपि वीर सैनिक क्षतविक्षत हो धरायायी हो जाते हैं तो भी फिर गर्भवासका स्वीकार कर विश्वकल्याण के लिए अपनी जीवनका बलिदान करनेमें झिझकते नहीं । अधिदैवत में 'वायुप्रवाह' गैसरूपी तथा वाष्पीभूत जलको गर्भवत् ढंगसे मेघमंडलमें धर देते हैं, जिमसे वर्षाके रूपमें जन्म ले, समूचे संसार की रक्षा सुसाने में उनका अर्पण हुआ करता है । इस भौति मरुत् हर जगह विश्वके दितके लिए अपना बलिदान करते हैं और वारवार जन्म लेकर वही अपना पुराना विश्वकल्याण का गुरुवर कार्यभार निभाने का कार्य प्रवर्तित रखते हैं । ( ४ ) मरुत् = (मा-रुद्) जो लोग रोते नहीं बैठते, ऐसे उरसाह तथा उर्मगसे भरे वीर, (मा-रुत्) जो स्वयंकी भीम नहीं भावते हैं, पर कर्तव्य कर्म सचकतापूर्वक करते हैं ऐसे वीर, (मर-उत्) मरनेतक उठकर कार्य करनेवाले वीर योद्धा ।

( २ ) देवयन्तः । यथा । मृत्तिम् । अच्छे । विदत्-वसुम् । गिरः ।

महाम् । अनुपत् । श्रुतम् ॥ ६ ॥

( ३ ) अनुवचैः । अभिद्युभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति । गुणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥८॥

( ४ ) अतः । परिज्मन् । आ । गृहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ।

सम् । अस्मिन् । ऋजते । गिरः ॥ ९ ॥

अन्वयः— २ देवयन्तः गिरः महान् विदत्-वसुं श्रुतं यथा मर्ति, अच्छे अनुपत् ।

३ मखः अन्-अवचैः अभि-द्युभिः काम्यैः गुणैः इन्द्रस्य सहस्वत् अर्चति ।

४ ( हे ) परिज्मन् ! अतः वा दिवः रोचनात् अधि आ गृहि, अस्मिन् गिरः समृजते ।

अर्थ— २ ( देवयन्तः ) देवत्व पाने की लालसावाले उपासकों की ( गिरः ) वाणियाँ, ( महान् ) बड़े तथा ( विदत्-वसुं ) धन की योग्यता जाननेवाले ( श्रुतं ) विख्यात वीरों की ( यथा ) जैसे ( मर्ति ) पुत्रिपूर्वक स्तुति करनी चाहिए, ( अच्छे अनुपत् ) उसी प्रकार सराहना करती आई हैं ।

३ ( मखः ) यह यह ( अन्-अवचैः ) निर्दोष, ( अभि-द्युभिः ) तेजस्वी तथा ( काम्यैः ) चाञ्छनीय ऐसे ( गुणैः ) मरुत्समुदायों से युक्त ( इन्द्रस्य सहस्-वत् ) इन्द्र के शत्रुओं को परास्त करने में क्षमता रखनेवाले यल की ( अर्चति ) पूजा करता है ।

४ हे ( परि-ज्मन् ) सभी जगह गमन करनेवाले मरुत् गण ! ( अतः ) यहाँ से ( वा ) अथवा ( दिवः ) धुलोकेसे या ( रोचनात् अधि ) किसी दूसरे प्रकाशमान अंतरिक्षवर्ती स्थानमेंसे ( आ गृहि ) यहाँपर आओ, क्योंकि [ अस्मिन् ] इस यज्ञमें [ गिरः ] हमारी वाणियाँ तुम्हारी ही [ समृजते ] इच्छा कर रही हैं ।

भावार्थ— २ जो उपासक देवत्व पाना चाहते हैं, वे वीरों के समुदाय की सराहना करते हैं, क्योंकि यह संध जानता है कि, जनता के उच्चतम निवास के लिए आवश्यक धनकी योग्यता कैसी है । अतएव यह इस तरहके धनको पाकर सबको उचित प्रमाण में प्रदान करता है ( और यही बात भगले मन्त्रमें दर्शायी है । )

३ यज्ञ की सहायता से दोषरहित, तेजस्वी तथा मम के प्रिय धीरों के संघों में रहकर, शत्रु का नाश करनेवाले इन्द्र के महान् प्रभावी सामर्थ्य की ही महिमा गायी जाती है ।

४ चूंकि मरुत्संधों में पर्याप्त मात्रामें शूरता तथा वीरता विद्यमान है, अतः उसके प्रभावसे ( परि-ज्मन् ) समूचे विश्व को व्याप्त कर लेते हैं । वीरों को चाहिए कि वे इन गुणों को स्वयं धारण करें । ऐसे वीरों का सत्कार करने के लिए सभी कवियों की वाणियाँ डसुक रहा करती हैं ।

टिप्पणी— [ ७ ] ( १ ) ' देवयन्तः ' देवत्व हमें मिल जाय इसलिए निर्दोषपूर्वक उपासना करनेवाले उपासक ।

( २ ) ये भक्तगण धनकी महत्ताको जाननेवाले बड़े यशस्वी मरुत् नामधारी धीरों की ही प्रशंसा करते हैं । कारण इनकाही है कि, इस भाँति वर्णन करने से उनके गुण धीरेधीरे उपासकों में बहने लगेंगे । उपासक इस भावसे परिचित हैं । मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि, जिन विचारोंको हम मन में स्थान देंगे वे ही भागे चढ़कर हम में इम्बूक हो बैठते हैं और यही देवतास्तोत्र में है । उपासक जिसकी जैसी स्तुति करेगा वैसे ही वह बन जायेगा । ' विदत्-वसु ' पद यहाँपर है । ' वसु ' अर्थात् ( वासयति इति ) मानवों का निवास सुखदायक होने के लिए जो कुछ भी सहायक हो वह वसु है । अब वे वीर इस धनकी योग्यता और महत्ता से परिचित हैं, क्योंकि यह मानवों के सुखमय निवास बनाने में बड़ा भारी सहायक है । अन्व सभी धीर इन्हीं वीरोंका अनुकरण करें । [ ३ ] ( १ ) मखः= ( मख् गतौ )= पूर्य, कर्मण्य, आनंशी, यज्ञ, प्रशंसनीय कर्म । [ ४ ] ( १ ) परि-ज्मन् = सर्वत्र अभिगमन करनेवाला, सर्वत्रयापक ।

( २ ) समृज्- ( ऋजतिः प्रसाधनकर्मा । निरुक्त. ६।२३ ) सुगोभित करना, सजावट करना, सुव्यवस्थित करना ।

कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि ( ऋ० १।१।५२ )

( ५ ) मरुतः । पिवत । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञम् । पुनीतन ।

यूयम् । हि । स्थ । सुदानवः ॥ २ ॥

घोरपुत्र कण्व ऋषि ( ऋ १।३।७।१-१५ )

( ६ ) क्रीळम् । वः । शर्धः । मरुतम् । अनर्वाणम् । रथेऽशुभम् ।

कर्वाः । अभि । प्र । गायत ॥ १ ॥

( ७ ) ये । पृपतीभिः । ऋष्टिभिः । साकम् । वाशीभिः । अजिभिः ।

अजायन्त । स्वभानवः ॥ २ ॥

अन्वयः- ५ ( हे ) मरुतः ! ऋतुना पोत्रात् पियत, यज्ञं पुनीतन, ( हे ) सु-दानवः ! हि यूयं स्थ ।

६ ( हे ) कण्वाः ! वः मरुतं क्रीळं अन्-अर्वाणं रथे-शुभं शर्धं अभि प्र गायत ।

७ ये स्व-भानवः पृपतीभिः ऋष्टिभिः वाशीभिः अजिभिः साकं अजायन्त ।

अर्थ- ५ हे [ मरुतः ! ] वीर मरुतो ! [ ऋतुना ] उचित अवसरपर [ पोत्रात् ] पवित्रता करनेवाले याज्ञक के वर्तन से [ पियत ] सोमरस का सेवन करो और इस [ यज्ञं पुनीतन ] यज्ञ को पवित्र करो । हे [ सु-दानवः ! ] उच्च कोटिका दान करनेवाले मरुतो ! [ यूयं स्थ ] तुम पवित्रता संपादन करनेवाले ही हो ।

६ हे [ कण्वाः ! ] काव्यगायन करनेवाले ! [ वः ] तुम्हारे निजी कटयाणके लिए [ मरुतं ] मरुतों के समूहसे उत्पन्न हुआ, [ क्रीळं ] क्रीडनमय भावसे युक्त [ अन्-अर्वाणं ] भाइयोंमें पाये जानेवाली फलह्रिय मनोवृत्ति से कौसों दूर याने जिसमें पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं है, ऐसा [ रथे-शुभं ] रथमें सुहानेवाले अर्थात् रथी वीर को शोभादायक जो [ शर्धं ] बल है, उसी का [ अभि प्र गायत ] वर्णन करो ।

७ [ ये स्व-भानवः ] जो अपने निजी तेज से युक्त हैं, ये मरुत् [ पृपतीभिः ] धर्मों से अलंकृत हिरनियों या घोड़ियों के साथ [ ऋष्टिभिः ] भालोंसहित [ वाशीभिः ] कुठार एवं [ अजिभिः ] वीरों के आभूषण या गणवेश के [ साकं अजायन्त ] संग प्रकट हुए ।

भावार्थ- ५ [ १ ] मौसम के अनुकूल जो सोमरससखा पेय है, वह पवित्र वर्तन में ही लेना चाहिए । [ २ ] जो काम करना हो वह पथासंभव पवित्र करनेकी चेष्टा करनी चाहिए । उपेक्षा या उदासीनता नहीं करनी चाहिए ।

६ अपनी प्रगति हो हमलिये उपासक मरुतों के स्तोत्र का पठन करें, क्योंकि इन मरुतों में सौधिक बल, खिलादीपन, पारस्परिक मित्रता, आत्मप्रेम तथा रथी बनने के लिए उचित बल विद्यमान है ।

७ मरुतों के रथ में जो घोड़ियों या हिरनियों जोड़ी जाती हैं वे चबूतेवाली होती हैं । मरुतों के निकट भाले, कुठार, वीरभूषण या गणवेश पाये जाते हैं । कहने का अभिप्राय इतना ही है कि, मरुत् जिस प्रकार सुसज्ज स्त्रीच पहते हैं वैसे ही अन्व सभी वीर सदैव शस्त्रास्त्रों से लैस रहें ।

टिप्पणी [ ५ ] पोत्रं= पवित्रता करनेवाला याज्ञक, पवित्र वर्तन । [ ६ ] ( १ ) मरुत् मय याज्ञक रहते हैं, अतः ये बलिष्ठ हैं । ( २ ) खिलादीपन में जो उदार भाव पाये जाते हैं वे मरुतों में है । ( ३ ) ' अर्वा ' शब्द ते, सं में ' आत्स्य ' अर्थ में आया है । ' अर्वा ' अर्थात् ' आत्स्य ' [ तै. स. ६।३।८।४ ] आत्मप्रेम, भाइयोंके सम्प्रेमभाव न रहना आदि बातों से पारस्परिक बल घटने लगता है । ' अर्ध-हिंसायां ' अत ' हिंसा करना ' भी एक अर्थ है । ' अनर्वा ' अर्थात् अहिंसक भाव और इससे पैदा होनेवाला बल जिसे ' अनर्वा ' नाम दिया जा सकता है । ' अर्वा ' का अर्थ घोड़ा या हीन [ Mean ] है, अतः ' अनर्वा ' हीन भावसे शून्य जो बल । ( ४ ) रथी, महारथी होनेवाले ज्योतिके लिए ऐसे बन्धकी अतीव आवश्यकता है । मरुतों में शीक यही बल विद्यमान है । जो हम बलका बरान करने लगता है, उनमें यह

( ८ ) इहऽईव । शृण्वे । एषाम् । कशाः । हस्तेषु । यत् । वदान् ।

नि । यामन् । चित्रम् । ऋञ्जते ॥ ३ ॥

( ९ ) प्र । वः । शर्धाय । घृष्वये । त्वेषऽद्युम्नाय । शुष्मिणे । देवत्तम् । ब्रह्म । गायत ॥४॥

( १० ) प्र । शंस । गोषु । अघ्न्यम् । क्रीळम् । यत् । शर्धः । मारुतम् ।

जम्भे । रसस्य । ववुधे ॥ ५ ॥

अन्वयः— ८ एषां हस्तेषु कशाः यत् वदान् इह इव शृण्वे, यामन् चित्रं नि ऋञ्जते ।

९ वः शर्धाय, घृष्वये, त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे, देवत्तं ब्रह्म प्र गायत ।

१० यत् गोषु, क्रीळं मारुतं, रसस्य जम्भे ववुधे ( तत् ) अ-घ्न्यं शर्धः प्र शंस ।

अर्थ— ८ [ एषां हस्तेषु ] इन मस्तकों के हाथों में विद्यमान [ कशाः ] कौड़े [ यत् ] जब [ वदान् ] शब्द करने लगते हैं, तब उन ध्वनियों को मैं [ इह इव ] इसी जगह पर खड़ा रह कर [ शृण्वे ] सुन लेता हूँ । यह ध्वनि [ यामन् ] युद्धभूमि में [ चित्रं ] विलक्षण ढंग से [ नि-ऋञ्जते ] शरत्ता प्रकट करती है ।

९ [ वः शर्धाय ] तुम्हारा यत् वदाने के लिये, [ घृष्वये ] शशुदल का विनाश करने के हेतु और [ त्वेष-द्युम्नाय ] तेज से प्रकाशमान [ शुष्मिणे ] सामर्थ्य पाने के लिए [ देवत्तं ब्रह्म ] देवता-विषयक ज्ञान को बतलानेवाले काव्य का [ प्र गायत ] तुम यथेष्ट गायन करो ।

१० ( यत् ) जो बल ( गोषु ) गौओं में पाया जाता है, जो ( क्रीळं मारुतं ) खिलाड़ीपन से परिपूर्ण मस्तक संघों में विद्यमान है, जो ( रसस्य जम्भे ) गोरस के यथेष्ट सेवनसे ( ववुधे ) बढ़ जाता है, उस ( अ-घ्न्यं शर्धः ) अविनाशनीय बल की ( प्र शंस ) स्तुति करो ।

भावार्थ— ८ शूर मरुत अपने हाथों में रखे हुए कौड़ों से जब आवाज निकालने लगते हैं तब उस शब्द को सुन-कर रणक्षेत्र में लड़नेवाले वीरों में जोशीले भाव उठ सके होते हैं ।

९ अपना बल [ शर्धः ] बढ़ाना चाहिए । शशुदल को तहसनहस करने के लिए उन से [ घृष्वः ] संपर्क करने को परोक्ष बल या शक्ति रहे, ताकि शत्रुओं पर दृष्ट पड़ने पर अपने को मुँह की खाना न पके और तेज का बजियारा फैलानेवाली सामर्थ्य प्राप्त हो, इसलिए [ त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे ] जिसमें देवता की जानकारी व्यक्त की गयी हो, ऐसे स्तोत्र का [ देवत्तं ब्रह्म ] पठन एवं गायन करना उचित है, क्योंकि इस भक्ति करने से तुम में यह शक्ति पैदा होगी । जो विचार याधार मन में दुहराये जाते हैं वे कुछ समय के उपरान्त हम से अभिन्न हो जाते हैं ।

१० गोरस के रूप में गौओं में बल तथा सामर्थ्य इकट्ठा किया जाता है, वीरों की क्रोधासक्त वृत्ति में यह बल प्रकट हो जाता है, जो हारक में बढ़ानेयोग्य है । गोरस का परोक्ष सेवन करने से यह शक्ति अपने बरतार में बढ़ सकती है और इसकी सराहना करनी उचित है ।

धीरे धीरे बढ़ने लगता है, अतः वर्णन करनेवाला भी श्लिष्ट बनता है । 'अनर्वाणं' का अर्थ कर्षणिके मतानुसार भोड़ोंसे शून्य, जिनके पास घोड़े नहीं हैं ऐसा करना चाहिए, पर अन्य अनेक स्थानों पर मरुतों को 'अरुणाश्वः' 'पृषदश्वः' 'अश्वयुजः' आदि विशेषण दिये गये हैं, अतः वही अनुमान ठीक है कि, मरुतोंके निकट घोड़े विद्यमान थे । इसलिए 'अन्-अर्वा' का अर्थ 'हीन भावों से रहित, एक दूसरे से द्वेष न करनेवाला' यों करना उचित उचित है । पाठक इस पर अधिक विचार करें । ( ५ ) कण्वः= मंत्र ४२ पर की शिष्णो देविए । [ ७ ] ( १ ) ऋष्टिः= [ ऋषिंसायां ] खड्ग यां भाळा । ( २ ) वासी [ वाशु शब्दे ] विलास्य करनेवाला, तीक्ष्ण छोरवाला धारत्र, परशु, कुडाड़ी । ( ३ ) अञ्जि= [ अञ्जं व्यक्ति-प्रक्षण-कान्ति-गतिषु ] रंग लगाना, कुंकुम का लेप करके शोभायमान बनाना, सुन्दर बनना, बोलना । अञ्जि= रंग, भूषण, वेदाभूषण, गणवेश, घमकीला । [ ९ ] ( १ ) शर्धः= संपका बल, धैर्य, निर्भयताकी सामर्थ्य, ( २ ) वृष्टिः [ घृष्वःसंपर्कं ] = शत्रुओंसे मुठभेड़ करनेवाला । ( ३ ) शुष्मिन्= सामर्थ्ययुक्त, धीरजसे परिपूर्ण, प्रभाववाली ।

(११) कः । चः । वर्षिष्ठः । आ । नरः । दिवः । च । गमः । च । धृतयः ।  
यत् । सीम् । अन्तम् । न । धूनुथ ॥ ६ ॥

(१२) नि । वः । यामाय । मानुपः । दध्रे । उग्राय । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥७॥

(१३) येषाम् । अजमेपु । पृथिवी । जुजुर्वान्इव । विश्वपतिः । भिया । यामेषु । रेजते ॥८॥

अन्वयः- ११ (हे) नर । दिवः च गमः च धृतयः चः आ वर्षिष्ठः कः ? यत् सीं अन्तं न धूनुथ ?

१२ चः उग्राय मन्यवे यामाय मानुपः नि दध्रे पर्वतः गिरि जिहीत ।

१३ येषां यामेषु अजमेपु पृथिवी, जुजुर्वान्इव विश्वपति भिया रेजते ।

अर्थ- ११ हे ( नर ) नेतृत्वगुण से सम्पन्न वीर मरतो ! ( दिवः ) सुलोक को एवं ( गम च ) भूलोक को भी ( धृतय ) तुम कंकपित करनेवाले हो, ऐसे ( च ) तुम में ( आ ) सब प्रकार से ( वर्षिष्ठ ) उच्च कोटि का भला ( क ) कौन है ? ( यत् ) जो ( सीं ) सदैव ( अन्तं न ) पेड़ों के अग्रभाग को हिलाने के समान शत्रुदल को विचलित कर देता है, या तुम सभी ( धूनुथ ) विकंपित कर डालते हो ।

१२ ( चः उग्राय ) तुम्हारे भयावह ( मन्यवे ) क्रोधयुक्त या आवेश एवं उत्साह से लवालव भर हुए ( यामाय ) आक्रमण से डरकर ( मानुपः ) मानव तो किसी न किसी ( निदध्रे ) के सहारे ही रहता है, क्योंकि ( पर्वत ) पहाड़ या ( गिरि ) टीले को भी तुम ( जिहीत ) विकंपित बना देते हो ।

१३ ( येषां ) जिन के ( यामेषु ) आक्रमणोंके अचसरपर और ( अजमेपु ) चढाई करने के प्रसंग पर ( पृथिवी ) यह भूमि ( जुजुर्वान्इव विश्वपतिः ) मानों क्षीण नृपति की नाई ( भिया रेजते ) भय के मारे विकंपित तथा विचलित हो उठती है ।

भाषार्थ- ११ वीर मरु राष्ट्र के नेता हैं और वे शत्रुसघको जड़मूल से विचलित एवं कपायमान कर देते हैं। ठीक उसी तरह जैसे आंधी या तूफान पृथ्वी या सुलोक में विद्यमान पेड़सदृश वस्तुजात को हिलाता है, अथवा वायु के झकोरे वृक्षों के ऊपर के हिस्से को चलायमान कर देते हैं। इन वायुमहावों की ग्याई वीर मरु शत्रुओं को अ-पदस्थ कर डालते हैं। यहाँ पर प्रश्न उठाया है कि, क्या वे सभी मरु समान हैं अथवा इनमें कोई प्रमुख नेताके पद पर अधिकृत हो विराजमान है ? ( आगे चलकर ३०५ तथा ४५३ सख्या के मंत्रों में बतलाया है कि, इन मरुओं में कोई भी अ्रेष्ठ, मध्यम एवं निम्न श्रेणी का नहीं, अपितु सभी ' माई ' हैं। पाठक उन मंत्रों के ऊपर इस अवसर पर एक सरसरी निगाह डाल लें । )

१२ वीर मरुओं के भीषण आक्रमण के फलस्वरूप मानव के तो हाथपाँव फूल जाते हैं और वे कहीं न कहीं आश्रय पाने की चेष्टा में निरत रहते हैं, पर बड़े बड़े पर्वत भी आन्दोलित एवं स्पन्दित हो उठते हैं। वीरों की शत्रुदल पर चढाईयों इसी भौति प्रभावोपादक हैं ।

१३ वीर मरु जब शत्रुदल पर धावा करते हैं और बड़े नेग से विद्युत्-सुदृग्मणाली से कार्य करते हैं, उस समय, आगे क्या होता क्या नहीं, इस चिंता से तथा डर से आसन्नमरण नरेक्ष की नाई, यह समूची भूमि दहक उठती है । ( इसी भौति वीर सैनिकों को शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्रपात करना चाहिए । )

टिप्पणी- [ १० ] ( १ ) अच्यं= ( अ-च्य ) जिसका हनन नहीं करना चाहिये, जिसका नाश कभी न करना चाहिये ।

[ ११ ] ( १ ) नृ= नेता, अग्रगामी, ( २ ) धृति ( धू कम्पने )= हिलानेवाला । [ १२ ] ( १ ) याम= आक्रमण, धावा मारना, शत्रु पर चढाई करना । [ १३ ] ( १ ) अजम= आक्रमण, धावा ।

(१४) स्थिरम् । हि । जानम् । एषाम् । वयः । मातुः । निःस्पृतवे ।

यत् । सीम् । अनु । द्विता । शवः ॥ ९ ॥

(१५) उत् । ऊँ इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेपु । अत्नत ।

वाश्राः । अभिऽञ्जु । यातवे ॥ १० ॥

(१६) त्यम् । चित् । घ । दीर्घम् । पृथुम् । मिहः । नपातम् । अमृध्रम् ।

प्र । च्यवयन्ति । यामऽभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १४ एषां जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निःस्पृतवे यत् शवः सीं द्विता अनु ।

१५ त्ये गिरः सूनवः अज्मेपुः काष्ठाः वाश्राः अभि-ञ्जु यातवे उत् ऊ अत्नत ।

१६ त्यं चिद् घ दीर्घं पृथुं अ-मृध्रं मिहः न-पातं यामभिः प्र च्यवयन्ति ।

अर्थ- १४ [ एषां ] इन वीर मरुतो की [ जानं ] जन्मभूमि [ स्थिरं हि ] सचमुच बर्दाभूत एवं अटल है । [ मातुः ] माता से जैसे [ वयः ] पंछी [ निः- स्पृतवे ] बाहर जाने के लिए चेप्रा करते हैं, उसी तरह ये अपनी मातृभूमि से दूरवर्ती देशों में विजय पाने के लिए निकल जाते हैं, [ यत् ] तब इनका [ शवः ] यल [ सीं ] सदैव [ द्विता अनु ] दोनों ओर विभक्त रहता है ।

१५ [ त्ये ] उन [ गिरः सूनवः ] वाणी के पुत्र, यत्ना मरुतोंने [ अज्मेपु ] अपने शत्रुओं पर किये जानेवाले आक्रमणों में अपने हलचलों की [ काष्ठाः ] सीमापूँ या परिधियाँ बढ़ाई हैं, जैसे कि, [ वाश्राः ] गौओं को [ अभि- ञ्जु ] सभी जगह घुटने तक के पानी में से [ यातवे ] निकल जाना सुगम हो, इसलिए जैसे जल को [ उत् उ अत्नत ] दूर तक फैलाया जाय ।

१६ ( त्यं चित् घ ) उस प्रसिद्ध, ( दीर्घं ) बहुतही लंबे, ( पृथुं ) फैले हुए ( अ-मृध्रं ) तथा जिसका कोई नाश नहीं कर सकता, ऐसे ( मिहः न-पातं ) जल की वृष्टि न करनेवाले भेघ को भी ये वीर मरुत् ( यामभिः ) अपनी गतियों से ( प्र च्यवयन्ति ) हिला देते हैं ।

भाषार्थ- १४ वीर मरुत् भूमि के पुत्र हैं । उनकी यह भूमि माता स्थिर है और इसी अटल मातृभूमि से ये वीर अतीव वेगवाली उपद्रव हुए हैं । जिस भौति पंछी अपनी माता से दूर निकलने के लिए छटपटाते हैं ठीक ऐसे ही ये वीर अपनी मातृभूमि से दूरवर्ती स्थानों में जाकर असीम पराक्रम दर्शाने के लिए उरसुक हैं और चले भी जाते हैं । ऐसे मौके पर इनका साथ ध्यान अपनी जन्मदात्री भूमि की ओर लगा रहता है, वैसे ही शत्रुओं से जुद्धते समय युद्ध पर भी इनका ध्यान केन्द्रित रहता है । इस प्रकार इनकी शक्ति दो भागों में विभक्त हो जाती है ।

१५ ये मरुत् [ गिरः सूनवः ] वाणी के पुत्र हैं, यत्ना हैं । या ' गोमातरः ' नाम मरुतों का ही है । ' गो ' अर्थात् ' वाणी, गौ, भूमि ' का सूचक शब्द है । मातृमाया, मातृभूमि तथा गोमाता के मुख के लिए अथक प्रयत्न करनेवाले ये मरुत् विषयात हैं । अपने शत्रुदल को वितरवितर करने के लिए उन्होंने जिस भूमि पर हलचलों प्रदर्शित की, उस भूमि की सीमापूँ बहुत चौड़ी कर रखी हैं, अर्थात् अपने आक्रमण के क्षेत्र को अति विस्तृत करते हैं । अतः जैसे भगर गौओं को घुटने तक के जलसंचय में से जाना पड़े, तो कुछ कष्टदायक नहीं प्रतीत होता है, वैसे उन्होंने भूमि पर पाये जानेवाले उपद्रववाच्य स्थलों को न्यून कर दिया, भूमि समतल बना डाली, पानी इकट्ठा हो जाय, तो भी गौओं के लिए वह घुटनों से ऊपर न चढ़ जाय ऐसे सतर्कता दर्शायी । गौओं के लिए मरुतों ने भूमिपर हतना अच्छा प्रबंध कर डाला । उसी प्रकार शत्रु पर चढ़ाई करने के लिए भी यातायात की सभी सुविधाएँ उपरिषय कर दीं, ताकि विरोधी दल पर धावा करते समय अत्यधिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े ।

१६ जिन नदियोंसे वर्षा नहीं होती हो ऐसे बड़े बड़े वादलोंको भी मरुत् ( वायुप्रवाह ) अपने प्रचण्ड वेगसे विकर्षित कर डालते हैं । [ वीरोंको भी यही उचित है कि, ये दान न देनेवाले रूपण शत्रुओंको जब मूलसे हिलाकर पक्षधर कर दें। ]

- (१७) मरुतः। यत्। ह। वः। बलम्। जनान्। अचुच्यवीतन। गिरीन्। अचुच्यवीतना। १२।  
 (१८) यत्। ह। यान्ति। मरुतः। सम्। ह। द्रुवते। अध्वन्। आ।  
 शृणोति। कः। चित्। एषाम् ॥ १३ ॥  
 (१९) प्र। यात्। शीभम्। आशुभिः। सन्ति। कण्वेषु। वः। दुवः।  
 तत्रो इति। सु। मादयाध्वै ॥ १४ ॥  
 (२०) अस्ति। हि। स्म। मदाय। वः। स्मसि। स्म। वयम्। एषाम्।  
 विश्वम्। चित्। आयुः। जीवसे ॥ १५ ॥

अन्वयः- १७ मरुतः यद् ह वः बलं जनान् अचुच्यवीतन गिरीन् अचुच्यवीतन।

१८ यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् आ सं द्रुवते ह, एषां कः चित् शृणोति ?

१९ आशुभिः शीभं प्र यात्, कण्वेषु वः दुवः सन्ति, तत्रो सु मादयाध्वै।

२० वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चित् आयुः जीवसे, एषां वयं स्मसि स्म।

अर्थ- १७ हे ( मरुतः ) वीर मरुतो ! ( यत् ह ) जो सचमुच ( वः बलं ) तुम्हारा बल ( जनान् अचुच्य-  
 वीतन ) लोगों को हिला देता है, विरूपित या स्थानभ्रष्ट कर डालता है, वही ( गिरीन् ) पर्वतों को भी  
 ( अचुच्यवीतन ) विचलित बना डालता है।

१८ ( यत् ह ) जिस समय सचमुच ही ( मरुतः यान्ति ) वीर मरुत् संचार करने लगते हैं,  
 यात्रा का सूत्रपात करते हैं, तब वे ( अध्वन् ) सड़क के बीचमेंही ( आ सं द्रुवते ह ) सब मिल कर  
 परस्पर वार्तालाप करना शुरु कर देते हैं। ( एषां ) इनका शब्द ( कः चित् ) भला कोई न कोई क्या  
 ( शृणोति ) सुन लेता है ?

१९ ( आशुभिः ) तीव्र गतियोंद्वारा और ( शीभं ) वेगपूर्वक ( प्र यात् ) चलो, ( कण्वेषु )  
 कण्वोंके मध्य, यात्रकों के यशों में ( वः ) तुम्हारे ( दुवः सन्ति ) सत्कार होनेवाले हैं। ( तत्रो ) उधर  
 तुम ( सु मादयाध्वै ) भली भाँति तृप्त बनो।

२० ( वः ) तुम्हारी ( मदाय ) वृत्ति के लिए यह हमारा अर्पण ( अस्ति हि स्म ) तैयार है।  
 ( विश्वं चित् आयुः ) समूचे जीवन भर सुखपूर्वक ( जीवसे ) दिन बिताने के लिए ( वयं ) हम ( एषां  
 स्मसि स्म ) इनके ही अनुयायी बनकर रहनेवाले हैं।

भावार्थ- १७ मरुतों में इतना बल विद्यमान है कि, उसकी वजह से शत्रु के सैनिक तथा पार्वतीय दुर्ग या गढ़  
 भी दहल उठते हैं। वीर सदा इस भाँति बल बढ़ाने में सचेष्ट हों।

१८ जिस समय वीर मरुत् सैनिक अभिगमन करते हैं, तबवे इकट्ठे हो सात ( सात वीरों की पंक्ति बनाकर  
 सड़क परसे ) चलने लगते हैं। इस प्रकार आगे बढ़ते समय वे जो कुछ भी यातचीत करते हैं उसे सुन लेना बाहर के  
 व्यक्ति को शर्मभय है; क्योंकि वह भाषण धोमी भावाज में प्रचलित रहता है।

१९ ' आशुभिः शीभं प्रयात् ' ( Quick march ) अत्यन्त वेगसे दीघ्रतापूर्वक चलो। सैनिक  
 दीघ्रतया चलना प्रारंभ करें, इसलिये यह ' सैनिकीय आज्ञा ' है। मरुत् यथासंभव शीघ्र यज्ञभूमि में पहुँच जायें,  
 क्योंकि उधर उनके सत्कार एवं आश्रयण के लिए आयोजनार्थ प्रस्तुत कर रखी हैं। मरुत् उस आदरसत्कार का  
 स्वीकार करें और तृप्त हों।

२० वीर मरुतों को हर्षित तथा प्रसन्न काने के लिए हम यज्ञेयिनी की परतुएँ दे रहे हैं। जब तक हमारे  
 जीवन की अवधि प्रचलित होगी, तब तक यह हमारा निर्धार हो चुका है कि हम मरुतों के ही अनुयायी बनकर रहेंगे।

(२१) कत् । ह । नूनम् । कधऽप्रियः । पिता । पुत्रम् । न । हस्तयोः ।  
दधिध्वे । वृक्तऽवर्हिपः ॥ १ ॥

(२२) कं । नूनम् । कत् । वः । अर्थम् । गन्तं । दिवः । न । पृथिव्याः ।  
कं । वः । गावः । न । रण्यन्ति ॥ २ ॥

(२३) कं । वः । सुम्ना । नव्यांसि । मरुतः । कं । सुविता ।  
क्रोहेहति । विश्वानि । सौभगा ॥ ३ ॥

(२४) यत् । यूयं । पृश्निऽमातरः । मर्तांसः । स्यातन । स्तोता । वः । अमृतः । स्यात् ॥ ४ ॥

अन्वयः— २१ कध-प्रियः वृक्त-वर्हिपः, पिता पुत्रं न, हस्तयोः कत् ह नूनं दधिध्वे ?

२२ नूनं क ? वः कत् अर्थं ? दिवो गन्तं, न पृथिव्या, वः गावः क न रण्यन्ति ?

२३ (हे) मरुतः ! वः नव्यांसि सुम्ना क ? सुविता क ? विश्वानि सौभगा क्रो ?

२४ (हे) पृश्नि-मातरः ! यूयं यद् मर्तांसः स्यातन, वः स्तोता अ-मृत- स्यात् ।

अर्थ— २१ ( कध-प्रियः ) स्तुतिको बहुत चाहनेवाले ( वृक्त-वर्हिपः ) तथा आसनपर बैठनेवाले मरुतो ! ( पिता ) बाप ( पुत्रं न ) पुत्रको जैसे ( हस्तयोः ) अपने हाथों से उठा लेता है, उसी प्रकार तुम भी हमें ( कत् ह नूनं ) सचमुच कय भला अपने करकमलों से ( दधिध्वे ) धारण करोगे ?

२२ ( नूनं क ) सचमुच तुम भला किधर जाओगे ? ( वः कत् ) तुम किस ( अर्थ ) उद्देश्यको लक्ष्य में रख जानेवाले हो ? ( दिवः गन्तं ) तुम भले ही धुलोक से प्रस्थान करो, लेकिन ( न पृथिव्याः ) इस भूलोकसे तुम छुपा करके न चले जाओ; भूमंडलपर ही अविरत निवास करो । ( वः गावः ) तुम्हारी गौयें ( क ) भला कहाँ ? ( न रण्यन्ति ) नहीं रँभती हैं ?

२३ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुहण ! ( वः ) तुम्हारी ( नव्यांसि ) नयी नयी ( सुम्ना कं ) संरक्षणकी आयोजनायें कहाँ हैं ? तुम्हारे ( सुविता क ? ) उच्च कोटिके वैभव तथा सुखके साधन देश्वर्य किधर हैं ? और ( विश्वानि ) सभी प्रकार के ( सौभगा क्रो ? ) सौभाग्य कहाँ हैं ?

२४ हे ( पृश्नि-मातरः ! ) मातृभूमि के सुपुत्र वीरो ! ( यूयं ) तुम ( यद् ) यद्यपि ( मर्तांसः ) मर्त्य या मरणशील ( स्यातन ) हो, तो भी ( वः ) तुम्हारा ( स्तोता ) काव्यगायन करनेवाला बेशक ( अमृतः स्यात् ) अमर होगा ।

भाषार्थ— २१ जिस भौतिक पिता का आधार पाने से पुत्र निर्भय होकर रहता है, ठीक वसी प्रकार भला कय हमें इन वीरोंका सहारा मिलेगा ? एक बार यदि यह निश्चित हो जाय कि, हमें उनका आश्रय मिलेगा, तो हम अकृतोभय हो सुखपूर्वक कालक्रमणा करने लगेंगे और हमारी जीवनयात्रा निश्चित हो जायेगी ।

२२ वीर मरुह कहाँ जा रहे ? किस दिशा में वे गमन कर रहे हैं ? किस अभिप्राय से वे अभिपान कर रहे हैं ? हमारी यह तीव्र शालसा है कि, वे धुलोक से ह्जर पधारने की कृपा करें और ह्सी अवनीतलपर सदा के लिए निवास करें । कारण यही है कि उनकी छत्रछाया में हमारी रक्षा में कोई दृष्टि न रहने पायेगी, अतः वे ह्जर से अन्य किसी जगह न चले जायें । मरुतों की गौयें सभी स्थानों में विद्यमान हैं और वे आपानन्दवश रँभती हैं ।

२३ वीर मरुह संरक्षणकार्य का बीडा उठाते हैं, अतः जनता की रक्षा भली भौतिक दुष्ठा करती है और यह श्रेष्ठ वैभव एवं सुख पाने में सफलता प्राप्त करती है । वीरों के लिए यह भलीच उचित कार्य है कि, वे जनता की यथोचित रक्षा कर उसे वैभवशाही तथा सुखी करें ।

२४ दूर वीर मरुह ( पृश्नि-मातरः, गो-मातरः ) मातृभूमि, मातृभावा तथा गोमाताकी सेवा करनेवाले हैं और यद्यपि वे स्वयं मर्त्य हैं, तो भी इनके अनुयायी अमररपन पाने में सफलता पायेंगे ।



(२५) मा । वः । मृगः । न । यवसे । जुरिता । भूत् । अजोष्यः ।

पथा । यमस्य । गात् । उप ॥ ५ ॥

(२६) मो इति । सु । नः । पराऽपरा । निःऽऋतिः । दुःऽहना । वधीत् ।

पदीष्ट । तृष्ण्या । सह ॥ ६ ॥

अन्यथा- २५ मृगः यवसे न, वः जरिता अ-जोष्यः मा भूत् यमस्य पथा ( मा ) उप गात् ।

२६ परा-परा दुर-हना निर-ऋतिः नः मो सु वधीत्, तृष्ण्या सह पदीष्ट ।

अर्थ- २५ ( मृगः ) हिरन ( यवसे न ) जैसे तृण को असेवनीय नहीं समझता है, ठीक उसी प्रकार ( वः जरिता ) तुम्हारी स्तुति एवं सराहना करनेवाला तुम्हें ( अ-जोष्यः ) अ-सम्बन्ध या अप्रिय ( मा भूत् ) न होने पाय और वैसे ही वह ( यमस्य पथा ) यमलोक की राहपर ( मा उप गात् ) न चले, अर्थात् उसकी मौत न होन पाय या दूर हट जाय ।

२६ ( परा-परा ) अत्यधिक मात्रा में बलिष्ठ तथा ( दुर-हना ) विनाश करने में बहुतही बौद्धि देखी ( निर-ऋतिः ) सुधी वंशा या दुर्दंशा ( नः ) हमारा ( मो सु वधीत् ) विनाश न करे, ( तृष्ण्या सह ) प्यास के मार उसी का ( पदीष्ट ) विनाश हो जाय ।

भावार्थ- २५ जैसे हिरन जी के शेत को सेवनीय मानता है, उसी तरह तुम्हारा सम्बन्ध करनेवाला कवि तुम्हें सबैव प्रिय लगे और वह सृष्टि के दागेरे से कोतों दूर रहे । वह यमलोक को पहुँचानेवाली सड़क पर संचार न को, जाने वह अमर बने ।

२६ विपदा, सुधी हालत एवं भाग्यचक्र के उलट फेर के फलस्वरूप होनेवाली परिस्थिति सुगंध बल-वन्तर होती है और उसे दृढाना तो कोई सुगम कार्य बिलकुल नहीं, ऐसी भावदा के कारण हमारा नाश न होने पाय; पागु सुख की प्यास या क्षुधा बढ जाय, जिनसे बड़ी विपत्ति विनष्ट होये ।

टिप्पणी- [ २४ ] 'यूयं मर्तासः स्यातन, यः स्तोता अमृतः स्यात्' में विरोधाभास अलकारनी शकल देखने मिलती है । मर्त्य की उपासना करने में निरत पुत्र भी अमर बन सकता है । ' ऋषु' देवताओं के बारे में भी इसी भाँति वर्णन उपलब्ध है । ' मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानुः । ' ( ऋ. १।१।०।४ ) ऋषु-देव पहले मर्त्य थे, पर आगे चलकर उन्हें अमरपन मिला । इससे तो यही प्रतीत होता है कि, मर्त्यों में भी अमर बनने की क्षमता रहती है । इस मंत्र पर सायणाचार्यजीने इस भाँति भाष्य किया है- " एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्या अपि सन्तोऽमृतत्वं द्युत्वं आननुः आनशिरै । कृतैः कर्मभिल्लैर्भिरै । ' ऋषु प्राग्भवे मनुष्य ही थे, पर उन्होंने विशेष तथा अत्यधिक महारवर्ण कार्यकलाप निभाये, इसलिए वे देवद्वर अधिरूढ हो गये । परानमें रचना स्यादिए कि अगर सभी मानव इसी भाँति उच्च कोटिके कार्य काने लगते, ना वे निस्वन्द देवपद प्राप्त कर सकेंगे । [ २५ ] अजोष्य= ( जुष् पीतिसेवनीयः ) जोष्य= पीतिपूर्वक सेवन कानेपाय, अजोष्य= सेवन करने के लिए अनुपयुक्त । [ २६ ]

व्या इयक्ति, क्या राष्ट्र सभी को विपत्ति से मुक्तभेद क ना अभिवार्य है । मानवजाति में जब तृष्णा अत्यधिक रूप से बढ जाती है, तब ऐसे संकटों के बादल मँडराने लगते हैं, भावति की घनघोर घटा छा जाती है । तृष्णा यदि लगातार बढती चली जाय, तो वही उनका विनाश करती है और स य भी नष्ट हो जाती है । ' निःऽऋतिः तृष्ण्या सह पदीष्ट ' विपदा तृष्णा के साथ विनष्ट हो जाय, ऐसा जो यहाँ कहा है, वक्ता अभिप्राय केवल इतनाही है । क्योंकि देखिए न, ६ विपदा की जघ में तृष्णा पाई जाती है, अतएव अगर तृष्णाके साथ ही साथ विपत्तिकी काली घटा दूर होये, तो अवश्य-मेव सुख की प्राप्ति होगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।

- (२७) सत्यम् । त्वेपाः । अमऽवन्तः । धन्वन् । चित् । आ । रुद्रियासः  
मिहम् । कृण्वन्ति । अघाताम् ॥ ७ ॥
- (२८) वाथाऽह्व । विद्युत् । मिमाति । वत्सम् । न । माता । सिंसक्ति ।  
यत् । एषाम् । वृष्टिः । असंजि ॥ ८ ॥
- (२९) दिवा । चित् । तमः । कृण्वन्ति । पर्जन्येन । उदऽवाहेन ।  
यत् । पृथिवीम् । विऽउन्दन्ति ॥ ९ ॥

अन्वयः— २७ धन्वन् चित्, त्वेपाः अम-वन्तः रुद्रियासः, अ-घातां मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ।  
२८ यत् एषां वृष्टिः असंजि, वाथाऽह्व, विद्युत् मिमाति, माता वत्सं न, सिंसक्ति ।  
२९ यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद-वाहेन पर्जन्येन दिवा चित् तमः कृण्वन्ति ।

अर्थ— २७ (धन्वन् चित्) मरुभूमि में भी (त्वेपाः) तेजयुक्त और (अम घन्तः) बलिष्ठ (रुद्रियासः) महान् धीर  
मरुत् (अ-घातां) वायुराहत (मिहं आ कृण्वन्ति) वर्षा को चाहें और कर डालते हैं, (सत्यं) यह सच बात है ।

२८ (यत्) जप (एषां) इन मरुतों की सहायता ने (वृष्टि, असंजि) वर्षा का सृजन होता  
है तब (वाथाऽह्व) रँभानेवाली गाँ के समान (विद्युत्) बिजली (मिमाति) बड़ा भारी शब्द  
करती है और (माता) माता (वत्सं न) जिस प्रकार बालक को अपने समीप रखती है, वैस ही बिजली  
मेंवों के समीप (सिंसक्ति) रहती है ।

२९ वे धीर मरुत् (यत्) जप (पृथिवीं) भूमि को (व्युन्दन्ति) गीली या आर्द्र कर डालते  
हैं, उस समय (उद-वाहेन पर्जन्येन) जल से भरे हुए मेघों से सूर्य को ढककर (दिवा चित्) दिन  
की छेला में भी (तमः कृण्वन्ति) अधिपारी फैलाते हैं ।

भाषार्थ— २७ मरुस्थल में वर्षा प्रायः नहीं होती है, प त्तु यदि मरुत् पैदा पाएँ, तो जैसे ऊपर हवान में भी वे  
पुर्वाधार धारित कर सकते हैं । अभिप्राय यही है कि, वा रान होना वा न होना मरुतों— वायु । १०— के अधीन है ।  
यदि अनुकूल वायुमवाह पहले लग जायें, तो वर्षा होने में देर न लगेगी ।

२८ जिस समय बड़ी भारी भीषण क पक्षान् वर्षा का प्रारम्भ होता है, उस समय बिजली की गर्जना  
सुनाई देती है और मेघघृन्तों में दामिनी की दमक दमक ई देना है । यहाँ पर ऐसी कथन का है कि, बिजली मारों  
गाय है । वह जिस तरह अपने बछड़े के लिए रँभानी है और अपने बच को समीप रखना चाहती है, उभी तम  
बिजली मेघ का आलिप्तन करती है ।

२९ जिस वक्त मरुत् धारित करने की तैयारीमें लगते रहते हैं, तब समूचा आकाश बादलोंसे आच्छादित  
हो जाता है, सूर्य का दर्शन नहीं होगा है, अधिरा फैल जाता है और तदुपरान्त वर्षा के फलस्वरूप मून्डल गाला या  
पानी से घेर हो जाता है ।

टिप्पणी [ २७ ] रुद्र= (रुद्र-र) = रुद्रानेवाला जो धीर होता है, यह शत्रुदलको रलाता है, अतः धीरको रुद्र करना  
उचित है । महारुद्र महावीर ही है । (रुद्र-र) शब्द करनेवाला, पक्षा या उपदेशक । रुद्रिय= शत्रुदलको रलानेवाला  
धीर से उपपन्न धीर पुत्र, धीरों के अनुयायी । [ २८ ] मिमाति= (मा=मापन करना, तुकना करना, सीमित करना,  
शन्दर रहना, तैयार करना, बनाना, दशाना, शब्द करना, गर्जना करना) = भाषाज करती है । [ २९ ] उद-वाह= (उद-  
वाह) पानीको डोनेवाला, मेघ ।

- (३०) अधः। स्वनात्। मरुताम्। विश्वम्। आ। सन्न। पार्थिवम्। अरेजन्त। प्र। मानुषाः ॥ १० ॥  
 (३१) मरुतः। वीळुपाणिभिः। चित्राः। रोधस्वतीः। अनु।  
 यात्। ईम्। अखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥  
 (३२) स्थिराः। वः। सन्तु। नेमयः। रथाः। अश्वसः। एषाम्।  
 सुसंस्कृताः। अभीशवः ॥ १२ ॥

अन्वय- ३० मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सन्न आ ( अरेजन्त ) मानुषाः प्र अरेजन्त ।

३१ ( हे ) मरुतः ! वीळु-पाणिभिः चित्राः रोधस्वतीः अनु अ-खिद्र-यामभि यात् ईं ।

३२ एषां वः रथाः, नेमयः, अश्वसः, अभीशवः, स्थिराः सु संस्कृताः सन्तु ।

अर्थ- ३० (मरुतां स्वनात् अध ) मरुतां की दहाड या गर्जना के फलस्वरूप निम्न भागमें अवास्थित ( पार्थिवं ) पृथ्वी में पाये जानेवाला ( विश्वं सन्न ) समूचा स्थान ( आ अरेजन्त ) विचलित विकपित एवं स्पन्दमान हो उठता है और ( मानुषाः प्र अरेजन्त ) मानव भी काँप उठते हैं ।

३१ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वीळु-पाणिभिः ) बलयुक्त बाहुओं से युक्त तुम ( चित्राः रोधस्वतीः अनु ) सुंदर नदियों के तटोंपरसे ( अ-खिद्र-यामभि ) बिना किसी थकावट के ( यात् ईं ) गमन करो ।

३२ ( एषां व रथा ) ये तुम्हारे रथ ( नेमयः ) रथके आर तथा ( अश्वस ) घाड़ एवं ( अभीशवः ) लगाम सभी ( स्थिराः ) दृढ़ तथा अटल और ( सु संस्कृताः ) ठीक प्रकार परिष्कृत हों ।

भावार्थ- ३० तीव्र आँधी, बिजली की दहाड तथा चमकने से समूची पृथ्वी मानों विचलित हो उठती है और मनुष्य भी लड़म जात हैं, तनिक भयभीत से हो जाते हैं ।

३१ इन वीरों के बाहुओं में बहुत भारी शक्ति है और इन बाहुबल से चतुर्दिक् क्षयाति पाते हुए ये वीर नदियों के नयनमनोरम तट की राह से यकान की तनिक भी अनुभूति पाये बिना आगे बढ़ते जायें ।

३२ वीरों के रथ, पहिए, आर, अश्व एवं लगाम सभी बलयुक्त एवं सुसंस्कृत हों । अश्व भी मझी भाँति शिक्षित हों तथा रथ जैसी चीजें भी सुहानेवालीं एवं परिष्कृत हों ।

टिप्पणी [ ३१ ] अ-खिद्र-यामन्=( सिद् दैन्ये, सिद् दैन्य, सिद् याति इति विद्गयामा, दैन्यमय । तद्भावः ) सिद्ध न होते हुए, अथक उगसे, ( अ-खिद्र याम, लिखतारदित भाक्रमण । यहाँ पर वायु एवं वीर दोनों अर्थ सूचित हैं । ( १ ) वायु के प्रवाह अपनी शक्तिसे गर्जना करते हुए नदीतट परसे आगे बढ़ने हैं । यह पहला तथा अधिदैवत अर्थ है । ( २ ) वीर पुरुष अपनेमें विद्यमान सामर्थ्यके जरिये विजयी बनकर नदियों के किनारे संचार करने लगते हैं, अर्थात् शत्रुओं के प्रदेश में विद्यमान नदियों पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं । इन्हीं भाँति आगे समझ लना चाहिए । प्यानमें रहे कि तीन पक्ष इस प्रकार हैं- ( १ ) अध्यात्मम् = व्यक्ति के शरीर में विद्यमान शक्तियों अर्थात् आत्मा बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण तथा शरीर । ( २ ) अधिभूतम् = प्राणिसमष्टि मानवसमाज, प्राणिसमुदाय से सम्बन्ध रखनेवाला । ( ३ ) अधिदैवतम् = भूमि, वायु, विद्युत् चन्द्रसूर्य, सौ आदि देवताओं के बारे से ।

- (३३) अच्छ । वृद्ध । तना । गिरा । जरायै । ब्रह्मणः । पतिम् ।  
अग्निम् । मित्रम् । न । दर्शतम् ॥ १३ ॥
- (३४) मिमीहि । श्लोकम् । आस्ये । पर्जन्यः इव । ततनः ।  
गाय । गायत्रम् । उक्थ्यम् ॥ १४ ॥
- (३५) वन्दस्व । मारुतम् । गणम् । त्वेषम् । पनस्युम् । अर्किणम् ।  
अस्मे इति । वृद्धाः । असन् । इह ॥ १५ ॥

अन्वयः- ३३ ब्रह्मणः पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै तना गिरा अच्छ वद् ।

३४ आस्ये श्लोकं मिमीहि, पर्जन्यः इव ततनः, गायत्रं उक्थ्यं गाय ।

३५ त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः असन् ।

अर्थ- ३३ ( ब्रह्मणः पति ) ज्ञान के अधिपति ( अग्नि ) अग्नि को अर्थात् नेता को ( दर्शतं मित्रं न ) देवनेयोग्य मित्र के समान ( जरायै ) स्तुति करने के लिए ( तना ) सातत्ययुक्त ( गिरा ) याणी से ( अच्छ वद् ) प्रमुपतया सराहने जाओ ।

३४ तुम्हारे ( आस्ये ) मुँह के अन्दर ही ( श्लोकं मिमीहि ) श्लोक को भली भाँति नापजोखकर तैयार करो और ( पर्जन्यः इव ) मेघ के समान ( ततनः ) विस्तारित करो । वैसे ही ( गायत्रं ) गायत्री छन्द में रचे हुये ( उक्थ्यं ) काव्य का ( गाय ) गायन करो ।

३५ ( त्वेषं ) नेत्रयुक्त ( पनस्युं ) स्तुत्य अथवा सराहनीय तथा ( अर्किणं ) पूजनीय ऐसे ( मारुतं गणं ) वीर महतों के दल या समुदायका ( वन्दस्व ) अभिवादन करो । ( इह ) यहाँपर ( अस्मे ) हमारे समीपही ये ( वृद्धाः असन् ) वृद्ध रहें ।

भाषार्थ- ३३ अग्नि [ ' मरुतसखा ' ( ऋ. ८।१०३।१४ ) मरुतोंका मित्र है, तथा ] ज्ञानका स्वामी है । इसलिप इस की महिमा की सराहना करनी चाहिये ।

३४ मन ही मन अक्षरमहंसा गिनकर श्लोक तैयार कर रखे और वह कंठस्थ या मुखस्थ हो । यह आवश्यक है कि, ऐसे श्लोक में किसी न किसी वीर पुरुष की महनीयता का बखान किया हो । जैसे बर्षा का प्रारम्भ होने पर वह लगातार हुआ करती है और सर्वत्र शक्ति का वायुमण्डल फैला देती है, उसी प्रकार इस श्लोक का दृष्टीकरण या व्याख्यान अथवा प्रवचन बिना सनिक भी रुके करो और अर्थ की व्यापकता या गहराई सब को बतलाकर उन के चित्त में शांति उत्पन्न होवे, ऐसी चेष्टा करो । गायत्री छन्द में जो श्लोक बनाये जायें, उन का गायन विभिन्न हरतों में करो ।

३५ वेजसे अत्यधिक मात्रा में परिपूर्ण, प्रदंसा के योग्य तथा आवारसकार के अधिकारी जो वीर हों, उनको ही प्रणाम करना, उनके समुच्च ही सीस छुहाना अनिवार्य उचित है । अतः तुम ऐसाही करो, तथा तुम इय भाँति सतक एवं सचेष्ट रहो कि, अपने संघमें एवं समाज में शा वृद्ध, वीर्यवृद्ध, धनवृद्ध तथा कर्मवृद्ध महात् पुरुष पर्याप्त मात्रा में रहने पायें ।

टिप्पणी- [ ३३ ] श्री सायणाचार्यजीने यहाँ ब्रह्मणस्पति ' पद का अर्थ ' मरुद् ' किया है । ( १ ) जरा = ( जू स्तुतौ ) स्तुति करना । ( जू वयोदानौ ) वृद्धाया ।

(३६) प्र । यत् । इत्था । पराऽवतः । शोचिः । न । मानंम् । अस्यथ ।

कस्य । क्त्वा । मरुतः । कस्य । वर्षसा । कम् । याथ । कम् । ह । धृतयः ॥ १ ॥

(३७) स्थिरा । वः । सन्तु । आयुधा । पराऽनुदे । वीळु । उत । प्रतिष्कम्भे ।

युष्माकंम् । अस्तु । तर्विपी । पनीयसी । मा । मर्त्यस्य । मायिनः ॥ २ ॥

अन्वयः- ३६ ( हे ) धृतयः मरुतः । यत् मानं परावतः इत्था शोचिः न प्र अस्यथ, कस्य क्त्वा, कस्य वर्षसा, कं याथ, कं ह ? ३७ वः आयुधा परा-नुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कम्भे वीळु सन्तु, युष्माकं तर्चिपी पनीयसी अस्तु, मायिनः मर्त्यस्य मा ।

अर्थ- ३६ हे ( धृतयः मरुतः ) शत्रुदल को विकंपित तथा विचलित करनेवाले वीर मरुता । ( यत् ) जब तुम अपना ( मानं ) बल ( परावतः इत्था ) अत्यन्त सुदूर स्थान से इस भाँति ( शोचिः न ) विजली के समान ( प्र अस्यथ ) यहाँ पर फेंकते हो, तब यह ( कस्य क्त्वा ) भला किस कार्य तथा उद्देश्य को लक्ष्य में रख, ( कस्य वर्षसा ) किस की आयोजना से अथवा ( कं याथ ) किसकी तरफ तुम चल रहे हो या ( कं ह ) तुम्हें किस के निकट पहुँच जाना है, अतः तुम ऐसा कर रहे हो ?

३७ ( वः आयुधा ) तुम्हारे हथियार ( परा-नुदे ) शत्रुदल को हटाने के लिए ( स्थिरा ) अटल तथा सुदृढ़ रहें, ( उत ) और ( प्रतिष्कम्भे ) उनकी राह में रूकावटें खड़ी करने के लिए प्रतिबंध करने के लिए ( वीळु सन्तु ) अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसंपन्न भी हों । ( युष्माकं तर्चिपी ) तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य ( पनीयसी अस्तु ) अतीव प्रशंसाई और सराहनीय हो, ( मायिन- ) कपटी ( मर्त्यस्य ) लोगों का बल ( मा ) न बढ़े ।

भावार्थ- ३६ (अभिदैवत) वायुके प्रवाह जब बहुत वेगसे संचार करना शुरू करते हैं, तब मनमें यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता है कि, भला ये कहाँ और किसके समीप चले जाना चाहते हैं, तथा उनके गन्तव्य स्थानमें क्या रखा होगा, कौनसी उम्हें कार्यरूपमें परिणत करनी होगी ? नहीं तो उनके ऐसे वेगसे बहने रहनेका अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है ? (अभिभूतमें) जिस समय वीर पुरुष शत्रुदल को मटियामेट करनेके लिए उनपर धावा करना प्रारम्भ करते हैं, तब वे पूरा मानव अपना सारा बल उन्नी कार्य पर पूर्णरूपेण केन्द्रित करते हैं । ऐसे अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि, वे सर्वप्रथम यह पूरी तरह निश्चित कर लें कि, किस हेतु की पूर्ति के लिए यह चढाई करनी है, कितनी सफलता मिलनी चाहिए, किस स्थल पर पहुँचना है और बीच में किस की सहायता लेनी पड़ेगी । पश्चात् यह निर्धारित योजना फली-भूत हो जाए, इस उँग से कार्यश्री प्रारम्भ पर दे । धीरों के लिए यह उचित है कि, वे निश्चयारमक हेतु से प्रभावित हो, विविध कार्य को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने के लिए ही अपना आंदोलन प्रवर्तित करें, व्यर्थ ही खटावोप या गीद्व भभकी न करें, क्योंकि उतावलापन एवं भाविचारिता से सदैव हानि उठानी पड़ती है ।

३७ धीर पुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रार्यों को बलयुक्त तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके दारुणोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बना दें । वे सदाके लिए सतर्क एवं सचेत रहें कि, वे शत्रुदलसे मुठभेद या भिडंत करते समय यथेष्ट साधनों प्रभावशाली ठहरें । ( १ ) यान में रखना चाहिए कि, कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारों से बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें और कपटाचरणमें न शिष्टाकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न युद्धिगत हो ।

टिप्पणी- [ ३६ ] ( १ ) धूति = ( धू कम्पने ) = हिलानेवाला, कंपित करनेवाला । ( २ ) मानं = ( मननीयं ) मनन करने के लिए उचित, प्रमाणबद्ध, बल । ( ३ ) वर्षसू = ( वर-रूप ) आकार, रूप, आयोजना, युक्ति, कपटयोजना, कपटपूर्ण प्रयोग । [ ३७ ] ( १ ) परा-नुदे = ( पर-नुद ) शत्रुको दूर हटाना । ( २ ) प्रतिष्कम्भू = ( प्रति-स्कम्भू ) = विरुद्ध खड हो जाना, उधड़ी दिशामें शक्तिको प्रचलित करना, शत्रुके खिलाफ अपना बल किसी निर्धारित आयोजनासे प्रयुक्त करना, शत्रुकी

(३८) परा । ह । यत् । स्थिरम् । हथ । नरः । वर्तयथ । गुरु ।

वि । याथन । वनिनः । पृथिव्याः । वि । आशाः । पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

(३९) नहि । वः । शत्रुः । विविदे । अधि । चवि । न । भूम्याम् । रिशादसः ।

युष्माकम् । अस्तु । तविषी । तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आऽधृषे ॥ ४ ॥

(४०) प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । वि । विञ्चन्ति । वनस्पतीन् ।

प्रो इति । आरत् । मरुतः । दुर्मदाऽइव । देवासः । सर्वया । विशा ॥ ५ ॥

अन्वयः- ३८ (हे) नरः । यत् स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ, पृथिव्याः वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि (याथन) ह । ३९ (हे) रिश-अदसः । अधि चवि चः शत्रुः नहि विविदे, भूम्यां न, (हे) रुद्रासः । युष्माकं युजा आधृषे तविषी नु चित्, तना अस्तु । ४० (हे) देवासः मरुतः । दुर्मदा-इव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति, वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वया विशा प्रो आरत् ।

अर्थ- ३८ हे (नरः) नेता धीरो! (यत्) जब तुम (स्थिरं) स्थिररूप से अवस्थित शत्रु को (परा हत) अत्यधिक मात्रा में विनष्ट करते हो, (गुरु) घलित शत्रु को भी (वर्तयथ) हिला देते हो, विकीपित कर डालते हो और (पृथिव्याः वनिनः) भूमंडलपर विद्यमान अरण्यों के वृक्षों को भी (वि याथन) जड़मूल से उखाड़ फेंक देते हो, तय (पर्वतानां आशाः) पर्वतों के चतुर्दिक् (वि [याथन] ह) तुम सुगमता से निकल जाते हो ।

३९ हे (रिश-अदसः) शत्रु को नष्ट करनेवाले धीरो! (अधि चवि) पृथलोक में तो (व. शत्रुः, तुम्हारा शत्रु (नहि विविदे) अस्तित्व में ही नहीं पाया जाता है और (भूम्यां न) भूमंडलपर भी नहीं विद्यमान है, हे (रुद्रासः) शत्रु को रुलानेवाले धीरो! (युष्माकं युजा) तुम्हारे साथ रहते हुए (आधृषे) शत्रुओं को तहस-तहस करने के लिए मेरी (तविषी) शक्ति (नु चित् तना अस्तु) शीघ्रही विस्तारशील तथा बढ़नेवाली हो जाए ।

४० हे (देवास. मरुतः) धीर मरुतो! (दुर्मदाः इव) घल के कारण मतवाले हुए लोगों के समान तुम्हारे धीर (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतों को भी प्रचलित कर देते हैं, हिला देते हैं और (वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति) पेड़ों को उखाड़कर दूर फेंक देते हैं, इसलिये तुम (सर्वया विशा) समूर्चा जनता के साथ मिलजुलकर (प्रो आरत्) प्रगति करते चलो ।

भावार्थ- ३८ धीर पुरुष सदैव स्थिर एवं प्रबल शत्रुको भी विचलित करनेकी क्षमता रखते हैं, वनोंमेंसे सबको का निर्माण करते हैं और पर्वतोंके मध्यसे भी लीलपैय दूसरी ओर चले जाते हैं, तथा शत्रुसंग पर आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ।

३९ धीरों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि, वे अपने शत्रुओं का समूल विनाश करें, कहीं भी उभड़े रहने के लिए स्थान न दें और उनका आमूलचूल विध्वंस कर चुकने पर ही अपनी शक्ति को बचाते चले ।

४० बल अत्यधिक बढ़ जाने से तनिक मतवाले से बनकर धीर पुरुष शत्रुदल पर आक्रमण करते समय पर्वतों को भी विकीपित कर देते हैं और मार्ग पर पाये जानेवाले वृक्षों को भी उखाड़कर हटा देते हैं । ऐसे बल को आवश्यकता रखनेवाले कार्यों की पूर्ति करना उनके लिए संभव है, अतः वे सारी जनता के सहयोग की सहायतासे ऐसी कार्यविधि में अपना बल लगा दें कि अन्तमें सबकी प्रगति हो । स्वर्ध ही उपात तथा विध्वंस-कार्यों में उलझे न हों । (बाधु जिस तरह वेगवान् बनने पर पेड़ों को तोड़मरोड़ देती है, ठीक उसी प्रकार ये धीर भी शत्रुदल को विनष्ट कर देते हैं ।)

राहमें रोड़े भरकाना, उसे रोक देना । (३) मायिन् = (माया = चतुर्माह, कौतुक, युक्ति, कपट) = कुशल, युक्तिमान् कपटी । [ ३९ ] ( १ ) आधृषे = धर्य, आक्रमण, धावा करना, चढ़ाई करना और शत्रुको जड़ मूल से उखाड़ देना

- (४१) उपो इति । रथेषु । पृपतीः । अयुग्धम् । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।  
 आ । वः । यामाय । पृथिवी । चित् । अश्रोत् । अवीभयन्त । मानुषाः ॥ ६ ॥
- (४२) आ । वः । मक्षु । तनाय । कम् । रुद्राः । अवं । वृणीमहे ।  
 गन्तं । नूनम् । नः । अवंसा । यथा । पुरा । इत्या । कण्याय । विभ्युषं ॥ ७ ॥
- (४३) युष्माद्द्विपितः । मरुतः । मर्त्येऽद्विपितः । आ । यः । नः । अर्भ्वः । ईपते ।  
 वि । तम् । युयोत । शर्वसा । वि । ओजसा । वि । युष्माकाभिः । ऊतिभिः ॥ ८ ॥

अन्वय.— ४१ रथेषु पृपतीः उपो अयुग्ध, रोहितः प्रष्टिः वहति, व. यामाय पृथिवी चित् आ अश्रोत्, मानुषाः अवीभयन्त । ४२ हे रुद्राः ! तनाय कं मक्षु व. अय आ वृणीमहे, यथा पुरा विभ्युषे कण्याय नूनं गन्त इत्या अवंसा नः [ गन्त ] । ४३ ( हे ) मरुतः । यः अर्भ्वः युष्मा- द्विपितः मर्त्ये-द्विपितः नः आ ईपते, तं शर्वसा वि युयोत, ओजसा वि ( युयोत ), युष्माकाभिः ऊतिभिः वि ( युयोत ) ।  
 अर्थ— ४१ तुम ( रथेषु ) अपने रथों में ( पृपती ) चित्रविचित्र विन्दुओं सहित घोड़ियों या हरिनियों ( उपो अयुग्धं ) जोड़ चुके हो और ( रोहितः ) लालवर्णवाला घोड़ा या हिरन ( प्रष्टिः ) घुरा को ( वहति ) खाँच लेता है । ( वः यामाय ) तुम्हारे जानका शब्द ( पृथिवी चित् ) भूमि ( आ अश्रोत् ) सुन लेती है, पर उस आवाज से ( मानुषाः अवीभयन्त ) सभी मानव भयभीत हो उठते हैं ।

४२ हे ( रुद्राः ) शत्रु को रत्नवाले घोर मरुद्गण ! ( तनाय कं ) हमारे बालवच्चों का कल्याण तथा हित होवे, इसलिए ( मक्षु ) बहुत ही शीघ्र हमें ( व. अयः ) तुम्हारा संरक्षण मिल जाए, ऐसा ( आ वृणीमहे ) हम चाहते हैं । ( यथा पुरा ) जैसे पहले तुम ( विभ्युषे कण्याय ) भयभीत कण्व की ओर ( नूनं गन्त ) शीघ्र जा चुके थे, ( इत्या ) इसी प्रकार ( अवंसा ) रक्षा करने की शक्ति के साथ ( नः ) हमारी ओर जितना जल्द हो सके, उतना आ जाओ ।

४३ हे ( मरुतः ) वीर मरुत्संग ! ( यः अर्भ्व ) जो डरापना हथियार ( युष्मा-द्विपितः ) तुमसे फेंका हुआ या ( मर्त्ये-द्विपितः ) किसी अन्य मानवसे प्रेरित होता हुआ, अगर ( नः आ ईपते ) हमारे ऊपर आ गिरता हो तो ( तं ) उसे ( शर्वसा वि युयोत ) अपने बलसे हटा दो, ( ओजसा वि ) अपन तेजसे दूर कर दो और ( युष्माकाभिः ऊतिभिः ) तुम्हारी संरक्षण आयोजनाओं द्वारा उसे ( वि ) विनष्ट करो ।

भावार्थ— ४१ मरुतों के रथ में जो घोड़ियों या हिरनियों जोड़ी जाती हैं, वे घृष्टभागवर धन्वे धारण कर लेती हैं, और उन के अग्रभाग में घुरी उठाने के लिए एक लाल रंग का अथवा हरिन रखा जाता है । जब मरुतों का रथ आगे बढ़ने लगता है, तब सारी पृथ्वी उस के शब्द को ध्यानपूर्वक सुन लेती है । हाँ, अन्य सभी मानव उस ध्वनि को ध्वन करत ही सहम जाते हैं, उन के अन्तस्तर में भीतरिया चमक उठती है । यहाँ पर एक ध्यान में रखनेयोग्य बात है कि, मरुतों के वाहन लालवर्णवाले होते हैं, भले ही वे हरिन या घोड़े हों । [ आगे चलकर मरुतों के पहनावे का रंग केसरिया बतलाया है ( देखो मंत्र २११ ) । मंत्रसंख्या ५२ में ' अरुण द्रसव ' विशेषण मरुतों को दिया गया है । इस से निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि, वे वीर अरुण याने लाल रंगवाले हैं । ]

४२ राष्ट्रके बालकों का रक्षण करने का कार्य धीरे-धीरे अवलम्बित है, जो आगामी पुत्र की प्रगतिके लिए अत्यधिक सावधानता रखें । जैसे अतीतकालमें समय समय पर वीरोंने सहायता प्रदान की थी, वैसे ही अब भी वे करें ।

४३ यदि हम पर कोई आपत्ति आनेवाली हो, तो वीर अपने बल से, प्रभाव से तथा संरक्षण से उसे हटाकर पूर्णतया पैरोतले रौंद दें, क्योंकि जनता को निर्भय करना वीरोका ही कर्तव्य है ।

टिप्पणी— [ ४१ ] याम = जाना, गति, आक्रमण, हमला । [ ४२ ] कण्व = ( कण् आर्तस्वरे ) = हु ली बनकर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनेवाला, श्रोता, फवि, कण्व नामक एक ऋषि । [ ४३ ] अर्भ्वः ( अ-भूव ) = अभूतपूर्व, भयानक, घोर, प्रचंड ।

- (४४) अस्मि । हि । प्रयज्यवः । कर्णम् । दद । प्रचेतसः ।  
 अस्मिभिः । मरुतः । आ । नः । ऊतिभिः । गन्त । वृष्टिम् । न । विद्युतः ॥ ९ ॥
- (४५) अस्मि । ओजः । विभूथ । सुदानवः । अस्मि । धृतयः । शर्वः ।  
 ऋषिद्विपे । मरुतः । परिमन्यवे । इपुंम् । न । सृजत । द्विपम् ॥ १० ॥  
 कण्वपुत्र पुनर्वत्स ऋषि ( ऋ० ८।७।१—३६ )
- (४६) प्र । यत् । वः । त्रिस्तुभम् । इपुंम् । मरुतः । त्रिप्रः । अक्षरत् ।  
 वि । पर्यतेषु । राजथ ॥ १ ॥

अन्वयः— ४४ ( हे ) प्र-यज्यवः प्र-चेतसः मरुतः ! कण्वं अ-स्मि हि दद, अ-स्मिभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त । ४५ ( हे ) सु-दानवः ! अ-स्मि ओजः अ-स्मि शयः विभूथ, ( हे ) धृतयः मरुतः ! ऋषि-द्विपे परि-मन्यवे, इपुं न, द्विपं सृजत । ४६ ( हे ) मरुतः ! यद् त्रिप्रः यः त्रिपुत्रं इपं प्र अक्षरत्, पर्यतेषु वि राजथ ।

अर्थ— ४४ हे (प्र-यज्यवः) अतीव पूज्य तथा (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानी (मरुतः!) वीरमरुतो ! (कण्वं) कण्व को जैसे तुमने ( अ-स्मि हि ) पूर्ण रूपसे ( दद ) आधार या आश्रय दे दिया था, वैसेही ( अ-स्मिभिः ऊतिभिः ) संरक्षणकी संपूर्ण एवं अविश्वल आयोजनाओं तथा साधनों से युक्त होकर ( विद्युतः वृष्टिं न ) विजलियाँ वर्षाकी ओर जैसे चली जाती है, वैसे ही तुम ( नः आगन्त ) हमारी भोर आ जाओ ।

४५ हे ( सु-दानवः ! ) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत ! ( अ-स्मि ओजः ) अधूरा नहीं, ऐसा समूचा बल एवं ( अ-स्मि शयः ) अविश्वल शक्ति ( विभूथ ) तुम धारण करते हो, हे ( धृतयः मरुतः ! ) शत्रुदल को विनियत करनेवाले वीर मरुद्गण ! ( ऋषि-द्विपे ) ऋषियों से द्वेष करनेवाले ( परि-मन्यवे ) क्रोधी शत्रु को धराशायी करने के लिए ( इपुं न ) पाण के समान ( द्विपं ) द्वेष करने-वाले शत्रु को ही ( सृजत ) उस पर छोड़ दो ।

४६ हे ( मरुतः ) वीर मरुत गण ! ( यत् त्रिप्रः ) जब ज्ञानी पुरुष ( यः ) तुम्हारे लिए ( त्रिपुत्रं ) त्रिपुत्र छन्द के दनाया हुआ स्तोत्र पढ़कर ( इपं प्र अक्षरत् ) अक्षर अर्पण कर चुका, तब तुम ( पर्यतेषु विराजथ ) पर्यतों में विराजमान होते हो ।

भावार्थ— ४४ पूजाई तथा ज्ञानविज्ञान में युक्त एवं विभूषित वीर लोग हमें सब प्रकार से सुरक्षित रखें और हमारी मदद करें ।

४५ वीर मरुतों के समीप अविश्वल रूप से शारीरिक बल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकार की मुष्टि नहीं है । वे इस असीम सामर्थ्य का प्रयोग करके उस शत्रु को दूर हटा दें, जो ऋषियों वा अधीश्व विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियों से द्वेषपूर्ण भाव रखता हो, वा उसी पर दूसरे शत्रु को छोड़कर उसे बिनष्ट कर डालें ।

४६ एक समय जब ज्ञानी ऋषामक ने मरुतों को लक्ष्य में रखकर त्रिपुत्र छन्द का सामगायन किया और उन्हें अक्षर प्रदान किया तब वे वीर पर्यत श्रेणियों में अ नन्दपूर्वक दिन बिताते लग थे ।

टिप्पणी— [ ४४ ] ( १ ) अ-स्मि = आधा नहीं, पूर्ण, पूर्णरूपेण । ( २ ) प्र-चेतस् = इष्टानपूर्वक कार्य करने वाला, बुद्धिमान्, ज्ञानी, सुधी, हर्षित, अष्ट विद्यावाला । ( ३ ) कण्व- देवो मन्त्र ४२ । [ ४५ ] इयं संप्रभाग में ( ऋषि-द्विपे, परि-मन्यवे द्विपं सृजत ) एक मननोप राजनैतिक तथ्यका प्रतिपादन किया है कि, एक शत्रु को दूसरे शत्रुसे लडाकर दोनोंको भी हतबल करके परास्त कराया ।



(४७) यत् । अङ्ग । तविपीऽयवः । यामम् । शुभ्राः । अचिध्वम् ।

नि । पर्वताः । अहासत ॥२॥

(४८) उत् । ईरयन्त । वायुऽभिः । वाश्रासः । पृश्निऽमातरः ।

धुक्षन्त । पिप्युपीम् । इर्षम् ॥ ३ ॥

(४९) वर्पन्ति । मरुतः । मिहम् । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् ।

यत् । यामम् । यान्ति । वायुऽभिः ॥ ४ ॥

अन्वयः- ४७ ( हे ) तविपी-यवः शुभ्राः अङ्ग ! यद् यामं अचिध्वं, पर्वताः नि अहासत ।

४८ वाश्रासः पृश्नि-मातरः वायुभिः उद् ईरयन्त, पिप्युपीं इपं धुक्षन्त ।

४९ मरुतः यद् वायुभिः याम यान्ति, मिह चपन्ति, पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

अर्थ- ४७ हे ( तविपी-यवः ) बलवान् ( शुभ्राः ) सुहृदनेवाले ( अङ्ग ) प्रिय तथा वीर मरुतो ! ( यत् ) जब तुम अपना ( यामं ) गमनके लिए निश्चित किया हुआ रथ ( अचिध्वं ) सुसज्ज करते हो, तब ( पर्वता नि अहासत ) पर्वत भी चलायमान हो उठते हैं ।

४८ ( वाश्रासः ) गर्जना करनेवाले ( पृश्नि मातरः ) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुत् ( वायुभिः ) वायु-प्रवाहों की सहायता से ( उद् ईरयन्त ) मेघों को इधर उधर ले चलते हैं और तदनुसार ( पिप्युपीं इपं धुक्षन्त ) पुष्टिकारक अन्न का सृजन करते हैं ।

४९ ( मरुतः ) वीर मरुतों का यह दल ( यत् वायुभिः ) जब वायुओं के साथ ( याम यान्ति ) दौड़ने लगते हैं, तब ( मिह चपन्ति ) घे घर्षा करने लगते हैं और ( पर्वतान् प्र वेपयन्ति ) पर्वतश्रेणियोंको वं पायमान कर देते हैं ।

भावार्थ- ४७ बल बढानेवाले वीर जब शत्रु पर चढ़ाई करने की लालसा से अपना रथ सुसज्जित कर देने हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि, मानों पहाड़ भी हिलने लगते हैं ।

४८ पवन की झकोरों से बादल इधर उधर जाने लगते हैं और कुछ काल के उपरान्त उन से वर्षा होती है, तथा अन्न भी यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न होता है । इसी अन्न से जीवसृष्टि का भरणपोषण होता है । निरसदह मरुतों का यह कार्य वर्णनीय है ।

टिप्पणी [ ४७ ] ( १ ) तविपी-यु = ( तविप = शक्ति, धैर्य, बल, सामर्थ्य, बलिष्ठ, स्वर्ग, ) शक्तिमान्, धीरवीर, उरसाह एव उमगसे भरा हुआ । ( २ ) शुभ्राः = चमकीला तेजस्वी, सुन्दर, साफ सुधारा, सफेद, चन्दन, स्वर्ग, चाँदी । ( शुभ्राः = शरीर पर चन्दन का लेप करनेवाले ? ) शोभायमान । [ ४८ ] चुकि इस मंत्र में ऐसा कहा है, ( पृश्निमातर वायुभिः उदीरयन्ते ) अर्थात् वायु की लहरियों से मरुत् मेघों को वितरवितर कर देते हैं, अस्ताम्यस्त कर ढालते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि, मरुत् एव वायु दो विभिन्न वस्तुओं की सूचना देते हैं । अगले मंत्र पर की हुई टिप्पणी देख लीजिए । [ ४९ ] यहाँ पर यों बतलाया है कि, ( मरुतः वायुभि यान्ति ) मरुत् वायुओं के साथ भागने लगते हैं और वर्षा का प्रारम्भ करते हैं । इस से ऐसी कल्पना करनेमें क्या हर्ज कि, मरुत् तथा वायु दोनों विभिन्न अर्थवाले शब्द हैं । इस बारे में ऊपर के मंत्र में बतलाया हुआ वर्णन देखिए और ४१६ तथा ४१७ सषयावाले मंत्र भी देखिए, क्योंकि वहाँपर ' यातास्त न ' ( वायुओं के समान ये मरुत् हैं ) ऐसा कहा है ।

मरुत् [ हिं. ] ३

- (५०) नि । यत् । यामाय । वृः । गिरिः । नि । सिन्धवः । विऽधर्मणे ।  
महे । शुष्माय । येमिरे ॥ ५ ॥
- (५१) युष्मान् । ऊँ इति । नक्तम् । ऊतये । युष्मान् । दिवा । हवामहे ।  
युष्मान् । प्रऽयुति । अध्वरे ॥ ६ ॥
- (५२) उत् । ऊँ इति । त्ये । अरुणऽप्सवः । चित्राः । यामेभिः । ईरते ।  
वाथाः । अधि । स्तुना । दिवः ॥ ७ ॥
- (५३) सृजन्ति । रश्मिम् । ओजसा । पन्याम् । सूर्याय । यातवे ।  
ते । भानुभिः । वि । तस्थिरे ॥ ८ ॥

अन्वयः— ५० यद् वः यामाय गिरिः नि, सिन्धवः वि-धर्मणे महे शुष्माय नि येमिरे ।

५१ ऊतये युष्मान् उ नक्तं हवामहे, दिवा युष्मान् प्रयति अ-ध्वरे युष्मान् हवामहे ।

५२ त्ये अरुण-प्सवः चित्राः वाथाः यामेभिः दिवः अधि स्तुना उत् ईरते उ ।

५३ सूर्याय यातवे रश्मि पन्यां ओजसा सृजन्ति, ते भानुभिः वि तस्थिरे ।

अर्थ— ५० ( यद् वः ) तुम्हारी गतिशीलता एवं प्रगति से भयभीत होकर ( गिरिः नि ) पर्वत एवं ( वि-धर्मणे ) विशेष ढंग से अपना धारण करनेवाले तुम्हारे ( महे ) बड़े एवं महनीय ( शुष्माय ) बल से डरकर ( सिन्धवः ) नदियाँ ( नि येमिरे ) अपने आप को नियंत्रित कर देती हैं, [ अर्थात् रुक जाती हैं, तब तुम यथेष्ट वर्षा करते हो । ]

५१ हमारी ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( युष्मान् उ ) तुम्हें ही हम ( नक्तं ) रात्री के समय ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( दिवा ) दिन की बेला में भी ( युष्मान् ) तुम्हें ही हम पुकारते हैं ( प्रयति अ-ध्वरे ) प्रारंभित हिंसारहित कर्मों के समय भी हम ( युष्मान् ) तुम्हें ही बुलाते हैं ।

५२ ( त्ये ) वे ( अरुण-प्सवः ) लालिमायुक्त ( चित्राः ) आश्चर्यकारक ( वाथाः ) गर्जना करनेवाले वीर मरुत् ( यामेभिः ) अपने रथों में से ( दिवः अधि ) धुलोक के ऊपर ( स्तुना ) पर्वतों की ऊँचों चोटियों पर से ( उद् ईरते उ ) उड़ान लेने लगते हैं ।

५३ ( सूर्याय यातवे ) सूर्यके जानेके लिए ( रश्मि पन्यां ) किरणरूपों मार्गको ( ओजसा सृजन्ति ) जो अपनी शक्तिसे बना देते हैं, ( ते ) वे ( भानुभिः वि तस्थिरे ) तेजद्वारा संसारको दयात कर देते हैं ।

भाषार्थ— ५० महनोंमें विद्यमान वेग तथा बलसे भयभीत होकर पर्वत स्थिर हुए और नदियाँ भी नीचा आकर चले लगीं । ५१ कार्य करते समय, दिन एवं रात्रीकी बेलामें अपने संरक्षणके लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए । ५२ लाल वर्णवाला गणवेश पहनकर और रथ पर बैठकर ये वीर पर्वतों परसे भी संचार करने लगते हैं । ५३ महनोंमें यह शक्ति विद्यमान है कि, वे सूर्यको भी प्रकाशका मार्ग बतलाते हैं और सभी जगह तेजस्वी किरणों को फैला देते हैं ।

टिप्पणी— [ ५० ] अरुण-प्सु = ( अरुण-मात् ) = लालवर्ण से युक्त, रश्मि भासा से युक्त गणवेश पहननेवाले । [ ५३ ] सूँकि यहाँ यों बतलाया है कि, सूर्यसे प्रकाश को जानेके लिए मरुत् राह बना देते हैं, अतः एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है, क्या मरुत् वायु से भिन्न पर सूक्ष्म वायु के समान कोई तत्व है, जिस में वायु-सरस लहरियाँ उपलब्ध होती हों ? ( मंत्र ४८-४९ तथा ४१६-४१७ में दी हुई उपमाओं से प्रतीत होता है कि, वायु तथा मरुत् विभिन्न हैं । )

(५४) इमाम् । मे । मरुतः । गिरम् । इमम् । स्तोमम् । ऋभुक्षणः ।

इमम् । मे । चनत । हवम् ॥ ९ ॥

(५५) त्रीणि । सरांसि । पृश्नयः । दुदुहे । वञ्चिणे । मधु । उत्सम् । कवन्धम् । उद्रिणम् ॥ १० ॥

(५६) मरुतः । यत् । ह । वः । दिवः । सुम्नायन्तः । हवामहे ।

आ । तु । नः । उप । गन्तन ॥ ११ ॥

(५७) यूयम् । हि । स्थ । सुदानवः । रुद्राः । ऋभुक्षणः । दमे ।

उत । प्रचेतसः । मदे ॥ १२ ॥

अन्वयः— ५४ (हे) मरुतः ! इमां मे गिरं चनत, (हे) ऋभु-क्षणः ! इमं स्तोमं, मे इमं हवम् चनत ।

५५ पृश्नयः यञ्जिणे त्रीणि सरांसि, मधु उत्सं, उद्रिणं कवन्धं, दुदुहे ।

५६ (हे) मरुतः ! यत् ह वः सुम्नायन्तः दिवः हवामहे, आ तु नः उप गन्तन ।

५७ (हे) सु-दानवः रुद्राः ऋभु-क्षणः ! यूयं उत दमे मदे प्र-चेतसः स्थ ।

अर्थ— ५४ हे (मरुतः) ! वीर मरुतो ! (इमां मे गिरं) इस मेरी स्तुतिपूर्ण वाणी को (चनत) स्वीकार करो; हे (ऋभु-क्षणः) ! शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज वीरो ! तुम (इमं स्तोमं) इस मेरे स्तोत्र का और (मे इमं हवं) मेरी इस प्रार्थनाका स्वीकार करो । ५५ (पृश्नयः) मरुतोंकी माताओंने (यञ्जिणे) इन्द्रके लिए (त्रीणि सरांसि) तीन झीलें, (मधु) मिठासभरा (उत्सं) जलपूर्ण कुंड और (उद्रिणं) पानी से भरा हुआ (कवन्धं) जल धारण करनेवाला वृहदाकारपात्र या मेघ (दुदुहे) दोहन कर भरा है । ५६ हे (मरुतः) वीर मरुद्गण ! (यत् ह वः) तुम्हें, (सुम्नायन्तः) सुखी होनेकी लालसा करनेवाले हम (दिवः हवामहे) धुलोकासे बुलाते हैं, उस समय (आ तु) तुम्हें ही तुम (नः उप गन्तन) हमारे समीप आ जाओ । ५७ हे (सु-दानवः) ! भली प्रकार दान देनेवाले (रुद्राः) शत्रुसंघ को हलानेवाले तथा (ऋभु-क्षणः) शस्त्र धारण करनेवाले वीरो ! (यूयं उत हि) तुम सचमुचही जय अपने (दमे) घर में या यज्ञ में (मदे) आनन्द में रहते हो, एव सोमरस का सेवन करते हो, तब (प्र-चेतसः स्थ) तुम्हारी बुद्धि अधिक चेतनायुक्त बन जाती है ।

भावार्थ— ५५ भूमि, गौ तथा वाणी मरुतोंकी माताएँ हैं । भूमिसे अन्न तथा जल, गौ से दुग्ध और वाणीसे ज्ञान की प्राप्ति होती है । तीनोंके तीन सेवनीय तथा उपादेय वस्तुएँ हैं । मरुतोंकी माताओंने त्रिविध दुग्धसे तीन झील भरकर तैयार कर रखी हैं ताकि वीर मरुतोंका भरणपोषण सुचारु रूपसे एवं भली भाँति हो जाय । ५७ ये वीर बड़े ही उदार, शत्रुओंका नाश करनेवाले सदैव शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज हैं और जिस समय वे अपने प्रातादीनों में तथा निवासस्थलोंमें सुख-पूर्वक दिन बिताते हैं अथवा यज्ञभूमि में सोमरस का सेवन करते हैं, तब इनकी बुद्धि अतीव चेतनाशील होती है ।

टिप्पणी— [५४] ऋभु = कारीगर, कुशल, शोधक, लुहार, रथकार, बाण, वज्र । ऋभु-क्ष = इन्द्रका वज्र, बाण, ऋभुक्षणः = शस्त्रधारी, कारीगरोंको आश्रय देनेवाले (मंत्र ५७ और ८३ देखिए) । [५५] (१) क-वन्ध = पानी इकट्ठा करनेके लिए बड़ा भारी कुंड या मेघ । [५६] यहाँ पर 'सुम्नायन्तः' पद पाया जाता है, जिसका कि अर्थ है सुख पाने के लिए सचेष्ट रहनेवाले । ध्यान में रहे कि 'सु-मन' (सुम्न) मन को भली भाँति संस्कारसम्पन्न करने से ही यह सुख मिल सकता है । यह अतीव महत्त्वपूर्ण तत्त्व कभी न भूलना चाहिए । 'सु-मन' तथा 'सुम्न', वास्तव में एक ही है । इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, उनका वंग से परिष्कृत मन ही सुख का सच्चा साधन है । इसलिये मंत्र ६० एवं ९७ देख लीजिए । [५७] (१) दम = इन्द्रियदमन, संयम, मगरी स्थिरता, गृह । (२) मदे = प्रेम, गर्व, आनन्द, मधु, सोम एवं वीर्य ।

- (५८) आ । नः । रयिम् । मद्-च्युतम् । पुरु-क्षुम् । विश्व-धायसम् ।  
इयर्त । मरुतः । दिवः ॥ १३ ॥
- (५९) अधिऽइव । यत् । गिरीणाम् । यामम् । शुभ्राः । अचिध्वम् ।  
सुवानैः । मन्दध्वे । इन्दुभिः ॥ १४ ॥
- (६०) एतावतः । चित् । एषाम् । सुम्नम् । भिक्षेत । मर्त्यः ।  
अदाभ्यस्य । मन्मभिः ॥ १५ ॥

अन्वयः— ५८ ( हे ) मरुतः ! नः मद्-च्युतं पुरु-क्षुं विश्व-धायसं रयिं दिवः आ इयर्त ।

५९ (हे) शुभ्राः ! गिरीणां अधिइव यत् यामं अचिध्वं (तदा यूयं) सुवानैः इन्दुभिः मन्दध्वे ।

६० मर्त्यः एतावतः चित् अ-दाभ्यस्य मन्मभिः एषां सुम्नं भिक्षेत ।

अर्थ— ५८ हे (मरुतः ! ) मरुत् संघ ! ( नः ) हमारे लिए ( मद्-च्युतं ) शत्रुओं के गर्व का भंग करने-वाले, ( पुरु-क्षुं ) सब के लिए पर्याप्त ( विश्व-धायसं ) तथा सब के पोषण की क्षमता रखनेवाले (रयिं) धनको ( दिवः आ इयर्त ) छुलोका से ला दो । ५९ हे (शुभ्राः ! ) तेजस्वी वीरो ! ( गिरीणां अधिइव ) पर्वतमय प्रदेश पर चढ़ जानेके समय जिस ढंगसे सुसज्ज कर रखते हैं वैसे ही ( यत् ) जय तुम ( यामं अचिध्वं ) रथ को तैयार कर चुकते हो, उस समय ( सुवानैः इन्दुभिः ) निचोड़े हुए सोमरस की धाराओं से ( मन्दध्वे ) तुम हर्षित होते हो । ६० ( मर्त्यः ) मानव ( एतावतः चित् ) इस प्रकार सचमुच ही ( अ-दाभ्यस्य ) न दयाये जानेवाले प्रभु के ( मन्मभिः ) मननीय कान्यों से ( एषां ) इनसे ( सुम्नं भिक्षेत ) उत्तम सुख की याचना करे ।

भावार्थ— ५८ हमें जो धन मिले वह, इस भौतिका हो कि (१) उस धनसे शत्रुदलका गर्व विनष्ट हो जाए, (२) वह इतनी मात्रामें उपलब्ध हो कि, सब सुखपूर्वक रह सकें, (३) सबकी पुष्टि हो जाए, सभी बलिष्ठ बनें। यदि ये तीन बातें हो जायें, तोही वह धन समीप रखनेयोग्य समझना उचित है, अन्य किसी प्रकारका नहीं । ५९ पर्वतों पर चढ़ते समय जैसे रथको तैयार करना पड़ता है, वैसे ही ये वीर महवृज्ज रथको पूर्णतया सिद्ध या छेस बना रखते हैं, तब वे सोमरसके सेवन से प्रसन्न एवं हर्षित हो उठते हैं । प्रथमतः सोमरस पीकर पश्चात् रथको तैयार रखकर पार्वतीय सड़कों परसे शत्रुदल पर धावा करके, उनकी ध्विजियाँ उड़ाने के लिए मर्त्य गमन करते हैं । ६० परम पिता परमात्मा किसी भी शत्रुके दबावसे दबनेवाला नहीं है, क्योंकि वह अतीम सामर्थ्यवान् है । मानव उसके सम्बन्ध में मननीय काव्य की निर्मिति करे तथा तल्लीनचेता बन गायन करे । मनुकी उन्नत दृष्टांमें जो सुख मिल सकता है, उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिए ।

टिप्पणी— [ ५८ ] धनसंपत्ति से क्या किया जाय?— तीन तरहके कार्योंमें सफलता मिलनी चाहिए, अर्थात् (१) धन न होने पाय, ( २ ) सभी उससे लाभान्वित हों, तथा (३) स' का पोषण हो । जो धन ऐसे कर सकता है, वही उच्च कोटि का समझना चाहिए । पर जिस धन के वर्धन से गर्व बढ जाए, जो किसी एक के समीपही हड़टा होता रहे और जिससे सभी के पोषणकार्य में तनिक भी सहायता न मिले, वह निम्न श्रेणि का है । वहाँ पर बतलाया है कि, धनका उपयोग कैसे किया जाय । [ ५९ ] ( १ ) सुवानः = ( सु = अभिषेच, स्तपन-पीडन-स्तन-सुरासंधानेषु ) निचोड़ा जानेवाला रस । ( २ ) इन्दुः = सोमरस, आनन्द बढानेवाला, अन्तस्तल विघलानेवाला रस । [ ६० ] ( १ ) सुम्नं = ( सु-मनः ) सुख की जड़ में उत्तम मन ही तो है । मानवमात्र को बस यही कालसा हो कि, उच्च कोटि के मन के पदरूप जो सुख मिल सकता है, वही पाना चाहिए । यदि मन में हीन एवं जघन्य विचारों की भरमार हो, तो सच्चा सुख पाना नितान्त असंभव है । ( २ ) अ-दाभ्यस्य मन्म = जो किसी भी शत्रु की ताकत से दब नहीं जाना, उसी का मनन या चिंतन करने में सहायक हो, ऐसे काव्य की सृष्टि करनी चाहिए और मानवजाति उसी काव्य के गायन में निरत रहे । ऐसे वीरकाव्यों से उत्तम ढंगसे मन को परिष्कृत ( सु-मनः; सु-मनं ) तथा परिमार्जित करना सुगम होगा, जिस से सच्चे सुख की प्राप्ति होने में तनिक भी देर न लगेगी ।

(६१) ये । द्रप्साः इव । रोदसी इति । धमन्ति । अनु । वृष्टिभिः ।

उत्सम् । दुहन्तः । अक्षितम् ॥ १६ ॥

(६२) उत् । ऊँ इति । स्वानेभिः । ईरते । उत् । रथैः । उत् । ऊँ इति । वायुभिः

उत् । स्तोमैः । पृश्निमातरः ॥ १७ ॥

(६३) येन । आव । तुर्वशम् । यदुम् । येन । कर्णम् । धनस्पृतम् ।

राये । सु । तस्य । धीमहि ॥ १८ ॥

अन्वय - ६१ ये अक्षितं उत्सं दुहन्तः वृष्टिभिः द्रप्सा इव रोदसी अनु धमन्ति ।

६२ पृश्नि-मातरः स्वानेभिः उ उत् ईरते, रथैः उत्, वायुभिः उ उत्, स्तोमैः उत् ( ईरते ) ।

६३ येन तुर्वशं यदुं आव, येन धन स्पृतं कर्णं, तस्य ( ते अवनं ) राये सु धीमहि ।

अर्थ — ६१ (ये) जो ( अक्षितं उत्सं ) कभी न घटनेवाले क्षरनेको मेघको ( दुहन्तः ) दुहते ह, ये वीर ( वृष्टिभिः ) वर्षाओंकी सहायतासे ( द्रप्सा इव ) मानों बारिशकी बूंदोंसे ( रोदसी अनु धमन्ति ) समूचे आकाश एवं भूमंडलको व्याप्त कर देते ह ।

६२ ( पृश्नि मातर ) भूमिको माता माननेवाले वीर ( स्वानेभिः उ ) अपने शब्दों तथा अभिभाषणों से ( उत् ईरते ) ऊपर चढ़ते ह, ( रथैः उत् ) रथोंसे ऊर्ध्वगामी बनते ह, ( वायुभि उ उत् ) वायुओं से ऊंचे पदपर आरूढ़ होते ह, ( स्तोमैः उत् ) यज्ञोंसेभी ऊपर उठ जाते ह ।

६३ ( येन ) जिस शक्तिके सहारे ( तुर्वश यदुं ) तुर्वश उपाधिधारी यदुनरेश का तुमने ( आव ) प्रतिपालन किया, ( येन ) जिससे ( धन स्पृत कर्णं ) धनको चाहनेवाले कर्णका सरक्षण किया, ( तस्य ) उस तुम्हारी सरक्षणक्षम शक्तिका हम ( राये ) धनकी प्राप्ति के लिये ( सु धीमहि ) भली भाँति ध्यान करते ह ।

भावार्थ — ६१ महत् मर्वोसे वर्षा करते हैं और वर्षाकी बूंदोंसे अतिल विश्व को परिपूर्ण कर डालते हैं ।

६२ ये वीर भूमिको अपनी माता समझकर उसकी सेवा करनेवाले हैं और अपने अभिभाषणों, रथों, वायुयानों एवं यज्ञोंसे ऊंची दशा पाते हैं । इन्हीं साधनोंद्वारा वे अपनी प्रगति करने में पर्याप्त सफलता पाते हैं ।

६३ इन वीरोंने तुर्वश यदु तथा धनेच्छुक कर्ण की यथावत् रक्षा की । हमारी इच्छा है कि ये वीर उसी तरह हमें बचा दें, ताकि हम उनकी छत्रछायामें अधिकाधिक धनधान्यसंपन्न हों और उस वैभव एवं संपत्तिके बलवृत्तेपर विविध यज्ञ संपन्न कर समूची जनता का कल्याण करेंगे ।

टिप्पणी— [६१] द्रप्स (Drops) बूँदा [६२] वीरों का भाषण ऐसा हो कि, उससे उनकी उन्नति में ऐसा मात्र भी रुकावट न हो, वैसीही वे अपने रथ उत्कृष्ट राहपासे ले चलें, श्रेष्ठ यज्ञ संपन्न करें और अनुकूल वायुप्रवाहों की सहायतासे ( वायुयानों से ) आकाशपथसे अच्छी जगह जा पहुँचें । कई मंत्रों में यह उल्लेख पाया जाता है कि मरत् पृथ्वीकी नाईं आकाशपथमें से यात्रा करते हैं । देखिये मंत्रों के क्रमांक ११ ( इयेनासे न पश्चिम ), १५१ ( वयो न पसता ) और ३८९ ( आ हसालो नीलपृथा अपसन् ) । ' वायुभिः उत् ' से ज्ञात होता है कि वायुओं की सहायतासे मरत् ऊपर उठ जाते हैं । मत वायु एवं मरुतो में विभिन्नता है, दोनोंमें एकरूपता नहीं । मंत्र ४९ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देखिये । आगे चलकर मंत्र ८० में मरुतों के आकाशयात्राका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है, उसका विचार करना उचित है । [६३] (१) कर्ण ( कर्णशब्दे ) कवि, वक्ता, विद्वान्, भारत जो करावता हो, एक ऋषि का नाम । (२) तुर्वश= ( तुर्-वश ) त्रयापूर्वक क्षत्रको यशसे लानेवाला, एक नरेश का नाम । (३) यदु= ( यम् उपरमे, यमेदुक् औगादिकः ) बुरे कर्मों से उपरत हो पीछे हटनेवाला, एक राजा का नाम ।

- (६४) इमाः । ऊँ इति । वः । सुऽदानवः । घृतम् । न । पिप्पुयीः । इपः ।  
वर्धान् । कण्वस्य । मन्मभिः ॥ १९ ॥
- (६५) कः । नूनम् । सुऽदानवः । मदेथ । वृक्त-वर्हिपः । ब्रह्मा । कः । वः । सपर्यति ॥ २० ॥
- (६६) नहि । स्म । यत् । ह । वः । पुरा । स्तोमेभिः । वृक्त-वर्हिपः ।  
शर्धान् । क्रतस्य । जिन्वथ ॥ २१ ॥
- (६७) सम् । ऊँ इति । त्ये । महतीः । अपः । सम् । क्षोणी इति । सम् । ऊँ इति । सूर्यम् ।  
सम् । वज्रम् । पर्वशः । दधुः ॥ २२ ॥

अन्वयः— ६४ ( हे ) सु-दानवः ! घृतं न पिप्पुयीः इमाः इपः कण्वस्य मन्मभिः वः वर्धान् ।  
६५ ( हे ) सु-दानवः वृक्त-वर्हिपः । क नूनं मदेथ ? कः ब्रह्मा वः सपर्यति ?  
६६ ( हे ) वृक्त-वर्हिपः ! नहि स्म, पुरा वः यत् ह स्तोमेभिः क्रतस्य शर्धान् जिन्वथ ।  
६७ त्ये महतीः अपः उ सं दधुः, क्षोणी सं, सूर्यं उ सं, वज्रं पर्वशः सं ( दधुः ) ।

अर्थ— ६४ हे (सु दानवः!) उत्तम दानी वीरो! (घृतं न) घाँके समान (इमाः पिप्पुयीः इपः) ये पुष्टिकारक अन्न (कण्वस्य मन्मभिः) कण्वपुत्र के मनन करनेयोग्य काव्य या स्तोत्रद्वारा (वः वर्धान्) तुम्हारे यशकी वृद्धि करें। ६५ हे (सु-दानवः) सुचारु रूपसे दान देनेवाले तथा (वृक्त-वर्हिपः!) कुशासनोपर बैठनेवाले वीरो! (क नूनं मदेथ?) भला तुम किधर हर्षित हो रहे थे? (कः ब्रह्मा) भला वह कौन ब्राह्मण है, जो (वः सपर्यति) तुम्हारी पूजा उपासना करता है? ६६ (वृक्त-वर्हिपः!) हे दर्भासनपर बैठनेवाले वीरो! (नहि स्म) क्या यह सच नहीं है कि (यत् ह) सचमुच यहाँपर (पुरा) पहले तुम (व स्तोमेभिः) अपने प्रशंसा करनेवाले अभिभाषणों से (क्रतस्य शर्धान्) सत्यके सैनिकोंको अर्थात् धर्म के लिए लड़नेवाले सिपाहियोंकी (जिन्वथ) प्रोत्साहित कर चुके हो। ६७ (त्ये) उन वीरोंने (महतीः अपः) बहुतसा जल (उ सं दधुः) धारण किया, (क्षोणी सं [दधुः]) पृथ्वी को धर दिया और (सूर्यं उ सं [दधुः]) सूर्यको भी आधार दिया; उन्होंनेही (वज्रं पर्वशः सं [दधुः]) अपने वज्रको हर पोरमें या गाँठमें सुदृढ़ बना दिया है।

भाषार्थ— ६४ उच्च कोटिके पुष्टिकारक अन्नके प्रदान एवं मननीय काव्यके गायन से वीरोंका यश बढ़ने लगता है। ६५ हे वीरो! वृँकि तुम शीघ्र मेरे समीप नहीं आ सके, अतः यह सवाल उठाऊँ मेरे मनमें उठ खड़ा होता है कि किस जगह भला वे आनन्दोहासमें चूर हो बैठें और शीघ्र देना कौन उपासक इनसे प्रायश्चा करता होगा कि, यहाँसे शीघ्र प्रस्थान करना इन वीरोंको बुरा प्रतीत होता हो। ६६ सद्‌धर्म के लिए लड़नेवाले सैनिकोंको प्रोत्साहन मिले, इसलिये वीर उत्तम प्रभावोत्पादक भाषणों द्वारा उनका उत्साह बढ़ाते हैं। ६७ इन महतीने मेघोंको, चावापृथिवी को, सूर्यको अपनी अपनी जगह भली भाँति धर दिया है और उनका स्थान अटल तथा स्थिर किया है। इन्हीं वीर महतीने अपने वज्र नामक दक्ष को स्थानस्थानपर ठीक तरह जोड़कर उसे बलिष्ठ बना डाला है। अन्य वीरभी अपने हथियार अच्छी तरह तैयार करनेमें सतर्क रहें और शत्रुके हथियारोंसे भी अत्यधिक मात्रामें उन्हें प्रचल तथा कार्यक्षम बना दें।

टिप्पणी— [६५] (१) वृक्त-वर्हिपः आमनवर-दर्भासनपर बैठनेवाले, कुश फैलाकर बैठनेवाले। (२) ब्रह्मा=शानी, ब्राह्मण, याज्ञक, उपासक, मंत्रज्ञ, यज्ञके श्रेष्ठ कर्तव्य। [६६] (१) शर्धः=बल, सामर्थ्य, सैन्य। (२) द्रुतस्य शर्धः=सत्यका बल, सत्यधर्मके लिए लड़नेवाली सेना। (३) जिन्वुः=आनंद देना, उत्साहित करना। [६७] (१) क्षोणी=पृथ्वी, चावापृथिवी [विंशु ३।३०]।

(६८) वि । वृत्रम् । पर्वशः । ययुः । वि । पर्वतान् । अराजिनः ।

चक्राणाः । वृष्णि । वींस्वम् ॥ २३ ॥

(६९) अनु । व्रितस्य । युध्यतः । शुभम् । आवन् । उत । क्रतुम् ।

अनु । इन्द्रम् । वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥

(७०) विद्युत्सहस्ताः । अभिघवः । शिप्राः । शीर्षन् । हिरण्ययीः ।

शुभ्राः । वि । अञ्जत । श्रिये ॥ २५ ॥

अन्वयः— ६८ वृष्णि पाँस्व चक्राणाः अ-राजिनः वृत्रं पर्वशः वि ययुः, पर्वतान् वि (ययुः) ।

६९ युध्यतः व्रितस्य शुभं उत क्रतुं अनु आवन्, वृत्र-तूर्ये इन्द्रं अनु (आवन्) ।

७० विद्युत्-हस्ताः अभि-घवः शुभ्राः शीर्षन् हिरण्ययीः शिप्रा श्रिये वि अञ्जत ।

अर्थ— ६८ [वृष्णि] बलशाली [वींस्वम्] पौरुषपूर्ण कार्य [चक्राणाः] करनेवाले इन [अ-राजिनः] संघ-शासक वीरोंने [वृत्रं पर्वशः वि ययुः] वृत्रके हर गांठके टुकड़े टुकड़े किये और (पर्वतान् वि [ययुः]) पहाड़ों को भी विभिन्न कर राह बना डाली । ६९ [युध्यतः व्रितस्य] लड़ते हुये व्रितके [शुभं उत क्रतुं] बल एवं कार्यशक्ति का तुमने [अनु आवन्] संरक्षण किया और [वृत्र-तूर्ये] वृत्रहत्याके अवसरपर [इन्द्रं अनु] इन्द्र को भी सहायता दे दी । ७० [विद्युत्-हस्ताः] विजलीकी नाई चमकनेवाले हथियार हाथमें धारण करनेवाले [अभि-घवः] तेजस्वी तथा [शुभ्राः] गौरवर्णवाले ये वीर [शीर्षन्] अपने सरपर [हिरण्य-यीः शिप्राः] सुवर्ण के बने साफे [श्रिये] शोभा के लिये [वि अञ्जत] रत्न देते हैं ।

भावार्थ— ६८ ये वीर ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं कि, जिनमें बल, वीर्य तथा शूरताकी अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है । ये किसी एक नियामक राजाकी छत्रछायामें नहीं रहते हैं । [इन्द्रं संघशासक नाम दिया जा सकता है, अर्थात् इनका समूचा संघही इनपर शासन करता है । ऐसे] इन वीरोंने वृत्रके टुकड़े टुकड़े कर डाले और पर्वतोंका भेदन कर भागे यदने के लिए सड़क बना दी । ६९ इन वीरोंने व्रित नरेश को लडाईमें सदायत पहुँचाकर उसके बल, उस्ताह तथा कर्तृत्वशक्ति को अधुण्य बना रखा, अतः व्रित विजयी बन गया और इसी भाँति इन्द्र को भी वृत्रवध के मौकेपर मदद करके उसे भी विजयी बना दिया । ७० ये वीर चमकीले दाढ़ हाथोंमें रत्नते हैं । ये तेजस्वी तथा गौरवाय हैं और उनके सिरपर स्वर्णमय शिरच्छाण सुहाने हैं । अन्य वीर भी इसी भाँति अपने दाढ़ों को पुराने या जीने होने न दें, सदैव विद्युत्छाके समान प्रकाशमान एवं चमकीले रूप में रख दें ।

टिप्पणी— [६८] (१) राजिनः [राजः अरुप अस्तीति राजी]— जिनपर शासन चलाने के लिए राजा विद्यमान रहता है, वे 'राजिनः' कहलाते हैं । अ-राजिनः [राज. स्वाभी अस्य न विद्यते इत्यराजी] । जिनपर किसी एक व्यक्तिका शासन या नियंत्रण नहीं प्रस्थापित हुआ हो, जिनका सारा संघ या समुदायही हर व्यक्तिकर नियमन डालता हो । मरुत् संघवादी, संघशासक वीर थे और सब स्वयंही मिलकर शासनमंत्र्य करते थे । मंत्र २९२ और ३९८ में 'स्व-राजः' पदसे यही भाव सूचित होता है । (२) वृष्णि= पौरुषयुक्त, बलशाली, सामर्थ्यवान्, क्रुद्ध, भय, बैल, प्रकाशकरण, वायु । (३) पाँस्व= पौरुषरुल, सामर्थ्य, वीर्य, पुरुषमें विद्यमान वीरता । [६९] (१) शुभम्= बल, सामर्थ्य, सैन्य । (२) क्रतुः= कर्मशक्ति, कर्तृत्व, उस्ताह, यज्ञ, बुद्धि । (३) व्रित= [त्रिभिस्त्रायते] तीन शक्तियों का उपयोग कर रक्षा कराया है । एक नरेशका नाम [त्रिपु स्थानेषु तायमानः] । सायण क्र० ५।५।१३; २५१ मंत्र]। [७०] (१) शिप्रा=शिरच्छाण, पगड़ी, टुड्डी, नासिका, शिरच्छाणके मुँडपर भागेवाला जाड़ा । (२) वि-अञ्ज= सुनोभित करना, सजावट करना, अंजन लगाना, सुन्दर बनाना, शक्य करना । हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत= सुवर्णसे विभूषित या सुनहली पगड़ियोंसे ये वृत्रों से शक्य दीख पड़ते थे । जनताके मध्य इन वीरों को पहचानना इन्हें सुनहले साफोंसे आसान हुआ करता । स्वर्णमय शिरोवेष्टनसे विभूषित इन वीरों के समुदाय को देखतेही लोग तुम्हें कहना शुरू करते 'लो भाई, ये वीर मरुत् हैं ।'

- (७१) उशनी । यत् । परावर्तः । उक्षणः । रन्ध्रम् । अर्थातन ।  
 यौः । न । चक्रदत् । भिया ॥ २६ ॥
- (७२) आ । नुः । मखस्य । दावने । अश्वैः । हिरण्यपाणिभिः ।  
 देवासः । उप । गन्तन ॥ २७ ॥
- (७३) यत् । एषाम् । पृपतीः । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।  
 यान्ति । शुभ्राः । रिणन् । अपः ॥ २८ ॥

अन्वयः— ७१ (युयं) उशना यत् परावर्तः उक्षणः रन्ध्रं अर्थातन, यौः न भिया चक्रदत् ।

७२ (हे) देवासः ! नः मखस्य दावने हिरण्य-पाणिभिः अश्वैः उप आ गन्तन ।

७३ यत् एषां रथे पृपतीः (युज्यन्ते) प्रष्टिः रोहितः वहति, अपः रिणन् शुभ्राः यान्ति ।

अर्थ— ७१ तुम हित करनेकी [उशनाः] इच्छा करनेवाले [यत्] जब [परावर्तः] दूरके प्रदेशोंसे [उक्षणः रन्ध्रं] मेघों में [अर्थातन] आते हो, तब [यौः न] दुलोक के समानही अन्य सभी लोग [भिया चक्रदत्] डर के मारे विकंपित हो उठते हैं। ७२ हे देवासः! देवतागण! तुम [नः मखस्य दावने] हमारे यज्ञकी देन देनेके समय [हिरण्य-पाणिभिः] हाथों एवं पैरोंमें सुवर्ण के अलंकार पहने हुए। अश्वैः। घोड़ोंके साथ [उप आ गन्तन] हमारे समीप आओ। ७३ [यत् एषां रथे] जब इनके रथमें [पृपतीः] धज्ये धारण करनेवाली हरिनियाँ लगाई जाती हैं, तब [प्रष्टिः] घुराको कंधेपर धारण करनेवाला [रोहितः] एक लाल रंगका हिरन भी आगे [वहति] खींचने लगता है, उस समय अति वेगके कारण [अपः रिणन्] पत्नीका जल वहने लगता है और [शुभ्राः यान्ति] वे गौरवर्ण के वीर आगे बढ़ने लगते हैं।

भावार्थ— ७१ सब का कल्याण करने की इच्छा से जब मरुत् वर्षाका प्रारम्भ करने के लिये मेघोंमें संचार करने लगते हैं, उस समय आकाशमें भीषण दहाड़ शुरु होती है, जिससे हरएकके दिलमें भय का संचार होता है। ७२ इन वीरोंके घोड़े सुनहले आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। ऐसे अश्वोंपर बैठ हय हमारे यज्ञमें वीर मरुत् आ उपस्थित हों। ७३ वीर महर्षीका रंग गोरा है और उनके रथमें धज्येवाली हरिनियाँ लगी रहती हैं। उनके आगे एक लाल रंगका हरिण जोता जाता है। इस भाँति उनका रथ सज्ज हो जाए, तो अति वेगसे वह आगे बढ़ने लगता है, जिस से उसे खींचनेवाले पत्नीसे तर हो जाते हैं। ऐसे रथोंपर बैठकर मरुत् जाने लगते हैं।

टिप्पणी— [७१] (१) उक्षणः रन्ध्रं = बेलकी युक्त, मेघों का स्थान, बरसनेवाले मेघ की जगह। [७२] (१) 'हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन' पैरोंमें स्वर्णमय गहने धारण किये हुए अश्वोंपर चढ़कर इन वीरोंका आगमन होता है। यहाँपर घोड़ोंपर बैठनेका बह्लेख पाया जाता है। [७३] (१) प्रष्टिः = घुरा, आगे रहनेवाला, घुरा होनेवाला। [२] पृपती = धज्येवाली, जलकी बूँद, जल गिरानेवाली। रथमें हरिण = मरुत्युक्तों में अनेक जगह यह वर्णन पाया जाता है कि, मरुत् के रथ में हरिणी या शंबर अथवा पारहसिगा लगाया जाता है। हरिण से युक्त रथ तो बर्फीले स्थानोंपर काममें आते हैं, इसलिए अन्तस्त्रल में सम्प्रेक्ष उठ खड़ा होता है कि शायद ये वीर मरुत् हिमकी अधिकता के लिए विहवात भू-विभागोंमें निवास करते हों। [इस संबंधमें देवी मंत्रोंके क्रमांक ७, ४१, ७३, ११५; १२६, १२७, १२८, १२९, १३४, १३६] आगे चलकर ७४ वें मंत्रमें 'नि-चक्रया' [चक्र या पहिंसे रहित रथसे] मरुत् यात्रा करते थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। हिमप्रचुर या बर्फीले स्थानोंमें जिन गादियोंको हिरन खींचते हैं, वे बिना पहिंधोंके होते हैं। घनीभूत हिमस्तरके ऊपरसे ये हिरन इन वाहनोंको सरपट खींच ले चलते हैं। इस टंगकी गादीको [Sledge] नाम दिया जाता है और यह गादी हिमयुक्त प्रदेशोंमें बहुत कामकी मानी जाती है। इस मंत्रमें निर्देश पाया जाता है



(७४) सुसोमे । शर्याणाञ्चति । आर्जिके । पस्त्यञ्चति ।

ययुः । निञ्चक्रया । नरः ॥ २९ ॥

(७५) कदा । गच्छाथ । मरुतः । इत्या । निप्रम् । ह्वमानम् ।

मार्दिकेभिः । नार्धमानम् ॥ ३० ॥

(७६) फत् । ह । नूनम् । कधऽप्रियः । यत् । इन्द्रम् । अजहातन ।

फः । घः । सत्तिञ्चे । ओहते ॥ ३१ ॥

अन्वयः— ७४ सु-सोमे आर्जिके शर्याणाञ्चति पस्त्याञ्चति नर नि-ञ्चक्रया ययु ।

७५ (हे) मरुतः ! इत्या ह्वमानं नार्धमानं निप्रं कदा मार्दिकेभि गच्छाथ ?

७६ (हे) कध-प्रिय ! इन्द्र नूनं अजहातन यत् फत् ह, घः सत्तित्त्वे फः ओहते ?

अर्थ— ७४ [सु सोमे] उत्कृष्ट सोमवहियोंसे युक्त [आर्जिके] कर्जीक नामक भूविभाग में [शर्याणाञ्चति] शर्याणाञ्चत् नामक शीलके समीप विद्यमान [पस्त्या-ञ्चति] गृहमें [नर] नेतृत्वगुणयुक्त वीर [निञ्चक्रया] पहियों से रहित रथमें बैठकर [ययु.] चले जाते हैं ।

७५ हे [मरुत !] वीर मरुतो ! [इत्या] इस दंगसे [ह्वमानं] प्रार्थना करते हुए, पुकारते हुये तथा [नार्धमानं] सहायताकी लालसा रखनेवाले [निप्रं] शान्ति पुरुषके समीप भला तुम [कदा] कब [मार्दिकेभि] सुखवर्धक घनवैभवाँके साथ [गच्छाथ] जानेवाले हो ?

७६ हे ( कध-प्रियः ! ) कथाप्रिय वीर मरुतो ! ( इन्द्रं ) इन्द्र को ( नूनं ) सखमुच्य (अजहातन) तुम छोड़ चुके हो, ( यत् फत् ह ) भला कभी ऐसा भी हुआ होगा ? [ कभी नहीं ] तो फिर ( घ सत्तित्त्वे ) तुम्हारी मित्रता पाने के लिए ( फः ओहते ? ) कौन भला दूसरा लालायित हो उठा है ?

भाष्यार्थ— ७४ कर्जीक देशके एक स्थानको 'आर्जिक' कहते हैं । 'शर्याणाञ्चत्' शर्याणा गद्दी या बड़े शील के तटवर अवस्थित भूविभाग । 'पस्त्याञ्चत्' जहाँ रहने के लिए मकान हों, उस जगह वे शूरा मरुत् चक्राहित रथ में बैठकर जाते हैं ।

७५ प्रार्थना करनेवाले तथा सहायता पाने के सुतरीं लालायित ज्ञानी लोगोंको ये वीर सहायता पहुँचाने हैं और अपने साथ सुखको वृद्धिगत करनेवाले घनोंको लेकर गमन करते हैं ।

७६ ये वीर बहुतही कथाप्रिय हैं, अर्थात् पृथिव्याधिक वीरगाथाओं को सुनना इन्हें अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है । इन्द्र को इन्होंने कभी छोड़ा नहीं । एक बार यदि ये वीर किसीको अपना लें, तो उसे ये कभी त्यागने या छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं । वीरों को इसी भाँति पतांच रखना चाहिए । जो सत्यधर्म के अनुयाय कर्तव्य करने लगता है, वह शीघ्र ही मरुतों का प्रेमपात्र बनता है ।

कि, बिना पहियेके तथा हिरनद्राग अकृष्ट रथपर अधिरुद्ध होकर वीर मरुत् आते बढने लगते हैं । [७४] (१) शर्याणा [शर्या] = 'शर' याने सरकंदे जहाँ उगने लगते हैं, ऐसा शील, नदी या जलमय प्रदेश । (२) पस्त्या [पस्त्वा, ययुत्-स्थान] पशुपालनका स्थान, घर, गोठ या गोशाला, रहनेका स्थल, पस्त्याञ्चत् = गोठोंसे युक्त भूभाग । (३) निञ्चक्रया = चक्राहित गाड़ी से [दिशो दि० संख्या ७३] । (४) कर्जीक = गुप्त, ढका हुआ, भूभाग, सोम । आर्जिक = कर्जीकों का प्रदेश, जहाँपर सोम बघेष्ट रूपसे पाया जाता है । [७६] (१) कध-प्रिय = स्तुतिप्रिय (सायणभाष्य) ।

- (७७) सहो इति । सु । नः । वज्र-हस्तैः । कण्वासः । अग्निम् । मरुत्सर्भिः ।  
स्तुपे । हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
- (७८) ओ इति । सु । वृष्णः । प्रज्ययून् । आ । नव्यसे । सुविताय ।  
वृत्त्याम् । चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
- (७९) गिरयः । चित् । नि । जिहते । पर्शानासः । मन्यमानाः ।  
पर्वताः । चित् । नि । येमिरे ॥ ३४ ॥

अन्वयः— ७७ नः कण्वासः । वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः मरुद्भिः सहो अग्निं सु स्तुपे ।  
७८ वृष्णः प्र-ज्ययून् चित्र-वाजान् नव्यसे सुविताय सु वा वृत्त्यां उ ।  
७९ मन्यमानाः पर्शानासः गिरयः चित् नि जिहते, पर्वताः चित् नि येमिरे ।

अर्थ— ७७ हे ( नः कण्वासः ! ) हमारे कण्वा ! ( वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः ) हाथ में वज्र धारण करनेवाले तथा सुवर्णरंजित कुल्हाड़ियों का उपयोग करनेवाले ( मरुद्भिः सहो ) मरुतों के साथ विद्यमान ( अग्निं ) अग्नि का ( सु स्तुपे ) भली भाँति सराहना करो ।

७८ ( वृष्णः ) वीर्यवान् ( प्र-ज्ययून् ) अत्यंत पूजनीय तथा ( चित्र-वाजान् ) आश्चर्यजनक बल से युक्त पैसे तुम्हें ( नव्यसे सुविताय ) नये धन की प्राप्ति के लिए ( सु वा वृत्त्या उ ) मेरे निकट आने के लिए आकर्षित करता हूँ ।

७९ ( मन्यमानाः पर्शानासः ) अभिमान करनेवाले शिखरों के साथ ( गिरयः चित् ) बड़े पर्वत भी इन वीरों के आगे ( नि जिहते ) धपने स्थानसे विचलित होते हैं और ( पर्वताः चित् ) पहाड़ भी ( नि येमिरे ) नियमपूर्वक रहते हैं ।

भावार्थ— ७७ ये वीर वज्र एवं कुंठार को काम में लाते हैं और अग्नि के उपासक तथा सहायक हैं ।

७८ ये वीर अतीव वीर्यवान्, पूजनीय तथा भौति भौति की विलक्षण शक्तियों से युक्त हैं । वे हमारे निकट आ जायें और हमें नया धन प्रदान करें ।

७९ इन वीरों के आगे बड़े बड़े शिखरोंवाले पर्वत एवं छोटेमोटे पहाड़ भी भागते हुए जाते हैं । इन वीरों का पराक्रम इतना महान् है और इनमें इतना प्रचंड गुरुपथ समाया हुआ है कि, बड़े बड़े पर्वतों को लौघना इनके लिए कोई अर्थाभय तथा दुरुह बात नहीं है, क्योंकि ये पर्वी सुगमता से सभी कठिनाइयों को हटा देते हैं ।

टिप्पणी— [ ७७ ] ( १ ) वाशी = ( प्रथतीति वादी ) वेज, सुग, कृपाण, दुधारी तलवार, कुल्हाड़ी, परशु । मंत्र १५० वाँ देखिए । निबंठ के अनुसार ' वाशु ' । ' हिरण्यवाशी ' = जिस हथियार पर सुनहली बेलगूटी दिखाई दे । ' मरुद्भिः सह अग्निः ' = मरुत् अपने साथ अग्नि रख लिया करते थे । अग्नि मरुतों का मित्र, सखा है, ( देखिए क्र. ८१०३१४ ) । [ ७८ ] ( १ ) सुवित = ( सु-इत् ) उत्तम ढंगसे पानेके लिए योग्य, सुपरीक्षित, धन, वस्तु । जो दुरित ( दुःइत् ) नहीं है, यह ' सुवित ' है । वैभवसम्पन्नता, उत्तम मार्ग, सौभाग्य, उन्नति की राह । [ ७९ ] ( १ ) पर्शान = पर्वतशिखर, दर्रा, दार ।

(८०) आ । अक्ष्णऽयावानः । वहन्ति । अन्तरिक्षेण । पततः ।

धातारः । स्तुवते । वयः ॥ ३५ ॥

(८१) अग्निः । हि । जनि । पूर्यः । छन्दः । न । सूरः । अचिंपा ।

ते । मानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥ ३६ ॥

कण्वपुत्र सोमरि क्रपि ( ऋ० ८।२०।१—२६ )

(८२) आ । गन्त । मा । रिपण्यत । प्रऽस्थावानः । मा । अप । स्थात । सऽमन्यवः ।

स्थिरा । चित् । नमयिष्णवः ॥ १ ॥

अन्वयः— ८० अक्ष्ण-यावानः अन्तरिक्षेण पततः स्तुवते वयः धातारः आ वहन्ति ।

८१ अग्निः हि अचिंपा छन्दः, सूरः न, पूर्यः जनि, ते मानुभिः वि तस्थिरे ।

८२ (हे) प्रस्थावानः । आ गन्त, मा रिपण्यत, (हे) स-मन्यवः । स्थिरा चित् नमयिष्णवः मा अप स्यात ।

अर्थ- ८० (अक्ष्ण-यावानः) नेत्रोंकी निगाह की नाई अति वेगसे दौड़नेवाले और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश में से उड़नेवाले साधन (स्तुवते) उपासक के लिए (वयः धातारः) अन्न की समृद्धि करनेवाले इन धीरों को (आ वहन्ति) देने हैं ।

८१ (अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अचिंपा) तेज से (छन्दः) ढका हुआ है और (सूरः न) सूर्य के समान वह (पूर्यः जनि) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात् (ते मानुभिः) वे धीर मरुत् अपने तेजों से (वि तस्थिरे) स्थिर हो गये ।

८२ हे (प्रस्थावानः) वेगपूर्वक जानेवाले धीरों ! (आ गन्त) हमारे समीप आओ, (मा रिपण्यत) आन से इनकार न करो । हे (स-मन्यवः) उत्साहसे परिपूर्ण धीरों ! (स्थिरा चित्) जो शत्रु स्थिर एवं अटल हो चुके हों, उन्हें भी (नमयिष्णवः) तुम झुकानेवाले हो, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि, हम से तुम (मा अप स्यात) दूर न रहो ।

भाषार्थ- ८० इन धीरों के वाहन वधे वेगवान् तथा दीप्तगामी होते हैं और उन पर चढ़कर ये आकाशपथ में से विहार करते हैं, तथा भक्तों को पर्याप्त भक्षण देते हैं ।

८१ सूर्य के समान ही अग्नि अपने तेज से प्रकाशमान होता है और यज्ञ में पहले पहले ब्यक्त हो जाता है । पश्चात् कीर्ति मरुतों का समुदाय अपने अपने स्थान पर आ बैठ जाता है । (अध्यात्म) व्यक्ति के शरीर में भी प्रथम उज्ज्वला संचारित हुआ करती है और पश्चात् प्राणों का आगमन होता है । स्थान में रहे कि, व्यक्ति में प्राण मरुत् ही हैं ।

८२ इन धीरों में इतनी क्षमता विद्यमान है कि, प्रबल तथा सुस्थिर शत्रु को भी ये विनम्र कर डालते हैं । इनका यह महात् पराक्रम विख्यात है । हमारी यही कालसा है कि, वे हमारे समीप आ जायें और हमारी रक्षा करें ।

टिप्पणी- [ ८० ] ( १ ) अन्तरिक्षेण पततः अक्ष्णयावानः = अन्तराल में से जानेवाले तथा मानवी दृष्टि के समान अक्षुब्ध वेगवान् साधनों या वायुयानों से धीर मरुत् संसार में संचार करते हैं । वह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि, विमानसदृश ही ये वाहन रहने चाहिये । मंत्र ६२ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देख लीजिए । ( २ ) वयः = अन्न, दीर्घ आयु देनेवाले खाद्यपेय, पशु । [ ८२ ] ( १ ) रिप् (दिसायां), मा रिपण्यत = हमें कष्ट न दो, हमारी हत्या न करो । (यदि ये हमारे निकट नहीं आयेंगे, तो हमारी पशु निराता होगी, पैसा न होने पाय । मरुतों के हमारे यहाँ पधारने से हमारी उमंग बढ जायेगी ।)

- (८३) वीळुपविडभिः । मरुतः । ऋभुक्षणः । आ । रुद्रासः । सुदीतिभिः ।  
इपा । नः । अद्य । आ । गत । पुरुस्पृहः । यज्ञम् । आ । सोमरीयवः ॥ २ ॥
- (८४) विघ्न । हि । रुद्रियाणाम् । शुभ्रम् । उग्रम् । मरुताम् । शिमीवताम् ।  
विष्णोः । एपस्य । मीळहुपां ॥ ३ ॥

अन्वय.— ८३ ( हे ) ऋभु-क्षण रुद्रास मरुत ! सु-दीतिभिः वीळु-पविभि. आ गत, ( हे ) पुर-  
स्पृहः सोमरीयव । न. यत्ने अद्य इपा आ ( गत ) आ ।

८४ विष्णोः एपस्य मीळहुपां शिमीवतां रुद्रियाणां मरुतां उग्रं शुभ्रं विघ्न हि ।

मर्थ- ८३ हे ( ऋभुक्षणः ) । वज्रधारी ( रुद्रासः ) क्षत्रसंघ को रलानेवाले ( मरुतः ! ) वीर मरुतो !  
( सु-दीतिभिः ) अतांय तेजस्वी ( वीळु-पविभिः ) सुदृढ वज्रों से युक्त होकर ( आ गत ) इधर आये। हे  
( पुर-स्पृहः ) वस्तुओंद्वारा अभिलषित तथा ( सोमरीयवः ! ) सोमरी क्रवि पर अनुग्रह करनेकी इच्छा करने-  
वाले वीरों ! ( न. यत्ने ) हमारे यज्ञस्थल में ( अद्य ) आज ( इपा ) अन्न के साथ ( आ आ ) आओ ।

८४ ( विष्णोः एपस्य ) व्यापक आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेवाले, ( मीळहुपां ) वृष्टि करनेवाले,  
( शिमीवतां ) उद्योगशील, ( रुद्रियाणां ) रुद्र के पुत्र ऐसे ( मरुतां ) मरुतों के ( उग्रं ) क्षत्रधर्मोचित  
वीर भाव पैदा करनेवाले ( शुभ्रं ) बल को ( विघ्न हि ) हर्म जानते ही हैं ।

भाषार्थ- ८३ वज्र धारण करनेवाले तथा समूची जनता के प्यारे ये वीर मरुत् अपने तेजस्वी एवं प्रभावशाली  
दृष्टियों के साथ इधर चले आये और ये इस यज्ञ में यथेष्ट अन्न लायें, ताकि यह यज्ञ यथोचित ढंग से परिपूर्ण हो जाए।

८४ मरुत् वप्रां करनेवाले, वीर, उद्योग में निरत तथा पराक्रमी हैं । उनका बल अजूडा है ।

टिप्पणी- [ ८३ ] ( १ ) ऋभु-क्षण = ( ऋभु-क्षन् ) ' ऋभु ' से तात्पर्य है, कार्यकुशल वारीगर लोग । जिनके  
समीप ऐसे निष्णात कार्यकर्ताओं की उपस्थिति होती है और उन के भरणोपण की व्यवस्था निष्पन्न हो  
जाती है, वे ऋभुक्षन् उपाधिधारी हो सकते हैं । ऋभुक्षणः = ( ऋभु-क्ष ) ऋभुओं अर्थात् सिद्धयकारों के  
वनाये हुए शत्रुों वा उपयोग करनेवाले ' ऋभुक्षण ' कहे जा सकते हैं । ऋ-भु-क्षणः ( उद-भासमान-निवास )  
जिनके निवासस्थान विदाल हैं, वे ( क्षि = निवासे ) । ( २ ) रुद्रासः = रुद्र = ( रोदधिता ) शत्रुको रलानेवाला  
वीर । ( ३ ) सु-दीति = अलीभोति तेजधारा से युक्त शस्त्र, जिस के छूनेमात्र से शरीर का अंगभंग होना सम्भव  
है । ( ४ ) वीळु-पवि = प्रबल वज्र, मडा वज्र, एक फौलाद के बने हुए शस्त्र को वज्र कहते हैं, पवि = चक्र, पहिये  
की परिधि । ' वीळु, वीळु, वीळु, वीळु, वीळु ' सभी दृग्द पडी भारी शक्ति की मूचना देनेवाले हैं । ' वीरता ' से इन  
शस्त्रों का घनिष्ठ सम्पर्क है । ( ५ ) सोमरि = ( सु-भरि ) अली भौति अन्न वा दान कर के विधेन एवं असहायों  
का भ्रष्टा भरणोपण करनेवाला सुभरि वा सोमरि है । जो इस प्रकार अन्न का दान करता हो, उसे मरुत् सभी प्रकार  
की सहायता पहुँचाले हैं । [ ८४ ] ( १ ) शिमी = प्रणत, उद्यम, कर्म । ( २ ) शिमी-वत् = उद्यमी, कर्ममें निरत,  
उमेना धरुटे धार्य करनेवाला । ( ३ ) रुद्रिय = रुद्रके साथ रहनेवाले, महान् वीरके अनुयायी, यद्ये पूर एवं वीर रुद्रके  
पुत्र । ( ४ ) शुभ्रं = शत्रुओं को सुखानेवाला बल । ( ५ ) विष्णो एपस्य मीळहुपाः = व्यापक आकांक्षाओं की  
पूर्ति करनेवाले ।

(८५) वि । द्वीपानि । पापतन् । तिष्ठत् । दुच्छुना । उभे इति । युजन्त । रोदसी इति ।  
 प्र । धन्वानि । ऐरत् । शुभ्रखादयः । यत् । एजथ । सुऽभानवः ॥ ४ ॥  
 (८६) अच्युता । चित् । वः । अजमन् । आ । नानदति । पर्वतासः । वनस्पतिः ।  
 भूमिः । यामेषु । रेजते ॥ ५ ॥

अन्वय.— ८५ ( हे ) शुभ्र-खादयः स्व-भानवः ! यत् पजय, द्वीपानि वि पापतन्, तिष्ठत् दुच्छुना ( युज्यते ), उभे रोदसी युजन्त, धन्वानि प्र ऐरत् ।

८६ वः अजमन् अ-च्युता चित् पर्वतासः वनस्पतिः आ नानदति, यामेषु भूमि रेजते ।

अर्थ- ८५ हे ( शुभ्र-खादयः ) सुफेद हस्तभूषण धारण करनेवाले ( स्व-भानवः ! ) स्वयं तेजस्वी वीरो ! ( यत् ) जय तुम ( पजय ) जाते हो, शस्त्रदल पर धावा बोलन के लिए हलचल करते हो, तब ( द्वीपानि वि पापतन् ) टापू तक नीचे गिर जाते हैं । ( तिष्ठत् ) सभी स्थावर चीजें ( दुच्छुना ) विपत्ति से युक्त बन जाते हैं, ( उभे रोदसी ) दोनों दुलोक तथा भूलोक कांपने ( युजन्त ) लगते हैं । ( धन्वानि ) मर-भूमि की वाल्ट ( प्र ऐरत् ) अधिक वेग से उड़ने लगती है ।

८६ ( वः अजमन् ) तुम्हारी चढाई के मौके पर ( अच्युता चित् ) न हिलनेवाले घड़े घड़े ( पर्वतासः ) पहाड़ तथा ( वनस्पतिः ) पेड़ भी ( आ नानदति ) दहाड़ने लगते हैं, वैसेही तुम ( यामेषु ) जय शस्त्रदलपर आक्रमणार्थ यात्रा करना शुरु करते हो, तब ( भूमि रेजते ) पृथ्वी विकंपित हो उठती है ।

भावार्थ- ८५ साफसुधरे गढ़ने पहन कर ये तेज पूर्ण वीर जब शत्रुदल पर चढाई करने के लिए बलि वेग से प्रस्थान करना शुरु करते हैं, तब भूमि के ऊपरी भाग नीचे गिर पड़ते हैं, वृक्ष जैसे स्थावर भी दूट गिरते हैं, आकाश एवं पृथ्वी में कंपकंपी पैदा हो जाती है और रेगिस्तान की वाल्टा तक वेग से ऊपर उड़ने लगती है । इतनी भारी हलचल विश्व में मचा देने की क्षमता वीरों के आन्धोलन में रहती है ।

८६ ( आधिदैविक क्षेत्रमें ) वायु जोर से बड़ने लग जाय, आंधी या तूफान प्रवर्धित हो जाय, तो पर्वतोंपर के वृक्ष तरु डाँवबोल हो जाते हैं, तथा ऊँची पहाड़ी चोटियों पर पवन की गति अतीव तीव्र प्रतीत होती है । वृक्षों के परस्पर एक दूसरे से घिस जाने से भीषण ध्वनि प्रादुर्भूत होती है, तथा भूमि भी चलायमान प्रतीत होती है । ( आधिभौतिक क्षेत्र में ) शत्रुओं पर जब वीर सैनिक धावा बोलत हैं, तब दबमूल होने पर भी शत्रु विचलित हो जटमूल से उखाड़ जाता है ।

टिप्पणी- [ ८५ ] ( १ ) खादिः = चल्य, षटक ( हाथपैरों में पहननेयोग्य आभूषण ) । खाद्य पदार्थ, मग्न १६६ देखिए । घृणखादिः ( ११० ), हिरण्यखादिः, सुखादिः ( १५० ३१८ ), शुभ्रखादिः ( ८५ ) पक्षे पदमयोग मिलते हैं । खादि एक विभूषण है, जो हाथ में या पैर में पहना जाता है और कँगन, चल्य, कटवसदृश ' खादि ' एक आभूषणवाचक शब्द है । ( २ ) शुभ्र-खादयः = चमकील आभूषण धारण करनेवाले । ( ३ ) दुच्छुना = ( दुष्-शुना ) = ( पागल कुत्ता यदि पीछे पड़े, तो होनेवाली दशा ) मकटपरपरा, दुरवस्था, दुःख, विपदा । ( ४ ) धन्वन् = रेगिस्तान, निर्जल भूमिभाग, शूलिमय प्रदेश । ( ५ ) द्वीप-आश्रयस्थान, द्वीपकल्प, टापू । [ ८६ ] ( १ ) अच्युता नानदति = स्थिर तथा अटक पदार्थ ( दहाड़ने ) कौनने लगते हैं । ( विरोधाभास अलंकार देखनेयोग्य है ) । ( २ ) वनस्पति. नानदति = पेड़ों के दूट गिरने से बद् कड़ आवाज सुनाई देती है । ( ३ ) भूमि. रेजते = ( स्थिरा रेजते ) = जोभूमि स्थिर एवं अटक दिखाई देती है, सो भी विकंपित तथा विचलित हो उठती है । ( अच्युता ) स्थिरीभूत एवं अपने पद पर दृढतया अवस्थित शरद्वर्षों को भी उल्लास फेंक देना केवलमात्र महान् वीरों का कर्तव्य है ।

(८७) अमाय । वः । मरुतः । यातवे । द्यौः । जिहीते । उत्सृजता । वृहत् ।

यत्र । नरः । देदिशते । तनूपु । आ । त्वर्शांसि । वाहुःओजसः ॥ ६ ॥

(८८) स्वधाम् । अनु । ध्रियम् । नरः । महि । त्वेयाः । अमःवन्तः । वृषःप्लवः ।

वहन्ते । अहुतःप्लवः ॥ ७ ॥

(८९) गोभिः । घाणः । अज्यते । सोभरीणाम् । रथे । कोशे । हिरण्ये ।

गोऽवन्धवः । सुऽजातासः । इपे । भुजे । महान्तः । नः । स्परसे । नु ॥ ८ ॥

अन्वय— ८७ (हे) मरुतः ! वः अमाय यातवे यत्र वाहु-ओजसः नरः त्वर्शांसि तनूपु आ देदिशते, (तत्र) द्यौः उत्तरा वृहत् जिहीते। ८८ त्वेयाः अम-वन्तः वृष-प्लवः अ-हुत-प्लवः नरः स्व-धां अनु ध्रियं महि वहन्ति । ८९ सोभरीणां हिरण्यये रथे कोशे गोभिः घाणः अज्यते, गो-वन्धवः सु-जातासः महान्तः नः इपे भुजे स्परसे नु ।

वर्थ— ८७ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वः अमाय ) तुम्हारी सेना को ( यातवे ) जानेके लिए ( यत्र ) जिस ओर ( वाहु-ओजसः ) वाहु-बल से युक्त ( नरः ) तथा नेता के पक्ष पर अधिष्ठित तुम वीर ( त्वर्शांसि ) सभी शक्तियों को अपने ( तनूपु ) शरीरों में एकत्रित कर ( आ देदिशते ) प्रहार करते हो उधर ( द्यौः ) आकाश में ( उत्तरा ) ऊपर ऊपर ( वृहत् ) विस्तृत एवं वृहदाकार बनते बनते ( जिहीते ) जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ ( त्वेयाः ) तेजस्वी, ( अमवन्तः ) बलवान्, ( वृष-प्लवः ) बल के जैसे दृष्टपुष्ट तथा ( अ-हुत-प्लवः ) सरल स्वभाववाले ( नरः ) नेताके नाते वीर ( स्व-धां अनु ) अपनी धारकशक्तिके अनुकूल अपनी ( ध्रियं महि ) शोभा एवं आभाको अत्यधिक मात्रामें ( वहन्ति ) बढ़ाते हैं। ८९ ( सोभरीणां हिरण्यये रथे ) ऋषि सोभरिके सुधर्मय रथके ( कोशे ) आसनपर ( गोभिः ) स्वरों के साथ अर्थात् गानांसहित ( घाणः अज्यते ) घाण नामक राजा बजाया जाता है, ( गो वन्धवः ) गौके बंधु याने गौको अपनी बहन के समान आदर की दृष्टि से देखनेवाले ( सु-जातासः ) अच्छे कुल में उत्पन्न ( महान्तः ) और बड़े प्रभावशाली ये वीर ( नः इपे ) हमारे अन्न के लिए ( भुजं ) भोगों के लिए तथा ( स्परसे ) फुर्ती के लिए ( नु ) तुरन्त ही हमारे सहायक बनें ।

भाषार्थ— ८७ इन वीरों की सेना जिस ओर मुड़ कर जाने लगती है और जिस दिशा में ये वीर दायु पर चढाई करते हैं, उसी ओर मानों स्वयं आकाश ही बिस्तृत एवं चौड़ा मार्ग बना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ तेजयुक्त, बलिष्ठ जीवनका बलिदान करनेवाले और सरल प्रकृतिवाले वीर अपनी शक्तिके अनुसार निज शोभा बढ़ाते हैं। ८९ सोभरी नामके विद्यवात ऋषियोंके सुगणैर्भूषित रथमें प्रमुख आसनपर बैठकर रमणीय गायनके स्वरोंसे घाण, राजा बजाया जा रहा है, उस गानकी सुनकर गोसेवामें निरत एवं उरक परिवारमें उपलब्ध महान् वीर हमें अन्न, उपभोग तथा आमाह देंगे।

टिप्पणी— [ ८७ ] ( १ ) वाहु-ओजसः = वाहुबलसे युक्त वीर । ( २ ) स्वर् = ( तनूपु ) निर्माण करना, बनाना, एकदही आदि चीरना; त्वर्शस् = बल, सामर्थ्य, शक्ति, बननेकी शक्ति, निर्माण करनेकी पुनरावृत्ति, रचनाचातुरी । ( ३ ) आदिश-एक ही दिशामें प्रेरित करना, भय दिखाना, प्रहार करना, उपदेश करना, घोषणा करना । [ ८८ ] ( १ ) अम-वान् = बलवान्, सभीय सेना-रचनेवाला । ( २ ) वृष-प्लव् = ( वृष-मात् ) बैलके समान पुष्ट शरीरवाला, वर्षा करनेवाला, जीवन देनेवाला । ( ३ ) अ-हुत-प्लव् = अकुटिल, सरल प्रकृतिका । ( ४ ) प्लव् = ( भाम् = वृष-प्लव् ) दिखाई देना, प्रतीत होना, दृश्य, भावना, क्षीर । ( ५ ) स्व धा = अन्न, निज शक्ति, अपनी धारक शक्ति । [ ८९ ] ( १ ) गौः = ( गो ) शब्द घाणो, स्वर, सामगान । ( २ ) गोभिः घाणः अज्यते = भीड़े स्वरोंके साथ सामगान करते हुए घाण बाजा बजाते हैं । आहारीके साथ वाद्य पर बजावकी क्रिया प्रचलित है । ( ३ ) गो-वन्धु = गौके भाई, गाय अपनी बहन है, ऐसा मान कर भातृस्नेहसे

(९०) प्रति । वः । वृषत्-अञ्जयः । वृष्णे । शर्धाय । मारुताय । भरध्वम् ।  
ह्रव्या । वृषत्प्रयाज्ञे ॥ ९ ॥

(९१) वृषणश्चेन । मरुतः । वृषत्प्सुना । रथेन । वृषत्नाभिना ।

आ । श्येनासः । न । पक्षिणः । वृथा । नरः । ह्रव्या । नः । वीतये । गत ॥ १० ॥

(९२) समानम् । अञ्जि । एषाम् । वि । आजन्ते । रुक्मासः । अधि । वाहुषु ।  
दधिद्युतति । ऋषयः ॥ ११ ॥

अन्वयः- ९० (हे) वृषत्-अञ्जयः । वः वृष्णे वृष-प्रयाज्ञे मा०ताय शर्धाय ह्रव्या प्रति भरध्वं । ९१ (हे) नरः मरुतः । वृषन्-अश्वेन वृष-प्सुना वृष-नाभिना रथेन नः ह्रव्या वीतये, श्येनासः पक्षिणः न, वृथा आ गत । ९२ एषां अञ्जि समानं, रुक्मासः वि आजन्ते, वाहुषु अधि ऋषयः दधिद्युतति ।

अर्थ- ९० (वृषत्-अञ्जयः ! ) सोम को सम्मानपूर्वक अर्पण करनेवाले हे याज्ञको ! तुम ( वः ) तुम्हारे समीप आनेवाले ( वृष्णे ) बलवान् तथा ( वृष-प्रयाज्ञे ) बैल के समान इटलाते हुए जानेवाले ( मारु-ताय ) मरुतों के समुदाय के ( शर्धाय ) बल बढ़ाने के लिए ( ह्रव्या प्रति भरध्वं ) हविष्यान्न प्रत्येक को पर्याप्त मात्रा में प्रदान करो ।

९१ हे ( नरः मरुतः ! ) नेतृत्वगुण से संपन्न वीर मरुतो ! ( वृषन्-अश्वेन ) बलिष्ठ घोड़ों से युक्त, ( वृष-प्सुना ) बैल के समान सुदृढ दिखाई देनेवाले ( वृष-नाभिना ) और प्रबल नाभि से युक्त ( रथेन ) रथसे ( नः ह्रव्या ) हमारे हविर्द्रव्यों के ( वीतये ) सेवनार्थ ( श्येनासः पक्षिणः न ) याज पंछियों की नाई वेगसे ( वृथा आ गत ) बिना किसी कष्ट के आओ ।

९२ ( एषां ) इन सभी वीरों का ( अञ्जि ) गणवेश ( समानं ) एकरूप है, इनके गले में ( रुक्मासः ) सुवर्ण के धने हुए सुन्दर हार ( वि आजन्ते ) चमकते हैं और ( वाहुषु अधि ) भुजाओं पर ( ऋषयः ) हथियार ( दधिद्युतति ) प्रकाशमान हो रहे हैं ।

भावार्थ- ९० शक्तिमान् तथा प्रतापी मरुतोंको याज्ञक षडे सम्मान एवं आदरसे हविसे परिपूर्ण वस्त्ररूपसे देँ । ९१ बलवान् घोड़ों से युक्त एवं सुदृढ रथ पर बैठकर हविष्यान्न के सेवनार्थ वीर पुरुष बहुत जल्द एवं षडे वेगसे हमारे समीप आ जायँ । ९२ इन सभी वीरों की वेशभूषा में कहीं भी विभिन्नता का नाम तक नहीं पाया जाता है । इनके गणवेश की एकरूपता या समानता प्रेक्षणीय है । [ देखो मंत्र ३७२ । ] सब के गलेमें समान रूपके हार पडे हुए हैं और सभी के हाथों में सदृश हथियार झिलमिल कर रहे हैं ।

इसकी सेवा करनेवाले । उसी प्रकार गायको मातृवत् समझनेवाले । (गो-मातरः) मंत्र १२५ देखिए । (४) सु-जातः= कुलीन, प्रतिष्ठित परिवारमें उत्पन्न । (५) हिरण्ययः रथः = सुवर्णका बनाया रथ, सोनेके समान चमकीला रथ, जिसपर सुवर्णके कलाघत्त या नक्शीका काम किया हो । ( ६ ) स्परस्=स्फुरति, उल्लाह, स्फुरण । ( ७ ) घार्णं = (घतसंख्याभिः हन्त्रीभिर्युक्तः) घीणाविकेपः इति सायणभाष्ये; ऋ. १-८५-१०; १३२ । ज्ञात होता है, यह एक तरहका तन्वुवाद्य है, जो सौ तारोंसे युक्त है । जैसे सतार या सारंगी कई तारोंसे युक्त है, वैसे ही वाण बाजेमें १०० तारे होते हैं । [ ९० ] ( १ ) अञ्जु=तेल लगाना, दर्शाना, जाना, चमकाना, सम्मान देना; अञ्जि = तेजस्वी, चमकीला, चंदनका रोला, आज्ञा करनेवाला ( Commander ), तेल, रंग से युक्त तेल, कुम्कुम, वीरों के भूषण ( गणवेश ), आदरपूर्वक दान, अर्पण । ( २ ) वृषन्, वृषन् = पौरुषयुक्त, समर्थ, शक्तिशाली, प्रमुत्त, बैल, घोडा, वर्णकर्षा, इन्द्र, सोम । [ ९१ ] ( १ ) रुक्म = सुवर्णका हार, जिन पर किसी प्रकार की छाप दिखाई देती हो, उन्हें ' रुक्म ' कहते हैं । ( २ ) ऋषिः = दो धारवाली तलवार, कृपाण, भाला, चुकीला शस्त्र ।

(९३) ते । उग्रासः । वृषणः । उग्रऽवाहवः । नकिः । तन्नृपु । येतिरे ।

स्थिरा । धन्वानि । आयुधा । रथेषु । वः । अनीकेषु । अधि । श्रियः ॥ १२ ॥

(९४) येषाम् । अर्णः । न । सुऽप्रथः । नाम । त्वेषम् । शश्वताम् । एकम् । इत् । भुजे । वयः । न । पित्र्यम् । सहः ॥ १३ ॥

(९५) तान् । वन्दस्व । मरुतः । तान् । उप । स्तुहि । तेषाम् । हि । धुनीनाम् ।

अराणाम् । न । चरमः । तत् । एषाम् । दाना । महा । तत् । एषाम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—९३ उग्रासः वृषणः उग्र-वाहवः ते तन्नृपु नकिः येतिरे, वः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा, अनीकेषु अधि श्रियः । ९४ अर्णः न, सु-प्रथः त्वेषं शश्वतां येषां नाम एकं इत् सहः, पित्र्यं वयः न, भुजे । ९५ तान् मरुतः वन्दस्व, तान् उपस्तुहि, हि धुनीनां तेषां, अराणां चरमः न, तत् एषां तत् एषां दाना महा ।

अर्थ— ९३ ( उग्रासः ) मनमें किंचित् भयका संचार करनेवाले, ( वृषणः ) यलिष्ठ, ( उग्र-वाहवः ) तथा सामर्थ्ययुक्त बाहुओंसे युक्त ( ते ) वे वीर मरुत् ( तन्नृपु ) अपने शरीरोंकी रक्षा करनेके कार्यमें ( नकिः येतिरे ) सुतरां प्रयत्न नहीं करते हैं । हे वीरो! ( वः रथेषु ) तुम्हारे रथोंमें ( स्थिरा ) अनेक अटल एवं दृढ़ ( धन्वानि ) धनुष्य तथा ( आयुधा ) कई हथियार हैं, अतएव ( अनीकेषु अधि ) सेनाके अप्रभागों में तुम्हें ( श्रियः ) विजयजन्य शोभा अलंकृत करती है । ९४ ( अर्णः न ) हलचलसे युक्त जलप्रवाहकी नाई ( स-प्रथः ) चतुर्दिक् फैलनेवाले ( त्वेषं ) तेजःपूर्ण ढंगका जो ( शश्वतां येषां ) इन शश्वत वीरोंका ( नाम ) यशो-घर्णन है, ( एकं इत् ) यही एकमात्र ( सहः ) सामर्थ्य देनेवाला है और ( पित्र्यं वयः न ) पितासे प्राप्त अन्न के समान ( भुजे ) उपभोगके लिए सर्वधैव योग्य है । ९५ ( तान् मरुतः ) उन मरुतोंका ( वन्दस्व ) अभिवादन करो, ( तान् उपस्तुहि ) उनकी सराहना करो, ( हि ) क्योंकि ( धुनीनां तेषां ) शत्रुओंको हिलानेवाले उन वीरोंमें ( अराणां चरमः न ) श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ यह भेदभाव नहीं के बराबर है, अर्थात् सभी समान हैं और किसी भी प्रकारकी विपमता के लिए जगह नहीं है, ( तत् एषां तत् एषां ) इनके ( दाना महा ) दान बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

भावार्थ— ९३ वे वीर बड़े ही बलिष्ठ तथा उग्र हैं और इनकी श्रुजाओं में असीम बल एवं शक्ति विद्यमान है । दानुश्च से जूझते समय अपने प्राणों की भी पर्वाह वे नहीं करते हैं । इन के रथों में सुदृढ़ धनुष्य रखे जाते हैं, तथा हथियार भी पयोह मात्राओं रचे जाते हैं । यही कारण है कि, युद्धभूमि में वे ही हमेशा विजयी रहते हैं । ९४ जिस में वीरों के तेजस्वी तथा दाक्षत यश का बखान किया हो, वही काश्च शक्ति बढाने में सहायक होता है । वह जलके समान सभी जगह फैलनेवाला तथा पयोही के जैसे भोग्य और स्फूर्तिदायक है । ९५ मरुतोंका अभिवादन करके उन की सराहना करनी चाहिये । सभी प्रकार के दानुओं को विरहित तथा विचलित करने की क्षमता इन वीरों में है । उनमें किसी प्रकारकी विपमता नहीं है, अतः कोई भी ऊँचा या नीचा मरुतों के संघ में नहीं पाया जाता है । सभी साम्राज्यस्थाकी अनुभूति पाते हैं । इनके दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

टिप्पणी [ ९३ ] ( १ ) रथेषु स्थिरा धन्वानि = रथमें स्थायी एवं अटल धनुष्य रखे हुए हैं । ये धनुष्य बहुत प्रबल आकारवाले होते हैं और इनसे थाण बहुत दूर तक फेंके जा सकते हैं । हाथोंसे काममें लानेयोग्य धनुष्य ' चक्र धनुष्य ' बड़े जाते हैं और इनमें तथा स्थिर धनुष्योंमें पयोह गिभिलता रहती है । ( २ ) तन्नृपु नकिः येतिरे = दारीकी बिलकुल पर्वाह नहीं करते, उदाहरणार्थ, आधुनिक युगके Storm Troopers जैसे । [ ९५ ] ( १ ) अरः = अर्थः = स्वामी, श्रेष्ठ, आर्य । ( २ ) चरमः = अन्तिम, हीन । समता— इस मंत्रमें घतकाया है कि, उनमें कोई न श्रेष्ठ है, न कनिष्ठ है, अर्थात् सभी समान हैं ( तेषां अराणां चरमः न ) यही भाव अधिक विस्तारपूर्वक मंत्र ३०५ तथा ५५३ में



(९६) सुभगः । सः । वः । ऊतिषु । आसं । पूर्वांशु । मरुतः । विऽउंष्टिषु ।

यः । घा । नूनम् । उव । अमंति ॥ १५ ॥

(९७) यस्य । घा । युयम् । प्रविं । वाजिनः । नरः । आ । हृष्या । धीतर्ये । गध ।

अभि । सः । घुम्नेः । उव । वाजसातिभिः । सुम्ना । वः । धूतयः । नशात् ॥ १६ ॥

(९८) यथा । रुद्रस्य । सूनयः । दिवः । वशन्ति । असुरस्य । घेषसः ।

युवानः । तथा । इत् । असत् ॥ १७ ॥

अन्वय.— ९६ (हे) मरुतः । उत पूर्वांशु व्युष्टिषु यः घा नूनं भसति सः यः ऊतिषु सुभगः आस ।

९७ (हे) धूतयः नरः ! मूयं यस्य घा याजिनः हृष्या धीतर्ये वा गध, स घुम्नेः उत वाज-  
सातिभिः यः सुम्ना अभि नशात् ।

९८ असुर-रस्य घेषसः रुद्रस्य युवानः सूनयः दिवः यथा वशन्ति तथा इत् असत् ।

अर्थ— ९६ हे ( मरुतः । ) मरुतो ! ( उत पूर्वांशु व्युष्टिषु ) पहले के दिनों में ( यः ) जो ( या नूनं  
भसति ) तुम्हारा ही वनकर रहा, ( सः ) यह ( यः ऊतिषु ) तुम्हारी संरक्षण को आयोजनाओं से  
सुरक्षित होकर सचमुच ( सु-भगः आस ) भाग्यशाली बन गया ।

९७ हे ( धूतयः नरः ! ) शत्रुओं को विकम्पित कर देनेवाले धीर नेतागण ! ( मूयं ) तुम  
( यस्य या याजिनः ) जिस अभयपुरुष के समीप विद्यमान ( हृष्या ) हृदिदृष्टियों के ( धीतर्ये ) सेव-  
नार्थ ( आ गध ) आते हो, ( सः ) यह ( घुम्नेः ) रानों के ( उत ) तथा ( वाज-सातिभिः ) अश-  
वानों के फलस्वरूप ( यः सुम्ना ) तुम्हारे सुरों को ( अभि नशात् ) पूर्ण रूपसे भोगता है ।

९८ ( असुर-रस्य घेषसः ) जीवन देनेवाले ज्ञानी ( रुद्रस्य युवानः सूनयः ) धीरभद्रके पुत्र  
तथा युवा धीर मरुत् ( दिवः ) स्वर्ग से आकर ( यथा ) जैसे ( वशन्ति ) इच्छा करेंगे, ( तथा इत् )  
उसी प्रकार हमारा यथा ( असत् ) रहे ।

भाषार्थ— ९६ यदि कोई एक बार इन धीरों का अनुयायी बन जाए, तो सचमुच उसे भाग्यवान् समझने में कोई  
भारत नहीं । उस के साथ कुछ जायेंगे, इस में क्या संशय ?

९७ ये धीर जिस के अग्र कर सेवन करते हैं, वह रान, अश्र तथा सुगोले युक्त होता है ।

९८ दूसरों की रक्षा के लिए अपना जीवन देनेवाले नवयुवक धीर स्वर्गिय स्थान में से हमारे निवृत्त भा-  
ग्यों और हमारा आचरण भी उन की निगाह में अनुकूल एवं मिय बने ।

वचक किया है । उन्हें भी इस सम्बन्ध में देवता उचिन है । इस मंत्रभागका ( वरुणां चरमः न ) यही अर्थ है कि  
जिस प्रकार चक्र के भागों में न कोई छोटा न कोई बड़ा होता है, वैसे ही धीर भी समान होते हैं और उच्चनीचता के  
भाषों से कोमों दूर रहते हैं । ११८ वें मंत्र में भी पहिले के भागों की ही उपमा दी है । [ ९६ ] ( १ ) व्युष्टि =  
( वि-उष्टि ) = उचःकाल, पेशयं, वैभवशालिता, स्तुति, फल, परिणाम । [ ९७ ] ( १ ) घुम्ने = रान, दिव्य मन  
( घु-मन ), वेग, यात्रा, शक्ति, धन, रहस्य, अर्थ । ( २ ) सुम्ने = ( सु-मनः ) सुन, आनन्द, स्तोत्र, संरक्षण, कृपा,  
वश ( देवो १० वें मंत्र की टिप्पणी ) । ( ३ ) साति = दान, प्राप्ति, महायता, धन, विनाश, अन्न, दुःख । [ ९८ ]  
( १ ) असुर = ( असुर-र ) जीवन देनेवाला, ईश्वर, ( अ-सुरः ) राक्षस, दैत्य । ( २ ) घेषस = ( वि-घा ) ज्ञानी,  
वाचक, कवि, निर्माण करनेवाला, विघाता ।

(९९) ये । च । अर्हन्ति । मरुतः । सुदानवः । स्मत् । मीळहुपः । चरन्ति । ये ।  
 अतः । चित् । आ । नः । उप । वस्यसा । हृदा । युवानः । आ । ववृध्वम् ॥१८॥  
 (१००) यूनः । ऊँ इति । सु । नविष्ठया । वृष्णः । पावकान् । अभि । सोभरे । गिरा ।  
 गाय । गाःश्व । चर्कपत् ॥१९॥  
 (१०१) मुहाः । ये । सन्ति । मुष्टिहाश्व । हव्यः । विश्वासु । पृत्सु । होतृपु ।  
 वृष्णः । चन्द्रान् । न । सुश्रवःस्तमान् । गिरा । वन्दस्व । मरुतः । अह ॥२०॥

अन्वयः— ९९ ये सु-दानवः मरुतः अर्हन्ति, ये च मीळहुपः स्मत् चरन्ति, अतः चित् ( हे ) युवानः । वस्यसा हृदा न उप आ आ ववृध्वम् । १०० ( हे ) सोभरे ! यूनः वृष्णः पावकान् नविष्ठया गिरा चर्कपत् गाःश्व सु अभि गाय । १०१ होतृपु विश्वासु पृत्सु हव्यः मुष्टि-हा इव सहाः सन्ति, वृष्णः चन्द्रान् न सु-श्रवस्तमान् मरुतः अह गिरा वन्दस्व ।

अर्थ— ९९ ( ये ) जो ( सु-दानवः मरुतः ) भली भाँति दान देनेवाले मरुतोंका (अर्हन्ति) सत्कार करते हैं ( ये च ) और जो ( मीळहुपः ) उन दयासे पिघलनेवाले धीरों के अनुकूल ( स्मत् चरन्ति ) आचरण करते हैं, हम भी ठीक उन्हींके समान यथाव रपते हैं, ( अतः चित् ) इसीलिए हे ( युवानः ! ) नवयुवक धीरो ! ( वस्यसा हृदा ) उदार अन्तःकरणपूर्वक ( नः ) हमारी ओर ( उप आ आ ववृध्वं ) आगमन करके हमारी समृद्धि करो । १०० हे (सोभरे ! ) ऋषि सोभरि ! ( यूनः ) युवक ( वृष्णः ) बलवान् तथा ( पावकान् ) पवित्रता करनेवाले धीरों को लक्ष्य में रखकर ( नविष्ठया गिरा ) अभिनव वाणीसे, स्वरसे, ( चर्कपत् ) खेत जोतनेवाला किसान ( गाःश्व ) जिस प्रकार बैलों के लिए गाने या तराने कहता है, वैसे ही ( सु अभि गाय ) भली भाँति काव्य गायन करो । १०१ ( होतृपु ) शत्रु को चुनौती देनेवाले ( विश्वासु पृत्सु ) सभी सैनिकोंमें ( हव्यः मुष्टि-हा इव ) चुनौती देनेवाले मुष्टियोद्धा मल्लकी नाई ( सहाः सन्ति ) जो शत्रुदल के भीषण आक्रमणको सहन करनेकी क्षमता रखते हैं, उन ( वृष्णः ) बलिष्ठ ( चन्द्रान् न ) चन्द्रमाके समान आनन्ददायक ( सु-श्रवस्तमान् ) निर्मल यश स युक्त ( मरुतः अह ) मरुत् धीरों की ही ( गिरा वन्दस्व ) सराहना अपनी वाणी से करो ।

भाषार्थ— ९९ धीर मरुत् दानी हैं और करगामरी निगाह से सहायता करते हैं। चूँकि हम उन का सरकार करते हैं, अतः ये धीर हमारे समीप आ जायें और हम पर अनुग्रह करें।

१०० हल चलाते समय जैसे काश्नकार बैलों को रिमाने के लिए गाना गाता रहता है, वैसे ही युवक, बलिष्ठ एवं परिश्र धीरों के वर्णनों से युक्त कीर्तियों का गायन तुम करते रहो।

१०१ शत्रुओं पर धावा करनेवाले सभी सैनिकों में जिस भाँति मुष्टियोद्धा पहलवान अधिक बलवान् होता है उसी प्रकार सभी धीर शत्रुदल का आक्रमण परदाश्व कर सकें। ऐसे बलिष्ठ, आनन्द बढ़ानेवाले तथा कीर्तिमान् धीरों की प्रशंसा करो।

टिप्पणी— [ १०० ] इस मंत्र से यों जान पड़ता है कि, वैदिक युगमें खेतों में हल चलाते समय बैलों की यकान दूर करने के लिए गाने गाये जाते थे। ' नविष्ठया गिरा अभि गाय ' नये काव्य या गीत गाते रहो। इससे स्पष्ट होता है कि, नये धीर काव्यों का सृजन हुआ करता था और ऐसे नवनिर्मित धीरगाथाओं का गायन भी हुआ करता था। सोभरि ( देखो टिप्पणी ८३ मन्त्र पर )। [ १०१ ] ( १ ) मुष्टि-हा= दूँमा या मुक्कों से लड़नेवाला ( Boxer )। ( २ ) होतृ = बुलानेवाला, लड़ने के लिए शत्रुको चुनौती या आह्वान देनेवाला, देवोंको यज्ञ में बुलानेवाला। ( ३ ) सहाः = सहनसक्तिसे युक्त, शत्रुकी बढाई होनेपर अपनी जगह अटक रूपसे खड़े रहकर शत्रुको ही मार भगानेवाला धीर।

(१०२) गावः । चित् । घ । सऽमन्यवः । सऽजात्येन । मरुतः । सऽवन्धवः ।  
रिहते । ककुभः । मिथः ॥२१॥

(१०३) मर्तः । चित् । वः । नृतवः । रुक्मऽवक्षसः । उप । भ्रातृस्त्वम् । आ । अयति ।  
अधि । नः । गात । मरुतः । सदा । हि । वः । आपिस्त्वम् । अस्ति । निऽधुवि ॥२२॥

(१०४) मरुतः । मारुतस्य । नः । आ । भेपजस्य । वहत । सुऽदानवः ।  
यूयम् । सखायः । सतयः ॥ २३ ॥

अन्वयः— १०२ ( हे ) स-मन्यवः मरुतः ! गावः चित् स-जात्येन स-वन्धवः ककुभः मिथः रिहते घ ।

१०३ ( हे ) नृतवः रुक्म-वक्षसः मरुतः ! मर्तः चित् वः भ्रातृत्वं उप आ अयति, नः अधि  
गात, हि वः आपित्वं सदा नि-धुवि अस्ति ।

१०४ ( हे ) सु-दानवः सखायः सतयः मरुतः ! यूयं नः मारुतस्य भेपजस्य आ वहत ।

अर्थ- १०२ हे ( स-मन्यवः मरुतः ! ) उत्साही वीर मरुतो ! ( गावः चित् ) तुम्हारी माताएँ गौएँ  
( स-जात्येन ) एकही जाति की होने के कारण ( स-वन्धवः ) अपनेही ज्ञातिवांधवों को, वैलों को  
( ककुभः ) विभिन्न दिशाओं में जाने पर भी ( मिथः रिहते घ ) एक दूसरे को प्रेमपूर्वकही चाटती  
रहती हैं ।

१०३ हे ( नृतवः ) नृत्य करनेवाले तथा ( रुक्म-वक्षसः मरुतः ! ) मुहरों के द्वार छाती पर  
धारण करनेवाले वीर मरुत् गण ! ( मर्तः चित् ) मानव भी ( वः भ्रातृत्वं ) तुम्हारे भाईपन को ( उप  
आ अयति ) पाने के लिए योग्य ठहरता है, इसीलिए ( नः अधि गात ) हमारे साथ रहकर गायन करो,  
( हि ) क्योंकि ( वः आपित्वं ) तुम्हारी मित्रता ( सदा ) हमेशा ( नि-धुवि अस्ति ) न टलने-  
घाली है ।

१०४ हे ( सु-दानवः ) दानी, ( सखायः ) मित्रवत् वर्ताय रखनेवाले तथा ( सतयः ) सात  
सात पुरुषों की एक पंक्ति बनाकर यात्रा करनेवाले ( मरुतः ! ) वीर मरुतों ! ( यूयं ) तुम ( नः ) हमारे  
लिए ( मारुतस्य भेपजस्य ) वायु में विद्यमान औषधि द्रव्य को ( आ वहत ) ले आओ ।

भावार्थ- १०२ मरुतों की माताएँ-गौएँ भले ही किसी भी दिशा में चली जायँ, तो भी प्यार से एक दूसरे को  
चाटने लगती हैं । ( अधिभूत में ) वीरों की दयालु माताएँ अपने भाइयों, बहनों एव वीर पुत्रों और सभी वीरोंको प्यार  
से गले लगाती हैं ।

१०३ वीर सैनिक हर्षपूर्वक नृत्य करनेवाले तथा कई अडंकार अपने वक्ष स्पल पर धारण करनेवाले  
हैं । मानव को भी उनकी मित्रता पाना सुगम है, योग्यता बचने पर वह मरुतों का साथी बन जाता है और वह  
मित्रतापूर्ण सम्बन्ध एक बार प्रस्थापित होने पर अटूट बना रहता है ।

१०४ ये वीर एक एक पंक्ति में सात सात इस तरह मिलकर चलनेवाले हैं और अच्छे ढंग के उदारचेता  
मित्र भी हैं । हमारी इच्छा है कि ये हमारे लिए वायुमंडल में विद्यमान औषधि को ले आयँ ।

टिप्पणी- [ १०४ ] ( १ ) मारुतस्य भेपजं= वायुमें रोग हटानेकी पक्ति है, इसी कारण वायु-परिवहनसे रोगसे  
पीड़ित स्थानोंको निरोगिताकी प्राप्ति हो जाती है । यहाँ पर सूचना मिलती है कि, वायुके उचित सेवनसे रोग दूर किये  
जा सकते हैं । वायुचिकित्साकी शलक इस मंत्रमें मिलती है । ( २ ) ससि= घोषा, साग लोगोंकी पनी हुई पक्ति, घुरा ।

- (१०५) याभिः । सिन्धुम् । अवथ । याभिः । तूर्वथ । याभिः । दशस्यथ । क्रिविम् ।  
 मयः । नः । भूत । ऊतिऽभिः । मयःऽभुवः । शिवाभिः । असचऽद्विपः ॥२४॥
- (१०६) यत् । सिन्धौ । यत् । असिक्न्याम् । यत् । समुद्रेषु । मरुतः । सुवर्हिपः ।  
 यत् । पर्वतेषु । भेषजम् ॥ २५ ॥
- (१०७) विश्वम् । पश्यन्तः । विभृथ । तनूपु । आ । तेन । नः । अधि । वोचत ।  
 क्षमा । रपः । मरुतः । आतुरस्य । नः । इष्कत । विऽहुतम् । पुनरिति ॥ २६ ॥

अन्वयः— १०५ (हे) मयो-भुवः अ-सच-द्विपः । याभिः ऊतिभिः सिन्धुं अवथ, याभिः तूर्वथ, याभिः क्रिविं दशस्यथ, शिवाभिः नः मयः भूत ।

१०६ (हे) सु-वर्हिपः मरुतः ! यत् सिन्धौ भेषजं, यत् असिक्न्यां, यत् समुद्रेषु, यत् पर्वतेषु ।

१०७ (हे) मरुतः ! विश्वं पश्यन्तः तनूपु आ विभृथ, तेन नः अधि वोचत, नः आतुरस्य रपः क्षमा वि-हुतं पुनः इष्कत ।

अर्थ— १०५ हे (मयो-भुवः) सुख देनेवाले (अ-सच-द्विपः) एवं अजातशत्रु घोरों ! (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षक शक्तियों से तुम (सिन्धुं अवथ) समुद्र की रक्षा करते हो, (याभिः तूर्वथ) जिन शक्तियों के सहारे शत्रु का विनाश करते हो, (याभिः) जिनकी सहायता से (क्रिविं दशस्यथ) जलकुंड तैयार कर देते हो, उन्हीं (शिवाभिः) कल्याणप्रद शक्तियोंके आधार पर (नः मयः भूत) हमें सुख देनेवाले बनो ।

१०६ हे (सु-वर्हिपः मरुतः) उत्तम तेजस्वी घोर मरुतो ! (यत्) जो (सिन्धौ भेषजं) सिन्धु-नद में औषधिद्रव्य है, (यत् असिक्न्यां) जो असिक्नी के प्रवाह में है, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्र में है और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों पर है, वह सभी औषधिद्रव्य तुम्हें विदित है ।

१०७ हे (मरुतः) घोर मरुतो ! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुल देरनेवाले तुम (तनूपु) हमारे शरीरोंमें (आ विभृथ) पुष्टि उत्पन्न करो और (तेन) उस ज्ञानसे (नः अधि वोचत) हमसे बोलो; उसी प्रकार (नः आतुरस्य) हम में जो बीमार हो, उसके (रपः क्षमा) दोष की शांति करके (विहुतं) दृष्टे हुए अवयव को (पुनः इष्कत) फिर से ठीक बिठाओ ।

भाषार्थ— १०५ वे घोर अपनी शक्तियों से समुद्र एवं नदियों की रक्षा करते हैं, शत्रुओं को मरिचामेट कर देते हैं, जलता को पानी पीने को मिला, इसलिए सुविधाएँ पैदा कर देते हैं और सभी लोगों की सुविधा का प्रबन्ध कर सकते हैं । १०६ सिन्धु, असिक्नी, समुद्र तथा पर्वतों पर जो रोगनिवारक औषधि है, उन्हें जानना घोरों के लिए अनिवार्य है । १०७ वे घोर विक्रम करनेवाले कविराज या वीर हैं और विश्व भोषधियोंसे भली गति परिचित हैं । वे हमें पुष्टिकारक औषध प्रदान कर हृष्टपुष्ट बना दें । जो कोई रोगग्रस्त हो, उसके शरीर में पाये जानेवाले दोष को हटाकर और विषादिद्वेष अंग को फिर ठीक प्रकार से जोड़कर पहले जैसे कार्यक्षम बना दें ।

टिप्पणी— [ १०५ ] ( १ ) सिन्धुं अवथ = समुद्र का रक्षण करते हो ( क्या मरुए दिग्ग पाविक बेटे पर निमुक्त पा जल सेना के अधिकारी हैं ? ) ( २ ) अ-सच-द्विपः = वे घोर स्वयं ही किसी का भी द्वेष नहीं करते हैं, अतः इन्हें अजातशत्रु कहा है । ( ३ ) क्रिविं = चमड़े की थैली, कुआँ, जल भरा थैला, पानी का घतन । [ १०६ ] ( १ ) सु-वर्हिपः = सरप उच्चम कलाप धारण करनेवाले, अच्छे वस्त्र करनेवाले । ( मंत्र १३८ देखो ) । [ १०७ ] ( १ ) वि-हुतं इष्कत = लडाईं में घायल हुए सैनिकों की प्राथमिक सेवादहल काके, मारहमपही आदि करना यहाँ पर सूचित है । चरश्चिनियों की सहायता से उपयुक्त चिकित्सा-कार्य करना है । विउला ही मंत्र देखिए ।

गोतमपुत्र नोधा ऋषि ( ऋ० १।६।१-१५ )

(१०८) वृष्णे । शर्धाय । सुमखाय । वेधसे । नोधः । सुवृक्तिम् । प्र । भर । मरुत्सभ्यः ।  
अपः । न । धीरः । मनसा । सुहस्त्यः । गिरः । सम् । अञ्जे । विदथेषु । आभुवः ॥ १ ॥

(१०९) ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्यासः । उक्षणः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः ।  
पावकासः । शुचयः । सूर्याः । इव । सत्वानः । न । द्रप्तिनः । घोरवर्षसः ॥ २ ॥

अन्वयः— १०८ ( हे ) नोधः ! वृष्णे सु-मखाय वेधसे शर्धाय मरुत्सभ्यः सु-वृक्तिं प्र भर, धीरः सु-हस्त्यः मनसा, विदथेषु आ-भुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे ।

१०९ ते ऋष्यासः उक्षणः असुराः अ-रेपसः पावकासः सूर्याः इव शुचयः द्रप्तिनः सत्वानः न घोर-वर्षसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे ।

अर्थ— १०८ हे ( नोधः ! ) नोधनामक ऋषे ! ( वृष्णे ) बल पाने के लिए, ( सु-मखाय ) यज्ञ भली भाँति हों, इस हेतु से, ( वेधसे ) अच्छे ज्ञानी होने के लिए और ( शर्धाय ) अपना बल बढ़ाने के लिए ( मरुत्सभ्यः ) मरुतों के लिए ( सु-वृक्तिं प्र भर ) उत्कृष्टतम काव्यों की यथेष्ट निर्मिति करो, ( धीरः ) बुद्धिमान् तथा ( सु-हस्त्यः ) हाथ जोड़कर मैं ( मनसा ) मन से उनकी सराहना कर रहा हूँ और ( विदथेषु आ-भुवः ) यज्ञों में प्रभावयुक्त ( गिरः ) वाणियों की ( अप. न ) जल के समान ( सं अञ्जे ) वर्षा कर रहा हूँ अर्थात् उनके काव्यों का गायन करता हूँ ।

१०९ ( ते ) वे ( ऋष्यासः ) ऊँचे, ( उक्षणः ) चढ़े ( असुराः ) जीवन का दान करनेवाले, ( अ-रेपसः ) पापरहित, ( पावकासः ) पवित्रता करनेवाले, ( सूर्याः इव शुचयः ) सूर्य की नाईं तेजस्वी, ( द्रप्तिनः ) सोम पीनेवाले और ( सत्वानः न घोर-वर्षसः ) सामर्थ्ययुक्त लोगों के जैसे घृहदाकार शरीरवाले ( रुद्रस्य मर्याः ) मातों रुद्र के मरणधर्मा धीर ( दिवः ) स्वर्ग से ही ( जज्ञिरे ) उत्पन्न हुए ।

भावार्थ— १०८ बल, उत्तम कर्म, ज्ञान तथा सामर्थ्य अपने में बड़े हस्तलिपि धीर मरुतों के काव्य रचने चाहिए और सार्वजनिक सभाओं में उनका गायन करना उचित है ।

१०९ उच्च, महात्, विश्व के हितार्थ अपने प्राणों का भी न शिक्कते हुए बलिदान करनेवाले, निष्पाप, सभी जगत् पवित्रता फैलानेवाले तेजस्वी, सोमपान करनेवाले, बलिष्ठ और प्रबुद्ध देहधारी ये धीर मातों स्वर्ग से ही इस भूमण्डल पर उतर पड़े हों ।

टिप्पणी— [ १०८ ] ( १ ) नोधस् = [ उ-स्तुतौ ] काव्य करनेवाला, कवि, एक ऋषि का नाम । [ १०९ ] ( १ ) ऋष्य = ऊँचे विचार मन में रखनेवाले, भग्य, उच्च पदपर रहनेवाले । ( २ ) द्रप्तिनः = ( द्रप्ति = सोम ) जो अपने सनीप सोम रखते हों, वे ' द्रप्तिनः ' ( Drops ) । मंत्र ६१ देखिए ।

(११०) युवानः । रुद्राः । अजराः । अमोक्हनः । ववक्षुः । अध्रिऽगावः । पर्वताऽइव ।  
दृढहा । चित् । विश्वा । भुवनानि । पार्थिवा । प्र । च्यवयन्ति । दिव्यानि । मज्मना ॥ ३ ॥  
(१११) चित्रैः । अज्जिऽभिः । वपुषे । वि । अज्जते । वक्षऽसु । रुक्मान् । अधि । येतिरे । शुभे ।  
अंसेपु । एपाम् । नि । मिमृक्षुः । ऋष्यः । साकम् । जज्ञिरे । स्वधया । दिवः । नरः ॥४॥

अन्वयः- ११० युवानः अ-जराः अ-मोक्-हनः अध्रि-गावः पर्वताः इव रुद्राः ववक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृढहा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति । १११ वपुषे चित्रैः अज्जिभिः वि अज्जते, वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधि येतिरे, एपाम् अंसेपु ऋष्यः नि मिमृक्षुः, नरः दिवः स्व-धया साकं जज्ञिरे ।

अर्थ- ११० (युवानः) युवकदशामें रहनेवाले (अ-जरा) वृद्धापेसे अज्जते (अ-मोक्-हन) अनुदार रूपों को दूर करनेवाले (अध्रि-गावः) आगे बढ़नेवाले (पर्वताः इव) पहाड़ोंकी भाँति अपने स्थान पर अटल रूपसे खड़े रहनेवाले (रुद्राः) शत्रुओंको खलानेवाले ये वीर लोगोंको सहायता (ववक्षुः) पहुँचाते हैं; (पार्थिवा) पृथ्वी पर पाये जानेवाले तथा (दिव्यानि) धूलोकमें विद्यमान (विश्वा भुवनानि) सभी लोक (दृढहा चित्) कितने भी स्थिर हों, तो भी उन्हें ये (मज्मना) अपने बलसे (प्र च्यवयन्ति) अपदस्थ कर देते हैं, विचलित कर डालते हैं । १११ (वपुषे) शरीरकी सुन्दरता बढ़ानेके लिए (चित्रैः अज्जिभिः) भाँति भाँतिके आभूषणों-द्वारा वे (वि अज्जते) विशेष ढंगसे अपनी सुपमा वृद्धिगत कर देते हैं । (वक्षःसु) छातियों पर (शुभे) शोभा के लिए (रुक्मान्) सुवर्ण के बनाये हारों को (अधि येतिरे) धारण करते हैं । (एपाम् अंसेपु) इन मरुतोंके कंधों पर (ऋष्यः नि मिमृक्षुः) हथियार चमकते रहते हैं । (नरः) ये नेताके पद पर अचिरित वीर (दिवः) धूलोकसे (स्व-धया साकं) अपने बलके साथ (जज्ञिरे) प्रकट हुए ।

भावार्थ- ११० सदैव नवयुवक, युवाप आने पर भी नवयुवकों के जैसे उमंगभरे, कंचूक तथा स्वार्थी मानवोंको अपने समीप न रहने देनेवाले, किसी भी रक्षावट के सामने शीघ्र न झुकाने हुए प्रतिपल आगे ही बढ़नेवाले, पर्वत की भाँति अपनी जगह अटल खड़े हुए, शत्रुदलको विचलित करनेवाले ये वीर जनताकी संपूर्ण सहायता करनेके लिए हमेशा सिद्ध रहते हैं । पृथ्वी या स्वर्गमें पाये जानेवाली सुदृढ़ चीजोंकी भी ये अपने बलसे हिला देते हैं, (तो फिर शत्रु इनके सामने धरधर काँपने लगेंगे, तो कौन आश्चर्यकी बात है ?) १११ वीर मरुत गहनोंसे अपने शरीर सुतोमित करते हैं, वक्षः-रथलों पर सुह्रोंके हार रख देते हैं, कंधों पर चमकीले आयुध धर देते हैं । ऐसी दशा में उन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों वे स्वर्गमेंसे ही अपनी अतुलनीय शक्तियों के साथ इस भूमंडल में उतर पड़े हों ।

[ ११० ] ( १ ) अ-जराः = बूढ़ न होनेवाले अर्थात् अवस्था में युवाप आने पर भी नवयुवकों की तरह अति उमंग से कार्य करनेवाले, युवाप में भी युवकों के उरसाह से काम में जुड़नेवाले । ( २ ) अ-मोक्-हनः = जो उप-भोग दूसरों को मिलने चाहिए, उनका अपहरण करके स्वयं ही पाने की चेष्टा करनेवाले एवं समाज के लिए निरुपयोगी मानवोंको दूर करनेवाले । ( हन् = [ हिंसागत्योः ] यहाँ पर गति बतलानेवाला अर्थ लेना ठीक है । ) ( ३ ) अध्रि-गुः = अवाध रूप से चढ़ाई करनेवाले, किसी भी रक्षावट या अटचन की ओर भ्राम न देनेवाले और शत्रुदल पर पारस्पर धावा करनेवाले । ( ४ ) पर्वताः इव ( स्थिराः ) = यदि शत्रु ही प्रारम्भ में आक्रमण कर बैठें तो भी अपने निर्धारित स्थानों पर अटल भाव से खड़े रहनेवाले अतएव शत्रुदल की चढ़ाई से अपनी जगह छोड़कर पीछे न हटनेवाले । ( ५ ) पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृढहा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति = भूमि पर के तथा पर्वत-तिलखों पर विद्यमान सुदृढ़ दुर्गलक की अपनी अद्भुत सामर्थ्य से हिला देते हैं । ऐसी असीम शक्ति के रहते यदि वे शत्रुओं को भी विचलित कर डालें, तो कौई आश्चर्य की बात नहीं । बेशक, दुश्मन उनके सामने खड़े रहने का मौका, भाते ही धरधर काँप उठेंगे । देखो मंत्र १२६ । [ १११ ] ( १ ) ऋष्यः नि मिमृक्षुः = जज्ञिरे भांते या कुदारा जो कुछ भी दास्य वे धारण करते हैं, उन्हें ठीक तरह साफ सुपरां रखकर तथा परिष्कृत करके रखते हैं, अतः वे चमकीले शीक

(११२) ईशान-कृतः । धुनयः । रिशार्दसः । वातान् । विद्युतः । तविपीभिः । अकृत ।  
दुहन्ति । ऊधः । दिव्यानि । धृतयः । भूमिम् । पिन्वन्ति । पर्यसा । परिञ्जयः ॥५॥  
(११३) पिन्वन्ति । अपः । मरुतः । सुदानवः । पर्यः । घृतञत् । विदथेषु । आऽभुवः ।  
अत्यम् । न । मिहे । वि । नयन्ति । वाजिनम् । उरसम् । दुहन्ति । स्तनयन्तम् । अक्षितम् ॥६॥

अन्वयः— ११२ ईशान-कृतः धुनयः रिश-अदसः तविपीभिः वातान् विद्युत अकृत, परि-ञ्जय धृतयः दिव्यानि ऊध दुहन्ति, भूमि पर्यसा पिन्वन्ति । ११३ सु-दानवः आ-भुवः मरुतः विदथेषु घृतञत् पपः अपः पिन्वन्ति, अत्यं न वाजिनं मिहे वि नयन्ति, स्तनयन्तं उरसं अ-क्षित दुहन्ति ।

अर्थ— ११२ (ईशान-कृतः) स्वामी तथा अधिकारीवर्ग का निर्माण करनेवाले, (धुनयः) शत्रुदल को हिलानेवाले, (रिश-अदस) हिंसा में निरत विरोधियों का विनाश करनेवाले, (तविपीभि) अपनी शक्तियों से (वातान्) वायुओं को तथा (विद्युत) विजलियों को (अकृत) उत्पन्न करते हैं । (परि-ञ्जय) चतुर्दिक् वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले तथा (धृतय) शत्रुसेना को विकंपित करनेवाले ये वीर (दिव्यानि ऊधः) आकाशस्थ मेघों का (दुहन्ति) दौहन करते हैं और (भूमि पर्यसा पिन्वन्ति) यथेष्ट वर्षाद्वारा भूमि को तृप्त करते हैं ।

११३ (सु-दानव) अच्छे दानों, (आ-भुवः) प्रभावशाली (मरुतः) वीर मरुतों का संघ (विदथेषु) यहाँ एवं युद्धस्थलों में (घृतञत् पर्य) घी के साथ दूध तथा (अपः पिन्वन्ति) जल की समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोड़े को सिरपाते समय जैसे घुमाते हैं, वीर जैसे ही (वाजिन) बलशुक्त मेघों को (मिहे) वर्षा के लिए वे (वि नयन्ति) विशेष ढंग से ले चलाते हैं, चलाते हैं और तदुपरान्त (स्तनयन्तं उरसं) गरजनेवाले उस झरने का-मघ का (अक्षित दुहन्ति) अक्षय रूप से दौहन करते हैं ।

भावार्थ— ११२ राष्ट्र के शासन की बागडोर हाथ में लेनेवाले, शासकों के वर्ग को अस्तित्व में लानेवाले, शत्रुओं को विचलित करनेवाले, कष्ट देनेवाले शत्रुसैन्य को जड़ मूल से उखाड़ देनेवाले, अपनी शक्तियों से चारों ओर बड़े वेग से दुश्मनों पर धावा करनेवाले तथा उन्हें नीचे धकेलनेवाले ये वीर वायुमवाह, विद्युत् एवं वर्षा का सृजन करते हैं । ये ही मेघों को दुहकर भूमि पर वर्षारूपी दूध का सेचन करते हैं ।

११३ उदारधी तथा प्रभावशाली ये वीर मरुत यज्ञों में घृत, दुग्ध तथा जल की यथेष्ट समृद्धि कर देते हैं और घोड़ों को सिरपाते समय जिस ढंग से उन्हें चलाते हैं, वैसे ही अन्न के उत्पादन में सहायता पहुँचानेवाले मेघवृद्ध को निश्चित राहसे चलाते हैं । उस मेघलमूहरूपी वृहदाकार जलबुड से यानिके प्रवाह अखिरत रूपसे प्रवर्तित कर देते हैं ।

पढ़ते हैं । यह वर्णन ध्वानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए और पाठक सोचें कि, वर्तमानकाल में सैनिक एवं उनके अधिकारी किस ढंगसे रहते हैं । पाठकोंको ज्ञात होगा कि, यहाँ पर सैनिकोंका ही वर्णन किया है । देखिए 'अग्नि' शब्द मंत्र १०१ [११२] (१) ईशान-कृत = (King-makers) राष्ट्र पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता से युक्त अधिकारी या शासकवर्ग का निर्माण करनेवाले, विघ्नता की बाधोन्नत करनेवाले । अथर्ववेदमें ३।५।७ में 'राज एत' पद इसी अर्थ की सूचना देता है । (२) दिव्यानि ऊधः दुहन्ति भूमि पर्यसा पिन्वन्ति = दिव्य स्तनों का दौहन करके भूमिदल पर दूध की वर्षा करते हैं । (दिव्य ऊध = मेघ, पर्य = दूध या जल) । (३) धुनयः, धृतय - हिलानेवाले, शत्रु को उसकी जगह से हटानेवाले, दुश्मनों का उच्चाटन करनेवाले । (४) परि-ञ्जय = (परि-ञ्जि) = दुश्मनों पर चढ़े और चढाई करनेवाले, चारों ओर फैलनेवाले । (ञ्जि जये = विजय पाना, शत्रु को परास्त करना) । (५) रिश-अदस = (रिश + अदस्) = (रिस्) हिंसक, हथियार शत्रुको (अदस्) छा जानेवाले, शत्रु का विनाश करनेवाले । [११३] आ-भुवः = (आ भू) प्रभाव प्रस्थापित करना । (मंत्र ३३ में 'अभ्य.' पद दृष्टि) ।

(११४) महिपासः । मायिनः । चित्रभानवः । गिरयः । न । स्वतवसः । रघुस्यदः ।  
 मृगाःऽइव । हस्तिनः । सादथ । वना । यत् । आरुणीपु । तविपीः । अयुग्ध्वम् ॥७॥  
 (११५) सिंहाःऽइव । नानदति । प्रचेतसः । पिशाःइव । सुपिशाः । विश्ववेदसः ।  
 क्षपः । जिन्वन्तः । पृपतीभिः । ऋष्टिभिः । सम् । इत् । सऽवाधः । शवसा । अहिऽमन्यवः ॥८॥

अन्वयः- ११४ महिपासः मायिनः चित्र-भानवः गिरयः न स्व-तवसः रघु-स्यदः हस्तिनः मृगाःऽइव  
 वना खादथ, यत् आरुणीपु तविपीः अयुग्ध्वम् ।

११५ प्र-चेतसः सिंहाःइव नानदति, पिशाःइव सु-पिशाः विश्व-वेदसः क्षपः जिन्वन्तः  
 शवसा अ-हि-मन्यवः पृपतीभिः ऋष्टिभिः स-वाधः सं इत् ।

अर्थ- ११४ (महिपासः) बड़े, (मायिनः) निपुण कारीगर, (चित्र-भानवः) अत्यन्त तेजस्वी (गिरयः  
 न) पर्वतों के समान (स्व-तवसः) अपने निजी बल से स्थिर रहनेवाले, परन्तु (रघु-स्यदः) वेगपूर्वक  
 जानेवाले तुम (हस्तिनः मृगा इव) हाथियों एवं मृगों के समान (वना खादथ) वनों को खा जाते हो-  
 तोडमरोड देते हो, (यत्) क्योंकि (आरुणीपु) लाल घर्णवाली घोड़ियों में से (तविपीः) बलिष्ठों कोही  
 (अयुग्ध्वम्) तुम रथों में लगा देते हो ।

११५ (प्र-चेतसः) ये उत्कृष्ट ज्ञानी वीर (सिंहाःइव) सिंहों के समान (नानदति)  
 गर्जना करते हैं । (पिशाःइव सु-पिशाः) आभूषणों से युक्त पुरुषोंकी नाईं सुहानेवाले, (विश्व-वेदसः)  
 सब धनों से युक्त होकर (क्षपः) शत्रुदल की धजियाँ उडानेवाले, (( जिन्वन्तः) लोगोंको संतुष्ट करने-  
 वाले, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बलयुक्त होनेके कारण जिनका उत्साह घट नहीं जाता, ऐसे वे वीर  
 (पृपतीभिः) धम्येवाली घोड़ियों के साथ और (ऋष्टिभिः) हथियारों के साथ (स-वाधः) पीडित  
 जनता की ओर उसकी रक्षा करने के लिए (सं इत्) तुरन्त इकट्ठे होकर चले जाते हैं ।

भावार्थ- ११४ ये वीर मरुत बड़े भारी कुशल, तेजस्वी, पर्वतकी नाईं अपनी सामर्थ्य के सहारे अपनी जगह स्थिर  
 रहनेवाले पर शत्रुओंपर बड़े वेगसे हमला करनेवाले हैं और मतवाले गजराज की नाईं धनोंको कुचलने की क्षमता रखते  
 हैं । लाल घोड़ियों के झुड़में से ये केवल बलयुक्त घोड़ियोंको ही अपने रथों में जोड़ने के लिए चुन लेते हैं ।

११५ ये ज्ञानी वीर सिंहकी नाईं दहाइते हुए घोपणा करते हैं । आभूषणों से बनेउत्ते दीख पड़ते हैं । सब  
 प्रकार के धन एवं सामर्थ्य बटोरकर और शत्रुदल की धजियाँ उडाकर ये सज्जनों का समाधान करते हैं । इनमें असीम  
 बल विद्यमान है, इसलिए इनका उत्साह कभी घटताही नहीं । भौमिभौतिक के अन्ते हथियार साथ में रखकर पीडित  
 प्रजाका दुःख हरण करने के लिए ये वीर एकत्रिन बन अत्याचारी शत्रुओंपर चढाई कर बैठते हैं ।

टिप्पणी- [ ११४ ] (१) महिपासः = बड़ा, बड़े शरीरवाला, भैंसा । [( २) मायिनः = कुशलतापूर्वक कार्य करने-  
 वाला, सिद्धहस्त, छलकपटसे शत्रु पर हमले करनेमें निपुण । (३) रघु-स्यदः = (छत्रु स्यद) = पैरोंकी आइत न मुनाईं  
 दे, इतने वेगसे जानेवाला, शत्रुके भनजाने उसपर धावा करनेवाला । [ ११५ ] (१) प्रचेतसः = विशेष ज्ञानी ( देखो  
 मंत्र ४७ ) । (२) पिशाः = अलंकार, घोभा, सु-पिशाः = सुरूप । (३) विश्व-वेदसः = सभी प्रकारके धनोंसे युक्त, सर्वज्ञ ।  
 (४) क्षपः = शत्रुदलको मटियामेट करनेवाले । (५) जिन्वन्तः = तृप्ति करनेवाले । (६) शवसा अ-हि- मन्यवः =  
 बल बधेद मात्रा में विद्यमान है, इसलिए ( अ हीन-मन्यवः) निरुत्साही न बननेवाले । ( ७ ) पृपतीभिः ऋष्टिभिः  
 स-वाधः सं इत् ( रक्षितं गच्छन्ति ) = सुसोभित ( पकड़ने की जगह या लकड़ियों पर धम्ये रहने से) आशुच  
 साथ के दुःखी जनता के निकट जाकर उनकी रक्षा करते हैं ।



(११६) रोदसी इति । आ । वृद्धत् । गुणऽश्रियः । नृऽसाचः । शूराः । शवसा । अहिऽमन्यवः ।  
 आ । वन्धुरेषु । अमतिः । न । दृशता । विऽद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वृः ॥९॥  
 (११७) विश्वऽवेदसः । रयिऽभिः । सम्ऽओकसः । सम्ऽमिश्लासः । तविपीभिः । विऽरप्शिनः ।  
 अस्तारः । इषुम् । दधिरे । गभस्त्वोः । अनन्तऽशुप्माः । वृषऽखादयः । नरः ॥१०॥

अन्वयः— ११६ ( हे ) गण-श्रिय नृ-साच शूरा शवसा अ-हि-मन्यव मरुत ! रोदसी आ वदत वन्धुरेषु रथेषु, अमति न, दर्शता विद्युत् न, व आ तस्थौ ।

११७ रयिभि विश्व-वेदस सम्-ओकस तविपीभि सम्-मिश्लास वि-रप्शिन अस्तार अन्-अन्त-शुप्मा वृष-खादय नरः गभस्त्वोः इषु दधिरे ।

अर्थ- ११६ हे ( गण श्रियः ) समुदाय के कारण सुहानेवाले, ( नृ साच ) लोगों की सेवा करनेवाले, ( शूराः ) वीर, ( शवसा अ-हि-मन्यव ) अत्यधिक बलके कारण न घटनेवाले उत्साहसे युक्त ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( रोदसी आ वदत ) भूलत एवं द्युलोक की अपनी दहाड से भर दो, ( वन्धुरेषु रथेषु ) जिन में बैठने के लिए अच्छी जगह है, ऐसे रथों में ( अमतिः न ) निर्मल रूपवालों के समान तथा ( दर्शता विद्युत् न ) दर्शन करनेयोग्य बिजली की नाई ( व ) तुम्हारा तेज ( आ तस्थौ ) फैल चुका है ।

११७ ( रयिभिः विश्व वेदसः ) अनेक धनों से युक्त होनेके कारण सर्वधनयुक्त, ( सम् ओकस ) एकही घरमें रहनेवाले ( तविपीभिः सम्-मिश्लासः ) भौंति भौंति के बलों से युक्त, ( वि-रप्शिन ) विशेष सामर्थ्यवान्, ( अस्तार ) शत्रुसेनापर अख फँस देनेवाले, ( अन्-अन्त शुप्मा ) असीम सामर्थ्यवाले, ( वृष खादयः ) बड़े बड़े आभूषण धारण करनेवाले, ( नरः ) नेतृत्वगुणसे विभूषित वीर ( गभस्त्वोः ) बाहुओंपर ( इषु दधिरे ) घाण धारण कर रहे हैं ।

भावार्थ- ११६ वीर मरुत् जब गणवेश ( घरदी ) पहनते हैं, तो बड़े प्रेक्षणीय जान पड़ते हैं । इनमें वीरता कूटपूटकर भरी है और जनताकी सेवा करने का मनो इन्हीं ने प्रनसा लिया है । पर्याप्त रूप से बलवान् है, बत इनकी उमग कभी घटती ही नहीं । जब वे अपने सुसोभित रथोंपर जा बैठते हैं, तो दामिनीकी दमककी नाई तेजस्वी दिप्राई बते हैं ।

११७ विविध धन समीप रखनेवाले, एकही घर या निवासस्थानमें रहनेवाले, विभिन्न वाष्टियोंसे युक्त, शत्रुसेनापर अख फरुनेवाले जो भारी गद्दने पहनते हैं, ऐसे वीर नेता कर्षोंपर घाण तथा तरकस घाण करते हैं ।

टिप्पणी [ ११६ ] ( १ ) गण-श्रिय = सामूहिक पहनावा पहनने के कारण सुहानेवाले । ( २ ) नृ-साच = मानवों की सेवा करनेवाले । ( ३ ) शवसा अ-हि-मन्यवः = दरो पिठला मग । ( ४ ) वन्धुरः रथः = जिस में बैठनेकी जगह हो, ऐसा रथ । ( ५ ) वन्धुर ( वन्धुर ) = प्रेक्षणीय, शोभायुक्त, सुखकारक, सुखा हुआ । ( ६ ) अमति = आकार, रूप, तेजस्वित, प्रकाश, समय । [ ११७ ] ( १ ) सम्-ओकस = एक घरमें ( बैक Barrack ) रहनेवाले वीर सैनिक । [ द्रिस्तो मग ३२१, ३४५, ४४७ ] ( २ ) रयिभि विश्व वेदस = अपने समीप बहुत प्रकारके धन विद्यमान हैं, इसलिये विविध-धनसमन्वित । ( ३ ) तविपीभि समिश्ला, अनन्तशुप्मा = बलवान्, सामर्थ्य से परिपूर्ण । ( ४ ) वृष खादयः = सोमरससे साथ खानेकी चीजें खानेवाले ( सायन ) [ मग १५० दधिरे ] । ( ५ ) गभस्त्वो इषु दधिरे = रकषप्रदेशपर तूणीर घाण करते हैं । ( ६ ) विरप्शिन = विशेष सामर्थ्य से युक्त ।

(११८) हिरण्ययोभिः । पवित्रभिः । पयःस्रवृधः । उत् । जिघ्रन्ते । आऽपृथ्यः । न । पर्वतान् ।  
 मखाः । अयासः । स्वऽसृतः । ध्रुवऽच्युतः । दुःध्रऽकृतः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्यः ॥११८॥  
 (११९) घृपुम् । पावकम् । यनिनम् । विऽचर्षणिम् । रुद्रस्य । सनुम् । ह्यसा । गृणीमसि ।  
 रजःऽतुरम् । तवसम् । मारुतम् । गणम् । ऋजीपिणम् । वृषणम् । सश्वत् । श्रिये ॥११९॥

अन्वय — ११८ पयो-वृधः मखाः अयासः स्व-सृतः ध्रुवच्युतः दु-ध्र-कृतः भ्राजत्-ऋष्यः मरुतः  
 आ-पृथ्यः न पर्वतान् हिरण्ययोभिः पवित्रभिः उत् जिघ्रन्ते । ११९ घृपुं पावकं यनिनं वि-चर्षणिं रुद्रस्य  
 सनुं ह्यसा गृणीमसि, श्रिये रजस्-तुरं तवसं वृषणं ऋजीपिणं मारुतं गणं सश्वत् ।

अर्थ- ११८ (पयो वृधः) दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, (मखाः) यज्ञ करनेवाले, (अयासः) आगे जाने-  
 वाले, (स्व-सृतः) स्वेच्छापूर्वक हलचल करनेवाले, (ध्रुव-च्युतः) अटल रूप से खड़े शत्रुओं को भी  
 हिलानेवाले, (दु-ध्र-कृतः) दूसरों से न पकड़ने तथा घेरे जानेवाले तथा (भ्राजत् ऋष्यः) तेजस्वी  
 हथियार साथ रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (आ-पृथ्यः न) चलनेवाला जिस तरह राह में पड़ा  
 हुआ तिनका दूर फेंक देता है, ठीक वैसे ही (पर्वतान्) पहाड़ोंतक को (हिरण्ययोभिः पवित्रभिः) स्वर्ण-  
 मय रथों के पहियों से (उत् जिघ्रन्ते) उड़ा देने हैं ।

११९ (घृपुं) युद्धके संघर्षमें चतुर, (पावकं) पवित्रता करनेवाले, (यनिनं) जंगलोंमें घूमनेवाले,  
 (वि चर्षणिं) विशेष ध्यानपूर्वक हलचल करनेवाले, (रुद्रस्य सनुं) महावीरके पुत्ररूपी इन वीरोंके समूह  
 को (ह्यसा) प्रार्थना करते हुए (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं; तुम (श्रिये) अपने पेटदरवर्गको घटाने के  
 लिए (रजस्-तुरं) धूलि उड़ानेवाले अर्थात् अति वेग से गमन करनेवाले, (तवसं) बलिष्ठ, (वृषणं)  
 वीर्यवान् तथा (ऋजीपिणं) सोम पीनेवाले (मारुतं गणं) मरुत्समुदाय को (सश्वत्) प्राप्त हो जाओ ।

भावार्थ- ११८ गोदुग्ध-सेवन से पुष्टि पाकर अच्छे कार्य करते हुए शत्रुओं पर हमले करने के लिए भागे बढ़नेवाले,  
 स्थिर शत्रुओं को भी विचलित करनेवाले, आभापूर्ण हथियारों से सज्ज तथा जिन्हें कोई घेर नहीं सकता, ऐसे वे वीर  
 पर्वतों को भी नगण्य तथा हृष्ट मानते हैं । ११९ महाशत्रु के छिष्ट जाने पर चतुराई से अपना कर्तव्य निभानेवाले,  
 पवित्र आचरण रखनेवाले, वनस्थलों में संभार करनेवाले, अधिक सोचविचारपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले वे वीर  
 मरुत् हैं । हम इन्हीं धीरोन्दी सराहना करनेके लिए काव्यभाष्यन करते हैं । तुम लोग भी अपना वैभव बढ़ाने के लिए  
 दीप्तता से चढ़ाई करनेवाले, बलिष्ठ, पराक्रमी एवं सोम पीनेवाले मरुत् के निवृत्त चले जाओ ।

टिप्पणी- [११८] (१) पयो-वृधः= चूँकि वे वीर गौको अपनी माना मानते हैं, इसलिए नित गोदुग्ध का  
 सेवन कर के पुष्ट तथा वृद्धिगत होते हैं । (२) मखाः= स्वयं ही यज्ञ करनेवाले । (३) स्व-सृतः= स्वयं हलचल  
 करनेवाले, जिन्हें अपनी निजी कृति से ही कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । (४) ध्रुव-च्युतः= सुरद शत्रुओं  
 को भी जगह से हटानेवाले । (५) दु-ध्र-कृतः (दुर्धरं, अर्थाः धर्तुं अतकथं आमानं कुवाणाः) = जिन्हें पकड़ना या  
 घेर लेना दूसरों को असम्भव तथा बीहृष्ट प्रतीत हो । (६) पर्वतान् उत् जिघ्रन्ते = पहाड़ों को वे नगण्य एवं  
 अकिञ्चिन्ना समझते हैं, इसलिए शत्रुदल पर चढ़ाई करते समय अगर राह में पहाड़ों की बजह से कठिनाई प्रतीत हो,  
 तो भी उन्हें निन्दा मानकर पार चले जाते हैं और अपने गंठव्य स्थल को पहुँच जाते हैं । [११९] (१) घृपुः=  
 शत्रु से जूझने में निपुण, प्रमथ, हार्थित, चपल, कुर्नाल । (२) यनिन् = जंगलों में घूमनेवाला । (३) वि-चर्षणिः=  
 विशेष ढंग से दंभनेवाला, विशेष रूप से हलचल करनेवाला, विशेष तरह की दाकि से युक्त वीर । (४) रजस्-तुरः=  
 अति वेग से चले जाने के कारण धूलि उड़ानेवाला, बाह्य जय तेज जाने लगता है, तब जिस तरह गर्दं या धूल उड़ा  
 करती है, उस तरह धूलिकणोंको बिखरते हुए यात्रा करनेवाला, भयवा (रजः) अन्तरिक्षमें से विमानद्वारा (तुर) दीप्तता  
 जानेवाला । (५) ऋजीपिन् = (ऋजीपः सोमावशेषः) सोमरस निचोड़ने के पश्चात् जो बचा हुआ अंश रहता है ।  
 सोमरस को घनी हुई राने की चीज सेवद करनेवाला । (ऋजीपं विष्टवन् संखावितेषः । कौमुदी उणादि ४०९ )

(१२०) प्र । नु । सः । मर्तः । शर्वसा । जनान् । अति । तस्थौ । वः । ऊती । मरुतः । यम् । आवत ।  
 अर्धत्सभिः । वाजम् । भरते । धना । नृसभिः ।  
 आपृच्छयम् । क्रतुम् । आ । क्षेति । पुष्यति ॥ १३ ॥

(१२१) चर्कृत्यम् । मरुतः । पुत्सु । दुस्तरम् । शुष्मन्तम् । शुष्मम् । मघवत्सु । धत्तन ।  
 धनस्स्पृतम् । उक्थ्यम् । विश्वचर्षणीम् । लोकम् । पुष्येम् । तनयम् । शतम् । हिमाः ॥ १४ ॥

(१२२) नु । स्थिरम् । मरुतः । वीरर्ध्वन्तम् । ऋतिःसहम् । रयिम् । अस्मासु । धत्त ।  
 सहस्रिणम् । शतिनम् । शूशुवांसम् । प्रातः । मधु । धियाःसुः । जगम्यात् ॥ १५ ॥

अन्वयः- १२० (हे) मरुतः । घ. ऊती य प्र आवत स. मर्तः शर्वसा जनान् अति नु तस्थौ, अर्धत्सभिः वाजम्भिः धना भरते, पुष्यति, आपृच्छयं क्रतु आ क्षेति । १२१ (हे) मरुतः ! मघ-वत्सु चर्कृत्यं पुत्सु दुस्-तरं शुष्मन्तं शुष्मं धन-स्पृत उक्थ्यं विश्व-चर्षणीं लोकं तनयं धत्तन, शतं हिमा पुष्येम् । १२२ (हे) मरुतः ! अस्मासु स्थिरं वीर-ध्वन्तं ऋती-पाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं नु धत्त, प्रात धिया वसु मधु जगम्यात् ।

अर्थ- १२० हे ( मरुतः ! ) मरुतो ' तुम (घ. ऊती) अपनी सरक्षक शक्तिरु द्वारा (यं प्र आवत) जिसकी रक्षा करते हो, ( स. मर्तः ) यह मनुष्य (शर्वसा) बलमें (जनान् अति) अन्य लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर ( नु तस्थौ ) स्थिर बन जाता है । ( अर्धत्सिः वाजं ) यह घुडसवारों के दल की सहायतासे अन्न पाता है, ( नृभिः धना भरते ) वीरोंकी मदद से यथेष्ट मात्रामें धन इकट्ठा करता है और ( पुष्यति ) पुष्ट होता है । उसी प्रकार ( आपृच्छयं क्रतुं ) सराहनीय यज्ञकी ओर ( आ क्षेति ) चला जाता है, अर्थात् यज्ञ करता है ।

१२१ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( मघ वत्सु ) धनिक तथा वैभयसंपन्न लोगोंमें ( चर्कृत्यम् ) उत्तम कार्य करनेवाला, ( पुत्सु दुस् तरं ) युद्धोंमें विजेता, ( शुष्मन्तं ) तेजस्वी, ( शुष्मम् ) बलिष्ठ । धन स्पृतं धन से युक्त, ( उक्थ्यं ) सराहनीय, ( विश्व चर्षणिं ) सब लोगोंके हितकर्ता ( लोकं ) पुत्र एवं ( तनय ) पौत्र ( धत्तन ) होते रहें । उसी प्रकार ( शतं हिमाः पुष्येम् ) हम सो वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें ।

१२२ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( अस्मासु ) हममें ( स्थिरं वीर ध्वन्त ) स्थायी तथा वीरोंसे युक्त, ( ऋती पाहं ) शत्रुओंका पराभव करनेवाले, ( शतिनं सहस्रिणं ) सैकड़ों ओर सहस्रों तरहके, ( शूशुवासं ) वर्षिष्णु ( रयिं ) धन का ( नु धत्त ) अवश्य ही धर दो । ( प्रातः ) प्रातः काल के समय ( धिया वसु ) बुद्धिद्वारा कर्मोंका सम्पादन करके धन पानेवाले तुम ( मधु जगम्यात् ) शीघ्र हमारे निकट चले आओ ।

भाषार्थ- १२० ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, वह दुसरोसे भी अपेक्षाकृत उच्च एवं श्रेष्ठ रहता है और अपने पैदल तथा घुडसवारोंके दलमें विद्यमान वीरोंकी सहायतासे यथेष्ट धनधान्य बटोरता हुआ हृष्टपुष्ट होकर भौतिक भौतिके यज्ञ करता रहता है ।

१२१ उदाहरणसे कार्य करनेवाले, लडाइयोंमें सदैव विजयी बननेवाले, शक्ति तथा बलसे लजालब भरे हुए, धन पानेवाले, सराहनीय, समूची जनताके हितके लिए बड़ी लगनसे प्रयत्न करनेवाले पुत्र एवं पौत्र धनाश्रय लोगों के घरों में दयप्रद हों और हम पूरी एक शताब्दि तक जीवित रह कर पुष्टि प्राप्त करें । ( धनिकोंके प्रासरोमें बिलकुल इतने विपरीत स्थिति पाह जाती है, अतः यह मग्न अतीव महत्त्वपूर्ण चेतावनी दे रहा है । ) १२२ हमें उन धनकी आवश्यकता है, जो वि.काल तक टिक सके, जिससे वीरता बढ़ जाय, शत्रुदलका नि.पात करना सुगम हो जाय, कीर्ति फैल सके और जो सैकड़ों एवं सहस्रों प्रकारका हो, या जिसकी गिनतीमें शतसंख्या तथा सहस्रसंख्याका उपयोग हो ।

टिप्पणी- [ १२० ] आपृच्छयं क्रतु = प्रशंसनीय यज्ञ । [ १२१ ] ( १ ) चर्कृत्यम् = चार बार अच्छे कार्य कुशलतापूर्वक करनेवाला । ( २ ) पुत्सु दुस्तर = रणभूमि में जिसे परास्त करना असंभव है । सदैव विजयी । ( ३ ) धन-स्पृत = धन पाकर उसे बटानेवाला । ( ४ ) विश्व-चर्षणि = समूचे मानवोंका हित करनेवाला, सार्वजनिक कल्याण के कार्य करनेवाला ( A worker imbued with public spirit ) । [ १२२ ] ( १ ) वीरवत् = जिसके

रुद्राणपुत्र गोतमन्त्रपि ( ऋ० १ । ८५१-१२ )

( १२३ ) प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुदंससः ।  
रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदन्ति । वीराः । विद्येषु । घृण्यः ॥ १ ॥  
( १२४ ) ते । उक्षितासः । महिमानम् । आशत । दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सद्दः ।  
अर्चन्तः । अर्कम् । जनयन्तः । इन्द्रियम् । अधि । श्रियः । दधिरे । पृश्निमातरः ॥ २ ॥

अन्वय.— १२३ ये सु-दंससः सप्तय रुद्रस्य सूनवः यामन् जनय न प्र शुम्भन्ते, मरुतः हि वृधे रोदसी चक्रिरे, घृण्यः वीराः विद्येषु मदन्ति । १२४ रुद्रास दिवि सद्द अधि चक्रिरे, अर्क अर्चन्त इन्द्रियं जनयन्तः पृश्नि मातर श्रिय अधि दधिरे, ते उक्षितास महिमानं आशत ।

अर्थ— १२३ ( ये ) ये जो ( सु-दंसस ) अच्छे कार्य करनेवाले, ( सप्तयः ) प्रगतिशील, ( रुद्रस्य सूनवः ) महावीर के पुत्र वीर मरुत् ( यामन् ) वाहर जाते हैं, उस समय ( जनयः न ) महिलाओं के समान ( प्र शुम्भन्ते ) अपने आपको सुशोभित करते हैं। ( मरुतः हि ) मरुतोंने ही ( वृधे ) सव की अभिवृद्धि के लिए ( रोदसी चक्रिरे ) दुलोक एवं भूलोक की प्रस्थापना कर डाली, तथा ये वीर ( घृण्यः वीराः ) शत्रुदल को तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और ( विद्येषु मदन्ति ) यक्षों में या रणांगणों में हर्षित हो उठते हैं ।

१२४ ( रुद्रास ) शत्रुदल को रलानेवाले वीरोंने ( दिवि ) आकाश में ( सद्द-अधि चक्रिरे ) अच्छा स्थान या घर बना रखा है। ( अर्क अर्चन्तः ) पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, ( इन्द्रियं जनयन्तः ) इन्द्रियों में विद्यमान शक्ति को प्रकट करते हुए, ( पृश्नि मातरः ) मातृभूमि के सुपुत्र ये वीर ( श्रिय अधि दधिरे ) अपनी शोभा एवं चारुता बढ़ा चुके हैं। ( ते उक्षितासः ) ये अपने स्थानों पर अभिविक्त होकर ( महिमानं आशत ) बड़प्पन को पा सके ।

भाषार्थ— १२३ प्रगतिशील तथा शुभ कार्य करनेवाले ये पुरोगामी वीर बाहर निकलते समय महिलाओं की तरह अपने आप को सँवारे हैं और खुर बन-ठन के प्रयाण करते हैं। सव की प्रगति के लिए यथेष्ट स्थान मिले, इसलिए पृथ्वी एवं आकाश का स्रजन हुआ है। भू-चर शत्रुओं की धमियाँ उड़ानेवाले ये वीर युद्ध का भयसर उपरिग्रह होते ही शतौघ उल्लसित एवं प्रसन्न हो उठते हैं। लड़ाई का मौस्य आनेपर इन वीरों का दिल हराभरा हो जाता है ।

१२४ सचमुच ये वीर युद्ध में विजयी बनकर स्वर्ग में अपना घर तैयार कर देते हैं। वे परमात्मा की उपासना करते हैं और अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं, तथा मातृभूमि के कल्याण के लिए धनवैभवं की वृद्धि करते हैं। वे अपनी जगह रहकर तथा उचित कार्य करके बड़प्पन प्राप्त करते हैं ।

समीप वीर हों, शूर पुत्रों से युक्त । ( २ ) श्रुती-पाह = ( श्रुती = आकमण, हमला, चढाई ) - शत्रुको हरानेवाला । ( ३ ) शूनुवान् = प्रवृद्ध, बड़ा हुआ, बढ़नेवाला । ( ४ ) श्रिया-वसु = बुद्धि तथा कर्मशक्ति से युक्त, बुद्धि से भाँति भाँतिके कार्य पूर्ण करके धन कमानेवाला । [ १२३ ] ( १ ) सु-दंसस् = शुभ कर्म करनेहार । ( २ ) सप्ति = सात सात लोगों की बकिमें रखे रहनेवाले या हमला करनेवाले, भूमि पर रँगते हुए आकर चढाई करनेवाले । ( ३ ) घृण्य = शत्रुदलको मरिद्यामिट करनेवाले, सघर्ष से क्षामिल हो दुर्लों को कुचलनेवाले । ( ४ ) विद्यथ = यज्ञ, युद्ध । [ १२४ ] ( १ ) अर्क = पूज, देव, स्थान । ( २ ) इन्द्रियम् = इन्द्रशक्ति, इन्द्रियों की शक्ति, ( हृ-द् ) शत्रुओं को पददलित एवं पराभूत करने की शक्ति । ( ३ ) पृश्निमातरः = गौमाता तथा भूमि को माता माननेवाले । ( ४ ) उक्षित = सिंचित, स्थान पर अभिविक्त ।

(१२५) गोऽमातरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिऽभिः । तनूपुं । शुभ्राः । दधिरे । विरुक्मतः ।  
वाधन्ते । विश्वम् । अभिऽमातिनम् । अप । वर्तमानि । एषाम् । अतुं । रीयते । घृतम् ॥३॥

(१२६) वि । ये । भ्राजन्ते । सुऽमस्तासः । ऋष्टिऽभिः ।

प्रऽच्यवयन्तः । अच्युता । चित् । ओजसा ।

मनऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ । वृषऽव्रातासः । पृषतीः । अयुग्धम् ॥४॥

अन्वय — १२५ शुभ्रा गो-मातरः यत् अञ्जिभिः शुभयन्ते तनूपु वि-रुक्मत दधिरे, विश्वं अभिमातिनं अप वाधन्ते, एषां वर्तमानि घृतं अतु रीयते ।

१२६ ये सु-मस्तासः ऋष्टिभिः वि भ्राजन्ते, (हे) मरुत ! यत् मनो-जुव वृष-व्रातास रथेषु पृषती- आ अयुग्धं, अ-च्युता चित् ओजसा प्रच्यवयन्त ।

अर्थ - १२५ ( शुभ्राः ) तेजस्वी, ( गो-मातरः ) भूमि को माता समझनेवाले घीर ( यत् ) जव ( अञ्जि-भिः शुभयन्ते ) अलंकारों से अपने को सुशोभित करते हैं, अपनी सजावट करते हैं, तब वे ( तनूपु ) अपने शरीरों पर ( वि-रुक्मत- दधिरे ) विशेष ढंग से सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे ( विश्वं अभि-मातिनं ) सभी शत्रुओं को ( अप वाधन्ते ) दूर हटा देते हैं, उनकी राह में रुकावटें खड़ी कर देते हैं, इसलिये ( एषां ) इनके ( वर्तमानि ) मागों पर ( घृतं अतु रीयते ) घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं ।

१२६ ( ये सु-मस्तासः ) जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर ( ऋष्टिभिः ) शत्रुओं के साथ ( वि भ्राजन्ते ) विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे ( मरुत ! ) मरुतो ! ( यत् ) जव ( मनो-जुवः ) मन की नाईं वेग से जानेवाले ओर ( वृष-व्रातासः ) सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम ( रथेषु ) अपने रथों में ( पृषतीः आ अयुग्धं ) धरनेवाली हिरनियों जाँडते हो, तब ( अ-च्युता चित् ) न हिलनेवाले सुदृढ़ शत्रुओं को भी ( ओजसा ) अपनी शक्ति से ( प्रच्यवयन्तः ) हिला देते हो ।

भावार्थ - १२५ गौ एवं भूमि को माता माननेवाले वीर आभूषणों तथा इधियारोंसे निजो शरीरों को पूब सजाते हैं और चूँकि वे शत्रुओं का संहार करते हैं, अतएव उन्हें पौष्टिक भक्ष पवास रूप से मिलता है ।

१२६ श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले, मरु के समान बेगवान् तथा बलिष्ठ हो सद्यमय जीवन बितानेवाले वीर सन्तानों से सुमग्न बन रथ पर चढ़ जाते हैं और सुदृढ़ शत्रुओं को भी जड़मूल से उखाड़ फेंक देते हैं ।

टिप्पणी - [ १२५ ] ( १ ) गो-मातरः = माय एवं भूमि को मातृरूप समझनेवाले । ( २ ) अञ्जि = आभूषण, सज्ज, गणवेश ( वेलो मंत्र ९० ) । ( ३ ) वि-रुक्मतः = विशेष चमकीले गहने । ( ४ ) अभिमातिनः = हत्या करमेवाद्य शत्रु । [ १२६ ] ( १ ) सु-मस्त = अच्छे यज्ञ तथा कर्म करनेवाले । ( २ ) वृष-व्रात = बलवानों का संघ, अभेद्य संघ बनाकर रहनेवाले । ( ३ ) अ-च्युता प्रच्यवयन्तः = स्थिरों तब को हिला देते हैं, पिरकाल से स्थायी बने हुए शत्रुओं को भी अपवृक्ष कर के विनष्ट करते हैं ( देखिये मंत्र ८६ और ११० ) ।

(१२७) प्र । यत् । रथेषु । पृथतीः । अयुग्धम् । वाजे । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।  
 उत । अरुपस्यं । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मइध । उदसमिः । वि । उन्दन्ति । भूमं ॥५॥  
 (१२८) आ । वुः । वहन्तु । सप्तयः । रघुस्यदः । रघुपत्वानः । प्र । जिगात् । बाहुसमिः ।  
 सीदत् । आ । वार्हिः । उरु । वुः । सद् । कृतम् । मादयधम् । मरुतः । मर्घः । अन्धसः ॥६॥  
 (१२९) ते । अर्धन्तु । स्वस्तवसः । महिस्त्वना । आ । नाकम् । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सद् ।  
 विष्णुः । यत् । ह । आर्धत् । वृषणम् । मदच्युतम् । वयः । न । सीदन् । अधि । वार्हिषि । प्रिये ॥७॥

अन्वय - १२७ ( हे ) मरुत ! वाजे अद्रि रंहयन्त. यत् रथेषु पृथती प्र अयुग्धं उत अ-रुपस्य धाराः  
 वि स्यन्ति उदमि. भूम चर्मइध वि उन्दन्ति. १२८ व रघु-स्यदः सप्तय आ वहन्तु, रघु-पत्वानः  
 बाहुमि प्र जिगात्, ( हे ) मरुत ! व उरु सद्- कृतं, वार्हिः आ सीदत्, मर्घ- अन्धस- मादयधं । १२९  
 ते स्व-तवस अवर्धन्त, महित्वना नाकं आ तस्थु, उरु सद्- चक्रिरे, यत् वृषणं मद-च्युतं विष्णु आवत्  
 ह प्रिये वार्हिषि अधि, वयः न, सीदन् ।

अर्थ- १२७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वाजे) अद्रके लिए (अद्रि रंहयन्त.) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, (यत्)  
 जिस समय (रथेषु पृथती) प्र अयुग्धं रथोंमें घन्वेवाली हिरनियों जोड़ देते हो, (उत) उस समय (अ रुपस्य  
 धाराः) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधाराएँ ( वि स्यन्ति ) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं  
 और उन (उदमिः) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्मइध) चमडीके जैसे (वि उन्दन्ति) भांगी या गीली कर  
 डालते हैं। १२८ ( वः ) तुम्हें ( रघु स्यद. सप्तयः ) वेगसे दौड़नेवाले घोड़े इधर ( आ वहन्तु ) ले आयँ,  
 ( रघु पत्वानः ) शीघ्र जानेवाले तुम ( बाहुमि ) अपनी भुजाओं में धियमान शक्ति को पराक्रमद्वारा  
 प्रकट करते हुए इधर ( प्र जिगात् ) आओ। हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वः ) तुम्हारे लिए ( उरु  
 सद् ) बड़ा घर, यज्ञस्थान हम ( कृतं ) तैयार कर चुके हैं, ( वार्हि. आ सीदत् ) यहाँ दुर्भय आसन  
 पर बैठ जाओ और ( मर्घः अन्धसः ) मिटास भरे अन्नके सेवन से ( मादयधं ) सन्तुष्ट प्ये हर्षित बनो।

१२९ ( ते ) वे वीर ( स्व-तवस ) अपने बलसे ही ( अवर्धन्त ) बढ़ते रहते हैं । वे अपने ( महि-  
 त्वना ) बढप्पन के फलस्वरूप ( नाकं आ तस्थुः ) स्वर्ग में जा उपस्थित हुए । उन्होंने अपने निवास के  
 लिए ( उरु सद् चक्रिरे ) बड़ा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है । ( यत् वृषणं ) जिस बल देनेवाले  
 तथा ( मद-च्युतं ) आनन्द वढानेवालेका ( विष्णुः आवत् ह ) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है,  
 उस ( प्रिये वार्हिषि अधि ) हमारे प्रिय यज्ञ में ( वय न ) पंछियों की नाई ( सीदन् ) पधार कर बैठो ।

भाषार्थ- १२७ मरुत मेघों की गतिशील बना देते हैं, इसलिये वर्षा का प्रारम्भ हो जलमूढ से समूची पृथ्वी आर्द्र  
 हो उठती है । १२८ कुर्वाँले घोड़े तुम्हें इधर लायें। तुम जैसे वीरप्रतापी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ ।  
 क्योंकि तुम्हारे लिए बड़ा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है । इधर पधार कर तथा आसनों पर बैठकर मिटास से  
 पूर्ण अन्न या सोमरमका सेवन कर हर्षित बनो । १२९ वीर अपनी शक्तिसे बढ़े होते हैं; अपनी कर्तृवशक्तिसे स्वर्ग तक  
 चढ़ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रमुख प्रस्थापित करते हैं । ऐसे वीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें ।

टिप्पणी- [ १२७ ] ( १ ) अद्रि- = पर्वत वा मेघ । ( २ ) अ-रुप = तेजहीन, मलिन, निष्प्रभ ( मेघ ) ; रू = तेज,  
 प्रकाश । [ १२८ ] ( १ ) रघु-स्यद = ( रघु-स्यद ) बल, बड़े वेग से जानेवाला । ( २ ) रघु-पत्वन् = ( लघु पत्वन् )  
 शीघ्रगति, वेगवान्, तेज उड़नेवाला । ( ३ ) अन्धस् = अन्न, सोमरम । [ १२९ ] ( १ ) स्व-तवस अवर्धन्त =  
 सभी वीर अपने निजी बलसे बढ़ते हैं । ( २ ) महित्वना नाकं आ तस्थु = अपनी महिमा तथा बढप्पन से स्वर्ग परके  
 ऊँचे पद पर जा बैठते हैं । ( ३ ) उरु सद् चक्रिरे = अपने प्रयत्नसे अपने लिए विस्तृत स्थानवा निर्माण करते हैं । ( ४ )  
 मदच्युतं वृषणं विष्णु आवत् = आनन्द देनेवाले बलिष्ठ वीर की रक्षा करने का वीर्य विष्णु ही उढाता है ।

- (१३०) शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रुत्स्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।  
 भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः । राजानःऽइव । त्वेषऽसंदशः । नरः ॥ ८ ॥
- (१३१) त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुऽकृतम् । हिरण्यम् । सहस्रऽभृष्टिम् । सुऽअपाः । अवर्तयत् ।  
 घत्ते । इन्द्रः । नरि । अपांसि । कर्तवे ।  
 अहन् । वृत्रम् । निः । अपाम् । औञ्जत् । अर्णम् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १३० शूरा इव इत्, युयुधय न जग्मय, श्रवस्यव न पृतनासु येतिरे, राजान इव त्वेष-संदश नर मरुद्भ्य विश्वा भुवना भयन्ते ।

१३१ सु अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्यं सहस्र-भृष्टि वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे घत्ते, अर्णं वृत्र अहन्, अपां नि. औञ्जत् ।

अर्थ— १३० (शूरा इव इत्) वीरों के समान लड़ने की इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मय) योद्धाओंकी नाईं शत्रु पर जा चढ़ाई करनेवाले तथा (श्रवस्यव न) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर (पृतनासु येतिरे) संप्रामों में उड़ा भारी पुरुपार्थ कर दिखलाते हैं। (राजान इव) राजाओं के समान (त्वेष-संदश) तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये (नर) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्य) इन मरुतों से (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं।

१३१ (सु-अपा.) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो अच्छी तरह बनाया हुआ. (हिरण्यं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टि वज्रं) सहस्र धाराओं से युक्त वज्र इन्द्र को (अवर्तयत्) दे दिया, उस हथियार को (इन्द्र) इन्द्रने (नरि) मानवों में प्रचलित युद्धों में (अपांसि कर्तवे) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाने के लिए (घत्ते) धारण किया और (अर्ण-वृत्रं अहन्) जल को रोकनेवाले शत्रु को मार डाला तथा (अपां निः औञ्जत्) जल को जाने के लिए उन्मुक्त कर दिया।

भावार्थ— १३० ये वीर सच्चे शूरो की भाँति लड़ते हैं, योद्धाओं के समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कीर्ति पाने के लिए लड़नेवाले वीर पुरपों की नाईं ये रणभूमि में भारी पराक्रम करते हैं। जैसे राजालोग तेजस्वी वीर पदते हैं, ठीक वैसे ही ये हैं। इसलिए सभी इनसे अतीव प्रभावित होते हैं।

१३१ अथस्त त्रिपुण कारीगरने एव वज्र नामक शस्त्र तैयार कर दिया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभा के लिए सुनहली पच्चीकारी की गयी थी। इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुध को पाकर मानव-जाति में बारबार होनेवाली छटाइयों में शूरता की अभिव्यजना करने के लिए उसका प्रयोग किया। जलस्रोत पर प्रभुत्व प्रस्थापित करके ढकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रु का वध करके सब के लिए जल को उन्मुक्त कर रखा।

टिप्पणी— [१३१] (१) स्वपा = (सु + अपा) = अच्छे ढग से पच्चीकारी आदि कार्य करनेवाला चतुर कारीगर। (२) सु-कृतं = सुन्दर बनावट से निर्माण किया हुआ। (३) सहस्र-भृष्टि = सहस्र नोकों से युक्त। (४) नरि = युद्ध में, मनुष्यों के मध्य होनेवाले सघर्षों में। (५) अप = कर्म, कृष्य, पराक्रम। (६) अर्ण-वृ = जल को रोकनेवाला, अपने लिए जल रखनेवाला। (७) वृत्र = आरण करनेवाला, घेरनेवाला शत्रु, वृत्रासुर, एक शशस का नाम।

(१२७) प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्धम् । वाजे । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।  
 उत । अरुपस्यं । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मइव । उदसभिः । वि । उन्दन्ति । भूमं ॥५॥  
 (१२८) आ । घः । वहन्तु । सतयः । रघुस्यदः । रघुपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुसभिः ।  
 सीदत । आ । वहिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादयधम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥  
 (१२९) ते । अवर्धन्त । स्वस्तवसः । महित्वना । आ । नाकम् । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सदः ।  
 विष्णुः । यत् । ह । आवत् । वृषणम् । मदच्युतम् । वयः । न । सीदन् । अधि । वहिषि । प्रिये ॥७॥

अन्वय - १२७ ( हे ) मरुत ! वाजे अद्रिं रहयन्त यत् रथेषु पृषती प्र अयुग्धं उत अ-रुपस्य धाराः वि स्यन्ति उदभि भूम चर्मइव वि उन्दन्ति । १२८ व रघु स्यद सतय आ वहन्तु, रघु पत्वानः बाहुभि प्र जिगात ( हे ) मरुत ! व उरु सद कृतं, वहि आ सीदत, मध्व अन्धस मादयध्वं । १२९ ते स्व-तवस अवर्धन्त, महित्वना नाकं आ तस्थु, उरु सद चक्रिरे, यत् वृषणं मद च्युतं विष्णु आवत् ह प्रिये वहिषि अधि, वय न, सीदन् ।

अर्थ- १२७ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! (वाजे) अन्नके लिए ( अद्रिं रहयन्त. ) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, ( यत् ) जिस समय ( रथेषु पृषतीः ) प्र अयुग्ध ) रथोंमें धन्वेवाली हिरनियों जोड़ देते हो, ( उत ) उस समय ( अ-रुपस्य धाराः ) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधारारण ( वि स्यन्ति ) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और उन ( उदभि. ) जलप्रवाहोंसे ( भूम ) भूमिको ( चर्मइव ) चमडी के जैसे ( वि उन्दन्ति ) भीगी या गीली कर डालते हैं । १२८ ( घः ) तुम्हें ( रघु स्यद सतयः ) वेगसे दोड़नेवाले घोड़े इधर ( आ वहन्तु ) ले आयें, ( रघु पत्वान. ) शीघ्र जानेवाले तुम ( वाहुभि ) अपनी भुजाओं में बिधमान शक्ति को पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर ( प्र जिगात ) आओ । हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( व ) तुम्हारे लिए ( उरु सदः ) बड़ा घर, यज्ञस्थान हम ( कृत ) तैयार कर चुके हैं, ( वहि आ सीदत ) यहाँ दर्भमय आसन पर बैठ जाओ और ( मध्वः अन्धसः ) मिठास भरे अन्नके सेवन से ( मादयध्वं ) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो ।

१२९ ( ते ) वे वीर ( स्व तवस ) अपने बलसे ही ( अवर्धन्त ) बढ़ते रहते हैं । वे अपने ( महि-त्वना ) बड़प्पन के फलस्वरूप ( नाकं आ तस्थु ) स्वर्ग में जा उपस्थित हुए । उन्होंने अपने निवास के लिए ( उरु सद चक्रिरे ) बड़ा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है । ( यत् वृषण ) जिस बल देनेवाले तथा ( मद च्युतं ) आनन्द वदानेवालेका ( विष्णुः आवत् ह ) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है, उस ( प्रिये वहिषि अधि ) हमारे प्रिय बल में ( वय न ) पंछियों की नाई ( सीदन् ) पधार कर बैठो ।

भाषार्थ- १२७ मरुत मेघों की गतिशील बना देते हैं, इसलिये वर्षाका प्राप्त हो जलमयूरसे समूची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है । १२८ कुतलें घोड़े तुम्हें इधर लायें । तुम जैसे शीघ्रगामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ । क्योंकि तुम्हारे लिए बड़ा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है । इधर पधार कर तथा आसनों पर बैठकर मिठास से पूर्ण अन्न या सोमसका सेवन कर हर्षित बनो । १२९ वीर अपनी शक्तिसे बढ़े होत हैं; अपनी कर्तृव्यताकिसे स्वर्ग तक चढ़ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रमुख प्रस्थापित करते हैं । ऐसे वीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें ।

टिप्पणी- [ १२७ ] ( १ ) अद्रि = पर्वत या मेघ । ( २ ) अ-रुप = तेजहीन, मलिन, निश्चम ( मघ ), रुद = तेज, प्रकाश । [ १२८ ] ( १ ) रघु-स्यद = ( रघु-स्यद ) चपल, बड़े वेग से जानेवाला । ( २ ) रघु-पत्वान = ( लघु पत्वान ) शीघ्रगति, वेगवान्, तेज उड़नेवाला । ( ३ ) अन्धस् = अन्न, मोमरस । [ १२९ ] ( १ ) स्व-तवस अवर्धन्त = सभी वीर अपने निजो बलसे बढ़ते हैं । ( २ ) महित्वना नाकं आ तस्थु = अपनी महिमा तथा बड़प्पन से स्वर्ग परके ऊँचे पद पर जा बैठते हैं । ( ३ ) उरु सद चक्रिरे = अपने प्रयत्नसे अपने लिए विस्तृत स्थानका निर्माण करते हैं । ( ४ ) मदच्युतं वृषणं विष्णु आवत् = आनन्द देनेवाले बलिष्ठ वीर की रक्षा करने का बीड़ा विष्णु ही उठाता है ।



- (१३०) शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।  
भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः । राजानःऽइव । त्वेषऽसंदशः । नरः ॥ ८ ॥
- (१३१) त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुऽकृतम् । हिरण्यम् । सहस्रऽभृष्टिम् । सुऽअपाः । अवर्तयत् ।  
धत्ते । इन्द्रः । नरि । अपांसि । कर्तवे ।  
अहन् । वृत्रम् । निः । अपाम् । औञ्जत् । अर्णवम् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १३० शूराःइव इत्, युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे, राजानःइव त्वेष-संदशः नरः मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते ।

१३१ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्यं सहस्र-भृष्टिं वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, अर्णवं वृत्रं अहन्, अपां निः औञ्जत् ।

अर्थ— १३० ( शूराःइव इत् ) वीरों के समान लड़ने की इच्छा करनेवाले ( युयुधयः न जग्मयः ) योद्धाओंकी नाईं शत्रु पर जा चढाई करनेवाले तथा ( श्रवस्यव न ) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर ( पृतनासु येतिरे ) संग्रामों में बड़ा भारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं । ( राजान इव ) राजाओं के समान ( त्वेष-संदशः ) तेजस्वी दिग्गर्ह देनेवाले ये ( नरः ) नेता वीर हैं, इसलिए ( मरुद्भ्यः ) इन मरुतों से ( विश्वा भुवना भयन्ते ) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ।

१३१ ( सु-अपाः ) अच्छे कौशलपूर्ण कार्य करनेवाले ( त्वष्टा ) कारीगरने ( यत् सु-कृतं ) जो अच्छी तरह बनाया हुआ, ( हिरण्यं ) सुवर्णमय, ( सहस्र-भृष्टिं वज्रं ) सहस्र धाराओं से युक्त वज्र इन्द्र को ( अवर्तयत् ) दे दिया, उस हथियार को ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( नरि ) मानवों में प्रचलित युद्धों में ( अपांसि कर्तवे ) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाने के लिए ( धत्ते ) धारण किया और ( अर्ण-वं वृत्रं अहन् ) जल को रोकनेवाले शत्रु को मार डाला तथा ( अपां निः औञ्जत् ) जल को जतने के लिए उन्मुक्त कर दिया ।

भावार्थ— १३० ये वीर सच्चे शूरों की भाँति लड़ते हैं, योद्धाओं के समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कौशल्य पाने के लिए लड़नेवाले वीर पुरुषों की नाईं ये रणभूमि में भारी पराक्रम करते हैं । जैसे राजालोग तेजस्वी दीक्ष पढ़ते हैं, ठीक वैसे ही ये हैं । इसलिए सभी इनसे अतीव प्रभावित होते हैं ।

१३१ अत्यन्त निष्ठुर कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार कर दिया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभा के लिए सुनहली पच्चीकारी की गयी थी । इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुध को पाकर मानव-जाति में बारांवार होनेवाली छद्माहियों में शूरा की अभिव्यंजना करने के लिए उसका प्रयोग किया । जलस्रोत पर प्रमुख प्रस्थापित करके ढकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रु का वध करके सब के लिए जल को उन्मुक्त कर रखा ।

टिप्पणी— [ १३१ ] ( १ ) स्वपाः = ( सु + अपाः ) = अच्छे ढंग से पच्चीकारी आदि कार्य करनेवाला चतुर कारीगर । ( २ ) सु-कृतं = सुन्दर बनावट से निर्माण किया हुआ । ( ३ ) सहस्र-भृष्टिः = सहस्र नोकों से युक्त । ( ४ ) नरि = युद्ध में, मनुष्यों के मध्य होनेवाले संघर्षों में । ( ५ ) अपाः = कर्म, कृत्व, पराक्रम । ( ६ ) अर्ण-वं = जल को रोकनेवाला, अपने लिए जल रखनेवाला । ( ७ ) वृत्र = आवरण करनेवाला, घेरनेवाला शत्रु, वृत्रासुर, एक राक्षस का नाम ।

- (१३२) ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । ते । ओजसा । दृढहाणम् । चित् । विभिदुः । वि । पर्वतम् ।  
धमन्तः । वाणम् । मरुतः । सुदानवः ।  
मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ॥ १० ॥
- (१३३) जिह्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । तथा । दिशा ।  
असिञ्चन् । उत्सम् । गोतमाय । तृष्णजे ।  
आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रभानवः ।  
कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्तु । धामभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १३२ ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दृढहाणं पर्वतं चित् वि विभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ।

१३३ अवतं तथा दिशा जिह्वं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय उत्सं असिञ्चन्, चित्र-भानवः अवसा ईं आ गच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ।

अर्थ— १३२ (ते) वे धीर (ओजसा) अपनी शक्ति से (ऊर्ध्वं अवतं) ऊँची जगह विद्यमान तालाय या झील के पानी को (नुनुद्रे) प्रेरित कर चुके और इस कार्य के लिए (दृढहाणं पर्वतं चित्) राह में रोडे अटकानेवाले पर्वत को भी (वि विभिदुः) छिन्नविच्छिन्न कर चुके । पश्चात् उन (सु-दानवः मरुतः) अच्छे दानी मरुतोंने (सोमस्य मदे) सोमपान से उद्भूत आनन्द से (वाणं धमन्तः) वाण बाजा बजा कर (रण्यानि चक्रिरे) रमणीय गानों का सृजन किया ।

१३३ वे धीर (अवतं) झील का पानी (तथा दिशा) उस दिशा में (जिह्वं) तेढ़ी राह से (नुनुद्रे) ले गये और (तृष्णजे गोतमाय) प्यास के मारे अकुलाते हुए गोतम के लिए (उत्सं असिञ्चन्) जलकुंड में उस जल का झरना बढने दिया । इस भाँति वे (चित्र-भानवः) अति तेजस्वी धीर (अवसा ईं) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ गच्छन्ति) आ गये और (धामभिः) अपनी शक्तियों से (विप्रस्य कामं) उस ज्ञानी की लालसा को (तर्पयन्त) तृप्त किया ।

भावार्थ— १३२ ऊँचे स्थान पर पाये जानेवाले तालाय का पानी मरुतों ने नहर बनाकर दूसरी ओर पहुँचा दिया और ऐसा नहर खुदाई का कार्य करते समय राह में जो पहाड़ रुकावट के रूप में पाये गये थे, उन्हें फाटकर पानी के बहावके लिए मार्ग बना दिया । इतना कार्य कर चुकने पर सोमरसवो पीकर थडे आनन्दसे उन्होंने सामगायन किया ।

१३३ इन धीरों ने टेढ़ीमेढ़ी राह से नहर खुदवाकर झील का पानी अन्य जगह पहुँचा दिया और ऋषिके आश्रम में धीने के जल का विपुल संचय कर रखा, जिसके फलस्वरूप गोतमजी की पानी की आवश्यकता पूर्ण हुई । इस भाँति ये तेजःपुत्र धीर दृढबलसमेत तथा शक्तिसामर्थ्य से परिपूर्ण हो इधर पधाते हैं और अपने भक्तों तथा अनुयायियों की लालसाओं को तृप्त करते हैं । [ देखिए मंत्र १३२, १५४ ]

टिप्पणो— १३२ (१) अवतं = ऋभों, कुंड, झील, जल का संचय, तालाब, रक्षण करनेवाला । मंत्र १३३ तथा १५४ देखिए । (२) नुदु = प्रेरित करना । (३) दृढहाणं = बड़ा हुआ, मार्ग में बढकर खड़ा हुआ । (४) वाणं = मंत्र ८९ देखिए ('शतसंख्याभिः तंत्रोभिर्मुक्तः वीणाविशेषः' सप्तमभाष्य) सौ तारों का बनाया हुआ एक तंतुवाद्य । [ १३३ ] (१) जिह्व = कुटिल, टेढ़ा, धक; । (२) धामन् = तेज, शक्ति, स्थान । (३) अवसा = (अवस्यः) = गहरा स्थान, राई; १३२ वॉ मंत्र देखिए । (४) गोतम = बहुतसी गोपों साथ रखनेवाला ऋषि, जिसके आश्रम में अनगिनती गौओं का झुंड दिखाई पडता है ।

(१३४) या । वः । शर्म । शशमानाय । सन्ति ।  
 त्रिघातूनि । दाशुपे । यच्छत । अधि ।  
 अस्मभ्यम् । तानि । मरुतः । वि । यन्त ।  
 रयिम् । नः । धत्त । वृषणः । सुवीरम् ॥ १२ ॥

[ ऋ० ११८११-१० ]

(१३५) मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विमहसुः ।  
 सः । सुगोपातमः । जनः ॥ १ ॥

अन्वयः- १३४ ( हे ) मरुतः ! शशमानाय त्रि-घातूनि वः या शर्म सन्ति, दाशुपे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, ( हे ) वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ।

१३५ ( हे ) वि-महसः मरुतः ! दिवः यस्य हि क्षये पाथ, सः सु-गो-पा-तमः जनः ।

अर्थ- १३४ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( शशमानाय ) शीघ्र गति से जानेवालों को देने के लिए ( त्रि-घातूनि ) तीन प्रकार की धारक शक्तियों से मिलनेवाले ( वः या शर्म ) तुम्हारे जो सुख ( सन्ति ) विद्यमान हैं और जिन्हें तुम ( दाशुपे अधि यच्छत ) दानी को दिया करते हो, ( तानि ) उन्हें ( अस्मभ्यं वि यन्त ) हमें दो । हे ( वृषणः ! ) यलवान् वीरो ! ( नः ) हमें ( सुवीरं ) अच्छे वीरों से युक्त ( रयिं ) धन ( धत्त ) दे दो ।

१३५ हे ( वि- महसः मरुतः ! ) विलक्षण ढंग से तेजस्वी वीर मरुतो ! ( दिवः ) अन्तरिक्ष में से पधारकर ( यस्य हि क्षये ) जिस के घर में तुम ( पाथ ) सोमरस पीते हो, ( सः ) यह ( सु-गो पा-तमः जनः ) अत्यन्त ही सुरक्षित मानव है ।

भाषार्थ- १३४ त्रिविध धारक शक्तियों से जो कुछ भी सुख पाये जा सकते हैं, उन्हें वे वीर श्रेष्ठ काव्यों को शीघ्रता से निभानेवालों के लिए उपभोगार्थ देने हैं । इसी लालसा है कि, हमें भी वे सुख मिल जायें तथा उच्च कोटि के वीरों से रक्षित धन हमें प्राप्त हो । ( भाषिप्राय इतना ही है कि, धन तो अवश्यमेव कमाना चाहिए और उस की समुचित रक्षा के लिए आवश्यक वीरता पाने के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए । )

१३५ तेजस्वी वीर लोग जिस मानव के घर में सोम का ग्रहण करते हैं, यह अवश्यमेव सुरक्षित रहेगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं ।

टिप्पणी- [ १३४ ] ( १ ) शशमानः = ( शश = प्लुतगवौ ) = शीघ्र गतिसे जानेवाले, जल्द कार्य पूरा करनेवाले ( देखो मंत्र १४२ ) । ( २ ) त्रिघातु = तीन घातुओं का उपयोग जिस में हुआ हो, तीन स्थानों में जो है; तीन धारक शक्तियों से युक्त । ( ३ ) शर्म = सुख, घर, आश्रयस्थान । [ १३५ ] ( १ ) वि-महसुः = विशेष महत्त्व, बड़ा तेज । ( २ ) क्षयः = ( क्षि निपासे ) = घर, स्थान । ( ३ ) सु-गो-पा-तमः = उच्च कोटि की गर्भावृद्धि गली मॉति रक्षा करनेवाला, रक्षक वीरों से युक्त । इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, गाय की यथावत् रक्षा करना मानों सर्वस्व का संरक्षण करना ही है ।

- (१३६) यज्ञैः । वा । यज्ञऽवाहसः । विप्रस्य । वा । मतीनाम् । मरुतः । शृणुत । हवम् ॥२॥  
 (१३७) उत । वा । यस्य । वाजिनः । अनु । विप्रम् । अतक्षत ।  
 सः । गन्ता । गोऽमति । प्रजे ॥ ३ ॥  
 (१३८) अस्य । वीरस्य । वहिषि । सुतः । सोमः । दिविष्टिषु ।  
 उक्थम् । मदः । च । शस्यते ॥ ४ ॥

अन्वय.— १३६ ( हे ) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां वा, हव्यं शृणुत ।

१३७ उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत. सः गो-मति प्रजे गन्ता ।

१३८ दिविष्टिषु वहिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्थं मदः च शस्यते ।

अर्थ— १३६ हे ( यज्ञ-वाहसः मरुतः ! ) यज्ञ का गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो ! ( यज्ञैः वा ) यज्ञों के द्वारा वा ( विप्रस्य मतीनां वा ) विद्वान् की बुद्धि की सहायता से तुम हमारी ( हव्यं शृणुत ) प्रार्थना सुनो ।

१३७ ( उत वा ) अथवा ( यस्य वाजिनः ) जिस के चलवान् वीर ( विप्रं अनु अतक्षत ) ज्ञानी के अनुकूल हो, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, ( सः ) वह ( गो-मति प्रजे ) अनेक गाँवों से भरे प्रदेश में ( गन्ता ) चला जाता है, अर्थात् वह अनागिनती गाँव पाता है ।

१३८ ( दिविष्टिषु = दिष्-इष्टिषु ) इष्टिके दिनमें होनेवाले ( वहिषि ) यज्ञमें, ( अस्य वीरस्य ) इस वीर के लिए, ( सोमः सुतः ) सोम का रस निचोड़ा जा चुका है । ( उक्थं ) अथ स्तोत्र का गान होता है और सोमरस से उद्भूत ( मदः च शस्यते ) आनन्द की प्रशंसा की जाती है ।

भावार्थ— १३६ यज्ञों के अर्थात् कर्मों के द्वारा तथा ज्ञानी लोगों की सुमतिवों यानि अच्छे संकल्पों के द्वारा जो प्रार्थना होती है, सो सुन सुनो ।

१३७ यदि वीर ज्ञानी के अनुकूल वनें, तो उस ज्ञानी पुरुष को बहुतसी गाँवों पाने में कोई कठिनाई नहीं होती है ।

१३८ जिन दिनों में यज्ञ प्रचलित रहे जाते हैं, तब सोमरस का सेवन तथा सामगान का भवण जारी रहता है ।

टिप्पणी— [ १३६ ] किसी न किसी आदर्श या ध्येय को सामने रखकर ही मानव कर्म में प्रवृत्त होता है और उस कर्म से ध्येय का प्रतीक्षण होता है । उसी प्रकार ज्ञानसंग्रह विद्वान् लोग मनन के उपरान्त जो संकल्प ध्यान लेते हैं, वह भी उनके आदर्श को ही दर्शाता है । अतः ऐसा कह सकते हैं कि, मानव के कर्म तथा संकल्प के साथ ही साथ जो प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं, जिन आवांशाओं तथा ध्येयों की अभिव्यक्ति होती है, उन्हें देवता सुन लें । संकल्प तथा कर्म के द्वारा जो ध्येय आर्जित होता है, वही मानव का उष्ण कोटि का ध्येय है, ऐसा समझना ठीक है और देवता का ध्यान उधर आकर्षित होता ही है । [ १३७ ] ( १ ) वाजिन = घोड़ा, गुरुतर, बलिष्ठ, धान्य रखनेवाला । ( २ ) अनु + तक्ष = बना देना, निर्माण करना, संस्कार करके तैयार कर देना । ( ३ ) गो-मति प्रजे = अनेक गाँवों से युक्त ग्वालिके वाटे में । ( ४ ) प्रजे = ग्वालिका बाड़ा । वीरोंकी अनुकूलता होने पर यथेष्ट गाँवों पाना कोई कठिन बात नहीं है । क्योंकि गाँव साथ रखनाही प्रसुर संपत्ति या वैभव का चिह्न है । [ १३८ ] दिविष्टि = ( दिष् + इष्टि ) = दिन में की जानेवाली इष्टि । ( २ ) वहिष् = दर्भ, आसन, यज्ञ मंत्र १०१ दक्षिण ।

(१३९) अस्य । श्रोपन्तु । आ । भुवः । विश्वाः । यः । चर्पणीः । अभि ।  
सूरम् । चित् । सस्रुपीः । इपः ॥ ५ ॥

(१४०) पूर्वाभिः । हि । ददाशिम । शरत्सभिः । मरुतः । वयम् ।  
अधःसभिः । चर्पणीनाम् ॥ ६ ॥

(१४१) सुभगः । सः । प्रयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यैः ।  
यस्य । प्रयांसि । पर्यथ ॥ ७ ॥

अन्वय - १३९ विश्वा चर्पणी, सूरं चित्, इप सस्रुपी, यः अभि-भुव अस्य (मरुतः) आश्रोपन्तु ।  
१४० (हे) मरुत ! चर्पणीनां अधोभि वयं पूर्वाभि शरत्सभिः हि ददाशिम ।  
१४१ (हे) प्र-यज्यव मरुतः ! सः मर्त्य सु-भगः अस्तु, यस्य प्रयांसि पर्यथ ।

अर्थ- १३९ ( विश्वाः चर्पणीः ) सभी मानवों को तथा ( सूरं चित् ) विद्वान् को भी ( इप सस्रुपीः )  
अन्न मिल जाय, इसलिए ( यः अभि भुव ) जो शत्रु का पराभव करता है, ( अस्य ) उन्म का काव्य-  
गायन सभी वीर ( आ श्रोपन्तु ) सुन लें ।

१४० हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( चर्पणीनां अधोभिः ) कृपकों की तथा मानवों की समु-  
चित रक्षा करने की शक्तियों से युक्त ( वयं ) हम लोक ( पूर्वाभिः शरत्सभिः ) अनेक वर्षों से ( हि )  
सचमुच ( ददाशिम ) दान देते आ रहे हैं ।

१४१ हे ( प्र यज्यवः मरुत ! ) पूज्य मरुतो ! ( स मर्त्यैः ) वह मनुष्य ( सु भगः अस्तु )  
अच्छे भाग्यवाला रहता है कि, ( यस्य प्रयांसि ) जिस के अन्न न ( पर्यथ ) मेषन तुम करते हो ।

भावार्थ- १३९ जो वीर पुरुष समूची मानवजाति को तथा विद्वान्मंडली को अन्न की प्राप्ति हो, इस हेतु शत्रुदल  
का पराभव करनेकी चेष्टा करके सकलता पाता है, उसी वीरके यशका गान लोग करते हैं और उस गुण-परिभा-गात् को  
सुनकर श्रोताओंमें रक्ति का संचार हो जाता है ।

१४० कृपको तथा सभी मानवजाति की रक्षा करने के लिए जो आवश्यक गुण वा शक्तियों हैं, उनसे  
युक्त बनकर हम पहले से ही दान देते आये हैं । ( या शिसानों तथा अस्य लोगों की संरक्षणक्षम शक्तियों के द्वारा  
सुशिक्षित बन हम प्रथमतः वानी बन चुके हैं । )

१४१ वीर पुरुष जिसके अन्न का सेवन करते हैं, वह मनुष्य सचमुच भाग्यवाली बनता है ।

टिप्पणी- [ १३९ ] ( १ ) सूर = विद्वान्, बड़ा सनालोचक । ( २ ) सस्रुपी = ( सु मर्ता ) चला जाय,  
पहुँचे, पास हों । ( ३ ) अभि-भुव = शत्रुदल का पराभव करनेवाला । ( ४ ) विश्वाः चर्पणी = जनता,  
समूचा मानवी समाज । ( चर्पणिः = [ इप ] कृपक, काश्तकार, हृषिकर्म करनेवाला कर्मसे निरत । ) [ १४० ] ( १ )  
चर्पणिः- ( इप ) = इपक, हलसे भूमि जोतनेवाला । ( २ ) अधःस=संरक्षण । [ १४१ ] ( १ ) प्र-यज्यु = यजिष,  
पूज्य । ( २ ) सु-भग = भाग्यवान् । ( ३ ) प्रयस्य = अन्न, प्रदत्तों के उदरार्त प्राप्त किया हुआ भोग ।

(१४२) दशमानस्य । वा । नरः । स्वेदस्य । सत्यशवसः । विद । कामस्य । वेनतः ॥८॥

(१४३) यूयम् । तत् । सत्यशवसः । आविः । कर्त । महिस्त्वना ।  
विध्यत । विद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥

(१४४) गृहंत । गृहाम् । तमः । वि । यात । विश्वम् । अत्रिणम् ।  
ज्योतिः । कर्त । यत् । उदमसि ॥ १० ॥

अन्वय — १४२ ( हे ) सत्य-शवस मरुत ! दशमानस्य स्वेदस्य वेनतः वा कामस्य विद ।

१४३ ( हे ) सत्य-शवस ! यूयं तत् आवि कर्त, विद्युता महिस्त्वना रक्ष विध्यत ।

१४४ गृहं तमः गृहंत, विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः उदमसि कर्त ।

अर्थ- १४२ हे ( सत्य शवसः मरुतः ! ) सत्यसे उद्भूत बल से युक्त मरुतो ! ( दशमानस्य ) शीघ्र गति के कारण ( स्वेदस्य ) पसीने से भीगे हुए, तथा ( वेनतः वा ) तुम्हारी सेवा करनेवाले की ( कामस्य विद ) अभिलाषा पूर्ण करो ।

१४३ हे ( सत्य शवसः ! ) सत्य के बल से युक्त वीरो ! ( यूयं ) तुम ( तत् ) यह अपना बल ( आविः कर्त ) प्रकट करो । उस अपने ( विद्युता महिस्त्वना ) तेजस्वी बल से ( रक्षः विध्यत ) राक्षसोंको मार डालो ।

१४४ ( गृहं ) गुफामें विद्यमान ( तमः ) अंधेरा ( गृहंत ) दूर दो, विनष्ट करो । ( विश्वं अत्रिणं ) सभी पेट्टे दुरात्माओं को ( वि यात ) दूर कर दो । ( यत् ज्योतिः ) जिस तेजको हम ( उदमसि ) पाने के लिए लालायित हैं, वह हमें ( कर्त ) दिला दो ।

भावार्थ- १४२ ये वीर सचाई के भक्त हैं, भक्त बलवान् हैं । जो जल्द बले जाने के कारण पसीने से तर होते हैं या लगातार काम करने से थकेमाँदे होते हैं, उनकी सेवा करनेवालों की इच्छाएँ ये वीर पूर्ण कर देते हैं ।

१४३ ये वीर सच्चे बलवान् हैं । इनका वह बल प्रकट हो जाय और उसके फलस्वरूप सदैव कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टों का नाश हो जाय ।

१४४ अधिपति विनष्ट करके तथा कभी तुल्य न होनेवाले स्वार्थी शत्रुओं को हराकर सभी जगह प्रकाश का विस्तार करना चाहिए ।

टिप्पणी- [ १४२ ] ( १ ) सत्य-शवस = सत्य का बल, जो सचके बल से युक्त होते हैं । ( २ ) दशमानः = ( दश-प्लुतगते ) = शीघ्र गतिसे जानेवाला, बहुत काम करनेवाला ( मंत्र १३४ देखो ) । [ १४४ ] ( १ ) गृहं तमः = गुहा में रहनेवाला अंधेरा, अन्तस्तरका अज्ञानरूपी तम पटल, घामें विद्यमान भयकार । ( २ ) अत्रिण् = स्वानेवाले, पेट्टे दूसरोंका भाग स्वयं ही उठाकर उपभोग लेनेवाला स्वार्थी । [ हम मंत्रके साथ तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मांश्मृतं गमय ॥ ' ( बृहदा० ३।३।२८ ) इसकी तुलना कीजिए । ]

(क्र० ११८७१-६)

(१४५) प्रस्तवक्षसः । प्रस्तवसः । वि-रश्निनः । अनानताः । अविधुराः । ऋजीपिणः ।

जुष्टतमासः । नृस्तमासः । अञ्जिभिः ।

वि । आनञ्जे । के । चित् । उस्त्राःऽइव । स्तुभिः ॥ १ ॥

(१४६) उपहरेषु । यत् । अचिधम् । ययिम् । वयःऽइव । मरुतः । केन । चित् । पथा ।  
श्रोतन्ति । कोशाः । उप । वः । रथेषु । आ । घृतम् । उक्षत । मधुवर्णम् । अर्चते ॥२॥

अन्वयः- १४५ प्र त्वक्षस प्र तवसः वि-रश्निन अन्-आनता अ विधुरा ऋजीपिणः जुष्ट-तमास  
नृ-तमास के चित् उस्त्रा इव स्तुभिः वि आनञ्जे ।

१४६ (हे) मरुत ! वय इव केन चित् पथा यत् उपहरेषु ययि अचिधं, व रथेषु कोशाः  
उप श्रोतन्ति, अर्चते मधु-वर्णं घृतं आ उक्षत ।

अर्थ- १४५ (प्र-त्वक्षसः) शत्रुदल को क्षीण करनेवाले, (प्र-तवसः) अच्छे बलशाली, (वि-  
रश्निनः) बड़े भारी वक्ता, (अन्-आनता) किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहार, (अ-विधुरा) न वि-  
सुझनेवाले अर्थात् एरुतापूर्वक जीवनयात्रा धितानेवाले (ऋजीपिणः) सौम्यस र्णनेवाले या सौदा-  
सादा तथा सरल यत्न रखनेवाले, (जुष्ट-तमास) जनता को अर्थात् सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा  
(नृ-तमास) नेताओं में प्रमुख थे वीर (केचित् उस्त्रा इव) सूर्यकिरणों के समान (स्तुभि) बल  
तथा अलंकारों से युक्त होकर (वि आनञ्जे) प्रकाशमान होते हैं ।

१४६ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! (वय इव) पंछी की नाई (केन चित् पथा) किसी भी  
मार्ग से आकर (यत्) जब (उपहरेषु) हमारे समीप (ययि) आनेवालों को तुम (अचिधं) इकट्ठे  
करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में विद्यमान (कोशाः) भांडार हम पर (उप श्रोतन्ति) धन की  
वर्षा करने लगते हैं और (अर्चते) पूजा करनेवाले उपासक के लिए (मधु-वर्णं) मधु की नाई स्पृच्छ  
वर्णवाले (घृतं) घी या जल की तुम (आ उक्षत) वर्षा करते हो ।

भावार्थ- १४५ शत्रुओं को हतयत्न करनेवाले, बलसे पूर्ण, अच्छे वक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करने चलनेहार,  
एक ही विचार से आचरण करनेवाले, शोम का सेवन करनेवाले, सेवनीय और प्रमुख नेता बन जाने की क्षमता रखने-  
वाले वीर वक्तालंकारों से सजाये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं ।

१४६ जिस वक्त तुम किसी भी राह से आकर हमारे निकट आनेवाले लोगों में एकता प्रस्थापित करते  
हो, संगठन करते हो, तब तुम्हारे रथों में रखे हुए धनभांडार हमें संपत्ति से निहाल कर देते हैं, हम पर मानों धन की  
सतत वृष्टिसे रचते हैं । तुम लोग भी भक्त एवं उपासक को स्वच्छ जल एवं निर्दोष भद्र परोस मात्रा में देते हो ।

टिप्पणी [ १४५ ] ( १ ) प्र-त्वक्षस् = बड़े सामर्थ्यसे युक्त, शत्रुओंको दुर्बल कर देनेवाले । ( २ ) प्र-तवस् =  
जिसके विक्रम की याह न मिलती हो, बलिष्ठ । ( ३ ) वि-रश्निन् = ( १९-व्यक्त्यायां याचि ) गभीर आवाज से  
बोझनेवाले, भारी वक्ता, सुवोपहार वस्तुता की शब्दी लगानेवाले । ( ४ ) अन्-आनताः = किसी के सामने न नमने-  
वाले याने आत्मसमान की अभ्युष्ण तथा भङ्गि रखनेवाले । ( ५ ) अ-विधुर = ( ४७-भ्य-भयसंचलनयो ) न  
झरनेवाले, न विसुझनेवाले । अत्र १४७ देखिये । ( ६ ) जुष्ट-तमाः = सेवा करने के लिए योग्य, समीप रखने के लिए  
अर्चित । [ १४६ ] ( १ ) उपहृत् = एकान्त, समीप, टेढापन, रथ । ( २ ) ययि = आनेवाले । ( ३ ) कोशः =  
अज्ञान । ( ४ ) घृतं = घी, जल ।

(१४७) प्र । एषाम् । अज्मेपु । विधुराश्च । रेजते । भूमिः । यामेपु । यत् । ह । युञ्जते । शुभे ।  
ते । क्रीळ्यः । धुनयः । भ्राजत्-क्रष्टयः । स्वयम् । महिस्त्वम् । पनयन्त । धृतयः ॥३॥

(१४८) सः । हि । स्वसृत् । पृपत्-अश्वः । युवा । गणः । अया । ईशानः । तविपीभिः । आवृतः ।  
असि । सत्यः । क्रणयावा । अनेद्यः । अस्याः । धियः । प्र अविता । अर्थ । वृषा । गणः ॥४॥

अन्वयः— १४७ यत् ह शुभे युञ्जते, एषां अज्मेपु यामेपु भूमिः विधुराश्च प्र रेजते, ते क्रीळ्यः धुनयः  
भ्राजत्-क्रष्टय- धृतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

१४८ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृपत्-अश्वः तविपीभिः आवृतः अया ईशानः अथ सत्यः  
क्रण-यावा अ-नेद्य वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ।

अर्थ- १४७ (यत् ह) जब सचमुच ये वीर (शुभे) अच्छे कर्म करने के लिए (युञ्जते) कटिबद्ध हो  
उठते हैं, तब (एषां अज्मेपु यामेपु) इनके वेगवान् हमलों में (भूमिः) पृथ्वी तक (विधुराश्च) अनाथ  
नारी के समान (प्र रेजते) बहुतही कांपने लगती है। (ते क्रीळ्यः) ये खिलाडीपन के भाव से प्रेरित,  
(धुनयः) गतिशील, चपल (भ्राजत्-क्रष्टयः) चमकाले हथियारों से युक्त, (धृतयः) शत्रुको विच-  
लित कर देनेवाले वीर (स्वयं) अपना (महिस्त्वं) महत्त्व या बड़प्पन (पनयन्त) विख्यात कर  
डालते हैं ।

१४८ (सः हि गणः) वह वीरों का संघ सचमुचही (युवा) यौवनपूर्ण, (स्व-सृत्) स्वयंप्रेरक,  
(पृपत्-अश्वः) रथ में धज्येवाले घोड़े जोड़नेवाला (तविपीभिः आवृतः) और भौंतिभौंति के बलों से  
युक्त रहने के कारण (अया ईशानः) इस संसार का प्रभु एवं स्वामी बनने के लिए उचित एवं सुयोग्य  
है। (अथ) और वह (सत्यः क्रण यावा) सचाई से बर्ताव करनेवाला तथा क्रण दूर करनेवाला, (अ-  
नेद्यः) अनिन्दनीय और (वृषा) घलवान् दीख पड़नेवाला (गणः) यह संघ (अस्याः धियः) इस हमारे  
कर्म तथा ध्यान की (प्र अविता असि) रक्षा करनेवाला है ।

भाषार्थ- १४७ जिस समय ये वीर जनता का जगण करने के लिए सुसज्ज हो जाते हैं, उस समय इनके शत्रुओं  
पर दृढ़ पड़ने से मारे डरके समुची पृथ्वी धर धर काँप उठती है। ऐसे अवसर पर खिलाडी, चपल, तेजस्वी शस्त्रा-  
धारण करनेवाले तथा शत्रु को विन्दीपत करनेवाले वीरों की महनीयता प्रष्ट हो जाती है ।

१४८ यह वीरों का संघ युवा, स्वयंप्रेरक, बलिष्ठ, सत्यनिष्ठ, उक्रण होने की चेष्टा करनेवाला, प्रशंसनीय  
तथा गाम्भीर्यवान् है, इस कारण से इस संसार पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता पूर्ण रूपेण रखता है। इसारा इच्छा  
है कि, इस भौंति का यह समुदाय हमारे कर्मों तथा संस्कारों में हमारी रक्षा करनेवाला बने। (अगर विश्व में विजयी  
बनने की एवं जगत् पर स्वामित्व प्रस्थापित करने की लालसा हो, तो उपयुक्त गुणों की ओर ध्यान देना अनिवार्य  
भावश्यक है ।)

टिप्पणी [ १४७ ] (१) युञ्जते = युक्त हो जाते हैं, सज्ज बनने हैं, रथ जोड़कर सैवार होते हैं। (२) वि-धुरा  
= (वि-धुग) विधुर नारी; अनाथ, अमदाय महिला। मंत्र १४५ वॉ देखिए ।



(१४९) पितुः । प्रत्नस्य । जन्मना । वदामसि । सोमस्य । जिह्वा । प्र । जिगाति । चक्षसा । यत् । ईप् । इन्द्रम् । शर्मि । ऋक्वाणः । आशत । आत् । इत् । नामानि । यक्षियानि । दधिरे ॥५॥  
(१५०) श्रियसे । कम् । भानुऽभिः । सम् । मिमिक्षिरे । ते । रश्मिऽभिः । ते । ऋक्ऽभिः । सुऽखादयः । वे । वाशीऽमन्तः । इष्मिणः । अर्भीरवः । विद्रे । प्रियस्य । मारुतस्य । धाम्नः ॥ ६ ॥

अन्वयः- १४९ प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा जिह्वा प्र जिगाति, यत् शर्मि ई इन्द्रं ऋक्वाणः आशत, आत् इत् यक्षियानि नामानि दधिरे ।

१५० ते के श्रियसे भानुभिः रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे, ते ऋक्वभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इष्मिणः अ-भीरवः ते प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे ।

अर्थ- १४९ ( प्रत्नस्य पितुः जन्मना ) पुत्रतन पिता से जन्म पाये हुए हम ( वदामसि ) कहते हैं कि, ( सोमस्य चक्षसा ) सोम के दर्शन से ( जिह्वा प्र जिगाति ) जीभ- वाणी प्रगति करती है, अर्थात् चीरों के काव्य का गायन करती है । ( यत् ) जय ये चीर ( शर्मि ) शत्रु को शान्त करनेवाले युद्ध में ( ई इन्द्रं ) इस इन्द्र को ( ऋक्वाणः ) स्फूर्ति देकर ( आशत ) सहायता करते हैं, ( आत् इत् ) तभी वे ( यक्षियानि नामानि ) प्रशंसनीय नाम- यज्ञ ( दधिरे ) धारण करते हैं ।

१५० ( ते ) ये चीर महत् ( कं श्रियसे ) सब को मुक्त मिले इसलिए ( भानुभिः रश्मिभिः ) तेजस्वी किरणों से ( सं मिमिक्षिरे ) सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । ( ते ) ये ( ऋक्वभिः ) कवियों के साथ ( सु-खादयः ) उत्तम अन्न का सेवन करनेहार या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, ( वाशी-मन्तः ) कुल्हाड़ी धारण करनेवाले ( इष्मिणः ) वेग से जानेवाले तथा ( अ-भीरवः ) न डरनेवाले ( ते ) ये चीर ( प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ) प्रिय महतों के स्थान को ( विद्रे ) पाते हैं ।

भावार्थ- १४९ श्रेष्ठ परिवार में दण्ड हुए हम इस बात को घोषणा करना चाहते हैं कि, सोम की आहुति देने समय मुँह से अर्थात् जिह्वा से भी देवताओं की सराहना करनी चाहिये । शत्रुदल को विनष्ट करने के लिए जो युद्ध छेड़ने पड़ते हैं, उनमें इन्द्र को स्फूर्ति प्रदान करने हुए ये चीर सराहनीय कौलि पाते हैं । उन नामों से उनकी कर्तृत्व-शक्ति प्रकट हुआ करती है ।

१५० ये चीर जनता सुन्नी यने इय क्लिष्ट भूमि में, पृथ्वी-मंडल पर बड़ा भारी पान करते हैं और वज्र में इक्षिणाक्ष का भोजन करनेवाले, सुन्दर वीरोचित आभूषण पहननेवाले, कुठार हाथ में बठाकर शत्रुदल पर दृढ़ पड़नेवाले, निर्भयता से पूर्ण चीर अपने प्रिय देव की पाकर उल की सेवा में लगे रहते हैं ।

टिप्पणी [ १४९ ] ( १ ) शर्मि = शांत करना, शत्रु का वध करना । ( २ ) ऋक्वाणः = ( ऋक्-स्तोत्री ) = प्रशंसा करके प्रेरणा करनेवाले । प्रहर भगवः, जहि, वीर्यस्व ' ऐते मंत्रों से या ' शू, वीर ' आदि नाम पुकार कर उरसाद बढावा जाता है । वीरों की उमंग कैसी बढानी चाहिये, तो यहाँ पर विदित होगा । प्रशंसा करनेयोग्य नाम ही ( यक्षियानि नामानि ) धारण करने चाहिये । ' विक्रमसिंह, प्रताप, राजपूत ' वगैरह नाम वीरों को देने चाहिये । वेद में ' वृषहा, शत्रुहा ' जैसे नाम हैं, जो कि उरसादवर्धक हैं । सैनिकों को प्रोत्साहित करने की सूचना यहाँ पर मिलती है । [ १५० ] ( १ ) सु-खादिः = अच्छा अन्न खानेवाले, सुन्दर वरदी या गणवेश पहननेवाले, या वीरों के गहने धारण करनेवाले । ( २ ) वाशी-मन्तः = कुठार, माले, तलवार, परशु लेकर आक्रमण करनेवाला वीर । मंत्र ०० देखो । ( ३ ) इष्मिन् = गतिमान, आक्रमणशील । ( ४ ) अ-भीरवः = निडर । ( ५ ) प्रियस्य धाम्नः विद्रे = प्यारे देव को पहुँच जाते हैं, या प्राप्त हो जाते हैं ।

(१५१) आ । विद्युन्मत्स्रभिः । मरुतः । सुऽअर्कैः । रथैभिः । यात । ऋष्टिमत्स्रभिः । अश्वऽपणैः ।  
आ । वार्षिष्ठया । नः । इषा । वयः । न । पप्तत । सुऽमायाः ॥ १ ॥

(१५२) ते । अरुणेभिः । वरम् । आ । पिशङ्गैः । शुभे । क्रम् । यान्ति । रथतूभिः । अश्वैः ।  
रुक्मः । न । चित्रः । स्वधितिऽवान् । पृथ्या । रथस्य । ब्रह्मन्त । भूमं ॥ २ ॥

अन्वयः-१५१ (हे) मरुतः ! विद्युन्मद्भिः सु-अर्कैः ऋष्टि-मद्भिः अश्व-पणैः रथेभिः आ यात, (हे) सु-  
मायाः ! वार्षिष्ठया इषा, वयः न, नः आ पप्तत ।

१५२ ते अरुणेभिः पिशङ्गैः रथ-तूभिः अश्वैः शुभे वरं कं आ यान्ति, रुक्मः न चित्रः, स्वधिति-  
वान्, रथस्य पृथ्या भूमं जंघनन्त ।

अर्थ- १५१ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( विद्युन्मद्भिः ) विजली से युक्त या विजली की नाई अति-  
तेजस्वी, ( सु-अर्कैः ) अतिशय पूज्य, ( ऋष्टि-मद्भिः ) हथियारों से सजे हुए तथा ( अश्व-पणैः ) घोड़ों  
से युक्त होने के कारण वेग से जानेवाले ( रथेभिः ) रथों से ( आ यात ) दृधर आओ । हे ( सु-मायाः ! )  
अच्छ कुशल वीरो ! तुम ( वार्षिष्ठया इषा ) श्रेष्ठ अन्न के साथ ( वयः न ) पंछियों के समान वेगपूर्वक  
( नः आ पप्तत ) हमारे निकट चले आओ ।

१५२ (ते) वे वीर ( अरुणेभिः ) रक्षित दीख पड़नेवाले तथा ( पिशङ्गैः ) भूरे यदामी वर्ण-  
वाले और ( रथ-तूभिः ) स्वरापूर्वक रथ खींचनेवाले ( अश्वैः ) घोड़ों के साथ ( शुभे ) शुभकार्य करने के  
लिए और ( वरं कं ) उच्च कोटिका कल्याण संपादन करने के लिए, सुख देनेके लिए ( आ यान्ति ) आते  
हैं । यह वीरो का संघ ( रुक्मः न ) सुवर्णकी भौति ( चित्रः ) प्रेक्षणीय तथा ( स्वधिति-वान् ) शस्त्रों से  
युक्त है । ये वीर ( रथस्य पृथ्या ) घाहन के पहियोंकी लौहपट्टिकाओं से ( भूमं ) समूची पृथ्वी पर  
( जंघनन्त ) गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ।

भावार्थ- १५१ अपने शस्त्रास्त्र, रथ तथा रण-चातुरीके द्वारा वीर पुरुष अच्छा अन्न प्राप्त कर ले और ऐसी भायोजना  
ब्रह्म निकालें कि यह सब को यथावत् मिल जाए ।

१५२ वीर पुरुष समूची जनता का श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए अपने रथों को हथियारों तथा अन्य विशेष  
भायुषों से भली भौति सज्ज करके सभी स्थानों में संचार करें ।

टिप्पणी- [ १५१ ] ( १ ) अश्व-पणैः = ( अश्वानां पणं पत्तनं गमनं यत्र ) अश्वों के जोड़ने से वेगपूर्वक जाने-  
वाला ( रथ ) । ( २ ) सु-मायाः = ( माया = कौशल्य, दृष्टकारि ) उत्तम कार्य-कुशलता से युक्त, कलापूर्ण वस्तु  
बनानेवाले । ( ३ ) वयः न = पंछियों के समान ( आकाश में से जैसे पक्षी चले आते हैं, उसी तरह तुम आकाश-  
यानों में बैठकर आ जाओ । ) ( श्लो मंत्र ११, ३८५ ) [ १५२ ] ( १ ) रुक्मः = जिम पर छाप दीख पड़ती हो ऐसा  
सोने का टुकड़ा, अलंकार, मुहर । ( २ ) स्व-धितिः = कुंडल, शस्त्र । ( ३ ) पथिः = रथ के पहिये पर लगी हुई  
लौह पहिना, चक्र नामक एक हथियार । ( ४ ) हन् = ( हिंसागमोः ) बध करना, गति करना ( जाना ) ।

(१५३) श्रिये । कम् । वः । अर्धि । तनूपु । वाशीः । मेधा । वना । न । कृण्वन्ते । ऊर्ध्वा ।  
युष्मभ्यम् । कम् । मरुतः । सुऽजाताः । तुविद्युम्नासः । धनयन्ते । अद्रिम् ॥ ३ ॥

(१५४) अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः ।

इमाम् । धियम् । वार्कार्याम् । च । देवीम् ।

ब्रह्मा । कृण्वन्तः । गौतमासः । अर्कः ।

ऊर्ध्वम् । ननुद्रे । उत्सुऽधिम् । पियध्वै ॥ ४ ॥

अन्वयः— १५३ श्रिये कं वः तनूपु अधि वाशीः ( वर्तते ), वना न मेधा ऊर्ध्वा कृण्वन्ते, ( हे ) सु-  
जाताः मरुतः । तुवि-द्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ।

१५४ ( हे ) गौतमासः । गृध्राः वः अहानि परि आ आ अगुः, वार्-कार्या च इमां देवीं  
धियं अर्कः ब्रह्म कृण्वन्तः, पियध्वै उत्सधि ऊर्ध्वं ननुद्रे ।

अर्थ- १५३ ( श्रिये कं ) विजयध्री तथा सुख पानेके लिए ( वः तनूपु अधि ) तुम्हारे शरीरोंपर (वाशीः)  
आयुध लटकते रहते हैं; ( वना न ) वनके वृक्षों के समान [ अर्थात् धनों में पैड जैसे ऊँचे बढ़ते हैं, उसी  
तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त ] अपनी (मेधा) बुद्धिको ( ऊर्ध्वा ) उच्च कोटिकी ( कृण्वन्ते ) बना देते  
हैं । हे ( सु-जाताः मरुतः ! ) अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! ( तुवि-द्युम्नासः ) अत्यंत दिव्य मनसे  
युक्त तुम्हारे भक्त ( युष्मभ्यं कं ) तुम्हें सुख देनेके लिए ( अद्रिं ) पर्वतसे भी ( धनयन्ते ) धनका सृजन  
करते हैं [ पर्वतोंपर से सोमसदृश धनस्पति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं ] ।

१५४ हे ( गौतमासः ! ) गौतमो ! ( गृध्राः वा ) जल की इच्छा करनेवाले तुम्हें अथ ( अहानि )  
अच्छे दिन ( परि आ आ अगुः ) प्रात हो चुके हैं । अथ तुम ( वार्-कार्या च ) जलसे करनयोग्य ( इमां देवीं  
धियं ) इन दिव्य कर्मों को ( अर्कः ) पूज्य मंत्रों से ( ब्रह्म ) ज्ञानसे पवित्र ( कृण्वन्तः ) करो । ( पियध्वै )  
पानी पीनेके लिए मिले, सुगमता हो, इसलिये अथ ( ऊर्ध्वं ) ऊपर रखे हुए ( उत्सधि ) कुंडके जल को  
तुम्हारी ओर ( ननुद्रे ) नहरद्वारा पहुंचाया गया है ।

भावार्थ- १५३ समर में विजयी बनने के लिए और जनता का सुख बढ़ाने के लिए भी वीर पुरुष अपने  
समीप सदैव शस्त्र रखें । अपनी विचारमणाली को भी हमेशा परिमार्जित तथा परिष्कृत रखें । मन में दिव्य विचारों  
का संग्रह बनाकर पवतीय एवं पार्थिव धनवैभव का उपयोग समूची जनता का सुख बढ़ाने के लिए करें ।

१५४ निवासस्थलों में यथेष्ट जल मिले, सो बहुत सारी सुविधाएँ प्राप्त हुआ करती हैं, इसमें क्या संशय ?  
इस कारण से इन वीरोंने गौतम के आश्रम के लिए जल की सुविधा करवाली । पश्चात् उस स्थान में मानवी बुद्धि  
ज्ञान के कारण पवित्र हो जाए, इस स्थल से प्रभावित होकर मलयजसदृश कर्मों की पूर्ति कराई । ( मंत्र १३२, १३३  
देखिए । )

टिप्पणी- [ १५३ ] ( १ ) युष्मं = ( सु-मनः ) तेजस्वी मन, विद्या, वज्र, कामि, शोभा, शक्ति, धन, तेज, बल ।  
( २ ) अ-द्रिः = तोड़ देने में असंभव दौल पड़े, देता पर्वत, सोम कूटने का पथर, वृक्ष, मेघ, वज्र, शेर । ( ३ )  
धनयन्ते = ( धन शब्दात्करोतीति णिच् ) धन पैदा करते हैं, भावाज निकालते हैं । [ १५४ ] ( १ ) गृध्राः =  
लालची, शिक, इच्छा करनेवाला । ( २ ) वार्कार्या = ( वार्-कार्या ) जल से निष्पन्न होनेवाले ( कर्म ) । ( ३ )  
उत्स-धिः = कर्म, कुंड, जलानय, भावदी । ( ४ ) धीः = बुद्धि, कर्म ।

(१५५) एतत् । त्यत् । न । योजनम् । अचेति ।  
 सस्यः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः । गुः ।  
 पश्यन् । हिरण्यचक्रान् । अयोदपान् ।  
 विधावतः । वराहन् ॥ ५ ॥

(१५६) एषा । स्या । वः । मरुतः । अनुभर्त्री ।  
 प्रति । स्तोभति । गुधतः । न । वाणी ।  
 अस्तोभयत् । वृथा । आसाम् । अनु । स्वधाम् । गमस्त्योः ॥ ६ ॥

अन्वय — १५५ (हे) मरुत हिरण्य चक्रान् अयो-दपान् वि-धावत वर-आहन् व. पश्यन् गोतम यन् एतत् योजन सस्य ए त्यत् न अचेति ।

१५६ (हे) मरुत ! गमस्त्यो स्त्र धा अनु स्या एषा अनु-भर्त्री वाघत वाणी न व प्रति स्तोभति, आसा वृथा अस्ताभयत् ।

अर्थ— १५५ हे ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( हिरण्य-चक्रान् ) स्वर्णविभूषित पहिये की शक्र के हथियार धारण करनेवाले ( अयो-दपान् ) फौलाद् की तेज टाढोंसे धाराओं से युक्त हथियार लेकर ( वि धावतः ) भीतिमाति कि प्रकारों से शत्रु तोंपर दौडकर दूट पडनेवाले ओर ( वर-आ-हन् ) बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले ( व ) तुम्हें ( पश्यन् ) देखनेवाले ( गोतमः ) ऋषि गोतमने ( यत् एतत् ) जो यह तुम्हारी ( योजन ) आयोजना छन्दोबद्ध स्तुति ( सस्य ह ) गुप्त रूपसे वर्णित कर रही है, ( त्यत् ) यह सत्यसुच ( अन् अचेति ) अचर्णनीय है ।

१५६ हे ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! तुम्हारे ( गमस्त्यो ) याहुओंकी ( स्व धा अनु ) धारक शक्तिको शूरता परीक्षण म रख कर ( स्या एषा ) वही यह ( अनु भर्त्री ) तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली ( वाघत वाणी ) हम-जैने स्तोताओंकी वाणी ( न ) अत्र ( यः प्रति स्तोभति ) तुममेंसे प्रत्येक का वर्णन करती है। पहले भी ( आसा ) इन वाणियों ने ( वृथा ) किसी विशेष हेतुके सिवा इसी भीति ( अस्तोभयत् ) सराहना की थी ।

भाष्यार्थ— १५५ वीरोंको चाहिए कि वे अपने वीर्य शस्त्र साय लेकर शत्रुदलपर विभिन्न प्रकारोंसे हमलोंका सूत्रपात कर हम-आर उन्हीं निवारितार कर डाल । इस तरह शत्रुओंको चटमूलसे विनष्ट करना चाहिए । ऐसे वीरोंका समुचित बयान करनेके लिए कवि वीर गाथाओंका सूत्रन करे और चतुर्दिक इन वीर गीतों तथा काव्यों का गायन शुरू होगा ।

१५६ वीर पुत्र जब युद्धभूमि में अपनी शूरता प्रकट करते हैं, जब अनेक कार्योंने शत्रुजन बड़ी आसानी से हो जाता है और ध्यान म रखनेयोग्य बात है कि, सभी कवि उन काव्यों की रचना में स्वयस्कृति से भाग लेते हैं। इसीलिए उन काव्यों के गायन एवं परिवर्तन से जनता में बड़ी आसानी से जोदाही भाव पैदा हो जाते हैं ।

टिप्पणी— [ १५५ ] ( १ ) चक्र = पहिया, चक्रके आकारवाला हथियार । ( २ ) हिरण्य-चक्र = सुवर्णकी परष्ठीकारी से विभूषित पहिया जैसे दिखाने देनेवाला शस्त्र । ( ३ ) वर-आ हु ( वर भा इन् ) = बलिष्ठ शत्रुको धराशायी करनेवाला ( ४ ) योजन = जोडना, रचना, तैयारी, शत्रुओं की रचना करके काश्य बनाना । ( ५ ) अयो-दपू = फौलाद् का घना एक हथियार जिसमें बड़े तीक्ष्ण धाराएँ पाई जाती हैं । ( ६ ) वि-धाव् = शत्रु पर भीति भीति के प्रकारों से घवाह करना । ( ७ ) सस्य = गुप्त ढंग से दलके क ५।३.०२ और ७।५।७, ३८९ । [ १५६ ] ( १ ) गमस्ति = किरण, गाडी का घुड़वग, हाथ कोडनी के भाग हाथ, सूर्य, किरण । ( २ ) स्व-धा = अपनी धारक शक्ति, सामर्थ्य, शक्त । ( ३ ) वृथा = शर्ष, अनावश्यक, विशेष कारण के सिवा, निरव्यय भाव से, स्वाभाविक रूप से ।

विवोदासपुत्र परच्छेषऋषि ( ऋ ११३१०८ )

(१५७) मो इति । सु । वः । अस्त् । अभि । तानि । पाँस्या । सना । भूवन् । धुम्नानि ।  
मा । उत । जारिपुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिपुः ।  
यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।  
अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् । च । दुस्तरम् ॥ ८ ॥

मिप्राचरणपुत्र अगस्त्यऋषि ( ऋ ११६११-१५ )

(१५८) तत् । तु । वोचाम् । रभसाय । जन्मने । पूर्वम् । महिस्त्वम् । वृषभस्य । केतवे ।  
प्रेधाइव । यामन् । मरुतः । तुविऽस्वनः । युधाइव । शक्राः । त्विपाणि । कर्तन ॥ १ ॥

अन्वयः— १५७ ( हे ) मरुतः ! वः तानि सना पाँस्या अस्त् मो सु अभि भूवन्, उत धुम्नानि मां जारिपुः, उत अस्त् पुरा ( मा ) जारिपुः, वः यत् चित्रं नव्यं अ-मर्त्यं घोषात् तत् युगे युगे अस्मासु, यत् च दुस्तरं यत् च दुस्तरं दिधृत ।

१५८ ( हे ) मरुतः ! रभसाय जन्मने, वृषभस्य केतवे, तत् पूर्वं महित्वं तु वोचाम्, ( हे ) तुवि-स्वन शक्राः ! युधाइव यामन् प्रेधाइव त्विपाणि कर्तन ।

अर्थ— १५७ हे ( मरुतः ) वीर मरुतो ! ( वः तानि ) तुम्हारे वे ( सना ) सनातन पराक्रम करनेवाले ( पाँस्या ) बल ( अस्मत् ) हमसे ( मो सु अभि भूवन् ) कभी दूर न होने पायें । ( उत ) उसी प्रकार हमारे ( धुम्नानि ) यश ( मा जारिपुः ) कदापि क्षीण न हों । ( उत ) वैसे ही ( अस्मत् पुरा ) हमारे नगर ( [ मा ] जारिपुः ) कभी घोरान या ऊजड न हों । ( वः यत् ) तुम्हारा जो ( चित्रं ) आश्चर्यकारक ( नव्यं ) नया तथा ( अ-मर्त्यं ) अमर ( घोषात् तत् ) गोशालाओंसे लेकर मानवोंतक धन है, वह सभी ( युगे युगे ), प्रत्येक युग में ( अस्मासु ) हम में स्थिर रहे । ( यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं ) जो कुछ भी अजिन्मय धन है, वह भी हमें ( दिधृत ) दे दो ।

१५८ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( रभसाय जन्मने ) पराक्रम करने के लिए सुयोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिये और ( वृषभस्य केतवे ) बलिष्ठों के नेता बनने के लिए ( तत् ) वह तुम्हारा ( पूर्व ) प्राचीन कालसे चला आ रहा ( महित्वं ) महत्त्व ( तु वोचाम् ) हम ठीक ठीक कह रहे हैं । हे ( तुविस्वनः ) गरजनेवाले तथा ( शक्राः ! ) समर्थ वीरो ! ( युधाइव ) युद्धवेला के समानही ( यामन् ) शशुदल पर चढ़ाई करने के लिए ( प्रेधाइव ) धधकते हुए अग्नि की नाई ( त्विपाणि कर्तन ) बल प्राप्त करो ।

भाषार्थ— १५७ हमेशा वीर पराक्रम के कृत्य कर दिखलायें, हमें भी उसी तरह वीरतापूर्ण कार्य निष्पन्न करने की शक्ति मिले । उस शक्ति के फलस्वरूप हमारा यश बढ़े । हमारे नगर समृद्धिदायी बन । प्रतिबल वीरो का बल प्रकट हो जाए । हमें इस भौतिक का धन मिले कि, सन्तु कभी उसे हम से न छीन ले सके ।

१५८ हम सामर्थ्यवान् बनें और 'नेत्रा के पद पर बैठ सकें, इसीलिये हम वीरों के साथ वा शायतन तथा पशुन करते हैं । युद्ध छिड़ जाने के मौके पर जिस तरह तुम्हारी हलचलें या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें वैसे ही शृङ्खलण बनाये रखो । उन तैयारियों में तनिक भी दीलापन न रहने पाय, ऐसी सवधानी रखनी चाहिये ।

टिप्पणी— [ १५७ ] (१) घोषाः = गो-शाला, जहाँ गायें बैधी रहती हैं, बालोंका बाधा । [ १५८ ] (१) रभसः = बलवान्, सनाक, शक्ति, सामर्थ्य, जोर, शक्ति, क्रोध, आनन्द । ( २ ) वृषभः = बलवान्, वर्षा करनेवाला । ( ३ ) वृषभस्य केतु = बलिष्ठ वीर वा लक्षण, शक्ति वा चिन्ह । ( ४ ) केतु = प्रमुख, नेता, आगेपर, चिन्ह, ध्वज ।

(१५९) नित्यम् । न । सूनुम् । मधु । विभ्रतः । उप । क्रीळन्ति । क्रीळाः । विदधेषु । घृष्वयः ।  
 नक्षन्ति । रुद्राः । अवंसा । नमस्विनम् । न । मर्धन्ति । स्वस्तवसः । हविःऽकृतम् ॥२॥  
 (१६०) यस्मै । ऊमासः । अमृताः । अरासत । रायः । पोषम् । च । हविषा । ददाशुषे ।  
 उक्षन्ति । अस्मै । मरुतः । हिताःऽइव । पुर । रजांसि । पर्यसा । मयःऽभुवः ॥३॥

अन्वय — १५९ नित्यं सूनुं न मधु विभ्रतः घृष्वयः क्रीळाः विदधेषु उप क्रीळन्ति, रुद्राः नमस्विनं  
 अबसां नक्षन्ति, स्व तवसः हविस्-कृतं न मर्धन्ति ।

१६० ऊमास अ-मृताः मरुतः यस्मै हविषा ददाशुषे रायः पोषं अरासत अस्मै हिता इव  
 मयो-भुव रजांसि पुर पर्यसा उक्षन्ति ।

अर्थ- १५९ (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्र को याधवस्तु दे देता है, वैसे ही  
 सब के लिए (मधु विभ्रतः) मिठासभरे रस का धारण करनेवाले (घृष्वयः) युद्धसंघर्षमें निपुण और  
 (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदधेषु उप क्रीळन्ति) युद्धों में मानों खेलकूद में लगे हों,  
 इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं । (रुद्राः) शत्रुको हलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकों को  
 (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्ति से सुरक्षित रखते हैं । (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर  
 (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवाले को (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ।

१६० (ऊमास) रक्षण करनेवाले, (अ-मृता.) अमर वीर मरतों ने (यस्मै हविषा ददाशुषे)  
 जिस हविष्यान्न देनेवाले को (राय पोषं) धन की पुष्टि (अरासत) प्रदान की- बहुतसा धन दे दिया-  
 (अस्मै) उसके लिए (हिता इव) फव्वानाकारक मित्रों के समान (मयो-भुव) सुख देनेवाले ये  
 वीर (रजांसि) हल चलाई हुई भूमि पर (पुर पर्यसा) बहुत जल से (उक्षन्ति) यर्षा करते हैं ।

भावार्थ- १५९ जिस तरह पिता अपने पुत्र को खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरों को चाहेपि कि वे भी  
 सभी लोगों को पुत्रवत् मान उन्हें खानपान की वस्तुएँ प्रदान करें । ये वीर हमेशा खिलाडीपन से पारस्परिक बर्ताव  
 करें और घर्षयुद्ध में कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें । शत्रुओं को हटाकर साधु जनों का संरक्षण करना चाहेपि और  
 दानी उदार लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहेपि ।

१६० सब के संरक्षण का तथा उदार दानी पुरवों के भरणपोषण का बीड़ा वीरों को उठाना पड़ता है ।  
 वृद्धि वीर समूची जनता के हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं ।

टिप्पणी- [ १५९ ] ( १ ) मधु = मीठा, मीठा रस, शहद, सोमरस । ( २ ) नित्य = हमेशा का, न बदलने-  
 वाला, सतत, उभों का एवों रहनेवाला । ( ३ ) नित्य सूनुः = औरस पुत्र, जिसका दूसरे का होना असंभव है । ( ४ )  
 घृष्वयः = ( ४ ) सघर्षे श्वयोषां च ) चडाऊपरी में निपुण । [ १६० ] ( १ ) ऊमा = ( अर् रक्षणे ) =  
 रक्षा करनेवाला, अच्छा मित्र, प्रिय मित्र । ( २ ) रजस् = पृथि, जोती हुई जमीन, उर्वर भूमि, अतिशुद्ध ।  
 मात्र १८८ देखिए ।

(१६१) आ । ये । रजांसि । तर्विपीभिः । अच्यत । प्र । वः । एवासः । स्वऽयतासः । अग्रजन् । भयन्ते । विश्वा । भुवनानि । हर्म्या । चित्रेः । वः । यामः । प्रऽयतासु । ऋष्टिषु ॥ ४ ॥

(१६२) यत् । त्वेपऽयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठम् । नर्याः । अचुच्यवुः । विश्वः । वः । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽह्व । प्र । जिहति । ओपधिः । ॥५॥

अन्वयः- १६१ ये एवासः तविपीभि रजांसि अच्यत, स्व-यतासः प्र अग्रजन्, प्र-यतासु वः ऋष्टिषु विश्वा भुवनानि हर्म्या भयन्ते, वः यामः चित्रः ।

१६२ त्वेप-यामाः यत् पर्वतान् नदयन्त, वा नर्या दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः, व अज्मन् विश्व-वनस्पति भयते, ओपधि- रथियन्तीऽह्व प्र जिहति ।

अर्थ- १६१ (ये एवासः) जो तुम वेगवान् घोर ( तविपीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा यलोंद्वारा ( रजांसि अव्यत ) सब लोगों का संरक्षण करते हो, तथा ( स्व यतासः ) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर ( प्र अग्रजन् ) वेगपूर्वक दौड़ जाते हो और जब ( प्र-यतासु वः ऋष्टिषु ) अपने हथियारों को आगे धकेलते हो, उस समय ( विश्वा भुवनानि ) सारे भुवन, ( हर्म्या ) यड़े यड़े प्रासाद भी ( भयन्ते ) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि ( वः यामः ) तुम्हारी यह हलचल ( चित्रः ) सबमुच आश्चर्यजनक है ।

१६२ ( त्वेप-यामाः ) वेगपूर्वक चढ़ाई करनेवाले ये घोर ( यत् ) जब ( पर्वतान् नदयन्त ) पहाड़ों को निनादमय यना डालते हैं, ( वा ) उसी प्रकार ( नर्याः ) जनता का हित करनेवाले ये घोर जब ( दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः ) अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग पर से जाने लगते हैं, उस समय हे घोरों ! ( वः अज्मन् ) तुम्हारी इस चढ़ाई के फलस्वरूप ( विश्वः वनस्पतिः ) सभी वृक्ष ( भयते ) भयच्यकुल हो जाते हैं और सभी ( ओपधिः ) औपधियों भी ( रथियन्तीऽह्व ) रथ पर बैठी हुई महिला के समान ( प्र जिहति ) विकंपित हुआ करती हैं ।

भावार्थ- १६१ ये घोर सब की रक्षा में दत्तचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर दृष्ट पड़ते हैं, तब स्वयं स्फूर्ति से यह सब कुछ होता है, इसलिए सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है । इन घोरों की चढ़ाई में भीषणता पर्वत मात्रा में पाई जाती है ।

१६२ जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढ़ाई करने के लिए पहाड़ों में तथा अन्तरिक्ष में घड़े जोर से आक्रमण कर देते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं ।

टिप्पणी- [ १६१ ] ( १ ) एव. ≈ जानेवाला, वेगवान्, घपक, घोडा । ( २ ) स्व-यत = ( यन् उपरमे ) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाला । [ १६२ ] ( १ ) त्वेप-याम = ( त्वेप ) वेगपूर्वक किया हुआ ( यामः ) आक्रमण जिसे Blitzkrieg कहते हैं, विद्युत्वेग से शत्रु पर धावा करना । ( २ ) वनस्पति = ( वनस्-पति. ) ≈ पेड़, खंभा, मूष, सोम, बड़ा भासि वृक्ष ।

(१६३) यूयम् । नः । उग्राः । मरुतः । सुचेतुना । अरिष्टग्रामाः । सुसृतिम् । पिपर्तन ।  
 यत्रे । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिबिर्ऽदती । रिणाति । पद्यः । सुधिताऽइव । बर्हणा ॥ ६ ॥  
 (१६४) प्र । स्कम्भऽदेष्णाः । अनवभ्रस्राधसः । अलातृणासः । विदथेषु । सुस्तुताः ।  
 अर्चन्ति । अर्कम् । मृदिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पांस्या ॥ ७ ॥

अन्वयः— १६३ सु-धिताइव बर्हणा यत्र च क्रिबिर्-दती दिद्युत् रदति, पद्यः रिणाति, (हे) उग्राः मरतः ! यूयं सु-चेतुना अरिष्ट ग्रामाः नः सु-मतिं पिपर्तन ।

१६४ स्कम्भ-देष्णाः अन्-अवभ्र-राधसः अल-आतृणासः सु-स्तुताः विदथेषु मृदिरस्य पीतये अर्कं अर्चन्ति, वीरस्य प्रथमानि पांस्या विदुः ।

अर्थ- १६३ ( सु-धिताइव ) अच्छे प्रकार पकड़े हुए ( बर्हणा- ) हथियार के समान ( यत्र ) जिस समय ( य ) तुम्हारा ( क्रिबिर्-दती ) तीक्ष्ण रूप से वेदनेदार और ( दिद्युत् ) चमकौली तलवार ( रदति ) शत्रुदल के टुकड़े टुकड़े कर डालती है, तथा ( पद्यः रिणाति ) जानवरों को भी मार डालती है, उस समय हे ( उग्राः मरत ! ) शूर तथा मन में भय पैदा करनेवाले वीर मरतो ! ( यूयं ) तुम ( सु-चेतुना ) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक ( अ-रिष्ट-ग्रामाः ) गाँवों का नाश न करते हुए ( नः सु-मतिं ) हमारी अच्छी बुद्धि को बढाते हो ।

१६४ ( स्कम्भ देष्णाः ) आश्रय देनेवाले, ( अन् अवभ्र राधसः ) जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, ( अल आतृणासः ) शत्रुओं का पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा ( सुस्तुताः ) अत्यन्त सराहनीय वीरों ( विदथेषु ) युद्धस्थलों तथा यमों में ( मृदिरस्य पीतये ) सोमरस यीन के लिए ( अर्कं प्र अर्चन्ति ) पूजनीय देवता की भली भँति पूजा करते हैं । क्योंकि यहाँ ( वीरस्य ) वीरों के ( प्रथमानि ) प्रथम धेर्णा में परिगणनीय ( पांस्या विदुः ) बल तथा पुरपाय जानते हैं ।

भावार्थ- १६३ अपने तीक्ष्ण हथियारों से वीर सैनिक शत्रु का विनाश कर देते हैं, इतनाही नहीं अपितु शत्रु के पशुओं का भी वध कर डालते हैं । हे वीरो ! तुम्हारे शुभ भंत कारण से हमारी सुबुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामों का विनाश न करो ।

१६४ वीर लोग ही अन्य सज्जनों को आश्रय देते हैं, अपने धनसम्वह कर सली प्रकार संरक्षण करते हैं, शत्रुओं का विनाश करते हैं और सोमरस का सेवन करके युद्धों में अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्मा की उपासना भी करते हैं । ऐसे वीर ही अन्य वीरों की शक्तियों की यथोचित जँच करने की क्षमता रखते हैं ।

टिप्पणी— [ १६३ ] ( १ ) बर्हणा = शस्त्र, नोकवाला शस्त्र, नोक । ( २ ) ग्राम = देहात, जाति, समूह, संप । ( ३ ) सु-चेतु = उत्तम मन । ( ४ ) रदू ( विडेलने ) = टुकड़ा करना, सुरचना । ( ५ ) दती = खट करनेवाला, काटनेवाला । [ १६४ ] ( १ ) स्कम्भः = स्तम्भ, आश्रय, आधारस्तम्भ । ( २ ) देष्णा = दान, देन । ( ३ ) अव-भ्र = भाग के जाना, छीन लेना, भीषी राह से न ले जाकर अज्ञात पगडंडी से ले जाना । ( ४ ) राधस = सिद्धि, भद्र, कृपा, दया, देन, संपत्ति । ( ५ ) अलातृणासः = [ अल ( अलं ) + आतृणास = वध करनेवाले ] पूर्ण रूपण उच्चारण करनेहारे ।



- (१६५) शतभुजिभिः । तम् । अभिहृतेः । अघात् । पूःभिः । रक्षत । मरुतः । यम् । आर्त ।  
 जनम् । यम् । उग्राः । तवसः । विरिश्चिनः ।  
 पाथनं । शंसात् । तनयस्य । पुष्टिपु ॥ ८ ॥
- (१६६) विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वः । मिथस्पृध्याइव । तविपाणि । आर्हिता ।  
 अंसेपु । आ । वः । प्रपथेषु । सादयः ।  
 अक्षः । वः । चक्रा । समय्या । वि । ववृते ॥ ९ ॥

अन्वय — १६५ (हे) उग्रा तवस. वि-रिश्चिनः मदत । यं अभिहृतेः अघात् आवत, यं जनं तनयस्य पुष्टिपु शंसात् पाथन, तं शत-भुजिभिः पूभिः रक्षत ।

१६६ (हे) मरुतः ! व रथेषु विश्वानि भद्रा, व अंसेपु आ मिथ-स्पृध्याइव तविपाणि आर्हिता, प्र पथेषु सादय, व अक्ष चक्रा समय्या वि ववृते ।

अर्थ- १६५ हे ( उग्राः ) शूर, ( तवसः ) बलिष्ठ और ( वि-रिश्चिन ) समर्थ ( मरुत ! ) धीर-मरुतो ! ( य ) जिसे ( अभिहृते ) विनाश से और ( अघात् ) पापसे तुम ( आवत ) सुरक्षित रखते हो, ( यं जनं ) जिस मनुष्य का ( तनयस्य पुष्टिपु ) घट्ट अपने बालबच्चों का भरणपोषण कर ले, इसलिये ( शंसात् ) निन्दा से ( पाथन ) बचाते हो, ( तं ) उसे ( शत भुजिभि ) सैकड़ों उपभोग के साधनों से युक्त ( पूभिः ) दुर्गों से ( रक्षत ) रक्षित करो ।

१६६ हे ( मरुत. ! ) धीर मरुतो ! ( व रथेषु ) तुम्हारे रथों में ( विश्वानि भद्रा ) सभी कल्याणकारण वस्तुएँ रची हैं । ( व अंसेपु आ ) तुम्हारे कंधों पर ( मिथ-स्पृध्याइव ) मानों एक दूसरे से चढाऊपरी करनेवाले ( तविपाणि ) बलयुक्त हथियार ( आर्हिता ) लटकाने हुए हैं । ( प्र-पथेषु ) सुदूर मार्गों में यात्रा करने के लिए ( सादयः ) खानेपाने की चीजों का संग्रह पर्याप्त है । ( व अक्ष चक्रा ) तुम्हारे रथके पहियों को जोड़नेवाला डंडा तथा उसके चक्र ( समय्या वि ववृते ) उचित समय पर घूमते हैं ।

भावार्थ- १६५ जो बलवान् तथा धीर होते हैं, वे जनता को नाश तथा पापकृत्यों एवं निन्दा से बचाने की चेष्टा में सफलवा पाते हैं । इन धीरों के भुजबल के सहारे जनता सुरक्षित और अकुतोभय होकर अच्छे गर्वों से युक्त नगरी में निवास करते हैं और वहाँ पर अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण करते हैं ।

१६६ धीरों के रथों पर सभी आवश्यक युद्धसाधनों का संग्रह रहता है । वे अपने सारीरों पर हथियार धारण करते हैं । दूर की यात्रा के लिए सभी जरूरी खानेपाने की चीजें रथों पर इकट्ठी की हुई हैं और इनके रथों के पहिये भी उचित बेला में जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते रहते हैं ।

टिप्पणी- [ १६५ ] ( १ ) अभिहृति = विनाश, हार, हानि, क्षति, पराजय । ( २ ) पुर् = नगर, पुरी, फौका, तट । ( ३ ) भुजि = ( मानवी जीवन के लिए आवश्यक ) उपभोग । ( ४ ) शंस = स्तुति, आशीर्वाद, प्राय, निन्दा । ( ५ ) वि-रिश्चिन = बद्रा, विशेष स्तुत्य, विशेष सामर्थ्य से युक्त । [ १६६ ] ( १ ) प्र पथ = क्या मार्ग, यात्रा, दूर का स्थान, चौड़ी राह या सड़क । ( २ ) समय्या = ( स-भया ) = शमीप, मौके पर, निवृत्त समय में मिश्रकर जाना । ( ३ ) वृत् = घूमना ( ४ ) अक्ष. = रथ के पहियों को जोड़नेवाला डंडा ।

- (१६७) भूरीणि । भद्रा । नयैषु । बाहुषु ।  
 वक्षःऽसु । रुक्माः । रभसासः । अञ्जयः ।  
 अंसेषु । एताः । पविषु । क्षुराः । अधि ।  
 वयः । न । पक्षान् । वि । अनु । श्रियः । धिरे ॥ १० ॥
- (१६८) महान्तः । महा । विऽभ्वः । विऽभूतयः ।  
 दूरेऽदृशः । ये । दिव्याःऽइव । स्तुऽभिः ।  
 मन्द्राः । सुऽजिह्वाः । स्वरितारः । आसऽभिः ।  
 सम्ऽमिश्राः । इन्द्रे । मरुतः । परिऽस्तुभः ॥ ११ ॥

अन्ययः— १६७ नयैषु बाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्ष सु रुक्मा, अंसेषु एताः रभसास. अञ्जयः, पविषु अधि क्षुराः, वयः पक्षान् न, अनु धियः वि धिरे ।

१६८ ये भरतः महा महान्तः विभ्वः वि भूतय. स्तुभिः दिव्या इव दूरे-दृशः (ते) मन्द्राः सु-जिह्वाः आसभिः स्वरितारः, इन्द्रे सं-मिश्राः परि-स्तुभः ।

अर्थ— १६७ (नयैषु) जनता का हित करनेवाले इन वीरों की (बाहुषु) भुजाओं में (भूरीणि भद्रा) यथेष्ट कल्याणकारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलों पर मुहरों के द्वार तथा (अंसेषु) कन्धों पर (एताः) विभिन्न रंगवाले, (रभसासः) सुदृढ (अञ्जयः) वाँटभूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रों पर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंछी जिस तरह डैने धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनु श्रियः वि धिरे) भौँति भौँति की शोभाएँ वे धारण करते हैं ।

१६८ (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (महा) अपनी महत्ता के कारण (महान्तः) घड़े (विभ्वः) सामर्थ्यवान् (वि भूतयः) ऐश्वर्यशाली, तथा (स्तुभिः) नक्षत्रों से युक्त (दिव्या इव) स्वर्गीय देवता-गण की नाईं सुहानेवाले, (दूरे दृश) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सु-जिह्वाः) अच्छी जीभ रहने के कारण अपने (आसभिः) मुखांसे (स्वरितारः) मली भौँति बोलनेवाले हैं । वे (इन्द्रे सं-मिश्राः) इंद्र की सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परि-स्तुभः) सभी प्रकार से सराहनीय हैं ।

भावार्थ— १६७ जनता का हित करने के लिए वीरों के बाहु प्रस्तुत होने तथा भागे बढ़ने लगते हैं और उनके बरोमाव पर एवं कंधों पर विभिन्न धातुभूषण चमकते हैं । उनके शरभ तीक्ष्ण धाराओं से युक्त होते हैं । पंछी जिस भौँति अपने डैनों से सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार वे वीर इन सभी भाषुणों एवं भाषुओं से बड़े भले प्रतीत होते हैं ।

१६८ वीरों में श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारण से वे महान तथा ऊँचे पद पर विराजमान होते हैं और वे शरपिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उल्लसित, अच्छे भाषण करनेवाले और परमात्माके कार्य का बीड़ा उठाने के कारण सभी के लिए प्रसन्नोप हैं ।

टिप्पणी— [१६७] (१) एत. = तेजस्वी, भौँति भौँति के रंगों से युक्त, वेग से जानेवाला । [१६८] (१) वि-भु. = बलवान्, प्रमुख, समर्थ, स्थायक, शासक । (२) दूरे-दृशः = दूर से ही दिखाई देनेवाले, दूर दृष्टि से युक्त, दूरदर्शी । (३) वि-भूति = विशेष ऐश्वर्ययुक्त, वाक्त्रिभान्, षट्पन्न, पल, वैभवशालिता । (४) सु-जिह्वाः = मधुर भाषण करनेवाला, अच्छा वाणी । (५) स्वरितृ = उत्तम स्वर से बोलनेवाला ।

(१६९) तत् । वः । सुज्ञाताः । मरुतः । महिस्त्वन्म् । दीर्घम् । वः । दात्रम् । अदितेः ऽइव । व्रतम् ।  
इन्द्रः । चन । त्यजसा । वि । हुणाति । तत् । जनाय । यस्मै । सुऽकृते । अराध्वम् ॥ १२ ॥

(१७०) तत् । वः । जामिस्त्वम् । मरुतः । परे । युगे । पुरु । यत् । शंसम् । अमृतासः । आवत ।  
अया । धिया । मनवे । श्रुष्टम् । आव्य ।  
साकम् । नरः । दंसनैः । आ । चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अन्वयः- १६९ ( हे ) सु-जाताः मरुतः ! वः तत् महित्वनं अदिते इव दीर्घं व्रतं वः दात्रं, यस्मै सु-कृते  
जनाय त्यजसा अराध्वं, तत् इन्द्रः चन वि हुणाति ।

१७० ( हे ) अमृतासः मरुतः ! वः तत् जामित्वं, यत् परे युगे शंसं पुरु आवत, अया धिया  
मनवे साकं दंसनैः नरः श्रुष्टिं आव्य आ चिकित्रिरे ।

अर्थ- १६९ हे ( सु-जाताः मरुतः ! ) कुलीन वीर मरुतो ! ( वः ) तुम्हारा ( तत् महित्वनं ) वह वड-  
प्पन सचमुच प्रसिद्ध है । ( अदिते-इव दीर्घं व्रतं ) भूमि के विस्तृत वन के समान ही ( वः दात्र )  
तुम्हारी उदारता बहुत बड़ी है, ( यस्मै ) जिस ( सु कृते ) पुण्यात्मा ( जनाय ) मानव को तुम ( त्यजसा )  
अपनी त्यागवृत्ति से जो ( अराध्वं ) दान देते हो, ( तत् ) उसे ( इन्द्र चन [ चन ] वि हुणाति ) इन्द्र तक  
विनष्ट नहीं कर सकता है ।

१७० हे ( अमृतासः मरुतः ! ) अमर वीर मरुत्गण ! ( वः तत् जामित्वं ) तुम्हारा वह भाई-  
पन बहुत प्रसिद्ध है, ( यत् ) जिस ( परे युगे ) प्राचीन काल में निर्मित ( शंसं ) स्तुति को सुनकर तुम  
हमारी ( पुरु आवत ) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी ( अया धिया ) इस बुद्धि से ( मनवे ) मनुष्य-  
मात्र के लिए ( साकं नरः ) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम ( दंसनैः ) अपने कर्मों  
से ( श्रुष्टिं आव्य ) पेश्वर्य की रक्षा कर के उस में विद्यमान ( आ चिकित्रिरे ) दोषों को दूर हटाते हो ।

भाषार्थ- १६९ वीर पुरष बड़ी भारी उदारता से जो दान देते हैं, उसी से उनका वडप्पन प्रकट होता है । पृथ्वी  
के समान ही ये बड़े विशालचेता एवं उदार हुमा करते हैं । शुभ कर्म करनेवाले को इन से जो सहायता मिलती है,  
वह अप्रतिम तथा बेजोड़ ही है । एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ता को दे डालें, तो कोई भी इस दान की  
छान नहीं सकता । वीरों की देन को छान लेने की मजाल नला किस में होगी ? विशेषतया जब सुयोग्य वार्यकर्ता  
उम दान को पाने के अधिकारी हों ।

१७० तुम वीरों का आतृप्रेम सचमुच अवर्णनीय है । अतीतकाल में तुम भली भाँति हमारी रक्षा कर  
चुके ही हो, लेकिन आगामी युग में भी उसी उदार मनोवृत्ति से सारे मानवों की रक्षा के लिए तुम सभी वीर मिल-  
जुलकर एक दिल से अपने कर्मद्वारा जिस रक्षण के गुरुतर कार्य को उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया बुद्धिहीन  
एवं अचिकल है ।

टिप्पणी- [ १६९ ] ( १ ) अदितिः = ( अ + दितिः ) अलण्डित, धरती, प्रकृति, गाय ( अदि + ति ) =  
अन्न देनेवाली, खानेकी चीजें देनेवाली । ( २ ) दात्रं = दान, देन । ( ३ ) त्यजस् = त्याग, अर्पण, दान । [ १७० ]  
, १ ] जामिः = एक ही बंधा या परिवार में उत्पन्न होने से भाईपहचान का सम्बन्ध, सख्त, स्नेह । जामित्वं = भाईपन,  
भाई का प्यार । ( २ ) श्रुष्टिः = सुनना, सहायता, घर, वैभवसंपन्नता, सुख, ऐश्वर्य । ( ३ ) दंसनं = कर्म ।  
( ४ ) आ-चिकित् = चिकित्सा करना, दोष दूर करना ।

(१७१) येन । दीर्घम् । मरुतः । शूशवाम । युष्माकेन । परीणसा । तुरासः ।  
आ । यत् । ततनन् । वृजनं । जनासः । एभिः । यज्ञेभिः । तत् । अभि । इष्टिम् ।  
अश्याम् ॥ १४ ॥

(१७२) एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः ।  
आ । इषा । यासिष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम् । इयम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥ १५ ॥

अन्वय — १७१ (हे) तुरास मरतः । येन युष्माकेन परीणसा दीर्घं शूशवाम, यत् जनास वृजने आ ततनन्, तत् इष्टि एभिः यज्ञेभिः अभि अश्याम् ।

१७२ (हे) मरत ! मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः, एष स्तोमः, इयं गीः वः, इषा तन्वे आ यासिष्ट, वया इयं वृजन जीर दानुं विद्याम् ।

अर्थ- १७१ हे (तुरास मरत!) वेगवान् वीर मरतो ! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे ऐश्वर्य के स्तयोगसे हम (दीर्घ) बड़ेबड़े कार्य (शूशवाम) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) सभ्रामों में (आ ततनन्) चतुर्विध फल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टि) उस तुम्हारे शुभ इच्छा को हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मों से (अभि अश्यां) प्राप्त हों ।

१७२ हे (मरत, ' ) वीर मरतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्ति के तथा (मान्यस्य) संमानार्थ (कारो) कारीगर या कथिका किया हुआ (एष स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है । यह सारी सहायना हमारे (इषा) अन्न के साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीर की वृद्धि करने के लिए तुम्हें (आ यासिष्ट) प्राप्त हो जाए; उसी प्रकार (वयां) हमें (इयं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर दानु) शीघ्र विजय (विद्याम्) प्राप्त हो जाए ।

भाषार्थ १७१ तुम्हारी महान् सहायता पाकर ही हम बड़े बड़े कर्म कर चुके हैं और उसी तुम्हारी सहायता से सभी लोग भौति भौति के बुद्धों में विजयी बन चुके हैं । हमारी यही छालसा है कि, अब शुरु किये जानेवाले कर्मों में वही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिल जाए ।

१७२ उच्च कोटि के कवि का बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरों का उत्साह बढ़ाने के लिए उन्हें प्राप्त हो जाय और हमें अन्न सामर्थ्य तथा विजय मिले ।

टिप्पणी- [१७१] ( १ ) इष्टि = इच्छा, कामना, यज्ञ, अभीष्ट विषय । ( २ ) परीणसु = (पू - पालनपूरणयो = विपुलता, अधिकता, अपरन्त पेशर्वयुक्त । बहुनाम ( निघ ३।१ ) । ( ३ ) शूशु = ( शूशु-गतौ ) जाना, चपलता । [ १७२ ] ( १ ) मान्दार्य = ( मन्दु = आनन्दित होना, प्रकाशना, स्तुति करना ) हर्षित मनवाला, प्रकाशमान, स्तुतिपाठक । ( २ ) कारः = करनेवाला, कारीगर, कवि, स्तोत्र । ( ३ ) जीर-दानु = ( जीर = शीघ्र, चपल गति, लघुवार, दानु = विजयी, दान, वायु, वैभव । ) शीघ्र उद्यति, शीघ्र विजयप्राप्ति । ( ४ ) वृजनं = शत्रु को हरा देने की शक्ति, वह सामर्थ्य जिससे शत्रु दूर हो जाय ।

(क० १।१६।१२-११)

(१७३) आ । नः । अर्धःऽभिः । मरुतः । यान्तु । अच्छ ।

ज्येष्ठेभिः । वा । बृहत्ऽदिवैः । सुऽमायाः ।

अर्ध । यत् । एषाम् । निऽयुतः । परमाः । समुद्रस्य । चित् । धनयन्त । परे ॥ २ ॥

(१७४) मिभ्यक्ष । येषु । सुऽर्धता । घृताची । हिरण्यऽनिर्णिक् । उपरा । न । ऋष्टिः ।

गुहा । चरन्ती । मनुषः । न । योपा । सभाऽर्धती । विद्वध्याऽइव । सम् । वाक् ॥ ३ ॥

अन्वय — १७३ सु-मायाः मरुत अवोभि ज्येष्ठेभि बृहत्-दिवैः वा नः अच्छ आ यान्तु, अध यत्  
एषां परमाः नियुतः समुद्रस्य परे चित् धनयन्त ।

१७४ सु-धिता घृताची हिरण्य-निर्णिक् ऋष्टिः उपरा न, येषु सं मिभ्यक्ष, गुहा चरन्ती  
मनुषः योपा न, विद्वध्याइव वाक् सभा-र्धती ।

अर्थ- १७३ (सु-मायाः) ये अच्छे कौशल से युक्त (मरुतः) वीर मरुत-गण अपने (अधोभिः) संरक्षण-  
क्षम शक्तियों के साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नों के साथ (नः अच्छ आ यान्तु)  
हमारे निकट आ जाएँ । (अध यत्) और तदुपरान्त (एषां परमाः नियुतः) इनके उत्तम घोड़े (समुद्रस्य  
पारे चित्) समुन्द्र के भी परे चले जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें ।

१७४ (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकड़ी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई, (हिरण्य-  
निर्णिक्) सुवर्ण के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न) मेघमण्डल में विद्यमान विजली  
के समान (येषु) जिन वीरोंके निकट (सं मिभ्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदे  
में संचार करती हुई (मनुषः योपा न) मानवकी भारी के समान कभी अट्टक्य रहती है और कभी कभी  
(विद्वध्याइव वाक्) यज्ञसभा की वाणी की न्याई (सभा-र्धती) सभासदों में प्रकट हुआ करती है ।

भावार्थ- १७३ नियुत वीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियों के साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके  
हमारी संपत्ति बढ़ा दें । उसी प्रकार इनके घोड़े भी समुद्रपार चले जाकर वहाँसे संपत्ति लायें और हमसे वित्तीय करें ।  
१७४ वीरोंकी तलवार श्रेष्ठ कौलादकी बनी हुई है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली दीख पड़ती है । वीर लोग  
उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकड़े रहते हैं । तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पड़ी  
रहती है और यज्ञिय मंत्रवोप के समान वह किसी अवसरों पर युद्धके जारी रहने पर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ।

टिप्पणी- [ १७३ ] (१) नियुत् = घोडा, पत्ति, बतार, पत्कि में खडी की हुई सेना । (२) बृहत्-दिव् =  
बडा तेजस्वी धन । [ १७४ ] (१) घृताची = तैलयुक्त, जलयुक्त, तजस्वी, खेल में तेज बनायी हुई (वायव् यह  
भविष्य हो कि, कौलाद् का दास्य गर्भ करके तेल में डुबा देते हैं या अच्छी तरह तपा कर जल में डाल देते हैं, ऐसा  
भी अर्थ होगा) । (२) गुहा = गुफा, ढकी हुई बंद जगह, अंत करण, रनिवाम । (गुहा चरन्ती मनुषः योपा- कथा  
साधारण महिलाएँ मियान में रखी हुई तलवार के समान घर के भीतर ही रहा करती थीं) । (३) हिरण्य-निर्णिक्  
= सुनहले रंग की । (४) उपरा (उपला) = मेघसमुदाय, मेघमाला, मेघ में विद्यमान विद्युत् । इस मंत्रके  
दो अर्थ हो सकते हैं- (१) मेघपर अर्थ- (सु-धिता) भली भाँति रखी हुई (घृत-अवो) जल छोड़नेवाली,  
धरसात करनेवाली (हिरण्य-निर्णिक्) सोने के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः न) तलवारके समान प्रकाशित (उपरा)  
मेघ की विद्युत् मानवी महिला के समान कभी कभी (गुहा) बन्द जगह में गुप्त रूप से रहती है और किसी अवसरों पर  
(विद्वध्याइव वाक्) यज्ञमंडपागतों सभाके वेदवोपकी नाई बाहर आ निकलती है, अर्थात् दामिनी कभी चमक उठती  
है और कभी डमकी दमक नहीं दिखाई देती है । (२) वीरोंकी तलवार- (सु-धिता) अच्छी तरह हाथ में धरी हुई

(१७५) परा । शुभ्राः । अयासः । युच्या । साधारण्याइव । मरुतः । मिमिक्षुः ।  
 न । रोदसी इति । अप । नुदन्त । घोराः । जुपन्त । वृषम् । सख्याय । देवाः ॥४॥  
 (१७६) जोषत् । यत् । इम् । असुर्या । सचर्धै । विसितस्तुका । रोदसी । नुस्मनाः ।  
 आ । सूर्याइव । विधतः । रथम् । गात् । त्वेपप्रतीका । नभसः । न । इत्या ॥ ५ ॥

अन्वय - १७५ शुभ्रा अयासः मरुत साधारण्याइव यच्या परा मिमिक्षुः, घोराः रोदसी न अप नुदन्त, देवाः सरयाय वृष जुपन्त ।

१७६ असु-र्या नृ मना रोदसी यत् ई सचर्धै जोषत् विसितस्तुना त्वेप-प्रतीका सूर्या-इव विधतः रथं नभस इत्या न आ गात् ।

अर्थ- १७५ (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत (साधारण्या-इव) सामान्य नारी के साथ जैसे लोग यथावत रखते हैं, उसी तरह (यच्या) जो उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षु) बहुत चर्चा कर चुके हैं। (घोराः) उन देखते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने (रोदसी) आकाश एवं धरती को (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतोंने (सख्याय) सबसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए ही (वृषं) बहष्पनका (जुपन्त) आंगिकार किया है।

१७६ (असु-र्या) जीवन देनेवाली और (नृ मनाः) वीरों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्वत् (यत् ई) जो इनके (सचर्धै) सहवास के लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। वह (विसितस्तुका) केश सँवारकर ठीक बाँधे हुए (त्वेप-प्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्याइव) सूर्यासावित्री के समान (विधतः रथं) विधाता के रथपर (नभस इत्या न) सूर्य की गतिके समान विद्योप गति से (आ गात्) आ पहुँची।

भावार्थ- १७५ जो शूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमि को बड़े परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी ऐसी धरती पर वषट् वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारी से कोई भी सम्बन्ध रहता है, उसी प्रकार ये वीर भी मूलोक एवं सुलोक में विद्यमान सब वीरों से मित्रतापूर्वक सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरों को बहष्पन प्राप्त हुआ है।

१७६ वीरों की परती वीरों पर असीम प्रेम करती है और वह तब सँवारकर तथा वन-टन के या साज-सिंघार करके जैसे सावित्री पति के घर जाने के लिए विधाता के रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिभृद् पहुँचने के लिए वह भी वीरों के रथ पर चढ़ जाती है।

(चूत-अची) तीक्ष्ण धारावाली (हिरण्य-निर्गिञ्ज्) स्वर्ण की ग्यारह काण्डितमय डिब्बाई देनेवाली (उपरा न) मेघकी पिजली के समान चमकनेवाली (सुक्लौ) वीरों की तल्पार सदैव वीरोंके निकट रहा करती है, लेकिन वह कभी कभी (गुहा चरन्ती) परदे में रहता हुई नारी के समान अदृश्य रहती है, जो एकाध अवसर पर जिस प्रकार यज्ञमण्डप में वेदवाणी प्रवृत्त होती है, उसी तरह वह (विद्वथा) युद्धभूमिमें या लगे अपने अपने वस्त्र बरत करती है। [१७५] (१) ग्रन्थं = (पवाना क्षेत्रं) = जिस धरती में जो पैदा होत हो। (२) अयास = गतिशील, अ क्रमण करने-हार। [१७६] (१) सूर्या = सूर्य की पुत्री, नवपरिणीता चण्ड। (२) इत्या = गति, जाना, सबक, पालकी, वाहन। (३) असु र्या = जीवन प्रदान करनेवाली। (४) प्रतीक = अवयव, चेहरा। (५) नभस् = मेघ, जल, आकाश, सूर्य।

(१७७) आ । अस्थापयन्त । युवतिम् । युवानः । शुभे । निऽमिश्राम् । विदधेपु । पञ्चाम् ।  
 अर्कः । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् ।  
 गायत् । गाथम् । सुतऽसोमः । दुवस्यन् ॥ ६ ॥

(१७८) प्र । तम् । विवक्षिम् । वक्ष्म्यः । यः । एषाम् । मरुताम् । महिमा । सत्यः । अस्ति ।  
 सर्चा । यत् । ईम् । वृषऽमनाः । अह्मऽयुः ।  
 स्थिरा । चित् । जनीः । वहते । सुऽभागाः ॥ ७ ॥

अन्वयः— १७७ (हे) मरुतः । यत् अर्कः हविष्मान् सुत-सोमः वः दुवस्यन् विदधेपु गाथं आ गायत्, युवानः नि-मिश्रां पञ्चाम् युवतिं शुभे अस्थापयन्त ।

१७८ एषां मरुतां यः वक्ष्म्यः सत्य महिमा अस्ति, तं प्र विवक्षिम्, यत् ईं स्थिरा चित् सचा वृष-मनाः अहं-युः सु-भागाः जनीः वहते ।

अर्थ— १७७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यत्) जय (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड़ रखा है, वह (वः) दुवस्यन् (तुम वीरों की पूजा करनेहारा उपासक (विदधेपु) यद्यो मैं (गाथं) स्तोत्र का (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिश्रां) नित्य सहवास में रहती हुई (पञ्चाम्) बलशाली (युवतिं) नव-यौवना-स्वपत्नी को- (शुभे) अच्छे मार्ग में, यद्य मैं (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ।

१७८ (एषां मरुतां) इन वीर-मरुतों का (यः वक्ष्म्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बड़प्पन है (तं प्र विवक्षिम्) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ। (यत् ईं) वह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अटल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बल धानों से मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बनने की (अहं-युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ।

भावार्थ— १७७ जय उपासक तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तब वीरों की धर्मपत्नी सन्मार्ग पर चलती हुई अपने पति का यत्न बढ़ाती है ।

१७८ वीरों की महिमा इतनी अर्णनीय है कि, धरतीमाता तक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अच्छी भावशाली प्रजा का धारणोपय करती है । इन वीरों की महिलाएँ भी इनके पराक्रम से संतुष्ट होकर अच्छे गुणों से युक्त संतान को जन्म देती हैं ।

टिप्पणी— [ १७७ ] (१) पञ्च = बलशाली, सामर्थवान् । (२) दुवस् = (दुवस्यति) सम्मान देता है, पूजा करता है) सम्मान, पूजा । दुवस्यन् = पूजा करनेवाला, सम्मान करनेहारा । मंत्र १८५ देखो । [ १७८ ] (१) वक्ष्मन् = (वक्ष् परिभाषणे) स्तुतिस्तोत्र, वक्ष्म्यः = स्तुत्य, वर्णनीय । (२) सच् = (समवाये सेचने सेचने च) = अनुसरण करना, पिछलग्नु बनना, सहवास में रहना, आज्ञा मान लेना, सहायता करना । (३) जनिः = जन्म, उत्पत्ति (प्रजा) संतति । (४) वृष-मनाः = बलिष्ठ पर आसक्त होनेवाली, जिसका चित्त यषों पर लगा हो, बलवान मनवाली ।

(१७९) पान्ति । मित्रावरुणौ । अवधात् । चयते । ईम् । अर्यमो इति । अग्रशस्तान् ।  
 उत च्यवन्ते । अच्युता । ध्रुवाणि । वृषे । ईम् । मरुतः । दातिवारः ॥ ८ ॥  
 (१८०) नहि । नु । वः । मरुतः । अन्ति । असे इति । आराचात् । चित् । शवसः । अन्तम् । आपुः ।  
 ते । घृष्णुना । शवसा । शशुवांसः । अर्णः । न । द्वेषः । ध्रुवता । परि । स्थुः ॥ ९ ॥

अन्वयः— १७९ ( हे ) मरुतः । मित्रा-वरुणौ अवधात् ईं पान्ति, अर्यमा उ अ-ग्रशस्तान् चयते, उत अ-च्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते, ईं दाति-वारः वृषे ।

१८० ( हे ) मरुतः । वः शवसः अन्तं अन्ति आराचात् चित् असे नहि नु आपुः, ते घृष्णुना शवसा शशुवांसः ध्रुवता द्वेषः, अर्णः न, परि स्थुः ।

अर्थ— १७९ हे ( मरुतः ) वीर-मरुतो ! ( मित्रा-वरुणौ ) मित्र एवं वरुण ( अवधात् ) निन्दनीय दोषों से ( ईं पान्ति ) रक्षण करते हैं । ( अर्यमा उ ) अर्यमा ही ( अ-ग्रशस्तान् ) निंदा करनेयोग्य वस्तुओं को ( चयते ) एक ओर कर देता है और ( उत ) उसी प्रकार ( अ-च्युता ) न हिलनेवाले तथा ( ध्रुवाणि ) दृढ़ शत्रुओं को भी ( च्यवन्ते ) अपने पदों पर से ढकेल देते हैं, ( ईं ) यह तुम्हारा ( दाति-वारः ) दान का घर हमेशा ( वृषे ) यदता जाता है । तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है ।

१८० हे ( मरुतः ) वीर-मरुतो ! ( वः शवसः ) तुम्हारी सामर्थ्य की ( अन्तं ) चरम सीमा ( अन्ति ) समीप से या ( आराचात् चित् ) दूर से भी ( अस्मे ) हमें ( नहि नु आपुः ) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है । ( ते घृष्णुना शवसा ) वे वीर आवेदायुक्त बल से ( शशुवांसः ) यदनेवाले, अपने ( ध्रुवता ) शत्रुदल की धम्जियाँ उड़ानेवाले बल से ( द्वेषः ) शत्रुओं को ( अर्णः न ) जल के समान ( परि स्थुः ) घेर लेते हैं ।

साधारण— १७९ उपासक को मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोनों से और निंदा से बचाते हैं । उसी प्रकार वे वीर सुरिधर शत्रुओं को भी पदअट काके सारी प्रजा को प्रगतिशील बनने में सहायता पहुँचाते हैं । सहायता करने का गुण इनमें प्रतिबल बढ़ता ही रहता है ।

१८० पराक्रम कर दिसलाने की जो शक्ति वीरों में अंतर्निगूढ़ बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभी तक किसी को भी नहीं है । चूँकि उन वीरों में यह सामर्थ्य छिपा पड़ा है कि, उनके शत्रुओं को तुल्य पराभूत तथा हतबल कर ढाके, अतः वे प्रतिबल धरिष्णु ही बने रहते हैं । इसी दुर्दम्ब ताकि के सहारे वे शत्रु को घेरकर उसे विभट कर देते हैं ।

टिप्पणी— [ १७९ ] ( १ ) दातिः = ( दा दाने ) दान, त्याग, सहायता; ( दा छेदने ) काटना, तोड़ना । ( २ ) वारः = वर, समूह, राति, बेला, दिवस, सन्धि । [ १८० ] ( १ ) ध्रुवत् = शत्रु का पराभव करनेवाला, इस पराभव करने की क्षमता से युक्त । ( २ ) घृष्णु = वह साहसपूर्ण भाव कि जिससे शत्रुका पराभव अवश्य किया जाय । ( ३ ) द्विप् = द्वेष करनेवाला, दुश्मन ।



(१८१) वयम् । अद्य । इन्द्रस्य । प्रेष्ठाः । वयम् । श्वः । वोचेमहि । सऽमये ।  
 वयम् । पुरा । महि । च । नः । अनु । धून् । तत् । नः । ऋभुक्षाः । नराम् । अनु । स्यात् ॥१०॥  
 (१८२) एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः ।  
 आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । व्याम् । विद्याम् । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ११ ॥

(क. ११६८१-१०)

(१८३) यज्ञाऽर्पज्ञा । वः । समना । तुतुर्वणिः । धियम्ऽधियम् । वः । देवऽयाः । ऊँ इति । दुधिध्वे ।  
 आ । वः । अर्वाचः । सुविताय । रोदस्योः । महे । ववृत्याम् । अवसे । सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

अन्वयः— १८१ अद्य वयं इन्द्रस्य प्रेष्ठाः, वयं श्वः, पुरा वयं नः महि च धून् अनु स-मये वोचेमहि, तत् ऋभुक्षाः नरां नः अनु स्यात् ।

१८२ [ क्र० ११६६।१५; १७२ देखिये । ] [ १८३ ] यज्ञा-यज्ञा वः स-मना तुतुर्वणिः, धियं-धियं देव-याः उ दुधिध्वे, रोदस्योः सु-विताय महे अवसे सु-वृक्तिभिः वः अर्वाचः आ वयुत्यां ।

अर्थ— १८१ ( अद्य वयं ) आज हम ( इन्द्रस्य प्र-इष्ठाः ) इन्द्र के अतीव प्रिय वने हैं ( वयं ) हम (श्वः) कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे । ( पुरा वयं ) पहले हम ( नः ) हमें ( महि च ) बड़प्पन मिल जाय इस लिए ( धून् अनु ) प्रतिदिन ( स-मयं ) युद्धों में ( वोचेमहि ) हम घोषित कर चुके हैं-प्रार्थना कर चुके ( तत् ) कि ( ऋभु-क्षाः ) वह इन्द्र ( नरां ) सग मानवों में ( नः ) हमें ( अनु स्यात् ) अनुकूल बने । १८२ [ क्र० ११६६।१५; १७२ देखिये । ]

१८३ ( यज्ञा-यज्ञा ) हर कर्म में ( वः ) तुम्हारा ( स-मना ) मन का सम भाव ( तुतुर्वणिः ) सेवा करने में त्वरा करने वाला है; तुम अपना ( धियं-धियं ) हर विचार ( देव-याः उ ) दैवी सामर्थ्य पाने की इच्छा से ही ( दुधिध्वे ) धारण करते हो । ( रोदस्योः ) आकाश एवं पृथ्वी की ( सुविताय ) सुस्थिति के लिए तथा ( महे अवसे ) सब के पूर्ण रक्षण के लिए ( सु-वृक्तिभिः ) अच्छे प्रशंसनीय मार्गों से ( वः ) तुम्हें ( अर्वाचः ) हमारी ओर ( आ वयुत्यां ) आकर्षित करता हूँ ।

भावार्थ— १८१ हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में वह हम पर कृपा-दृष्टि रखे जिससे हमें बड़प्पन मिले और स्वर्ग में उसकी मदद से विजयी बनें ।

१८२ [ क्र० ११६६।१५, १७२ देखिये । ]

१८३ वीरों के मन की संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्य में प्रेरित करती है, स्तुति प्रदान करती है । ये कृपालु करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगों की सुस्थिति एवं सुरक्षा के लिए ही उसका उपयोग करना चाहिए । इसीलिए ऐसे महान वीरों को अपने अनुकूल बनाना चाहिए ।

टिप्पणी— [ १८१ ] ( १ ) मयं = मयं, मानव । ( २ ) स-मयं = मयंसे युक्त, सभा, समाज, यज्ञ, युद्ध । ( ३ ) सु = दिवस, आकाश, स्वर्ग, प्रकाश । ( ४ ) ऋभु-क्षाः = ( ऋभु ) कारीगरों एवं शिल्पियों को ( क्षाः ) सुती जीवन देनेवाला, शिल्पनिपुण लोगों का पावन कर्ता, इन्द्र । [ १८३ ] ( १ ) सु-वित = उत्तम दशावैभव, अच्छी राह । ( २ ) स-मना = समत्व, मिलकर रहना, एक ही समय । ( ३ ) तुतुर्वणिः ( तुतुर्वनिः ) = श्वरापूर्वक कार्ये निभाने का स्वभाव । ( ४ ) सु-वृक्ति = प्रशंसा, स्तुति । ( ५ ) आ-वृत् = पुनः पुनः आकृष्ट करना ।

(१८४) वृत्रासः । न । ये । सुजः । स्वतवसः । इपम् । स्वः । अभिजायन्त । धृतयः ।  
 सहस्रियासः । अपाम् । न । ऊर्मयः । आसा । गावः । वन्द्यामः । न । उक्षणः ॥ २ ॥  
 (१८५) सोमासः । न । ये । सुताः । तृप्तश्रवः । हृत्सु । पीतासः । दुवसः । न । आसते ।  
 आ । एपाम् । अंसपु । रम्भिणीश्रव । ररभे । हस्तेपु । सादिः । च । कृतिः । च ।  
 सम् । दुधे ॥ ३ ॥

अन्वय — १८४ ये, वत्रास न, स्व-जाः स्व-तवसः धृतय इपं स्वः अभिजायन्त, अपां ऊर्मय न, सहस्रि-यास, वन्द्यास गाव उक्षणः न आसा ।

१८५ सुता पीतास. हृत्सु तृप्त-श्रवः सोमा न, ये दुवस. न, आसते, एपां अंसपु रम्भिणी-  
 श्रव आ ररभे, हस्तेपु च सादि कृति च सं दधे ।

अर्थ- १८४ (ये) जो (वत्रासः न) सुरक्षित स्थानों के समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व जाः) अपनी निजी स्फूर्ति से कार्य करते हैं और (स्व-तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धृतयः) शत्रुओं को हिला देते हैं ये (इपं) अन्नप्राप्ति तथा (स्वः) स्वप्रकाश के लिए ही (अभिजायन्त) सभी तरहसे जन्मे होते हैं, ये (अपां ऊर्मयः न) जलके तरंगों के समान (सहस्रि-यासः) हजारों लोगों को प्रिय होते हैं वेही (वन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूर्य गौ तथा बैलों के समान (आसा) हमारे समीप रहें ।

१८५ (सुता) निचोडे हुए (पीतास) पिपे हुए (हृत्सु) हृदय में जाकर (तृप्त-श्रवः) लुत्ति करनेवाले (सोमाः न) सोमरस के समान, (दुवसः न) पूर्य मानवों के समानही जो वीर पुरुष राष्ट्र में (आसते) रहते हैं (एपां अंसपु) उनके कंधों पर (रम्भिणीश्रव) लट्टु ले चढाई करनेवालों सैनी के समान हथियार (आ ररभे) विद्यमान हैं । उसी प्रकार उनके (हस्तेपु सादिः) हाथों में अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं ।

भाषार्थ - १८४ स्वयं प्रेरणा से ही वीर सैनिक जनता का संरक्षण करने के लिए आगे आते हैं। अपनी शक्ति से शत्रुओं का नाश करके वे जनता को भयमुक्त करते हैं। वे मानों लोगों को अन्न एवं तेजस्विता देने के लिए ही जन्मे हैं। पानी के समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सब की यही इच्छा है कि, गाव बंधू जैसे वे अपने समीप सदैव रहें ।

१८५ सोमरस के सेवन के उपरान्त जैसे द्रव्य एवं उमंग में वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनता में कर्म करने का उत्साह बढ़ाते हैं उनके कर्षों पर हथियार और हाथ में बाल तलवार दिखाई देते हैं ।

टिप्पणी - [ १८४ ] ( १ ) आसा = (आम, आस) सुगन्ध, समीप, आँखोंके सामने, सहमने, बिलकुल समीप । ( २ ) वत्रासः = ( वम = आवरण, ढँकी हुई सुरक्षित जगह, जहाँ रहने पर अच्छी रक्षा हो सकती हो, आश्रय-स्थान, गुप्त । ( ३ ) स्व-जाः = अपनी प्रेरणा से आगे बढ़नेवाला, दूसरे के दबाव से नहीं । ( ४ ) स्व ( स्व रा ) आत्मतेज, अपना प्रकाश ( ५ ) ऊर्मि = लहर, तरंग । [ १८५ ] ( १ ) अंसुः = सोमवह्नी, सोमरस । ( २ ) कृतिः = ( कृती छेदने = काटना ) = काटनेवाला आशुध, तलवार । ( ३ ) रम्भ = लकड़ी, लाठी । रम्भिणी = लाठी लेकर चढाई करने वाली सेना । भाले के समान शस्त्र ।

(१८६) अव । स्वयुक्ताः । दिवः । आ । वृथा । ययुः । अमर्त्याः । कशया । चोदत । त्मना ।  
अरेणवः । तुविज्ञाताः । अचुच्यवुः । दृळहानिं । चित् ।  
मरुतः । भ्राजत्-ऋषयः ॥ ४ ॥

(१८७) कः । वः । अन्तः । मरुतः । ऋष्टि-विद्युतः । रेजति । त्मना । हन्वाइव । जिह्या ।  
धन्व-च्युतः । इषाम् । न । यामनि । पुरु-प्रेषाः । अहन्यः । न । एतशः ॥ ५ ॥

अन्वयः— १८६ स्व-युक्ताः दिवः वृथा अव आ ययुः, ( हे ) अ-मर्त्याः ! त्मना कशया चोदत, अ-  
रेणवः तुवि-ज्ञाताः भ्राजत्-ऋषयः मरुतः दृळहानिं चित् अचुच्यवुः ।

१८७ ( हे ) ऋष्टि-विद्युतः मरुतः ! इषां पुरु-प्रेषाः धन्व-च्युतः न, अहन्यः एतशः न, वः  
अन्तः त्मना जिह्या हन्वाइव कः रेजति ।

अर्थ- १८६ ( स्व-युक्ताः ) स्वयं ही कर्म में निरत होनेवाले वे वीर ( दिवः ) दुलोक से ( वृथा )  
अनायासही ( अव आ ययुः ) नीचे आये हुए हैं । हे ( अ-मर्त्याः ! ) भ्रमर वीरों ! ( त्मना ) तुम अपने  
( कशया ) फोड़े से घोड़ों को ( चोदत ) प्रेरित करो । ये ( अ-रेणवः ) निर्मल ( तुवि-ज्ञाताः ) पल के  
लिए मसिद्ध तथा ( भ्राजत्-ऋषयः ) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले ( मरुतः ) वीर मरुत्  
( दृळहानिं चित् ) सुदरों को भी ( अचुच्यवुः ) हिला देते हैं ।

१८७ हे ( ऋष्टि-विद्युतः मरुतः ! ) आयुधों से विराजमान वीर मरुतो ! तुम ( इषां ) अन्न के  
लिए ( पुरु-प्रेषा- ) बहुत प्रेरणा करनेवाले हो । ( धन्व-च्युतः न ) धनुष्य से छोड़े हुए बाण की न्याई  
या ( अहन्यः ) जिते मारने की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे ( एतशः न ) सिखाये हुए घोड़े के  
समान ( वः अन्तः ) तुममें ( त्मना ) स्वयं ही ( जिह्या ) जीभ के साथ-याणीसहित ( हन्वाइव ) ठुड़ी  
जैसे हिलती है, वैसेही ( कः रेजति ! ) कौन भला प्रेरणा करता है ?

भावार्थ- १८६ अपनी ही दृष्टा से कार्य करनेवाले ये वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भाव से विविध  
कार्यों में लुट जाते हैं । इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरों में इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओं में भी क्या मजाल कि  
इनके सामने खड़े रह सकें ।

१८७ वीर सैनिक भद्र की वृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं । धनुष्य से छोड़ा हुआ तीर जैसे रीक  
पहुँच जाता है, वैसे ही या भली भाँति सिखाया हुआ घोड़ा जैसे ठीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्य-  
भार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो । भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ?

टिप्पणी- [ १८६ ] ( १ ) रेणुः = धूलिजन, मल, अरेणु = स्वच्छ, दोषरहित । ( २ ) स्व-युक्ता = ( स्वैः  
युक्ताः, स्वेन युक्ताः स्वे युक्ताः ) = अपने सभी वीरों के साथ, स्वयं ही अपने आप को प्रेरित करनेवाले, अपनी आयो-  
जना स्वयं तैयार करनेवाले, खुद ही काम में तत्पर होनेवाले । ( ३ ) युक्ता = लुटा हुआ, एक स्थान पर लाया हुआ,  
योग्य, कुशल, कर्मों में कुशल ( गीता ), सिद्ध । ( ४ ) वृथा = व्यर्थ, जिसमें विशेष स्वार्थका कोई हेतु न हो इस दंग  
से, आसानी से । [ १८७ ] ( १ ) पुरु-प्रेषा = भाँति भाँति की प्रेरणाएँ, दृष्टाएँ, आकांक्षाएँ । ( २ ) अ-हन्यः  
= जिते मारने या फटकारने की कोई जरूरत न हो । ( ३ ) [ वृहन्-व्यः = दिन में होनेवाला, प्रकाशकरण । ] ( ४  
एतशः = घोड़ा, सिखाया हुआ घोड़ा, प्रकाशकरण ।

(१८८) कं । स्वित् । अस्य । रजसः । महः । परंम् । कं । अवरंम् । मरुतः । यस्मिन् । आऽयय ।  
 यत् । च्यवयथ । गिराऽइव । सम्ऽहितम् । वि । अद्रिणा । पतथ । त्वेषम् । अर्णवम् ॥६॥  
 (१८९) सातिः । न । वः । अमऽवती । स्वःऽवती । त्वेषा । विऽपाका । मरुतः । पिपिष्वती ।  
 भद्रा । वः । रातिः । पृणतः । न । दक्षिणा । पृथुऽज्या । असुर्याऽइव । जज्ञती ॥७॥

अन्वय.— १८८ (हे) मरुतः ! यस्मिन् आयय, अस्य महः रजसः परं क स्वित् ? अवरं क ? यत् सं-  
 हितं च्यवयथ, अद्रिणा वि-धुराइव त्वेषं अर्णवं वि पतथ ।

१८९ (हे) मरुतः ! य साति न, यः राति. अम-वती स्वर-वती त्वेषा वि-पाका पिपिष्वती  
 भद्रा, पृणतः दक्षिणा न, पृथु-ज्या असुर्याइव जज्ञती ।

अर्थ- १८८ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( यस्मिन् ) जहाँ से ( आयय ) तुम आते हो, ( अस्य महः  
 रजसः ) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोक का ( परं क स्वित् ? ) उस ओर का छोर कौनसा है ?  
 ( अवरं क ? ) और इस ओर का भी कौन है ? ( यत् ) जब कि तुम ( सं-हितं ) इकट्ठे हुए मेघों को  
 तथा शत्रुओं को ( च्यवयथ ) हिला देते हो, उस समय ( अद्रिणा ) चक्र से ( वि-धुराइव ) निराश्रित  
 के समान ( त्वेषं अर्णवं ) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओं को तुम ( वि पतथ ) नीचे गिरा देते हो ।

१८९ हे ( मरुत ! ) वीर-मरुतो ! ( यः सातिः न ' तुम्हारी देन के समान ही ( यः रातिः )  
 तुम्हारी कृपा भी ( अम-वती ) बलवान्, ( स्वर-वती ) सुख देनेवाली, ( त्वेषा ) तेजस्वी, ( वि-पाका )  
 विशेष फल देनेवाली ( पिपिष्वती ) शत्रुदल को चकनाचूर करनेवाली तथा ( भद्रा ) कल्याणकारक  
 है, । पृणतः दक्षिणा न ) जनता को संतुष्ट करनेवाले धनाढ्य पुरुष की दी हुई दक्षिणा के समान  
 ( पृथु ज्या ) विशेष विजय दिलानेवाली और ( असुर्याइव ) दैवी शक्ति के समान ( जज्ञती ) शत्रु  
 से जूझनेवाली है ।

भाषार्थ- १८८ महान् तथा अभीम अंतरिक्ष में से तुम आते हो और बाहलों तथा दुश्मनों को विचलित करते  
 हो । एवं निराश्रितों के समान उन्हें नीचे गिरा देते हो । ( इस मंत्र में बादल और शत्रुओं के बारे में समान भाव स्पष्ट  
 किये हैं । )

१८९ वीरों का दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर  
 उसी से शत्रु का नाश करने की सामर्थ्य भी मिल जाती है ।

टिप्पणी- [ १८८ ] ( १ ) वि धुग = निराश्रित, विधवा नारी । [ १८९ ] ( १ ) सातिः = देन, स्वीकार,  
 नाश, महायत्ना, भत, स्वर्गि । ( २ ) रातिः = बदर, बैयार, मित्र, दान, कृपा । ( ३ ) दक्षिणा = देन, कीर्ति,  
 तुष्ट र गौ. दक्षिण दिशा । ( ४ ) जज्, जज्ज् = जाना लडना, शत्रुको हराना । ( ५ ) अम = बल, दबाव, शोक,  
 भय, रोग अनुपायी, प्रणवायु, अपरिमित । ( ६ ) वि-पाका = उच्चम परिपाक करनेवाली । ( ७ ) असुर्य =  
 दैवी । ( ८ ) पिपिष्वती = पूर्ण करनेवाली, चकनाचूर करनेवाली । ( ९ ) जि = लप पान, परामव करना;  
 पृथु-ज्या = विशेष विजय देनेवाली, विशेष इयाक ।

- (१९०) प्रति । स्तोभन्ति । सिन्धवः । पविऽभ्यः । यत् । अन्नियाम् । वार्चम् । उत्सृष्ट्वा रयन्ति ।  
अव । समयन्त । विऽद्युतः । पृथिव्याम् ।  
यदि । घृतम् । मरुतः । प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
- (१९१) अमृत । पृथिः । महते । रणाय । त्वेषम् । अयासाम् । मरुताम् । अनीकम् ।  
ते । सप्सरासः । अजनयन्त । अभ्यम् ।  
आत् । इत् । स्वधाम् । इषिराम् । परि । अपश्यन् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १९० यत् पविभ्यः अन्नियां वाचं उदीरयन्ति, सिन्धवः प्रति स्तोभन्ति, यदि मरुत घृतं प्रुष्णुवन्ति, पृथिव्यां विद्युतः अव समयन्त ।

१९१ पृथिः महते रणाय अयासां मरुतां त्वेषं अनीकं असूत, ते सप्सरास अभ्यं अजनयन्त आत् इत् इषिरां स्व-धां परि अपश्यन् ।

अर्थ- १९० ( यत् ) जब ये घोर ( पविभ्य ) रय के पहियों से ( अन्नियां वाचं ) मेघसदृश गर्जना ( उदीरयन्ति ) प्रवर्तित कर देते हैं, तब ( सिन्धवः ) नदिपौ ( प्रति स्तोभन्ति ) खोखला उठना है ( यदि ) जिस समय ( मरुतः ) घोर मरुत ( घृतं ) जल ( प्रुष्णुवन्ति ) बरसने लगते हैं तब ( पृथिव्यां ) घरता पर ( विद्युतः ) बिजलियाँ मानों ( अव समयन्त ) हैंसनी हैं, ऐसा जान पड़ता है ।

१९१ ( पृथिः ) मातृभूमि ने ( महते रणाय ) बड़े भारी संग्राम के लिए ( अयासां मरुतां ) गतिमान घोर मरुतों का ( त्वेषं अनीकं ) तेजस्वी सैन्य ( असूत ) उपग्र किया । ( ते सप् सरास ) ये इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले घोर ( अभ्यं अजनयन्त ) बड़ी शक्ति प्रकट कर चुके । ( आत् इत् ) तदुपरान्त उन्होंने ( इषि रां स्व धां ) भग्न देनेवाली अपनी धारक शक्ति को ही ( परि अपश्यन् ) चतुर्दिक् देख लिया ।

भाषार्थ- १९० ( आधिभौतिक अर्थ- ) इन घोरों का रथ चलने लगे तो मेघों की दहाड़नी सुनाई पड़ती है और नदियों को वार करते समय जलप्राह में भारी ललबली मच जाती है । ( आधिदैविक अर्थ- ) जब वायुप्रवाह बहने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनी की दमक वील पड़ती है और मूललाघार वर्षा के फलस्वरूप नदियों में महाज्वाह आती है ।

१९१ शत्रु से जूझने के लिए मातृभूमि की प्रेरणा से घोरों की प्रबंड सेना अस्तित्व में आ गयी । एक त्रित बनकर शत्रु पर दूध पड़नेवाले इन घोरों ने युद्ध में बड़ी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें भस्म का सृजन करने की श्रमता थी ।

टिप्पणी- [१९०] ( १ ) स्तुभ् = ( रतम् ) = रुद्ध होना; प्रति + स्तुभ् = गलबली मचाना । ( २ ) प्रुष् = ( स्नेहसवेदनपृष्णेषु ) दृष्टि करना, गीला करना । ( ३ ) पवि = पहियों की पट्टी चाभी, वज्र, भाके की नोक । [१९१] ( १ ) सप् सरासः = [ ( सप्- समवाये ) इकट्ठे होना, स = ( गतौ ) सरकना, जाना, ] मिलजुलकर इकट्ठे होकर जानेवाले, संघर्ष होकर लड़नेवाले । ( २ ) अभ्यं = यद्वा भय, अभूतपूर्वशक्ति ( ३ ) इषि र = रत्नपूर्ण, उत्तम, बलवान्, चपल, भक्ति, भस्म देनेवाला ।

(१९२) ए॒पः । वः । स्तोमः । म॒रुतः । इ॒यम् । गीः । मा॒न्द्रार्थस्य॑ । मा॒न्यस्य॑ । का॒रोः ।  
आ । इ॒पा । या॒सीष्ट । त॒न्वे । व॒याम् । वि॒द्याम् । इ॒यम् । वृ॒ज॒नम् । जी॒र॒ज्दानु॑म् ॥ १० ॥

( ऋ० १ । १७११-२ )

(१९३) प्रति॑ । वः । ए॒ना । नम॑सा । अ॒हम् । ए॒मि । सु॒उ॒क्तेन॑ । भि॒क्षे । सु॒ऽम॒तिम् । तु॒राणा॑म् ।  
र॒राण॑ता । म॒रुतः । वे॒द्याभिः॑ । नि । हे॒ळः । घ॒त्त । वि । मु॒च॒ध्वम् । अ॒श्वान् ॥ १ ॥

(१९४) ए॒पः । वः । स्तोमः । म॒रुतः । नम॑स्वान् । हृ॒दा । त॒ष्टः । मन॑सा । धा॒यि । दे॒वाः ।  
उप॑ । इ॒म् । आ । या॒त् । मन॑सा । जु॒पा॒णाः । यू॒यम् । हि । स्थ । नम॑सः । इत् । वृ॒धासः॑ ॥२॥

अन्वय - १९२ [ ऋ. १।१६६।१५; १७० देखिये । ]

१९३ ( हे ) मरुतः । अहं एना नमसा मूक्तेन वः प्रति एमि, तुराणां सु-मति भिक्षे, वेद्याभिः  
रराणता हेळः निघत्त, अश्वान् वि मुचध्वं ।

१९४ ( हे ) मरुतः ! एपः नमस्वान् हृदा तष्टः वः स्तोमः मनसा धायि, ( हे ) देवाः ! मनसा  
ई जुपाणाः उप आ यात्, हि यूयं नमसः इत् वृधासः स्थ ।

अर्थ- १९२ [ ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये । ]

१९३ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( अहं एना नमसा ) मैं इस नमनसे तथा इस ( मूक्तेन ) स्तुति से  
( वः प्रति एमि ) तुम्हारे समीप आता हूँ- तुम्हारी उपासना करता हूँ । ( तुराणां ) वेगसे जानिवाले तुम वीरों  
की ( सु-मति ) अच्छी बुद्धि की मैं ( भिक्षे ) याचना करता हूँ । ( वेद्याभिः ) इन जाननेयोग्य स्तुतियों  
से ( रराणता ) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना ( हेळः ) द्वेष ( नि घत्त ) एक ओर धर दो, उसे हमारे  
निकट आने न दो, ( अश्वान् ) अपने रथ के घोड़ों को ( वि मुचध्वं ) मुक्त करो अर्थात् तुम हथर हाँ  
रहो, यहाँ से अन्य किसी जगह न चले जाओ ।

१९४ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( एपः ) यह ( नमस्वान् ) नम्रतासे ( हृदा तष्टः ) मनःपूर्वक  
रचा हुआ ( वः स्तोमः ) तुम्हारा काव्य ( मनसा धायि ) एकतान वन के सुनो- अपने मनमें इसे स्थान  
दो, हे ( देवाः ! ) द्योतमान वीरो ! ( मनसा ई ) मनसे यह हमारा काव्य ( जुपाणाः ) स्वीकार कर तुम  
( उप आ यात् ) हमारी ओर आओ । ( यूयं हि ) क्योंकि तुम ( नमसः इत् ) सत्कर्मों की ही, अथवा ही  
( वृधासः ) समृद्धि करनेवाले हो ।

भावार्थ- १९२ [ ऋ० १।१६६।१५, १७२ देखिये । ]

१९३ मैं इन वीरोंकी उपासना करता हूँ उनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और चेष्टा कहता हूँ कि,  
इसकी अच्छी बुद्धि से लाभ उठा सकूँ । वे हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो लगतात हमारे निकट  
निवास करें । वन यही मेरी लालसा है ।

१९४ हे वीरो ! हमने बड़ी भक्ति से यह तुम्हारा काव्य बनाया है, तबिक पानपूर्वक इसे सुनिष्, हमारे  
समीप आइए और हमारे लिए अच्छी बुद्धि कीजिए ।

टिप्पणी- [ १९३ ] ( १ ) रण् = ( गतौ ऋद्धे च ) = शब्द करना, इयित होना । ( २ ) रराणत् = आनन्दित  
हुआ, प्रसन्न हुआ । ( ३ ) हेळः = ( हेष्ट = हेल् = हेळ = late ) अनादर, तिरस्कार, घृणा, ( क्रोध, ) द्वेष । [ १९४ ] ( १ )  
तष्ट = [ तथ् = तनुकरणे = काटना, ठीक ठीक बना देना, आरिसे चीरना ] अच्छी तरह बनाया हुआ, भली भाँति  
निर्मित । ( २ ) हृदा तष्टः = मन-पूर्वक किया हुआ, लगन से रचा हुआ । ( ३ ) नमस्य = नमस्कार, भक्त, वज्र,  
दान, यज्ञ ( सत्कर्म ) ।

( श्ल० १। १७२। १-३ )

(१९५) चित्रः । वः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुऽदानवः ।  
मरुतः । अहिऽभानवः ॥ १ ॥

(१९६) आरे । सा । वः । सुऽदानवः । मरुतः । क्रञ्जती । शरुः ।  
आरे । अश्मा । यम् । अस्यथ ॥ २ ॥

(१९७) तृणऽस्कन्दस्य । नु । विशः । परि । वृङ्क्त । सुऽदानवः ।  
ऊर्ध्वान् । नः । कर्त । जीवसे ॥ ३ ॥

अन्वयः— १९५ (हे) सु-दानवः अ-हि-भानवः मरुतः ! वः यामः ऊती चित्रः अस्तु ।

१९६ (हे) सु-दानवः मरुतः ! वः सा क्रञ्जती शरुः आरे, यं अस्यथ अश्मा आरे ।

१९७ (हे) सु-दानवः ! तृण-स्कन्दस्य विशः नु परि वृङ्क्त, नः जीवसे ऊर्ध्वान् कर्त ।

अर्थ- १९५ हे (सु-दानवः ! ) अच्छे दानशूर और (अ-हि-भानवः) जिनका तेज कभी न घट जाता है, ऐसे (मरुतः ! ) धीर मरुतो ! ( वः ) तुम्हारी ( यामः ) हलचल ( चित्रः ) आश्चर्यकारक तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी ( चित्रः [ चित्रा ] ) आश्चर्यकारक ( अस्तु ) होये ।

१९६ हे (सु-दानवः मरुतः ! ) भली भाँति दान देनेवाले धीर मरुतो ! ( वः ) यह तुम्हारा ( क्रञ्जती ) वेगसे शत्रुदलपर दूट पडनेवाला ( शरुः ) हथियार हमसे ( आरे ) दूर रहे । ( यं अस्यथ ) जिससे तुम शत्रुपर फेंक देते हो, यह ( अश्मा ) वज्र भी हमसे ( आरे ) दूर रहने पाय ।

१९७ हे (सु-दानवः ! ) अच्छे दानशूर वीरो ! ( तृण-स्कन्दस्य ) तिनके के समान आसानीसे नष्ट होनेवाले ( विशः ) इन प्रजाजनों का नाश ( नु ) शीघ्रही ( परि-वृङ्क्त ) दूर हटा दो, अर्थात् उन्हें सुरक्षित रखो । ( नः जीवसे ) हम बहुत दिनोंतक जीवित रहें, इसलिए हमें ( ऊर्ध्वान् कर्त ) उच्च कोटिके बना दो ।

भावार्थ- १९५ शत्रुदल पर घडाई करने की वीरों की योजना बड़ी ही विलक्षण है और रक्षण करने की शक्ति भी बहुत बड़ी है ।

१९६ वीरों का हाथियार हम पर न गिरे ।

१९७ जो जनता तिनके के समान सुगमता से विनष्ट होती दो, उसे मचा कर उच्च पदतक ले जाओ और वीरोंपुत्रसंपन्न करो ।

टिप्पणी [ १९५ ] ( १ ) अ-हि-भानवः = ( अ-हीन-भानवः = अ-हीनमान-भानवः ) = जिनका तेज कभी कम न होता हो । ( २ ) दान-वः = ( दा-दाने ) = दान देनेवाले, उदार, देव । दान-वः = ( दा-छेदने ) = टुकड़े करनेवाले, फल करनेवाले, शक्ति । [ १९६ ] ( १ ) क्रञ्ज = वेगसे जाना, दीटना, प्रपटन करना, अलंकृत करना । क्रञ्जती = वेगसे जानेवाली, सरकनेवाली, सरपट जानेवाली । ( २ ) शरुः = बाण, तीर, दास्य, वज्र, क्रोध । ( ३ ) अश्मन् = पथर, ( पथर जैसा कड़ा हथियार ) मेघ, वज्र, पहाड़, ओले । ( ४ ) आरे = दूर, समीप । [ १९७ ] ( १ ) स्कन्द = ( गतिशोपणयोः ) गिर पडना, नष्ट होना, टिकना, सूख जाना । ( २ ) तृण-स्कन्द = घासफूस या तिनके की स्याई इधर उधर पड़े रहना, सूख जाना । ( ३ ) ऊर्ध्व = ऊँचा ।

शुनकपुत्र गृह्णन्मदकृपि ( पहले शुनहोनपुत्र आहिरस और उसके बाद शुनकपुत्र मार्गव ) ( श्र० २।३०।११ )

(१९८) तम् । वः । शर्धम् । मारुतम् । सुम्नऽयुः । गिरा ।

उप । वृषे । नमसा । दैव्यम् । जन्मम् ।

यथा । रयिम् । सर्वेऽधीरम् । नशामहे । अपत्यऽसाचम् । श्रुत्यम् । द्विवेऽदिवे ॥११॥

( श्र० २।३४। १-१५ )

(१९९) धारावराः । मरुतः । धृष्णुऽओजसः । मृगाः । न । भीमाः । तविपीभिः । अर्चिनः ।

अग्रयः । न । शुशुचानाः । ऋजीपिणः । भूमिम् । धमन्तः । अर्प । गाः । अवृष्वत ॥१॥

अन्वय — १९८ व तं दैव्यं जन्मं मारुतं शर्धं सुम्न-यु नमसा गिरा उप वृषे, यथा सर्वे-धीरं अपत्य-साचं श्रुत्यं रयिं दिवे-दिवे नशामहे ।

१९९ धारा वरा, धृष्णु ओजस, मृगाः न भीमाः, तविपीभिः अर्चिन, अग्रयः न, शुशुचाना ऋजीपिणः भूमि धमन्तः मरुत गा अप अवृष्वत ।

अर्थ- १९८ (वः) तुम्हारे (त) उस (दैव्य) तेजस्वी (जन्म) प्रकट हुए (मारुतं शर्धं) वीर मरुतों के बल की, (सुम्न युः) मैं सुखको चाहनेवाला, (नमसा) नमनसे और (गिरा) वाणी से (उप वृषे) सराहना करता हूँ । (यथा) इस उपाय स हम (सर्वे धीरं) सभी वीरों से युक्त (अपत्य-साचं) पुत्र-पौत्रादिकों से युक्त तथा (श्रुत्यं) कानिसे युक्त (रयिं) धनको (दिवे दिवे) प्रति दिन (नशामहे) प्राप्त करें ।

१९९ (धारा वरा) युद्ध के मोर्चे पर श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले, (धृष्णु-ओजसः) शत्रु को पलायन के बलसे युक्त, (मृगा न भीमाः) सिंहकी म्यार्ह भीषण (तविपीभिः) निज बलसे (अर्चिन-) पूजनीय ठहरे हुए (अग्रयः न) अग्नि के जैसे (शुशुचाना) तजभ्यो, (ऋजीपिणः) घेग से जानिवाले या सोमरस पीनवाले आर (भूमिं) घेग को (धमन्तः) उत्पन्न करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (गाः) किरणों को [ या गौत्रों को ] शत्रु के कारागृह से (अप अवृष्वत) रिहा कर डेते हैं ।

भाषार्थ- १९८ में धीरों के बल की प्रशंसा करता हूँ । इससे हम सभी को वीरतायुक्त धन मिलता रहे । वह धन हम भौति मिल कि हमके साथ शूरता, धीरता, धीरज वीर सतत एव यश भी प्राप्त हो । अगर शूरता आदि शृङ्खलीय गुणों से रहित धन हो, तो हमें वह नहीं चाहिए ।

१९९ ये वीर प्रसामान लडाइयें के मोर्चे पर धेठना सिद्ध कर दिवाते हैं और वीरतापूर्ण कार्य करके बगलते हैं । ये शत्रु को पचाड देते हैं । अपने निजी बलसे उच्च कोटिके कार्य निपन्न करके वदनीय बन जाते हैं । शत्रुदलको हराकर लपहरण की हुई गौत्रों को सुडा लाते हैं ।

टिप्पणी — [१९८] (१) जन्म = (अदन्ते) अभाव में त्रिलीन होना, पहुँचना, पाना, मिलना । (२) जन्म = जन्म जनी प्रादुर्भाव = उत्पन्न हुआ । (३) सर्वे वीरं सभी तरह की शूरताकी शक्तियों से परिपूर्ण । [१९९] (१) धारा = भोज्य प्रवाह, सेना का मोर्चा समूह, कीर्ति, सादृश्य, मापण । (२) अर्चिन = पूजा करनेवाला, प्रकाशमान (तविपीभिः अर्चिन = बल से तेजस्वी या बल से मातृभूमि की पूजा करनेहारे) । (३) ऋजू (गनिश्यामाजनेनाग्नेयु) जना, प्राप्त करना, अपनी जगह स्थिर रहना, बलवान होना । (४) ऋजीपिन् = गतिमान, स्थिर, बलिष्ठ, रस मिचोदने पर बचा हुआ अन्न, सोम । (५) मृगा = सिंह, जानवर । (६) भूमि = अग्रण, प्रशासन, शीघ्रता, आवर्त ।



(२००) धावः । न । स्तुभिः । चित्तयन्त । खादिनः ।

वि । अत्रियाः । न । द्युतयन्त । वृष्टयः ।

रुद्रः । यत् । वः । मरुतः । रुक्मवक्षसः ।

वृषा । अजनि । पृश्न्याः । शुक्रे । ऊषनि ॥ २ ॥

(२०१) उक्षन्ते । अश्वान् । अत्यान् इव । आजिपु ।

नदस्य । कर्णेः । तुरयन्ते । आशुभिः ।

हिरण्यशिप्राः । मरुतः । दविध्वतः । पृक्षम् । याध । पृषतीभिः । सप्तमन्यवः ॥३॥

अन्वयः— २०० स्तुभिः न धावः खादिनः चितयन्त, वृष्टयः, अत्रियाः न, वि द्युतयन्त, यत् (हे) रुक्म-वक्षसः मरुतः ! वः वृषा रुद्रः पृश्न्याः शुक्रे ऊषनि अजनि ।

२०१ अत्यान् इव अश्वान् उक्षन्ते, नदस्य कर्णेः आशुभिः आजिपु तुरयन्ते, (हे) हिरण्य-शिप्राः सप्त मन्यवः मरुतः ! दविध्वतः पृषतीभिः पृक्षं याध ।

अर्थ— २०० (स्तुभिः न) नक्षत्रों से जिस प्रकार (धावः) द्युलोक उसी प्रकार (खादिनः) कँगन-धारी वीर इन आभूषणों से (चितयन्त) सुहाते हैं । (वृष्टयः) बल की वर्षा करनेहारि वे वीर (अत्रियाः न) मेघ में विद्यमान विजली के समान (वि द्युतयन्त) विशेष ढंग से द्योतमान होते हैं । (यत्) फ्योंकि हे (रुक्म-वक्षसः) उरोभाग पर मुहरों के हार पहननेवाले (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः) तुम्हें (वृषा रुद्रः) बलिष्ठ रुद्र (पृश्न्याः) भूमि के (शुक्रे ऊषनि) पवित्र उदरों से (अजनि) निर्माण कर चुका ।

२०१ (अत्यान् इव) घुड़दौड़ के घोड़ों के समान अपने (अश्वान्) घोड़ों की भी ये वीर (उक्षन्ते) बलिष्ठ करते हैं । वे (नदस्य कर्णेः) नाद करनेवाले, हिनहिनानेवाले (आशुभिः) घोड़ों-सहित (आजिपु) युद्धों में, चढ़ाई के समय (तुरयन्ते) धेग से चले जाते हैं । हे (हिरण्य-शिप्राः) सोने के साफ पहने हुए (सप्त-मन्यवः) उत्साही (मरुतः!) वीर मरुतो ! (दविध्वतः) शत्रुओं को हिलानेवाले तुम (पृषतीभिः) धम्येवाली हिरानयोंसहित (पृक्षं याध) अन्न के समीप जाते हो ।

भाषार्थ— २०० वीरों के आभूषण पहनने पर ये वीर बहुत भले दिखाई देते हैं और वे बिजली के समान चमकने लगते हैं । मातृभूमि की सेवा के लिए ही वे अस्तित्व में आ चुके हैं ।

२०१ वीर मरुद् अपने घोड़ों को पुष्टिकाक अन्न देकर, उन्हें बलवान् बना देते हैं और हिनहिनानेवाले घोड़ों के साथ शीघ्र ही रणभूमि में तुरन्त जा पहुँचते हैं । वे शत्रुओं को परास्त कर विपुल अन्न पाते हैं ।

टिप्पणी— [ २०० ] (१) स्तु = नक्षत्र, ताराका । (२) अत्रियाः = मेघ में पैदा होनेवाली बिजली । (३) वृष्टिः = गी, धरती, अंतरिक्ष । [ २०१ ] (१) नदस्य कर्णेः (कर्णेः) = नाद करनेवाले, हिनहिनानेवाले (घोड़ों के साथ), [ नदस्य आशुभिः कर्णेः = घोषणा करने के त्वराशील सौमसहित, कर्ण = Mego-Phone । ] (२) अश्वान् = घोड़ा, धारणनेवाला, खूब खानेवाला, घोड़े के समान बलवान् । (३) उक्ष = सिंचन करना, गीला करना, सफल होना । (४) आजि = (अज गवी) शत्रु पर काने का धावा, हमला, शीघ्रगतिसे विद्युत्गतिसे की हुई चढ़ाई । (५) मन्युः = उत्साह, सप्त-मन्युः = उत्साहसे युक्त, (मंत्र २०३ देखो) । (६) दविध्वत् = (ध्वत् कापने) हिलानेवाला ।

- (२०२) पृक्षे । ता । विश्वा । भुवना । ववक्षिरे । मित्राय । वा । सद्म । आ । जीरऽदानवः ।  
 पृषत्सअश्वासः । अनवभ्रऽराधसः ।  
 ऋजिप्यासः । न । वयुनेषु । धूऽसदः ॥ ४ ॥
- (२०३) इन्धन्वमिः । धेनुऽभिः । रण्शत्-ऊधमिः । अष्वस्ममिः । पथिमिः । भ्राजत्-ऋण्यः ।  
 आ । हंसासः । न । स्वसराणि । गन्तन ।  
 मधोः । मदाय । मरुतः । सऽमन्यवः ॥ ५ ॥

अन्वयः— २०२ जीर-दानवः पृषत्-अश्वासः अन्-अवभ्र-राधसः, ऋजिप्यासः न, वयुनेषु धूर-सदः, पृक्षे मित्राय सद् वा ता विश्वा भुवना आ ववक्षिरे ।

२०३ (हे) स-मन्यवः भ्राजत्-ऋण्यः मरुतः ! इन्धन्वमिः रण्शत्-ऊधमिः धेनुभिः अ-  
 ष्वस्ममिः पथिमिः मधोः मदाय, हंसासः स्व-सराणि न, आ गन्तन ।

अर्थ- २०२ (जीर-दानवः) शीघ्र विजय पानेवाले, (पृषत्-अश्वासः) घन्वेवाले घोड़े समीप रखनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई भी छीन नहीं सकता, ऐसे और (ऋजिप्यासः न) सीधी राह से उन्नति को जानेवाले के समान (वयुनेषु) सभी कर्मों में (धूर-सदः) अग्रभाग में बैठने-वाले ये वीर (पृक्षे) अन्नदान के समय (मित्राय सद् वा) मित्रों को स्थान देने के समान (ता विश्वा भुवना) उन सब भुवनों को (आ ववक्षिरे) आश्रय देते हैं ।

२०३ हे (स-मन्यवः) उत्साही, (भ्राजत्-ऋण्यः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुतो ! (इन्धन्वमिः) प्रज्वलित, तेजस्वी (रण्शत्-ऊधमिः) स्तुत्य और महान् धनों से युक्त (धेनुभिः) गौओं के साथ (अ-ष्वस्ममिः) अविनाशी (पथिमिः) मार्गों से (मधोः मदाय) सोमरसजन्य आनन्द के लिए इस यज्ञ के समीप (हंसासः स्व-सराणि न) हंस जैसे अपने निवास-स्थान के समीप जाते हैं, उसी प्रकार (आ गन्तन) आओ ।

भावार्थ- २०२ ये वीर उदारचेता, अक्षारोही, धनसम्पन्न, सरल मार्ग से उन्नत पानेवालों के समान सभी कार्य करते समय अग्रगन्ता बननेवाले हैं । अन्न का प्रदान करते समय जैसे वे मित्रों को स्थान देते हैं उसी प्रकार सभी प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं ।

२०३ विपुल दूध देनेवाली गौओं के साथ सोमरस पीने के लिए ये वीर अच्छे सुघट मार्गों पर से इस यज्ञ की ओर आ जायें ।

टिप्पणी— [२०२] (१) जीर-दानुः = (जीर = जल्द, सलवार; दानु = शूर, विजयी, विजिता, दान देने-वाला, काटनेवाला) शीघ्र विजयी, तुल्य दान देनेवाला, सलवार ले मारकाट करनेवाला । (२) ऋजिप्य = (ऋजु-प्राप्य) सीधी राह से जानेवाला, सरलतया अपनी उन्नति करनेवाला । (३) वयुने = ज्ञान, कर्म, नियम, रीति, स्ववश्या (Rule, Order) (४) अन्-अवभ्र-राधसः = अपतनशील धन से युक्त । (५) धूर-सद = प्रमुख, युक्त स्थान में बैठनेवाला । (६) भुवनं = भुवन, माणी, बनी हुई चीज । [२०३] (१) अ-ष्वस्मन् = (ष्वन् अवसंसने गौ) अविनाशी । (२) स्व-सर = [स्व-सू- (सर) गौ] स्वयमेव शिघ्र जाने की मृत्ति हो, वह स्थान, घर, अपना स्थान । (३) स-मन्युः = उत्साही, समान अंतःकरण के, एक विचार के । (देखिए मंत्र २०१) ।

(२०४) आ । नः । ब्रह्माणि । मरुतः । सऽमन्यवः ।  
 नराम् । न । शंसः । सर्वानानि । गन्तन ।  
 अर्थाऽइव । पिप्यत । धेनुम् । ऊधनि ।  
 कर्त । धियम् । जरित्रे । वाजऽपेशसम् ॥ ६ ॥

(२०५) तम् । नः । दात । मरुतः । वाजिनम् । रथे ।  
 आपानम् । ब्रह्म । चितयत् । दिवेऽदिवे ।  
 इपम् । स्तोतृऽभ्यः । वृजनेषु । कार्वे ।  
 सनिम् । मेधाम् । अरिष्टम् । दुस्तरम् । सहः ॥ ७ ॥

अन्वयः— २०४ (हे) स-मन्यवः मरुतः । नरां शंसः न नः ब्रह्माणि सवनानि आ गन्तन, अर्थाइव धेनु ऊधनि पिप्यत, जरित्रे वाज-पेशसं धियं कर्त ।

२०५ (हे) मरुतः ! रथे वाजिनं, दिवे-दिवे ब्रह्म चितयत्, आपानं तं इपं स्तोतृभ्यः नः दात, वृजनेषु कार्वे सनिं मेधां अ-रिष्टं दुस्-तरं सहः ।

अर्थ— २०४ हे (स-मन्यवः मरुतः ! ) उत्साही मरुतो ! (नरां शंसः न) शूरों में प्रशंसनीय वीरों के समान (नः ब्रह्माणि सवनानि) हमारे ज्ञानमय सोमसत्रकी ओर (आ गन्तन) आ जाओ । (अर्थाइव) घोड़ी के समान हृष्टपुष्ट (धेनुं) गौको (ऊधनि) दुग्धाशय में (पिप्यत) पुष्ट करो । (जरित्रे) उपासक को (वाज-पेशसं) अन्नसे भली प्रकार सुरूपता देने का (धियं कर्त) कर्म करो ।

२०५ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! हमें (रथे वाजिनं) रथमें बैठनेवाला वीर और (दिवे-दिवे) हरदिन (आपानं ब्रह्म चितयत्) प्राप्तव्य ज्ञान का संवर्धन करनेवाला ज्ञानी पुत्र दे दो, तथा इस भौति (तं इपं) वह अभीष्ट अन्न भी (स्तोतृभ्यः नः दात) हम उपासको को देदो । (वृजनेषु कार्वे) युद्धों में पराक्रम करनेहारे वीर को धन की (सनिं) देन (मेधां) बुद्धि तथा (अ-रिष्टं) अविनाशी एवं (दुस्-तरं) अजेय (सहः) सहनशक्ति भी दे दो ।

भावार्थ— २०४ शूर सैनिकों में जो सबसे अधिक शूर होते हैं, उनका अनुकरण अन्य वीरोंको करना चाहिए। इस भौति अधिक पराक्रम करके वे सदैव सत्कर्मों में अपना हाथ बँटाये। परिपुष्ट घोड़ी के समान गौएँ भी चपल तथा पुष्ट रहें। गौओं को अधिक दुग्धाश बनाने की चेष्टा करें। अन्न से बल बढ़ाकर शरीर प्रमाणबद्ध रहे, इसीलिए भौतिभौति के प्रयोग करने चाहिए।

२०५ हमें शूर, ज्ञानी, रथी, तथा सशक्तिष्ठ पुत्र मिले। हमें पर्याप्त अन्न मिले। लड़ाई में धीरतापूर्ण कार्य कर दिल्लानेवाले को मिलनेयोग्य देन, बुद्धिकी प्रबलता, अविनाशी और अजेय शक्ति भी हमें मिले।

टिप्पणी— [ २०४ ] ( १ ) पेशास् = सुरूपता, तेजस्विता । ( २ ) नृ = नेता, शूर । ( ३ ) धेनुं ऊधनि पिप्यत = गौका दुग्धाशय पुष्ट रहे ऐसा करो, गौ अधिक दूध देने लगे ऐसा करो । ( ४ ) जरितृ = स्तोता, उपासक, भक्त । ( ५ ) वाज-पेशास् = अन्न से बल पाकर जो शारीरिक मज्ज होता हो । ( ६ ) धी = बुद्धि, कर्म, (ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म । ) [ २०५ ] ( १ ) मेधा = शक्ति, धारणा-बुद्धि । ( २ ) सहः = शत्रुके हमले सहन करके अपने स्थान पर अपरभूत दत्ता में खड़े रहने की शक्ति । ( ३ ) वृजने = युद्ध, मज्ज में रहकर काने का युद्ध ।

(२०६) यत् । युञ्जते । मरुतः । रुक्मऽक्षसः ।  
 अश्वान् । रथेषु । भगे । आ । सुऽदानवः ।  
 धेनुः । न । शिष्ये । स्वसरेषु । पिन्वते ।  
 जनांष । रातऽहविषे । महीम् । इषम् ॥ ८ ॥

(२०७) यः । नः । मरुतः । वृकऽताति । मर्त्यः ।  
 रिपुः । दुधे । वसन्तः । रक्षत । रिपः ।  
 वर्तयत । तपुया । चक्रिया । अभि । तम् ।  
 अर्ष । रुद्राः । अशर्मः । हन्तन । वध्रिति ॥ ९ ॥

अन्वय. २०६ यत् सु दानव. रुक्म वक्षस मरुत भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते, धेनु. शिष्ये न, रात हविषे जनाय स्वसरेषु मही इषं पिन्वते ।

२०७ (हे) वसवः मरुतः ! यः मर्त्यं वृक-ताति नः रिपुः दुधे रिपः रक्षत, तं तपुया चाक्रिया अभि वर्तयत (हे) रुद्रा ! अशर्म. वध अर हन्तन ।

अर्थ- २०६ (यत् सु-दानवः) जब दानवों एवं, रुक्म-वक्षस. मरुतः) वक्ष-स्थलपर स्वर्णमुद्रिकाओं ने बना द्वार धारण करनेवाले वीर मरुत् (भगे) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए अपने (अश्वान्) घोड़ों को (रथेषु आ युञ्जते) रथों में जोड़ देते हैं, तब धे (धेनु शिष्ये न) जैसे गौ अपने बछड़े के लिए दूध देती है उसी प्रकार (रात हविषे जनाय) हविष्यान्न देनेवाले लोगों के लिए (स्व सरेषु) उनके अपने घरों में ही (मही इषं पिन्वते) बड़ी भारी अन्नसमृद्धि पर्याप्त मात्रा में प्रदान करते हैं ।

२०७ हे (वसव. मरुतः) वसनेवाले वीर मरुतो ! (यः मर्त्यं) जो मानव (वृक ताति) भेड़िये के समान भूत बन (न रिपुः दुधे) हमारे लिए शत्रुभूत होकर पैठा हो, उस (रिपः) हिंसक से (रक्षत) हमारी रक्षा कीजिए । (त) उसे (तपुया) सतापदायक (चाक्रिया) पहिंचे जैसे हथियार से (अभि वर्तयत) धर डालो, हे (रुद्रा !) शत्रुका रूलावेवाले वीरो ! (अशर्म.) पेदू (वध्.) हननीय शत्रुका (आ हन्तन) वध करो ।

भाषार्थ- २०६ वीर युद्ध के लिए रथपर चढ़कर जाते हैं और ऊपर भारी विजय पाकर धन साथ ले आते हैं । पश्चात् बदार पुरुषों को पट्टी धन उचित मात्रा में विभक्त करके बाँट देते हैं ।

२०७ जो मनुष्य क्रूर बनकर हमसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता हो उससे हमें बचाओ । चारों ओरसे उस शत्रु को घेरकर नष्ट कर डालो ।

टिप्पणी- [ २०६ ] (१) भगः = ऐश्वर्य, धन भाग, मुक्त, कीर्ति, वैभवशालिता । [ २०७ ] (१) चाक्रिया = (चक्र) = चक्र घू, पहिंचे के समान हथियार । (२) अशर्म = (अशर्म) = अवशस्त, दुष्ट (अश्र्) अक्षक, पट्ट । ३) तं तपुया चाक्रिया अभि वर्तयत = (१) उस शत्रु को (तपुया) घपकनेवाले, जबर तपनेवाले (चाक्रिया) चक्रवर्तु दिखाई देनेवाले शत्रुओं से परकर (अभि) चतुर्दिक् (वर्तयत) घेर दो ।

(२०८) चित्रं । तत् । वः । मरुतः । याम् । चेकिते ।

पृथ्व्याः । यत् । ऊर्ध्वः । अपि । आपयः । दुहुः ।

यत् । वा । निदे । नवमानस्य । रुद्रियाः । ।

त्रितम् । जराय । जुरताम् । अद्राम्याः ॥ १० ॥

(२०९) तान् । वः । महः । मरुतः । एन्द्रयाज्ञः । विष्णोः । एपस्य । प्रुधुभे । हवामहे ।  
हिरण्यवर्णान् । ककुहान् । यत्स्युचः । ब्रह्मण्यन्तः । शंस्यम् । राधः । ईमहे ॥ ११ ॥

अन्वयः— २०८ ( हे ) मरुत ! च तत् चित्रं याम् चेकिते यत् अपय पृथ्व्याः अपि ऊर्ध्व दुहु, यत् ( हे ) अ-दाभ्याः रुद्रिया ! नवमानस्य निदे त्रितं जुरतां जराय वा ।

२०९ ( हे ) मरुत ! एव य ज्ञः मह तान् वः विष्णोः एपस्य भ भूथे हवामहे, ब्रह्मण्यन्त यत् सुचः हिरण्य-वर्णान् ककुहान् शस्यं राधः इमहे ।

अर्थ— २०८ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( च तत् चित्रं तुम्हारा वह आश्चर्यजनक ( याम् ) हमला ( चेकिते ) सय की विदित है, ( यत् ) क्योंकि सय से आपय. ) मित्रता करनेवाले तम ( पृथ्व्या. अपि ऊर्ध्वः ) गोक दुग्धाशय का ( दुहु ) दोहन करके दूध पीते हो । ( यत् ) उसा प्रकार हे ( ज दाभ्या. ) न दधनेवाले ( रुद्रिया ! ) महावीरों " ( नवमानस्य ) तुम्हारे उपासक वी । निदे निदा करनेहारे तथा ( त्रितं ) त्रित नामवाले ऋषिओ ( जुरतां ) मारने की इच्छा करनेवाले शत्रुओं के ( जराय वा ) विनाश के लिए तुमही प्रयत्नशील हो, यह वात विख्यात है ।

२०९ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( एव याज्ञ ) वेगसे जानेवाले ( महः ) तथा महत्त्वयुक्त ऐसे ( तान् व ) तुम्हें हमारे ( विष्णोः ) व्यापक हितकी ( एपस्य ) इच्छा की ( प्र भूथे ) पूर्ति के लिए ( हवामहे ) हम बुलाते हैं । ( ब्रह्मण्यन्त. ) ज्ञानकी इच्छा करनेहारे तथा ( यत् सुच. ) पुण्य कर्मके लिए कटि-पद्म हा उठानेवाले हम ( हिरण्य वर्णान् ) सुवर्णयुक्त नेत्रसंवा एयं ( ककुहान् ) अत्यन्त ऊर्ध्व ऐसे इन वीरों के समीप ( शस्यं राध ) सराहनीय धनकी ( ईमहे ) याचना करते हैं ।

भाषार्थ— २०८ वीर वैदिक शत्रुदल पर जय धावा करते हैं, तो उम घटाईको दूर प्रेक्षक अचम्भेसे आते हैं। ये वीर गोदुग्ध को पीते हैं और अपने अनुयायियों की रक्षा करते हैं, मत वे शत्रुओं तथा मित्रोंसे बिल्कुल नहीं डरते हैं ।

२०९ वीरों को बुलाने में हमारा यही अभिप्राय है कि ये हमारे सार्वजनिक हित की जा अभिलाषाएँ हैं उन्हें पूर्ण करनेमें सहयता दें दें । हम ज्ञान पाने की अभिलाषा करते हैं और एतदर्थ हम प्रयत्नशील भी हैं । इसलिए हम इन श्रेष्ठ वीरों के निकट जाकर उ से प्रशमनीय धन माँग रहे हैं । वे हमारे इच्छा पूर्ण कर ।

टिप्पणी— [ २०८ ] ( १ ) अद्राम्या = ( अ-दाभ्या ) न दधनेवाला, जिसे कोई अति न पढ़नी हो । ( २ ) आपि = आप, सुगमता से प्राप्त होनेवाला, मित्र । ( ३ ) त्रित = त्रैतयाद् के तत्रज्ञान का प्रचार करनेवाला [ एतन्, द्वित, त्रित ये तीन ऋषि विविध तत्रज्ञान के प्रवर्तक थे । एतन्, द्वैत, त्रैत वादो का प्रवर्तन उन्होंने किया । ]

[ २०९ ] ( १ ) एव-याज्ञ = वेगपूर्वक जाने वाला । ( २ ) ककुह = प्रथमतः, उर्ध्व, मथसे श्रेष्ठ । ( ३ ) यत् सुच = यज्ञकुण्ड में घृतकी अहुति देनेके लिए जिसने सुचा तैयार कर रखी हो ( अच्छ कार्य करने के लिए जिसने कमर कस ली हो, ऐसा थागी पुण्य ) । ( ४ ) हिरण्य वर्ण = वीर मरुत् सुवर्णकान् से शोभित पीत रंग वर्णवाले थे ( मरुद्भ्यो ये वैदयं । वा० य० ३०५ ) वैद्यों का रंग पीत बनलाया जाता है; इसी भाँति यहाँ पर मरुतों का वर्ण पीत है, ऐसा सूचित किया है ।

(२१०) ते । दशग्वाः । प्रथमाः । यज्ञम् । ऊहिरे ।

ते । नः । द्विन्वन्तु । उपसः । विदुष्टिपु ।

उपाः । न । रामीः । अरुणैः । अप । ऊर्णुते ।

महः । ज्योतिषा । शुचता । गोऽर्णसा ॥१२॥

(२११) ते । क्षोणीभिः । अरुणोभिः । न । अञ्जिभिः । रुद्राः । ऋतस्य । सद्नेपु । ववृधुः ।

निऽमेघमानाः । अत्येन । पाजसा । सुऽचन्द्रम् । वर्णम् । दुधिरे । सुऽपेशसम् ॥१३॥

अन्वय.— २१० दश-ग्वाः प्रथमाः ते यज्ञं ऊहिरे, ते नः उपसः व्युष्टिपु द्विन्वन्तु, उपा न, अरुणैः रामीः महः शुचता गो-अर्णसा ज्योतिषा अप ऊर्णुते ।

२११ रुद्राः ते, क्षोणीभिः अरुणोभिः न, अञ्जिभिः ऋतस्य सद्नेपु ववृधुः, नि-मेघमानाः अत्येन पाजसा सु-चन्द्रं सु-पेशसं वर्णं दुधिरे ।

अर्थ— २१० (दश-ग्वाः) दस मासतक यज्ञ करनेवाले तथा (प्रथमाः) अद्वितीय ऐसे (ते) उन वीरों ने (यज्ञं ऊहिरे) यज्ञ किया । (ते) वे (नः) हमें (उपसः व्युष्टिपु) उपःकाल के प्रारंभ में (द्विन्वन्तु) प्रेरणा दें । (उपाः न) उपा जिस प्रकार (अरुणैः) रक्षित किरणों से (रामीः) अँधेरी रातों को आच्छादित करती हैं, वैसे ही ये वीर (महः) बड़े (शुचता) तेजस्वी (गो अर्णसा) किरणों के तेजसे (ज्योतिषा) प्रकाश से सारा संसार (अप ऊर्णुते) ढक देते हैं ।

२११ (रुद्राः ते) शत्रुओंको रुलानेवाले ये वीर (क्षोणीभिः) चकण।चूर किये हुए (अरुणोभिः न) केसरिया के समान पीतवर्णवाले (अञ्जिभिः) बख्वालकारों से युक्त होकर (ऋतस्य) उद्दकयुक्त (सद्नेपु) घरों में (ववृधु) बढ़े । उसी प्रकार (नि-मेघमानाः) पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करनेवाले ये (अत्येन पाजसा) अपने वेगयुक्त बलसे (सु-चन्द्रं) अत्यन्त आह्लाददायक एवं (सु-पेशसं) अति सुन्दर (वर्णं) कान्ति को (दुधिरे) धारण करते हैं ।

भाषार्थ— २१० ये वीर वर्ण में दम महीने यज्ञकर्म करने में विनाते हैं । ये हमें प्रतिदिन सरकर्म की प्रेरणा दें अर्थात् दृग के चारिष्य को देखकर हमारे दिल में प्रति पल सरकर्म की प्रेरणा होती रहे । ये वीर अपने पवित्र तेज से घोरतमान रहते हैं ।

२११ इन वीरों के परमाभूषण नीले रंग में रंगे हुए हैं । जिसपर जल विपुलतया मिलता हो, उधर ही ये रहते हैं । शीतिपूर्वक मिलकर रहनेवाले ये अपने वेग एवं बल से वीरता के कार्य करते रहते हैं, इसलिए बहुत तेजस्वी दीप्ति पड़ते हैं ।

टिप्पणी— [ २१० ] ( १ ) दश ग्वाः ( दश-गो [ गम् ] ) दस दिशाओं में जानेवाले, दस गोएँ तथा रखनेवाले, दस मास चलनेवाले । ( २ ) रामीः = ( राम-अँधेरा ) अँधेरी रात, आत्म्य देखेवाली, राती । ( ३ ) व्युष्टिपु = ( वि-उप्-दाठे ) = विशेष प्रकाशित, विशेष मनोहर, दिन का आरम्भ, प्रकाश । ( ४ ) गो-अर्णसू = विरण-समुद्र, प्रकाश का प्रवाह, उजियारे का भोप । [ २११ ] ( १ ) पाजसू = बल । ( २ ) नि-मेघमानाः ( मेघतीति मेघः = मेघ-समुदाय ) = पूर्णरूप से एकत्रित होनेवाले । ( ३ ) ऋतस्य सद्नेपु = जहाँ जल अधिक हो, ऐसे स्थानों में । ( ४ ) क्षोणी = ( क्षु-घस्ते, क्षुद्-संवेपणे ) = शब्द करनेवाली, पृथ्वी, वर्ण किया हुआ, महीन आटा करनेयोग्य । ( ५ ) अरण = छाल रंग, केसरिया वर्ण, वेदार, सुवर्ण ।

- (२१२) तान् । इयानः । महिं । वरूथम् । ऊतये ।  
 उप । घृ । इत् । एना । नमसा । गृणीममि ।  
 त्रितः । न । यान् । पञ्च । होतृन् । अभीष्टये ।  
 आऽववर्तत् । अघरान् । चक्रिया । असे ॥ १४ ॥
- (२१३) यया । रत्रम् । पारयथ । अति । अंहः ।  
 यया । निदः । मुञ्चथ । वन्दितारम् ।  
 अर्वाची । सा । मरुतः । या । वृः । ऊतिः ।  
 ओ इति । सु । वाश्राइव । सुऽमतिः । जिगातु ॥ १५ ॥

अन्वयः— २१२ यान् अघरान् पञ्च होतृन् चक्रिया जवसे, अभीष्टये न त्रितः आववर्तत् तान् ऊतये महि वरूथं इयान एना नमसा उप इत् गृणीमसि घ ।

२१३ (हे) मरुत ! यया रत्रं अंह अति पारयथ, यया वन्दितारं निद मुञ्चथ, या व ऊति सा अर्वाची, सु-मति वाश्राइव ओ सु जिगातु ।

अर्थ— २१० (यान्) जिन (अघरान्) अत्यन्त श्रेष्ठ (पञ्च होतृन्) पाँच याजकों तथा वीरों को (चक्रिया) चक्रकी दाह्रुवाले हथियार से (असे) रक्षण करने के लिए (अभीष्टये न) तथा अर्वाष्टपूर्ति के लिए (त्रितः) ऋषि त्रितमे (आववर्तत्) अपने समीप बुला लिया था, (तान्) उनके समीप (ऊतये) संरक्षण के लिए (महि वरूथं) यथा आश्रयस्थान (इयानः) भोगनेवाले हम (एना नमसा) इस नमस्कार से (उप इत्) समीप जाकर उनकी (गृणीमसि घ) प्रशंसा करते हैं ।

२१३ हे (मरुतः) वीर मरुतो (यया) जिसकी सहायता से तुम (रत्रं) उपासक को (अंहः) पाप के (अति पारयथ) परे ले जाते हो (यया) जिस से (वन्दितार) वन्दन करनेवाले को (निदः) निदा करनेवाले से (मुञ्चथ, छुडाते हो, (या व. ऊति.) जो इस भाति तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति है (सा अर्वाची) वह हमारी ओर आ जाए और तुम्हारी (सु-मति.) अच्छी बुद्धि (वाश्राइव) रंभाने-पाली गौ के समान (जो सु जिगातु) भली प्रकार हमारे निक्कट आए, हमें प्राप्त हो ।

भाषार्थ— २१२ ये वीर दस्यु यज्ञ करनेवाले हैं और अपने अनुयायियों की रक्षाका भार अपने ऊपर लेनेवाले हैं । हम उनसे अपना रक्षाकी अपेक्षा करते हैं और इसलिए उन्हें नमन करके उनकी मराहना करते हैं ।

२१३ तुममें विद्यमान जिन मरुतर नास्त्रियों की सहायतासे तुम उपासकों को पापोंसे बचाते हो, गिन्दक लोगोंसे बचाते हो, उन तुम्हारे संरक्षण की छत्रच्छाया में हम रहने पायें और तुम्हारी सुमति से हम काम उठावें ।

टिप्पणी - [ २१० ] ( १ ) वरूथं = घर, रक्षण, कवच, समुदाय, ढाल । ( २ ) अ घर = ( न विद्यते घर श्रेष्ठ ) अन्वयः येषां ते ) श्रेष्ठ, ( अघरान् समुदायान् । सायण ) । [ २१३ ] ( १ ) रत्रं = ( रत्र-हिंसा-संशय्यो ) पूजा करने द्वारा, श्रीमान्, उदाय, सुखी, दुःख देनेवाला ।

गाविपुत्र विश्वामित्र ऋषि (शं० ३।२६।४—६)

(२१४) प्र । यन्तु । वाजाः । तविपीभिः । अग्रयः । शुभे । सम्सर्मिश्वाः । पृषतीः । अयुक्षतु ।  
वृहत्सउक्षः । मरुतः । विश्वसृष्टयः । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । अदाभ्याः ॥४॥

(२१५) अग्निश्रियः । मरुतः । विश्वसृष्टयः । आ । त्वेपम् । उग्रम् । अर्षः । ईमहे । वयम् ।  
ते । स्त्रानिनः । रुद्रियाः । वर्षनिर्निजः । सिंहाः । न । हेपसकतनः । सुदानवः ॥५॥

अन्वय — २१४ वाजा अग्रय तविपीभि प्र यन्तु, शुभे स मिश्वा पृषती अयुक्षत, अ दाभ्या विश्व-  
वेदस वृहत् उक्ष मरुत पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

२१५ मरुत अग्निश्रिय विश्व सृष्टय, उग्र त्वेप अय वा ईमहे, ते वर्ष-निर्णिज रुद्रिया  
हेप सकतव सिंहा न स्थानिन सु दानव ।

अर्थ- २१४ (वाजा) बलवान् वा अजवान् (अग्रय) अग्निवत् तेजस्वी वीर (तविपीभि) अपने  
बलोंसहित शत्रुदलपर (प्र यन्तु) चढाई करें या दूट पड़ें। (शुभे) लाकरल्याण के लिए (स मिश्वा) इच्छे  
हुए वे वीर (पृषती अयुक्षत) पर्वतवाली घोड़ियों या हिरणियों रथों में जोड़ देते हैं। (अ-दाभ्या) न  
दबनेवाले (विश्व वेदस) सभी धनों से युक्त और (वृहत्-उक्ष) अतीव बलवान् वे (मरुत) वीर  
मरुत् (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पहाड़ोंको भी हिला देते हैं।

२१५ (मरुत अग्निश्रिय) वे वीर मरुत् अग्निवत् तेजस्वी हैं और (विश्व-सृष्टय) सभी किसानों  
में से हैं। उनके (उग्र त्वेप अय) प्रखर तेजस्वी सरक्षणको (वय आ ईमहे) हम चाहते हैं। (ते वर्ष-  
निर्णिज) वे स्वदेशी गणवेश पहननेवाले हैं तथा (रुद्रिया) महावीर के समान शूरवीर और  
(हेप सकत सिंहा न) गर्जना करनेवाले सिंह के समान (स्थानिन) बड़ा शत्रु करनेवाले हैं एव  
(सु दानव) बड़े अच्छे दानी हैं।

भावार्थ- २१४ वीर अपना बल एकत्रित कर के शत्रुदल पर दूट पड़ें। जनता का हित करने के लिए वे मिलजुल  
कर कार्य करें। वे वीर किसी से दबनेवाले नहीं हैं और अच्छे ज्ञानी एवं सामर्थ्यवान् होने के कारण यदि प्रयत्न करें,  
तो पात-धर्मियों को भी अपनी जगह से उखाड़ फेंक देंगे।

२१५ वे वीर अग्नि की नाईं तजस्वी हैं और कृपक होते हुए भी सेना में प्रविष्ट हुए हैं। वे स्वदेश में  
धनाये हुए गणवेश का ही उपयोग करते हैं। हमारा इच्छा है कि वे हमें सकटों से बचायें। वे वीर की नाईं दहाड़ते  
हैं और शत्रुको जूनौती देने में निश्कत नहीं। वे बड़ उदार भी हैं।

टिप्पणी- [ २१४ ] (१) वाजा = अथ वज्र बल वग, लडाईं सपत्ति। (२) तविपी = (तविष्) बल, सामर्थ्य,  
बलिष्ठ, पृषती। (३) अग्रय = अग्नि के समान तेजस्वी। (अगले मंत्र में 'अग्निश्रिय' शब्द दत्विष्)। [२१५]  
(१) वृष् = (त्रिलसने) स्वीचना, पालन करना, प्रभु व प्रस्थापित करना इल चलाना। (२) विश्व सृष्टि = सारे  
दृषक, सभी मानव, सब को स्वीचनेवाला। दक्षिण 'इन्द्र आसीत्सीरपति शतमरुतु फीनाशा आम्नन् मरुत  
सु दानव ॥ (अपर्व ३।२६।११)। (३) निर्णिज = पुत्र, पवित्र, वस्त्र। (४) वर्ष = वर्षा दान। वर्ष निर्णिज =  
स्वदेश में बने हुए कपड़े पहननेवाला, देशी वस्त्रों या गणवश उपयोग में लानेवाला, वर्षा की ही जो पहनावा मानत हों।



(२१६) व्रातं मूत्रातम् । गणमूत्राणम् । सुशस्तिभिः । अग्नेः । भामंम् । मरुताम् । ओजः । ईमहे ।  
पृषत् अश्वासः । अनुभ्रशरीपसः । गन्तारः । यज्ञम् । विद्येषु । धीराः ॥६॥

अभिपुत्र दयावाश्व ऋषि ( ऋ० ५।५२।१-१० )

(२१७) प्र । श्यावः अश्व । धृष्णुः या । अर्चं । मरुतः । ऋषयः ।  
ये । अद्रोघम् । अनुस्वधम् । श्रवः । मन्ति । यक्षियाः ॥१॥

अन्वयः— २१६ गणं गणं व्रातं-व्रातं अग्ने भामं मरुतां ओजः सु-शस्तिभि ईमहे, पृषत्-अश्वास  
अनु-अवभ्र-राधस धीराः विद्येषु यज्ञं गन्तारः ।

२१७ ( हे ) श्यावाश्व ( श्याव-अश्व ) धृष्णु-या ऋषयः मरुद्भिः प्र अर्चं, ये यक्षियाः  
अनु-स्व-धं अ द्रोघं श्रवः मन्ति ।

अर्थ- २१६ ( गणं-गणं ) हर सैन्य-विभाग में और ( व्रातं-व्रातं ) हर समूह में ( अग्नेः भामं ) अग्नि  
का तेज तः । ( मरुतां ओजः ) मरुतों का बल उत्पन्न हो इसलिए हम ( सु शस्तिभिः ) उत्तम, अच्छी  
स्तुतियों से ( ईमहे ) उनकी प्रार्थना करते हैं । ( पृषत् अश्वासः ) धर्मों से युक्त घोड़े रहनेवाले ( अनु-  
अवभ्र राधसः । जिनका धन छीना न जाता हो ऐसे वे ( धीरा ) धैर्ययुक्त वीर ( विद्येषु ) यज्ञों में या  
युद्धों में ( यज्ञं गन्तारः ) हवनस्थान के समीप जानेवाले हैं ।

२१७ हे ( श्याव अश्व ! ) भूरे रंग के घोड़े पर बैठनेवाले वीर ! ( धृष्णु या ) शत्रु का पराभव  
करने में उपयुक्त बल से परिपूर्ण तू ( ऋषयः मरुद्भिः ) सराहनीय वीर मरुतों के साथ ( प्र अर्चं ) उनकी  
पूजा कर । ( ये यक्षिया ) जा पूज्य वीर ( अनु स्व ध ) अपनी धारक शक्ति से युक्त हो, ( अ-द्रोघं ) द्रोह-  
रहित ( श्रवः ) कीर्ति पाकर ( मन्ति ) हर्षित हो उठते हैं ।

भावार्थ- २१६ हम वीरों के काव्य का गायन इसलिए करते हैं कि, वीरों के हर वृत्त में तथा प्रायःक विभाग में  
तेजस्विता स्थिर रहने पाय । इन वीरों के निकट घोड़े सर हुए हैं और वे अती धैर्यवाली हैं । इन के पास जो धन  
है, वह न कभी घटता और न दूसरों को पतनीगुल्य करता है । सम्राट् ने जिधर शासनबलिदान का कार्य करना पड़े  
उधर वे पहुँचकर काम पूरा कर देते हैं ।

२१७ जिस से शत्रु का पराभव हो जाय, ऐसा बल प्राप्त करना चाहिए और वीरों का भी सम्मान करना  
चाहिए । वीर अपनी धारक शक्ति बढ़ा कर किसी का भी ह्वन न करे हुए बड़े बड़े कार्यों में सफलता पाकर यशस्वी  
बन जाते हैं ।

टिप्पणी [ २१६ ] ( १ ) गण = समुदाय, सैन्य का विभाग ( Division, अंग्रेज़िणी का अर्थ, जिस में २७ रथ,  
२७ हाथी, ८१ घोड़े, १२५ पैदल सिपाही हो । देखिए मंत्र २४४ पर की टिप्पणी ) । ( २ ) व्रातः = समुदाय, समूह,  
पौहव, पुरुषार्थ । ( ३ ) यज्ञः = यज्ञ, दृविद्वैत ( जिस यज्ञमें भे देवपूजा मातृकरण-दान होता हो, ) आत्मसमर्पण ।  
( ४ ) धीरः = ( धी-र ) बुद्धि देनेवाले, परामर्श करनेवाले, धैर्यवान् । [ २१७ ] ( १ ) श्याव अश्व = ( श्याव )  
भूरे रंग का ( अश्व ) घोड़ा, उस घोड़े पर बैठनेवाला वीर, [ श्यावाश्व ऋषि सावगभाष्य । ] ( २ ) श्रवस् = कान, यश,  
धन, सराहनीय कर्म, कीर्ति । ( ३ ) अर्चं = ( पूजायां ) = पूजा करना, प्रशंसा, सम्मान करना ।

- (२१८) ते । हि । स्थिरस्य । शर्वसः । सखायः । सन्ति । धृष्णुऽया ।  
 ते । यामन् । आ । धृपत्सुविनः । त्मना । पान्ति । शर्वतः ॥२॥
- (२१९) ते । स्पन्द्रासः । न । उक्षणः । अति । स्कन्दन्ति । शर्वरीः ।  
 मरुताम् । अर्ध । महः । द्विवि । क्षमा । च । मन्महे ॥३॥
- (२२०) मरुत्सु । वः । दधीमहि । स्तोमम् । यज्ञम् । च । धृष्णुऽया ।  
 विश्वे । ये । मानुषा । युगा । पान्ति । मर्त्यम् । रिपः ॥४॥

अन्वयः— २१८ धृष्णु-या ते हि स्थिरस्य शर्वसः सखायः सन्ति, ते यामन् शर्वतः धृपत् विनः त्मना आ पान्ति ।

२१९ स्पन्द्रासः न उक्षणः ते शर्वरीः अति स्कन्दन्ति, अर्ध मरुतां द्विवि क्षमा च मह-मन्महे ।  
 २२० ये विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिप पान्ति, वः धृष्णु-या मरुत्सु स्तोमं यज्ञं च दधीमहि ।

अर्थ- २१८ (धृष्णु या ते हि) वे साहसी एवं आक्रमणकर्ता वीर (स्थिरस्य शर्वसः) स्थायी एवं शठल बल के (सखायः सन्ति) सहायक हैं। (ते यामन्) वे चढाई करते समय (शर्वतः) शर्वत (धृपत् विनः) विजयशाल सामर्थ्य से युक्त वीरों का (त्मना) स्वयं ही (आ पान्ति) सभी ओरसे संरक्षण करते हैं।

२१९ (ते स्पन्द्रासः) शत्रु को विकम्पित करनेवाले (न उक्षणः) और बलवान् वीर (शर्वरीः) अति स्कन्दन्ति) रात्रियों का अतिक्रमण करके आगे चले जाते हैं। (अर्ध) अर्ध इसलिए (मरुतां) मरुतां के (द्विवि क्षमा च) दुगुणों में एवं पृथ्वी पर विद्यमान (महः मन्महे) तेजापूर्ण काष्णिका ह्रम मनन करते हैं।

२२० (ये) जो वीर (विश्वे) सभी (मानुषा युगा) मानवी युगों में (मर्त्यं) मानवको (रिपः पान्ति) हिसक से बचाते हैं, ऐसे (वः) तुम (धृष्णु-या) विजयशाल सामर्थ्य से युक्त (मरुत्सु) मरुतां के लिए हम (स्तोमं यज्ञं च) स्तुति तथा पवित्र कार्य (दधीमहि) अर्पण करते हैं।

भावार्थ- २१८ ये साहसी और शूरवीर सैनिक बल की ही सराहना करते हैं। जब ये शत्रुदल पर आक्रमण कर देते हैं, तब शपायी एवं विजयी बल से परिपूर्ण वीरों की रक्षा करने का गुरुतर कार्यभार स्वयं ही स्वेच्छा से उठाते हैं।

२१९ जो बलिष्ठ वीर शत्रु के दिल में घडकन पैदा करते हैं, वे रात्रियों के समय दुश्मनों पर चढाई करते हैं और दिन के अन्तर पर भी आक्रमण प्रचलित रखते हैं। इसीलिए हम इन के मननीय चरित्र का मनन करते हैं।

२२० जो वीर मानवी युगों में शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं, उन के सामर्थ्य की सराहना करनी चाहिए।

टिप्पणी- [२१८] (१) शर्वतः = अक्षय, चिरकाल तक टिकनेवाला, सतत। [२१९] (१) मन्महे = इच्छा, स्तुति, (मननीय काव्य)। (२) शर्वरीः आति स्कन्दन्ति = ये वीर दिन या रात्रियों का लतिक भी खयाल न करके अपना आक्रमण बराबर जारी रखते हैं। (३) स्पन्द्रु = (विश्विचलने) = हिलना, हिलाना। [२२०] (१) युगं = युगल, पतिपत्नी, प्रजा, अनेक वर्षों का काल। (२) मर्त्यः = मानव, मरणधर्मा मनुष्य।

(२२१) अर्हन्तः । ये । सुदानवः । नरः । असामिऽश्वसः ।

प्र । यज्ञम् । यज्ञियेभ्यः । दिवः । अर्च । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥

(२२२) आ । रुमैः । आ । युधा । नरः । ऋष्याः । ऋषीः । असृक्षत ।

अर्चु । एनान् । अर्ह । विऽद्युतः । मरुतः । जज्झतीऽश्व । भानुः । अर्त्त । त्मना । दिवः ॥६॥

(२२३) ये । ववृधन्त । पार्थिवाः । ये । उरौ । अन्तरिक्षे । आ ।

वृजने । वा । नदीनाम् । सधऽस्थे । वा । महः । दिवः ॥७॥

(२२४) शर्धः । मारुतम् । उत् । शंस । सत्यऽश्वसम् । ऋभ्वसम् ।

उत । स्म । ते । शुभे । नरः । प्र । स्पन्द्राः । युजत । त्मना ॥८॥

अन्वय- २२१ ये अर्हन्तः सु-दानव अ-सामि-श्वस दिवः नरः यज्ञियेभ्यः मरुद्भ्यः यज्ञं प्र अर्च ।

२२२ रुमैः आ युधा आ ऋष्याः नरः दिव मरुत ऋषीः एनान् अनु ह जज्झती इव विद्यु-  
तः असृक्षत, भानु त्मना अर्त्त ।

२२३ ये पार्थिवाः, ये उरौ अन्तरिक्षे, नदीनां वृजने वा महः दिवः सध-स्थे वा आ ववृधन्त ।

२२४ सत्य-श्वसं ऋभ्वसं मारुतं शर्धं उत् शंस, उत स्म स्पन्द्राः नरः ते शुभे त्मना प्र युजत ।

अर्थ— २२१ (ये) जो (अर्हन्तः) पूज्य, (सु-दानव) दानशूर, (अ-सामि-श्वसः) संपूर्ण बलसे युक्त तथा (दिवः) तेजस्वी, द्योतमान (नरः) नेता हैं, उन (यज्ञियेभ्यः) पूज्य (मरुद्भ्यः) वीर-मरुतों के लिए (यज्ञं) यज्ञ करो और उनकी (प्र अर्च) पूजा करो ।

२२२ (रुमैः आ) स्वर्णमुद्रा के हारों से और (युधा आ) आयुधों से युक्त, (ऋष्याः नरः) बड़े तथा नेतृत्वगुण से युक्त (दिवः) दिव्य वीर (ऋषीः) अपने भालोंको और (एनान् अनु ह) इनके अनुरोधसे ही (जज्झतीऽश्व) घडघडाती हुई नदियों के समान (विद्युतः) तेजस्वी वज्र शत्रु पर (असृक्षत) फेंक देते हैं । इनका (भानुः) तेज (त्मना) उनके साथही (अर्त्त) चला जाता है ।

२२३ (ये पार्थिवाः) जो ये वीर पृथ्वी पर, (ये उरौ अन्तरिक्षे) जो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में या (नदीनां) नदियों के समीप के (वृजने वा) मैदानों में अथवा (महः दिवः) विस्तृत बुलोकके (सध-स्थे वा) स्थान में (आ ववृधन्त) सभी तरह से बढ़ते रहते हैं ।

२२४ (सत्य-श्वसं) सत्य के बलसे युक्त तथा (ऋभ्वसं) हमले करनेवाले (मारुतं शर्धः) वीर मरुतों के सामुदायिक बल की (उत् शंस) स्तुति करो । (उत स्म) क्योंकि (स्पन्द्राः) शत्रुको विच-लित एवं विकम्पित करनेवाले और (नरः) नेता वे वीर (शुभे) लोककल्याण के लिए किये जानेवाले सकार्य में (त्मना) स्वयं अपनी सदिच्छासे ही (प्र युजत) जुट जाते हैं ।

भावार्थ- २२१ पूजनीय, दानी वीरों का अच्छा सत्कार करना चाहिए ।

२२२ हार एवं हथियारों से सजे हुए वे वीर बहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं ।

२२३ ये वीर भूमंडल पर, अन्तरिक्ष में तथा बुलोक में भी अबाधरूप से संचार करते हैं ।

२२४ वीरों के सच्चे बल का बलान करो । ये वीर जनता के हित के लिए स्वच्छापूर्वक यत्न करते रहते हैं ।

टिप्पणी- [ २२१ ] (१) सामि = भाषा, अर्थः; अ-सामि = पूर्ण, अविकल, ममम ।

[ २२४ ] (१) ऋभ्वस = बहुत दूर फैले हुए, धैर्यशाली, चढाई करनेवाले । (२) शर्ध = बल, समूह,

संघ, शत्रु के विनाश करनेका बल ।

मस्य [ हि. ] १९

- (२२५) उत । स्म । ते । परुष्याम् । ऊर्णाः । वसत । शुन्ध्यवः ।  
 उत । पृथा । रथानाम् । अद्रिम् । भिन्दन्ति । ओजसा ॥९॥
- (२२६) आपथयः । विपथयः । अन्तःपथाः । अनुपथाः ।  
 एतेभिः । मह्यम् । नामंसभिः । यज्ञम् । विस्तारः । ओहते ॥१०॥
- (२२७) अध । नरः । नि । ओहते । अध । निद्युतः । ओहते ।  
 अध । पारावताः । इति । चित्रा । रूपाणि । दद्याँ ॥ ११ ॥

अन्वय - २२५ उत स्म ते परुष्या शुन्ध्यव. ऊर्णा वसत, उत रथानां पृथा ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति ।  
 २२६ आ-पथय वि-पथय. अन्त-पथा अनुपथा एतेभिः नामभि विस्तार मह्यं यज्ञं  
 ओहते ।

२२७ अध नर नि ओहते अध निद्युत, अध पारावता ओहते, इति रूपाणि चित्रा दद्याँ ।

अर्थ- २२५ (उत स्म) और (ते) के वीर (परुष्या) परुषी नदी में (शुन्ध्यव.) पवित्र होकर  
 (ऊर्णा वसत) ऊनी कपड़े पहनते हैं (उत) और (रथानां पृथा) रथों के पहियों से तथा (ओजसा)  
 यज्ञ बलसे (अद्रिं भिन्दन्ति) पहाड़ को भी विभिन्न कर डालते हैं ।

२२६ (आ-पथय) समीप के मार्ग से जानेवाले, (विपथयः) विविध मार्गों से जानेवाले,  
 (अन्त-पथा) गुप्त खडकों परसे जानेवाले (अनु-पथा) अनुकूल मार्गोंसे जानेवाले, (एतेभिः नामभिः)  
 ऐसे इन नामों से (विस्तार) विख्यात हुए ये वीर (मह्य) मरे लिये (यज्ञ ओहते) यज्ञ के हविष्यान्न  
 ढोकर लाते हैं ।

२२७ (अध) कभी कभी ये वीर (नर) नेता यन्त्र संसार का (नि ओहते) धारण करते हैं,  
 (अध निद्युत) कभी कभी म खड रहकर सामशयिक ढंगसे और (अध) उसी प्रकार (पारावता)  
 दूर जगद खडे रहकर भी (ओहते) बोज़ दोते हैं, (इति) इस भाँति उनके (रूपाणि) स्वरूप (चित्रा)  
 आश्चर्यकारक तथा (दद्याँ) देखनेयोग्य हैं ।

भावार्थ- २२५ वीर नदी में नहाकर शुद्ध होते हैं और ऊनी कपड़े पहनकर अपने रथों के घेग से पहाड़ों तक को  
 लाँच कर चले जाते हैं ।

२२६ भाँति भाँति के मार्गों से जानेवाले वीर चहु ओर से अन्नसामग्री लाते हैं ।

२२७ वीर पुराण नेता बन जाते हैं और सेना में दूर जगद या समीप खडे रहकर संरक्षण का समूचा भार  
 उठा लते हैं । ये सुखरूप तथा दर्शनीय भी हैं ।

टिप्पणा- [२२५] (१) परस्= शरीर का अवयव, परुषी= शरीर, नदी का नाम । (२) ऊर्णा= ऊन,  
 ऊनी कपड़े ।

[२२६] (१) आ-पथ = सरल राह । (२) वि-पथ = विशेष मार्ग, विरुद्ध दिशा में जानेवाली  
 सड़क । (३) अन्त पथ = गुप्त विद्यामार्ग, भूमि के अन्दरकी सड़क, दरों में जानेवाला मार्ग । (४) अनु-पथ =  
 पगडडियों या बडी सड़क की धाजू से जानेवाला सँकरा मार्ग (Foot-paths) ।

[२२७] (१) निद्युत् = घोडा, खोता, पत्ति । (२) पारावता = दूरदूर खडे हुए, दूर देश में  
 रहे हुए ।

- (२२८) छन्दःस्तुभः । कुभन्यवः । उत्सम् । आ । कीरिणः । नृतुः ।  
 ते । मे । के । चित् । न । तायवः । ऊमाः । आसन् । दृशि । त्विपे ॥ १२ ॥
- (२२९) ये । ऋष्याः । ऋष्टिविद्युतः । कवयः । सन्ति । वेधसः ।  
 तम् । ऋपे । मारुतम् । गणम् । नमस्य । रमय । गिरा ॥ १३ ॥
- (२३०) अच्छे । ऋपे । मारुतम् । गणम् । दाना । मित्रम् । न । योपणा ।  
 दिवः । वा । धृष्णवः । ओजसा । स्तुताः । धीभिः । इष्यन्त ॥ १४ ॥

अन्वय.— २२८ छन्दः-स्तुभः कु-भन्यवः कीरिण उत्सं आ नृतु, ते के चित् मे तायवः न, ऊमा-  
 दृशि, त्विपे आसन् ।

२२९ (हे) ऋपे! ये ऋष्याः ऋष्टि विद्युत कवय वेधस सन्ति, तं मारुतं गणं नमस्य गिरा रमय ।

२३० (हे) ऋपे! योपणा मित्रं न मारुतं गणं अच्छे दाना, ओजसा धृष्णवः दिवः वा  
 धीभिः स्तुताः इष्यन्त ।

अर्थ— २२८ (छन्दः-स्तुभः) छन्दों से सराहनीय तथा (कु-भन्यव) मातृभूमि की पूजा करनेवाले  
 वीर (कीरिण) स्तुति करनेवाले के लिए (उत्सं) जलप्रवाह (आ नृतु) ला चुके। (ते के चित्) उनमें  
 से कुछ (मे) मेरे लिए (तायव न) चोरों के समान अदृश्य, कुछ (ऊमाः) रक्षणकर्ता होकर  
 (दृशि) दृष्टिपथ में अवतीर्ण और कई (त्विपे) तेजोवल घटाते (आसन्) थे ।

२२९ हे (ऋपे!) ऋषियर! (ये) जो (ऋष्याः) बड़े बड़े, (ऋष्टि-विद्युतः) हथियारों से चोतमान,  
 (कवयः) घानी होते हुए (वेधसः) कुशलतापूर्वक नर्म करनेवाले हैं (तं मारुतं गणं) उस वीर मरनों  
 के गण को (नमस्य) नमन कर और (गिरा रमय) वाणी से आनन्द दो ।

२३० हे (ऋपे!) ऋषियर! (योपणा मित्रं न) युवती जिस तरह प्रिय मित्र की ओर चली  
 जाती है, उसीप्रकार (मारुतं गणं अच्छे) मरुत्संघनी और (दाना) दान लकर जाओ। (ओजसा  
 धृष्णवः) बल के कारण शत्रुदल की धजियाँ उड़ानेवाले ये वीर (दिव वा) तेजस्वी हैं। हे वीरो!  
 (धीभिः स्तुताः) स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित तुम इधर (इष्यन्त) जाओ ।

भाष्यार्थ— २२८ चूंकि वीर मातृभूमि के भक्त होने हैं इसलिए वे सराहनीय हैं। उन में कुछ गुप्त रूप से, लो कई  
 प्रकार रूप से सब की रक्षा करते हुए तेज की वृद्धि करते हैं ।

२२९ वीर मैत्रिक महान् गुणी विशेष ज्ञानी, कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे एवं आयुधधारी होने के कारण  
 चोतमान हैं। इस मरुत्संघ को रमणीय वाणी से हर्षित कर और नमन कर ।

२३० देन लेकर वीरों के समीप चले जाना चाहिए। बल से शत्रुदल पर चढ़ाई करनी चाहिए। जो ऐसे  
 भाक्रमणकर्ता होंगे, उम की स्तुति होगी ।

टिप्पणी— [२२८। (१) कु-भन्यवः (कु = पृथ्वी, भन् = पूजा करना) = मातृभूमि की पूजा करनेहारे ।  
 [(१) केचित् तायव न = चोरों के समान अदृश्य, (२) केचित् ऊमाः दृशि = दृश्य संभव । (३) केचित्  
 त्विपे = शरीरान्त-संचारी, शारीरिकबलसंबन्धक ।]

[२२९] (१) वेधस् = [वि+धा = करना, उपसर्ग करना, आज्ञा करना] कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाले ।

[२३०] (१) योपणा = युवती, (यु = जोड़ना, मिलना, एक जगह भाषा- (चौति इति) = एक,

त्रित होने की अपेक्षा रखनेवाला ।

- (२३१) नु । मन्वानः । एषाम् । देवान् । अच्छ । न । वृक्षणा ।  
 दाना । सचेत् । सुरिऽभिः । यामऽश्रुतेभिः । अञ्जिऽभिः । ॥ १५ ॥
- (२३२) प्र । ये । मे । वन्धुऽप्ये । गाम् । वोचन्त । सूर्यः । पृथिम् । वोचन्त । मातरम् ।  
 अर्थ । पितरम् । इष्मिणम् । रुद्रम् । वोचन्त । शिष्यसः ॥ १६ ॥
- (२३३) सप्त । मे । सप्त । शाकिनः । एकम्ऽएका । शता । ददुः ।  
 यमुनायाम् । अधि । श्रुतम् । उत् । राधः । गव्यम् । मृजे । राधः ।  
 अश्व्यम् । मृजे । ॥ १७ ॥

अन्वयः— २३१ वक्षणा न एषां देवान् अच्छ नु मन्वान सुरिभि याम-श्रुतेभिः अञ्जिभिः दाना सचेत् ।  
 २३२ वन्धु-एप्ये ये सूर्य मे प्र वोचन्त गां पृथि मातरं वोचन्त, अथ शिष्यसः इष्मिणं  
 रुद्रं पितरं वोचन्त ।

२३३ सप्त सप्त शाकिनः एक-एका मे शता ददुः, श्रुतं गव्यं राधः यमुनायां अधि उत् मृजे,  
 अश्व्यं राधः नि मृजे ।

अर्थ- २३१ ( वक्षणा न ) वाहन के समान पार ले जानेवाले ( एषां देवान् अच्छ ) इन तेजस्वी धीरों  
 की ओर ( नु ) शीघ्र पहुँच कर ( मन्वानः ) स्तुति करनेहारा, ( सुरिभिः ) शानी, ( याम-श्रुतेभिः ) चर्दार  
 के वार में तिरपात एवं ( अञ्जिभिः ) चखालंकारों से अलंकृत ऐसे उन धीरों से ( दाना ) दान के साथ  
 ( सचेत् ) संगत होता है ।

२३२ उनके ( वन्धु-एप्ये ) बांधवोंक जाननेकी इच्छा करने पर ( ये सूर्यः ) जिन शानी धीरोंने  
 ( मे प्र वोचन्त ) मुझसे कहा, उन्होंने ' ( गां ) गौ तथा ( पृथिम् ) भूमि हमारी ( मातरं ) माताएँ हैं' ( वोचन्त )  
 ऐसा कह दिया । ( अथ ) और ( शिष्यसः ) उन्हीं समर्थ धीरोंने ' ( इष्मिणं रुद्रं ) वेगवान् महावीर हमारा  
 ( पितरं ) पिता है ' ऐसा भी कह दिया ।

अर्थ- २३३ ( सप्त सप्त ) सात सात सैनिकों का पंक्ति में जानेवाले ( शाकिनः ) इन समर्थ धीरों में से  
 ( एक-एका ) हरेकने ( मे शता ददुः ) मुझे सौ गौएँ दे दो । ( श्रुतं ) उस विश्रुत ( गव्यं राधः ) गोसमूहरूपी  
 घनको ( यमुनायां अधि ) यमुना नदी में ( उत् मृजे ) धो डालता हूँ और ( अश्व्यं राधः ) अश्वरूपी  
 संपत्ति को वही पर ( नि मृजे ) धोता हूँ ।

भाषार्थ- २३१ वे धीर सङ्घोंमें से पार ले जानेवाले हैं और भावमण करने में बड़े विस्पात हैं । वे शानी हैं और  
 चखालंकारों से भूषित रहते हैं । ऐसे उन तेजस्वी धीरों के पास दान लेकर पहुँच जाओ ।

२३२ गौ या भूमि मरचों की माता है और रुद्र उनका पिता है ।

२३३ धीरों से दानरूप में मास हुई गौएँ तथा मिले हुए बड़े नदीजल में धोकर साफसुधरे रखने चाहिए ।

टिप्पणी— [ २३१ ] ( १ ) वक्षणं-वक्षणा = अग्नि, छाती, नदी का पार, नदी, वाहन ।

[ २३२ ] ( १ ) शिष्यसू = ( शक्य षवती ) समर्थ, यामर्षवान् ।

(कृ. ५।५३।१—१६)

(२३४) कः । वेद । जानम् । एषाम् । कः । वा । पुरा । सुम्नेषु । आस । मरुताम् ।  
यत् । युयुजे । किलास्यः ॥ १ ॥

(२३५) आ । एतान् । रथेषु । तस्थुषः । कः । शुश्राव । कथा । ययुः ।  
कस्मै । सुसुः । सुसदासे । अनु । आपयः । इळाभिः । वृष्टयः । सह ॥ २ ॥

(२३६) ते । मे । आहुः । ये । आस्ययुः । उप । द्युभिः । विडभिः । मदे ।  
नरः । मर्याः । अरेपसः । इमान् । पश्यन् । इति । स्तुहि ॥ ३ ॥

अन्वय — २३४ यत् किलास्य युयुजे एषा जानं कः वेद, क वा पुरा मरुतां सुम्नेषु आस ?

२३५ रथेषु तस्थुष एतान् कथा ययुः, क आ शुश्राव, आपय वृष्टयः इळाभि सह कस्मे सु-दासे अनु ससुः ?

२३६ ये द्युभिः विभि मदे उप आययु ते मे आहुः, नरः मर्याः अ-रेपस. इमान् पश्यन् स्तुहि इति ।

अर्थ— २३४ वीर मरुताने ( यत् ) जब ( किलास्यः ) धन्वेवाली हिरनिगों ( युयुजे ) अपने रथों में जोड़ दीं, तब ( एषां ) इनके ( जानं ) जन्मजा रहस्य ( कः वेद ) कौन भला जानता था ? ( कः वा ) और कौन भला ( पुरा ) पहले इन ( मरुतां सुम्नेषु ) वीर मरुतों के सुखच्छत्रछाया में ( आस ) रहता था ?

२३५ ( रथेषु तस्थुषः ) रथोंमें बैठे हुए ( एतान् ) इन वीरों के समीप कौन भला ( कथा ययुः ) किस तरह जाते हैं, उसी प्रकार उनके प्रभाव का वर्णन ( कः आ शुश्राव ? ) भला किसे सुनेने मिला ? ( आपय. ) मित्रवत् हितकर्ता एयं ( वृष्टय ) वर्षोंके समान शान्तिदायक ये वीर अपनी ( इळाभिः सह ) गौओं के साथ ( कस्मै सु-दासे ) किन उत्तम दानी की ओर ( अनु ससु. ) अनुकूल हो चले गये ?

२३६ ( ये ) जो ( द्युभिः विभि ) तेजस्वी सोमों के साथ ( मदे ) आनन्द पानेके लिए ( उप आययुः ) इकट्ठे हुए ( ते मे आहुः ) ये मुझसे बोले कि, “ ( नर ) नेता, ( मर्याः ) मानवोंके हितकारक ( अ-रेपसः ) तथा दीपरहित ( इमान् पश्यन् ) इन वीरों को देखकर ( स्तुहि इति ) उनकी प्रशंसा करो । ”

भावार्थ— २३४ जब ये वीर रथ में बैठकर संचार करने लगे, तब भला किसे इन के जीवन का ज्ञान प्राप्त हुआ था ? उसी प्रकार कौन लोग इन के सहारे रहते थे ? ( ये वीर जब जनता के सुख के लिए प्रयत्नशील हुए, तभी से लोगों को इनका परिचय प्राप्त हुआ और लोग इन के आश्रय में सुरापूर्वक रहने लगे । )

२३५ वीर रथों पर बैठकर मित्रों से मिलने के लिए जाते हैं, उस समय वे गायें साथ लेकर ही प्रस्थान करने लगते हैं । इन के शौर्य का बयान करना चाहिए ।

२३६ सोमयाग में इकट्ठे हुए सभी लोग कहने लगे कि, वीरों के वाग्य वा गायन करना चाहिए ।

टिप्पणी • [ २३४ ] ( १ ) किलास्य = सुकेद घड्या । किलासी = धन्वेवाली ( हिरनी ) ।

[ २३५ ] ( १ ) इळा- ( इला-इला ) गौ, भूमि, वाणी, दान, स्वर्ग, अन्न । ( २ ) आपि = मित्र, सुगमतापूर्वक प्राप्त होनेवाला ।

[ २३६ ] ( १ ) विः = जानेवाला, पत्नी, घोड़ा, लगाम, सोम, यजमान ।

(२३७) ये । अजिपु । ये । वाशीपु । स्वभानवः । स्रधु । रुक्मेपु । सादिपु ।  
 श्रायाः । रथेपु । धन्वसु ॥ ४ ॥

(२३८) युष्माकम् । स्म । रथान् । अनु । मुदे । दधे । मरुतः । जीरदानवः ।  
 वृष्टी । चावः । यतीः इव ॥ ५ ॥

(२३९) आ । यम् । नरः । सुदानवः । ददाशुपे । दिवः । कोशम् । अचुच्यवुः ।  
 वि । पर्जन्यम् । सृजन्ति । रोदसी इति । अनु । धन्वना । यन्ति । नृप्यः ॥ ६ ॥

अन्वयः— २३७ ये स्व-भानव अजिपु ये वाशीपु स्रधु रुक्मेपु सादिपु रथेषु धन्वसु श्रायाः ।

२३८ (हे) जीर-दानवः मरुत ! मुदे वृष्टी यती इव चाव युष्माकं रथान् अनु दधे स्म ।

२३९ नरः सु-दानवः दिवः ददाशुपे ये कोशं आ अचुच्यवुः रोदसी पर्जन्यं वि सृजन्ति,  
 वृष्टय धन्वना अनु यन्ति ।

अर्थ- २३७ (ये) जो (स्व-भानवः) स्वयंप्रकाशमान धीर, (अजिपु) वस्त्रालंकारों में, (वाशीपु) पुठारों में, (स्रधु) मालाओं में, (रुक्मेपु) स्वर्णमय हारों में, (सादिपु) कँगनों में, (रथेषु) रथों में और (धन्वसु) धनुष्यों में (श्रायाः) आश्रय लेते हैं, अर्थात् इनका उपयोग करते हैं ।

२३८ हे (जीर-दानवः मरुतः ! ) शीघ्रतापूर्वक विजय पानेवाले धीर मरुतो ! (मुदे) आनंद के लिए मैं (वृष्टी) वर्षा के समान (यती-इव) योगपूर्वक जानेवाले (चाव-) विजलियों के समान तेजस्वी (युष्माकं रथान्) तुम्हारे रथोंका (अनु दधे स्म) अनुसरण करता हूँ ।

२३९ (नरः) नेता, (सु दानवः) अच्छे वानी एवं (दिवः) तेजस्वी धीर (ददाशुपे) दानी लोगों के लिए (ये कोशं) जिस भाण्डार को (आ अचुच्यवुः) सभी स्थानों से चटोर लाते हैं, उसका ये (रोदसी) छलोक एवं भूलोक को (पर्जन्यं) वृष्टि क समान (वि सृजन्ति) विभजन कर डालते हैं । (वृष्टयः) वर्षा के समान शान्तिता देनेवाले ये धीर अपन (धन्वना) धनुष्यों के साथ (अनु यन्ति) चले जाते हैं ।

भावार्थ- २३७ ये धीर तेजस्वी हैं और आभूषण, सुधार, माला, हार धारण करते हैं, तथा रथ में बैठकर धनुष्यों का उपयोग करते हैं ।

२३८ मैं धीरों के रथ के पीछे चला आ रहा हूँ, (मैं उन के मार्ग का अवलम्बन करता हूँ ।)

२३९ ये धीर दूरगामी कार्य कर के चारों ओर से धन कमा लाते हैं और उन का उचित बँटवारा कर के जनता को सुखी करते हैं ।

टिप्पणी- [२३८] (१) दानु = (दा दाने, दो अरपदने, दान् स्वपदने) दान देनेवाला, दान, विजेता, नाश करनेवाला ।

[२३९] (१) वृष्टु = गिरना, गँवागना, टपक जाना ।



(२४०) तत्तुदानाः । सिन्धवः । क्षोदसा । रजः । प्र । ससुः । धेनवः । यथा ।

स्यन्नाः । अर्थाःइव । अर्धनः । विऽमोचने । नि । यत् । वर्तन्ते । एन्थः ॥ ७ ॥

(२४१) आ । यत् । मरुतः । दिवः । आ । अन्तरिक्षात् । अमात् । उत ।

मा । अर्धे । स्थात् । पराऽवर्तः ॥ ८ ॥

(२४२) मा । वः । रसा । अनितभा । कुभा । क्रुमुः । मा । वः । सिन्धुः । नि । रीरमत् ।

मा । वः । परि । स्थात् । सरयुः । पुरीपिणी । असे इति । इत् । सुम्नम् । अस्तु । वः ॥ ९ ॥

अन्वय- २४० यत् एन्यः अध्वनः विमोचने स्यन्नाः अश्वा.इव वि वर्तन्ते क्षोदसा तत्तुदानाः सिन्धवः धेनवः यथा रजः प्र ससुः ।

२४१ (हे) मरुतः ! दिव उत अ-मात् अन्तरिक्षात् आ यात, परावतः मा अर्धे स्यात् ।

२४२ व अन्-इत-भा कु भा रसा मानि रीरमत्, व- क्रुमु- सिन्धुः मा, व- पुरीपिणी सरयुः मा परि स्थात्, असे इत् वः सुम्नं अस्तु ।

अर्थ- २४० (यत् एन्यः) जो नदियाँ ( अध्वन विमोचने ) मार्ग ढूँढ निकालने के लिए ( स्यन्नाः अश्वा इव ) वेगवान् घोड़ोंके समान ( वि वर्तन्ते ) वेगपूर्वक वह जाती हैं, वे ( क्षोदसा ) उदकसे भूमि को ( तत्तुदानाः ) फोड़नेवाली ( सिन्धवः ) नदियाँ ( धेनव यथा ) गौर्षाँ के समान ( रजः ) उपजाऊ भूमियों की ओर ( प्र ससुः ) वहने लगी ।

२४१ हे ( मरुतः । ) जोर मरुतो ! ( दिवः ) धूलोका से तथा ( उत ) उसी प्रकार ( अ-मात् अन्तरिक्षात् ) असीम अंतरिक्षमेंसे ( आ यात ) इधर आओ, ( परावतः ) दूरके देशमें ही ( मा अर्धे स्यात् ) न रहो ।

२४२ ( वः ) तुम्हें ( अन्-इत-भा ) तेजहीन और ( कु-भा ) मलिन ( रसा ) रसानामक नदी ( मा नि रीरमत् ) रममाण न करे ( वः ) तुम्हें ( 'क्रुमुः' ) वेगपूर्वक आक्रमण करनेद्वारा ( सिन्धु ) सिन्धु नदी काचमें ही ( मा ) न रोक दे, ( वः ) तुम्हें ( पुरीपिणी ) जल से परिपूर्ण ( सरयुः ) सरयु नदी ( मा परि स्थात् ) न घेर लेये । ( अस्मे इत् ) हमें ही ( वः सुम्नं ) तुम्हद्वारा सुख ( अस्तु ) प्राप्त हो, मिल जाये ।

मावार्थ- २४० ध्रुवोंपर वर्षा के पश्चात् नदियों में बाढ़ आने पर पृथ्वी को छिन्नभिन्न करके नदियाँ बढ़ने लगती हैं और उपजाऊ भूभाग को अधिक उर्वर बना देती हैं । २४१ यीर सदैव हमारे निकट थाकर यहीं पर रहे । २४२ हे वीरो ! तुम रमा, सिन्धु पुरीपिणी एव सरयु नदियों से लींचे हुए प्रदेश में ही रममाण न बनो, अपि तु हमारे निकट आकर हमें सुख दिलाओ ।

टिप्पणी- [ २४० ] ( १ ) तृद् = भिन्न करना, नाश करना । ( २ ) पनी = नदी । ( ३ ) स्यन्ना = ( रयन्द् प्रसवणे ) वेगपूर्वक जानेवाला, पिघलकर वहनेवाला । [ २४१ ] ( १ ) अ-म = ( अ मा = (माने) मापन करना) = अपरिमित, विस्तृत, असीम, (अम् गती) = शक्ति, वेग । [ २४२ ] यहाँ पर रसा, सिन्धु, पुरीपिणी तथा सरयु इन चार नदियों का उल्लेख पाया जाता है । अध्यात्मवृत्त में भी इन चारों नदियों का स्थान माना जा सकता है, पर वैसी दत्ता में इन शब्दों का दौर्गिक अर्थ करना पड़ेगा और योगके अनुभवसे निश्चित करना पड़ेगा कि, मानवी देहमें इन प्रवाहोंसे कौन से स्थान दर्शाये जाते हैं । स्थूल सृष्टि में इन नदियों का स्थान निश्चित है- सिन्धु देश में सिन्धु, अयोध्या के समीप सरयु, काश्मीर में पुरीपिणी ( परणी ) और शायद वायव्य सीमाप्राय में वहनेवाली किसी नदीका नाम रसा हो । अभी तक इस नदीके स्थानका निर्णय नहीं हो सका । इस मन्त्रमें यह अभिप्राय व्यक्त हुआ है कि, ये वीर सैनिक उपर्युक्त नदियों के रमणीय प्रदेश में ही दिलवहलाय करते न रहें, अपितु हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करें । [ ' कुभा ' और ' क्रुमु ' भी नदियाँ हैं येमा 'पेतरेयालोचनम्' में ( ४४ २३ पर ) भट्टाचार्य हितयतशर्माजीने लिखा है । ]

(२४३) तम् । वः । शर्धम् । रथानाम् । त्वेषम् । गुणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।

अनु । प्र । यन्ति । वृष्टयः ॥ १० ॥

(२४४) शर्धम्ऽशर्धम् । वः । एषाम् । व्रातम्ऽव्रातम् । गुणम्ऽगुणम् । सुऽशस्तिभिः ।

अनु । क्रामेम् । धीतिभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— २४३ तं वः नव्यसीनां रथानां शर्धं त्वेषं मारुतं गुणं अनु वृष्टयः प्र यन्ति ।

२४४ एषां वः शर्धं-शर्धं व्रातं-व्रातं गुणं-गुणं सु-शस्तिभिः धीतिभिः अनु क्रामेम् ।

अर्थ— २४३ (तं) उस (व) तुम्हारे (नव्यसीनां) नये (रथानां शर्धं) रथों के बल के, सैन्य के एवं (त्वेषं) तेजस्वी (मारुतं गुणं) वीर मरुतों के समूह के (अनु) अनुरोध से (वृष्टयः प्र यन्ति) वर्षाएँ वेग से पड़ी जाती हैं ।

२४४ (एषां वः) इन तुम्हारे (शर्धं-शर्धं) हर सैन्य के साथ, (व्रातं-व्रातं) प्रत्येक समुदाय के साथ और (गुणं-गुणं) हर एक सैन्य के दल के साथ (सु-शस्तिभिः) अत्यन्त सराहनीय अनुशासन के (धीतिभिः) विचारों से युक्त होकर (अनु क्रामेम्) हम अनुक्रम से चलते रहें ।

भावार्थ— २४३ जिधर मरुतों के रथ चले जाते हैं, उधर युद्ध होता है, तथा वर्षा भी हुआ करती है ।

२४४ गणवेश पहनकर दलबल का जैसा अनुशासन हो, वैसे ही अनुक्रम से पग धरते चले जाँय ।

टिप्पणी— [ २४४ ] ( १ ) शर्धः = सेना का छोटा विभाग । ( २ ) व्रातः = सेना का उससे किञ्चित् अधिक हिस्सा । ( ३ ) गुणः = सेना का और भी अधिक दल । यह अशौहिणी का अंग है, जिस में इस भौति सेना रहा करती है— गण - सेनाका वह विभाग, जिसमें २७ रथ, २७ हाथी, ८१ घोड़े १३५ पैदलसिपाही रहते हैं । यह देवने-योग है कि, गण में कितने मनुष्य बाधे जाते हैं । रथ के साथ १ रथी, १ सारथी, १ पार्श्वसारी, २ चक्राक्षक, २ शरक्षक, ४ सार्धस, मिलकर ३१ मनुष्य होते हैं । इस के विवा एक बाण रखने की गाड़ी रहती है, जिसे हॉकनेवाला एक मनुष्य चाहिये; अर्थात् हर रथ के साथ १२ मनुष्य रहते हैं । इस गणवा के अनुहार २७ रथों के साथ  $२७ \times १२ = ३२४$  मनुष्य होते हैं । कमसे कम  $२७ \times ११ = २९७$  तो होंगे ही । हाथी के लिए २ घोड़ा, १ महाव्रत, ५ सारथ्य, १ भंगी, १ जल देनेवाला मिलकर १० आदमी रहते हैं । २७ हाथियों के लिए शीश २७० मनुष्य कार्य करने हैं । घोड़े के साथ एक वीर ( सवार ) तथा एक सार्धस ऐसे २ मनुष्य रहते हैं । ८१ घोड़ों के कारण १६२ मनुष्य होते हैं । अब पैदल सिपाहियों की संख्या १३५ है । सब की गिनती कर देखिए, तो ८९१ मनुष्यसंख्या होती है । ये युद्ध करनेवाले सैनिक हैं, ऐसा समझना उचित है । घोड़ा मरुतों के हर गण में इतने मनुष्य रहते थे । मरुतों की एक पंक्ति में ७ वीर रहते हैं और दोनों ओर के दो पार्श्वक्षक मिलकर हर पंक्ति में ९ सैनिक होते हैं । इस तरह की ७ कतारों में  $७ \times ७ = ४९$  मरुत तथा १४ पार्श्वक्षक कुल मिलाकर ६३ मरुतों का एक दल या छोटासा विभाग होता है । मरुतों का विभाग ७ संख्या से युक्त होता है, हमकिन्तु उनके १४ विभागों में  $६३ \times १४ = ८८२$  होते हैं । यह संख्या ऊपर अशौहिणी की गणना के अनुसार ही हुई, ८९१ से मेल खाती है । हाँ, केवल ९ का अन्तर है, शायद कहीं पर निश्चित अंक कम ज्यादा माना गया हो । ऐसा हो, तो उसे दूर कर सकते हैं । अर्थात् मरुतों के एक ' गण ' नामक सैन्यविभाग में ८८२ सैनिकों का अन्तर्भाव होता था, ऐसा जान पड़ता है । ' शर्धः ' तथा ' व्रात ' में कितने सैनिक सम्मिलित होते थे, सो द्वेदना चाहिये । अनुसन्धानकर्ता निश्चित करें कि, क्या ६३ सैनिकों का ' शर्धः ' (  $६३ \times ७$  ) = ४४१ सैनिकों का ' व्रात ' एवं ८८२ सैनिकों का ' गण ' ऐसे विभाग माने जा सकते या नहीं । ( ४ ) धीतिः = भक्ति, विचार, अंगुलि, श्वास, पेष, अपमान । ( ५ ) अनु+क्रम = एक के पीछे एक पग डालना ।

(२४५) कस्मै । अद्य । सुज्जाताय । रातःहृव्याय । प्र । ययुः । एना । यामेन । मरुतः  
॥ १२ ॥

(२४६) येन । तोकाय । तनयाय । धान्यम् । वीजम् । वहध्वे । अक्षितम् ।  
अस्मभ्यम् । तत् । धत्तन । यत् । वः । ईमहे । राधः । विश्वःआयु । सौभगम् ॥ १३ ॥

(२४७) अति । इयाम् । निदः । तिरः । स्वस्तिभिः । हित्वा । अवद्यम् । अरातीः ।  
वृष्टी । शम् । योः । आपः । उस्ति । भेषजम् । स्याम । मरुतः । सह ॥ १४ ॥

अन्वयः— २४५ अद्य मरुतः एना यामेन कस्मै रात-हृव्याय सु-जाताय प्र ययुः ?

२४६ येन तोकाय तनयाय अ-क्षितं धान्यं वीजं वहध्वे, यत् राध वः ईमहे तत् विश्व-आयु सौभगं अस्मभ्यं धत्तन ।

२४७ (हे मरुतः ! ) स्वस्तिभि अवद्यं हित्वा अरातीः तिरः निदः अति इयाम्, वृष्ट्वी योः शं आपः उस्ति भेषजं सह स्याम ।

अर्थ- २४५ ( अद्य ) आज ( मरुतः ) वीर मरुत् ( एना यामेन ) इस रथ में से ( कस्मै ) भला किस ( रात-हृव्याय ) हाथिप्यात्र देनेवाले एवं ( सु-जाताय ) कुलीन मानव की ओर ( प्र ययु ) चले जा रहे हैं ?

२४६ ( येन ) जिससे ( तोकाय तनयाय ) पुत्रपौत्रों के लिए ( अ-क्षितं ) न घटनेवाले ( धान्यं वीजं ) अनाज तथा बीज ( वहध्वे ) ढोकर लाते हो, ( यत् राधः ) जिस धनके लिए ( वः ) तुम्हारे पास हम ( ईमहे ) आते हैं, ( तत् ) वह और ( विश्व-आयु ) दीर्घ जीवन एवं ( सौभगं ) अच्छा ऐश्वर्य ( अस्मभ्यं धत्तन ) हमें दे दो ।

२४७ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( स्वस्तिभिः ) हित कारक उपायों द्वारा ( अवद्यं हित्वा ) दोष नष्ट करके ( अरातीः ) शत्रुओं का एवं ( तिरः निदः ) गुप्त निन्दक का हम ( अति इयाम् ) पराभव कर सकें । हमें ( वृष्टी ) शक्ति, ( योः शं ) एकतासे उत्पन्न होनेवाला मुख, ( आपः ) जल तथा ( उस्ति भेषजं ) तेजस्वी औषधी ( सह स्याम ) एक ही समय मिले ।

भावार्थ - २४५ प्रश्न है कि, भला आज दिन किस जगह मरुत् पहुँचना चाहते हैं ? ( उधर हम भी चलें । )

२४६ हमें धन, धान्य, ऐश्वर्य तथा बल चाहिए । हमें ये सभी बातें उपलब्ध हों ।

२४७ स्वस्ति तथा क्षेम हमें मिल जाए । हमारे सभी शत्रु विनष्ट हों । ऐश्वर्यभाव से उत्पन्न होनेवाला मुख, शक्ति, जल, परिणामकारक औषधियाँ हमें मिल जायें ।

टिप्पणी-[ २४७ ] ( १ ) योः = ( यु = जोडना = एकता ) एकतासे । ( २ ) स्वस्ति ( सु+अस्ति ) = अच्छी दशा में रहना । ( ३ ) अ-राति = अनुदार, शत्रु । ( ४ ) निदः = निन्दक, दुश्मन ।

मरुत् [ हि. ] १३

(२४८) सुऽदेवः । सह । असति । सुऽवीरः । नरः । मरुतः । सः । मर्त्यः ।  
यम् । त्रायध्वे । स्वाम् । ते ॥ १५ ॥

(२४९) स्तुहि । भोजान् । स्तुवतः । अस्य । यामनि । रणन् । गावः । न । यवसे ।  
यतः । पूर्वान्द्रव्य । सखीन् । अनु । ह्य । गिरा । गृणीहि । कामिनः ॥ १६ ॥  
( ऋ० ५५४११-१५ )

(२५०) प्र । शर्धाय । मारुताय । स्वभानवे । इमाम् । वाचम् । अनज्ज । पर्वतऽच्युते ।  
धर्मऽस्तुभे । दिवः । आ । पृष्टयज्वने । धुम्नऽश्रवसे । महि । नृम्णम् । अर्चत ॥ १ ॥

अन्वय.— २४८ (हे) नर मरुत ! य प्रायध्वे सः मर्त्यः सु-देव, स-मह, सु वीर असति, ते स्वाम् ।

२४९ स्तुवतः अस्य भोजान् यामनि, गायः न यवसे, रणन् स्तुहि, यत पूर्वान्द्रव्य कामिन सखीन् ह्य, गिरा अनु गृणीहि ।

२५० स्व-भानवे पर्वत-च्युते मारुताय शर्धाय इमां वाचं प्र अनज्ज, धर्म-स्तुभे दिवः पृष्ट-यज्वने धुम्न-श्रवसे महि नृम्णे आ अर्चत ।

अर्थ— २४८ हे ( नर, मरुत ! ) नेता वीर मरुतो ! ( यं ) जिसे ( त्रायध्वे ) तुम घचाते हो, ( सः मर्त्यः ) वह मनुष्य ( सु-देव ) अत्यन्त तेजस्वी, ( स मह ) महत्तासे युक्त और ( सु-वीरः ) अच्छा वीर ( असति ) होता है । ( ते स्वाम् ) हम भी वैसे ही हों ।

२४९ ( स्तुवत' अस्य ) स्तवन करनेवाले इस भक्त के यहाँ मैं ( भोजान् ) भोजन पाने के लिए ( यामन् ) जाते समय ( गाव न यवसे ) गोएँ जिस तरह घासकी ओर जाती हैं वैसे ही, ( रणन् ) आनन्द-पूर्वक गरजते हुए जानेवाले इन वीरों की ( स्तुहि ) प्रशंसा करो, ( यत. ) क्योंकि वे ( पूर्वान्द्रव्य ) पहले परिचित तथा ( कामिन. ) प्रेमभरे ( सखीन् ) मित्रों के समान अपने सहायक हैं । उन्हें ( ह्य ) अपने समीप बुलाओ और ( गिरा ) अपनी चाणी से उनकी ( अनु गृणीहि ) सराहना करो ।

२५० ( स्व-भानवे ) स्वयंप्रनाश और ( पर्वत-च्युते ) पहाड़ों को भी हिलानेवाले ( मारुताय शर्धाय ) मरुतों के यल के लिए ( इमां वाच ) इस अपनी चाणी की-कविता को तुम ( प्र अनज्ज ) भली भँति संबारो, अलङ्कृत करो । ( धर्म-स्तुभे ) तेजस्वी वीरों को स्तुति करनेहारे, ( दिवः पृष्ट-यज्वने ) दिव्य स्थान से पीछे से आकर यजन करनेवाले और ( धुम्न-श्रवसे ) तेजस्वी यदा पानेवाले वीरोंको ( महि नृम्णे ) विपुल धन देकर ( आ अर्चत ) उनकी पूजा करो ।

भावार्थ— २४८ जिनमें वीरों का सरक्षण प्राप्त होवे, वे बड़े तेजस्वी, महान तथा वीर होते हैं । हम उसी प्रकार बने ।

२४९ भक्त के यहाँ मैं जात समय इन वीरों को बड़ा भारी हर्ष होता है । चूँकि ये सब का हित चाहते हैं, इसलिए इनकी स्तुति सब को करनी चाहिये ।

२५० अलङ्कारपूर्वक शब्द वीरों के वर्णन पर बनाओ और उद्भूत धन देकर उनका सरकार करो ।

टिप्पणी— [ २४९ ] ( १ ) भोज = ( युज-पालनाभ्यवदासयो = भोग प्राप्त करनेहारा । ( २ ) यामन् = पूजा, यज्ञ, गति, हलचक्र, चढाई, हमला । ( ३ ) अनु+गृ प्रोत्साहन देना, अनुमति करना, सराहना करना, उमंग बढ़ाना ।

[ २५० ] ( १ ) यज् = देना, यज्ञ करना, सहायता प्रदान करना, पूजा-संगति-दानप्रभक्त कार्य करता । ( २ ) पृष्ट = पीठ, पीछे से । ( ३ ) धर्म = ( धृ = क्षरणशील्योः ) प्रकृतमान, तेजस्वी, उष्ण । ( ४ ) पृष्ट यज्या = पीछे से अर्थात् किसी को भी निर्दिष्ट न हो, इस ढंग से सहायता देनेवाला । ( ५ ) नृम्णं = ( नृ-मन ) = मानवी मन, जो मानवी मन को धरबस अपनी ओर खींच ले ऐसा धन ।

(२५१) प्र । वः । मरुतः । तविपाः । उदन्यवः । वयःऽवृधः । अथऽयुजः । परिऽजयः ।  
सम् । विऽद्युता । दधति । वाशति । त्रितः । स्वरन्ति । आपः । अवना । परिऽजयः ॥२॥  
(२५२) विद्युत्-महसः । नरः । अश्म-दिद्यवः । वात-त्विपः । मरुतः । पर्वत-च्युतः ।  
अब्दुऽया । चित् । मुहुः । आ । हादुनि-वृतः । स्तनयत्-अमाः । रभसाः । उत्-  
ओजसः ॥ ३ ॥

अन्वयः— २५१ (हे) मरुतः ! वः तविपाः उदन्यवः वयो-वृधः अथ युजः प्र परि-जय. त्रितः विद्युता सं दधति वाशति परि-जय. आपः अघना स्वरन्ति ।

२५२ विद्युत्-महसः नरः अश्म दिद्यवः वात त्विपः पर्वत-च्युतः हादुनि-वृतः स्तनयत्-अमाः रभसाः उत्-ओजसः मरुतः मुहुः चित् आ अब्दया ।

अर्थ— २५१ हे (मरुतः!) वीर मरुतो ! ( वः तविपा ) तुम्हारे बलवान्, ( उदन्य-वः ) प्रजाके लिए जल देनेवाले, ( वयो-वृध ) अन्नकी समृद्धि करनेवाले तथा ( अथ-युजः ) रथोंमें घोड़े जोड़नेवाले वीर जय ( प्र परि-जयः ) बहुत वेगसे चतुर्दिक् घूमने लगते हैं और तुम्हारा ( त्रि-तः ) तीनों ओर फैलनेवाला संघ ( विद्युता सं दधति ) तेजस्वी यज्ञोंसे सुसज्ज होता है और ( वाशति ) शत्रुको चुनौती देता है, तय ( परि-जयः ) चारों ओर विजय देनेवाला ( आपः ) जीवन, जल ( अवना ) पृथ्वी पर ( स्वरन्ति ) गर्जना करते हुए संचार करता है ।

२५२ ( विद्युत्-महसः ) बिजली के समान बलवान्, ( नरः ) नेता, ( अश्म दिद्यवः ) हथियारोंके चमकने से तेजस्वी, ( वात-त्विपः ) वायु के समान गतिशील एवं तेजस्वी, ( पर्वत च्युतः ) पहाड़ों को हिलानेवाले, ( हादुनि-वृतः ) यज्ञोंसे युक्त, ( स्तनयत्-अमा ) घोषणा करने की शक्तिले युक्त, ( रभसाः ) वेगवान्, ( उत्-ओजसः ) अच्छे बलशाली वे ( मरुतः ) वीर मरुत् ( मुहुः चित् ) चारों ओर ( आ अब्दया ) चारों ओर जल देना चाहते हैं— शत्रुको अपना सच्चा तेज दिखाते हैं ।

भाषार्थ— २५१ बलिष्ठ वीर नैतिक प्रजा के लिए जल की व्यवस्था करते हैं, अन्न को वृद्धिगत करते हैं, रथों में घोड़े जोड़कर चारों ओर घूमकर समूची हालत को दृश्य ही देख लेते हैं और विजयी बन जाते हैं । बड़े अच्छे प्रबंध से अपने हथियार समीप रख लेते हैं और यथातन्त्र विजयपूर्ण वायुमण्डल का सृजन करते हैं, तथा भूमंडल पर नहरों से या अन्य किन्हीं ढरानों से जल को चहुँ ओर पहुँचा देते हैं ।

२५२ तेजस्वी नेता दास्यन्ते से सुसज्जित बलशाली पहाड़ों तक को त्रिकुपित कर देनेकी अपनी क्षमता को बढाते हैं और दुश्मन को आह्वान देकर अवश्य ही उन्हें अपना बल दर्शाते हैं ।

[ मेषविषयक अर्थ ] बिजली चमक रही है, ( अश्म ) ओले गिर रहे हैं, भारी भूकान हो रहा है, दामिनी की दहाड़ मुनाहँ दे रही है, वायुवेग से जान पड़ता है कि, मानों पहाड़ उड़ जायेंगे । इसके बाद भूमलाधार वर्षा हो चहुँ ओर जल ही जल दीख पड़ता है ।

टिप्पणी— [ २५१ ] ( १ ) उदन्यु = ( उद्व + यु = उद्व + योजना ) प्यासा, जल हँदनेवाला, पानी से युक्त होनेवाला । ( २ ) वयस् = अन्न, शरीरप्रवृत्ति, बल, आयुष्य । ( ३ ) त्रि-त = ( त्रि + त्वाप् = सन्तान-पालनयोः ) तीनों ओर पंक्ति में जानेवाला ( त्रिपु स्थानेषु तायमान-सायनभाष्य ) ( ४ ) तविप = ( त्व गति-वृद्धि-हिंसायं ) बल, शक्ति, सामर्थ्य । ( ५ ) परि-जय ( त्रि जयं ) चारों दिशाओं में विजयी, चतुर्दिक् गमन, चहुँ ओर सफलता । ( ६ ) आप् = ( आप् स्थासी ) = स्थापक, आकाश, जल, जीवन ।

(२५३) वि । अकृन् । रुद्राः । वि । अहानि । शिक्वसः । वि । अन्तरिक्षम् । वि । रजांसि ।

धृतयः ।

वि । यत् । अजान् । अजथ । नावः । ईम् । यथा । वि । दुःग्गानि । मरुतः ।

न । अहं । रिप्यथ ॥ ४ ॥

(२५४) तन् । वीर्यम् । वः । मरुतः । महिस्त्वन्म् । दीर्घम् । ततान् । सूर्यः । न । योजनम् ।

एताः । न । यामि । अगृभीतःशोचिपः । अनश्वऽदाम् । यत् । नि । अयातन ।

गिरिम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— २५३ (हे) धृतयः शिक्वसः रुद्राः मरुतः । यत् अकृन् वि, अहानि वि, अन्तरिक्षं वि, रजांसि वि अजथ, यथा नाव ई अजान् वि, दुर्गानि वि, न अहं रिप्यथ ।

२५४ (हे) मरुत ! वः तन् योजनं वीर्यं, सूर्यः न, वीर्यं महित्वन् ततान्, यत् यामे, एताः न, अ-गृभीत-शोचिपः अन्-अश्व-दां गिरिं नि अयातन ।

अर्थ— २५३ हे (धृतयः) शत्रुओं को हिलानेवाले, (शिक्वसः) सामर्थ्ययुक्त एवं (रुद्राः मरुतः!) दुश्मनों को रलानेवाले वीर मरुतो! (यत्) जब (अकृन् वि) रात्रियों में (अहानि वि) दिनों में (अन्तरिक्षं वि) अन्तरिक्षमें से या (रजांसि वि अजथ) धूलिमय प्रदेशमेंसे जाते हो, उस समय (यथा नावः ई) जैसे नौकार्य समुन्द्रमें से जाती हैं, वैसे ही तुम (अजान् वि) विभिन्न प्रदेशों में से तथा (दुर्गानि वि) वीहड़ स्थानोंमें से भी जाते हो, तब तुम (न अहं रिप्यथ) विलकुल थक न जाओ, बिना थकायट के यह सब कुछ हो जाय ऐसा करो ।

२५४ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः तन्) तुम्हारी वे (योजनं) आयोजनाएँ तथा (वीर्यं) शक्ति (सूर्यः न) सूर्यवत् (दीर्घं महित्वन्) अति विस्तृत (ततान्) फैली हुई हैं। (यत्) क्योंकि तुम (यामि) शत्रु पर किये जानेवाले आक्रमण के समय (एताः न) कृष्णसारों के समान वेगवान् घनकर (अ-गृभीत-शोचिपः) पकड़ने में असंभय प्रभाव से युक्त हो और (अन्-अश्व-दां) जहाँ पर घोड़े पहुँच नहीं सकते, ऐसे (गिरिं) पर्वतपर भी (नि अयातन) हमले चढ़ाते हो ।

भावार्थ— २५३ जो बलिष्ठ वीर होते हैं, वे रात को, दिन में, अन्तरिक्ष में से या रेगिस्तानमें से चले जावे हैं । वे समतल भूमि पर से या वीहड़ पहाड़ी जगह में से बराबर आगे बढ़ते ही जाते हैं, पर कभी थक नहीं जाते । (इस अति शत्रुत्व पर लगातार हमले काके वे विजयी बन जाते हैं ।)

२५४ वीरों की पनाई हुई युद्धकी आयोजनाएँ तथा उनकी संगठनशक्ति तपसुच बड़ी अन्ही है । दुश्मनों पर धावा करते वक्त वे जैसे समतल भूमि पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रु के दुर्ग पर भी चढ़ाई करनेमें हिच-किचाते नहीं ।

टिप्पणी— [२५३] (१) शिक्वस = शक् शक्की कुशल, बुद्धिमान, सामर्थ्ययुक्त । शिक्व = कुशल, बुद्धिमान, समर्थ । (२) अज = खेत, समतल भूमि ।

[२५४] (१) योजनं = जोड़नेवाला, इकट्ठा होनेवाला, व्यवस्था, प्रयत्न, आयोजना । (२) अन्-अश्व-दां (गिरिः) जहाँ पर घोड़े पग नहीं भर देते, ऐसा स्थान, पहाड़ी गड, दुर्गम पर्वत । (३) गिरिः = पर्वत, पारंगतिय दुर्ग, बागी ।

(२५५) अभाजि । शर्धः । मरुतः । यत् । अर्णसम् । मोपथ । वृक्षम् । कपनाऽइव । वेधसः ।  
अध । स्म । नः । अरमतिम् । सज्जोपसः । चक्षुःऽइव । यन्तम् । अर्तु । नेपथ ।  
सुजगम् ॥ ६ ॥

(२५६) न । सः । जीयते । मरुतः । न । हन्यते । न । स्नेधति । न । व्यथते । न । रिप्यति ।  
न । अस्य । रायः । उप । दस्यन्ति । न । ऊतयः । ऋपिम् । वा । यम् । राजानम् ।  
या । सुर्षदथ ॥ ७ ॥

अन्वयः— २५५ ( हे ) वेधसः मरुतः ! शर्धः अभाजि, यत् कपनाइव अर्णसं वृक्षं मोपथ, अध स्म ( हे )  
स-जोपसः ! चक्षुःइव यन्तं सु-गं अ-रमति नः अनु नेपथ ।

२५६ ( हे ) मरुतः ! यं ऋपिं वा राजानं वा सुसूदथ सः न जीयते, न हन्यते, न स्नेधति, न  
व्यथते, न रिप्यति, अस्य रायः न उप दस्यन्ति, ऊतयः न ।

अर्थ— २५५ हे ( वेधसः ) कर्तृत्ववान ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! तुम्हारा ( शर्धः ) बल ( अभाजि ) द्योत-  
मान हो चुका है, ( यत् कपनाइव ) क्योंकि प्रबल आँधी के समान ( अर्णसं वृक्षं ) सागवानी पेड़ों को  
भी तुम ( मोपथ ) तोड़मरोड़ देते हो । ( अध स्म ) और हे ( स-जोपसः ! ) हर्षित मनवाले वीरो ! ( चक्षुःइव )  
आँख जैसे ( यन्तं ) जानेवाले को ( सु-गं ) अच्छा मार्ग दर्शाती है, वैसे ही ( अ-रमति नः ) बिना आराम  
लिए कार्य करनेवाले हमें ( अनु नेपथ ) अनुकूल ढंगसे सीधी राहपर से ले चलो ।

२५६ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( यं ऋपिं वा ) जिस ऋषि को या ( राजानं वा ) जिस राजा  
को तुम अच्छे कार्य में ( सुसूदथ ) प्रेरित करते हो, ( सः न जीयते ) वह विजित नहीं बनता है, ( न  
हन्यते ) उसकी हत्या नहीं होती है, ( न स्नेधति ) नष्ट नहीं होता है, ( न व्यथते ) दुःखी नहीं बनता है  
और ( न रिप्यति ) क्षीण भी नहीं होता है । ( अस्य रायः ) इसके धन ( न उप दस्यन्ति ) नष्ट नहीं होते  
हैं तथा ( ऊतयः ) इनकी संरक्षक शक्तियाँ भी नहीं घटती ।

भावार्थ— २५५ कर्तृत्ववाली वीरों का तेज चमकता ही रहता है । जिस प्रकार प्रबल आँधी घड़े पेड़ों को जड़मूल  
से टखाइ फेंक देती है, वैसे ही ये वीर शत्रुओं को हिलाकर गिरा देते हैं । नेत्र जैसे यात्री को सरल सड़क पर से ले  
चलता है, ठीक उसी प्रकार ये वीर हम जैसे प्रबल पुरुषार्थी लोगों को सीधी राह से प्रगति की ओर ले चलें ।

२५६ जिसे वीरों की सहायता मिलती है, उसकी प्रगति सब प्रकार से होती है ।

टिप्पणी— [ २५५ ] ( १ ) अर्णस् = गतिमान, चंचल, जिसमें खलपली मची हुई हो ऐसा प्रवाह, जल, सागवान,  
समुद्र । ( २ ) अ-रमति = आराम न लेनेवाला, चारों ओर जानेवाला, आज्ञाधारक, रममाण न होनेवाला । ( ३ )  
सुप् = ( सुप् लण्डने मुप्यति, मोपति ) क्षति करना, वध करना, तोड़ना मरोड़ना । ( ४ ) कपना = कपन, हिलाने-  
वाला, क्षाशावात, शक्ति, क्रमि । ( ५ ) वेधस = ( वि धा ) = कर्ता, कर्तृत्ववान, विधाता ।

[ २५६ ] ( १ ) सूद = मेरणा देना, पकाना, फेंकना, उँदेलना, पीटा देना, वध करना । ( २ ) रिप् =  
( रप् ) क्षीण होना ।

(२५७) नियुत्वंन्तः । ग्रामऽजितः । यथा । नरः । अर्यमणः । न । मरुतः । क्वन्धिनेः ।  
पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । इनासः । अस्वरन् । वि । उन्दन्ति । पृथिवीम् । मध्वः ।  
अन्धसा ॥ ८ ॥

(२५८) प्रवत्वंती । इयम् । पृथिवी । मरुद्भ्यः । प्रवत्वंती । द्यौः । भवति । प्रयद्भ्यः ।  
प्रवत्वंती । पृथ्वाः । अन्तरिक्ष्याः । प्रवत्वंन्तः । पर्वताः । जीरऽदानवः ॥९॥

अन्वय — २५७ यथा नियुत्वंन्त ग्राम-जित नर क्वन्धिने मरुत, अर्यमण न, यत् इनास अस्वरन्  
उत्स पिन्वन्ति पृथिवीं मध्व अन्धसा वि उन्दन्ति ।

२५८ (हे) जीर-दानव ! इय पृथिवी मरुद्भ्य प्रवत्-वती, द्यौ प्रयद्भ्य प्रवत्-वती  
भवति अन्तरिक्ष्या पृथ्वा प्रवत् वती, पर्वता प्रवत्-वन्त ।

अर्थ- २५७ (यथा) जैसे ( नियुत्वंन्त ) घोड़े समीप रखनेवाले, ( ग्राम-जित ) दुश्मनोंके गाँव जीतने-  
वाले, ( नर ) नेता ( क्वन्धिने ) समीप जल रखनेवाले ( मरुत ) घोर मरुत् ( अर्यमण, न ) अर्यमान  
समान ( यत् इनास ) जव वेगसे जाते हैं तव ( अस्वरन् ) शब्द करते हैं, ( उत्स पिन्वन्ति ) जलकुण्डों  
को परिपूर्ण बना रखते हैं और ( पृथिवीं ) भूमि पर ( मध्व ) मिटास भरे ( अन्धसा ) अन्न की ( वि  
उन्दन्ति ) विशेष समृद्धि करते हैं ।

२५८ हे ( जीरदानव ! ) शीघ्र विजयी बननेवाले वीरो ! ( इयं पृथिवी ) यह भूमि ( मरुद्भ्य )  
घोर मरुतों के लिए ( प्रवत् वती ) सरल मार्गोंसे युक्त बन जाती है, ( द्यौ ) धुलोक भी ( प्रयद्भ्य ) वेग  
पूर्वक जानेवाले इन वीरों के लिए ( प्रवत् वती ) आसानीसे जानेयोग्य ( भवति ) होता है, ( अन्तरिक्ष्या  
पृथ्वा ) अन्तराज की सड़क भी उनमें लिए ( प्रवत् वती ) सुगम बनती है और ( पर्वता ) पहाड़  
भी ( प्रवत् वत् ) उनके लिए सरल पथवत् बने दीख पड़ते हैं ।

भावार्थ- २५७ बुद्धिसार घोर शत्रुओं के ग्राम जीत लेते हैं, तथा वेगपूर्वक दुश्मनों पर धावा करते हैं । उस समय  
वे बड़ी भारी घोषणा करते हैं और जलकुण्ड पाणी से भरकर भूमिजल के सपुत्रिमानव अन्नजल की समृद्धि की वस्तुतः  
विपुलता दार देते हैं ।

२५८ वीरों के लिए पृथ्वी, पर्वत, अन्तरिक्ष एवं आकाशपथ सभी सुसाध्य एवं सुगम प्रतीत होते हैं ।  
( वीरों के लिए कोई भी जगह बीरद या दुर्गम नहीं जान पड़ती है । )

टिप्पणी- [ २५७ ] ( १ ) नियुत् - घोड़ा, पति । ( २ ) अन्धस् = अन्न ( अन्न-धस् ) प्राण का धारण करने-  
वाला अन्न । ( ३ ) क्वन्धिन् = जलकुण्ड या पाणी की बोतलें ( Water-bottles ) समीप रखनेवाले ।

[ २५८ ] ( १ ) प्रयम् = सुगम मार्ग, समतल राह, ऊँचाई, बाल ।



(२५९) यत् । मरुतः । सऽभरसः । स्वऽनरः । सूर्ये । उत्सृष्टे । मद्यथ । दिवः । नरः ।  
न । वः । अश्याः । श्रथयन्त । अहं । मिस्रतः । सद्यः । अस्य । अध्वनः । पारम् ।  
अश्रुथ ॥१०॥

(२६०) अंसेषु । वः । ऋष्टयः । पत्सु । खादयः । वक्षःसु । रुक्माः । मरुतः । रथे । शुभः ।  
अग्निऽभ्राजसः । विऽद्युतः । गभस्त्वोः । शिप्राः । शीर्षसु । विऽतताः । हिरण्ययीः ॥११॥

(२६१) तम् । नाकम् । अर्यः । अगृभीतऽशोचिषम् । रुश्रत् । पिप्पलम् । मरुतः । वि । धुनुथ ।  
सम् । अच्यन्त । वृजना । अतिविवन्त । यत् । स्वरन्ति । घोषम् । विऽततम् ।  
ऋतऽयवः ॥१२॥

अन्वयः— २५९ (हे) मरुतः ! स-भरसः स्वर-नरः सूर्ये उदिते मद्यथ, (हे) दिव नरः ! यत् वः  
सिद्धत. अश्याः न अह श्रथयन्त, सद्य अस्य अध्वन पारं अश्रुथ । २६० (हे) रथे शुभः मरुतः !  
वः अंसेषु ऋष्टयः, पत्सु खादयः, वक्षःसु रुक्माः, गभस्त्वोः अग्नि-भ्राजसः विद्युतः, शीर्षसु हिरण्ययीः  
वितताः शिप्राः । २६१ (हे) अर्य. मरुतः ! तं अ-गृभीतः शोचिषं नाकं रुश्रत् पिप्पलं वि धुनुथ,  
वृजना सं अच्यन्त अतिविवन्त, यत् ऋत यवः विततं घोषं स्वरन्ति ।

अर्थ- २५९ हे (मरुत ! वीर मरुतो ! (स भरसः) समान रूपसे कार्यका बोझ उठानेवाले, मानों (स्वर-  
नरः) स्वर्गके नेता तुम (सूर्ये उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (मद्यथ) हर्षित होते हो । हे (दिव. नरः !)  
तेजस्वी नेता एवं वीरो ! (यत्) जतरु (वः सिद्धतः अश्याः) तुम्हारे दौडनेवाले घोडे (न अह श्रथयन्त)  
तनिरु भी नहीं थक गये हैं, तभी तक (सद्यः) तुम्हारे ही तुम (अस्य अध्वनः पारं) इस मार्ग के अन्त  
(अश्रुथ) पहुँच जाओ । २६० हे (रथे शुभः मरुतः ! ) रथोंमें सुहानेवाले वीर मरुतो ! ( वः अंसेषु )  
तुम्हारे कंधोंपर ( ऋष्टयः ) भाले विराजमान हे, ( पत्सु खादयः ) पैरों में कटे, ( वक्षःसु रुक्माः ) उरोभा-  
गपै स्वर्णमुद्राओंके हार, ( गभस्त्वोः ) भुजाओं पर ( अग्नि-भ्राजस. विद्युतः ) अग्निवत् चमकाले वज्र और  
( शीर्षसु ) माथे पर ( हिरण्ययीः वितताः शिप्राः ) सुवर्णके भव्य शिरस्त्राण रते हुए हैं । २६१ हे (अर्यः  
मरुत ! ) वृजनीय वीर मरुतो ! ( तं अ-गृभीत-शोचिषं ) उस अप्रतिहत तेजस्वी (नाकं) आकाशमेंसे (रुश्रत्)  
तेजस्वी (पिप्पलं) जलको (वि धुनुथ) विशेष हिलाओ, वर्षा करो । उसके लिए तुम (वृजना) अपने बलों  
का (सं अच्यन्त) संगठन करके अपने (अतिविवन्त) तेज बढ़ाओ; (यत्) क्योंकि (ऋत-यवः) पानी  
चाहनेवाले लोग (विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) घोषणा करके कहते हैं कि, हमें जल चाहिए ।

भाषार्थ- २५९ सभी कामो का भार वीर सैनिक सम भावसे बराबर बँट कर उठाते हैं । दिनका प्रारम्भ होने पर  
(भयंत् काम शुरु करना सुगम होता है, इसलिये) ये आनन्दित होते हैं । ऐसे वस्त्राही वीर घोड़ोंके थक जानेके पहले ही  
अपने गन्तव्यस्थान पर पहुँच जायें । २६० इस मंत्र में मरुतों के जिस पहनावे का बखान किया है, वह (Military  
uniform) ही है । २६१ अपने बल का संगठन करके तेजस्विता बढ़ाओ । वर्षाका जल इकट्ठा करके सबको वह बँट  
दो, क्योंकि जनता जल प्यास मात्रा में पाने के लिए अतीव कालापित है ।

टिप्पणी- [ २५९ ] (१) भर = भार, बोझ, आकृति, समूह, दौनेवाला । स-भरस् = सम भाव से कारभार  
उठानेवाला । [ यत् न श्रथयन्त, सद्यः अध्वन. पारं अश्रुथ = जब लौ अपने अवयव थक नहीं जाते, तभी तक मानव  
अपने आदर्श या ध्येयको पहुँचनेका प्रयत्न करें । ] [ २६० ] (१) हिरण्ययीः वितताः शिप्रा = सुवर्णकी घेल पत्थियों  
के किनारवाले साके । [ २६१ ] (१) ऋत-यु = यज्ञ करने की इच्छा करनेवाला, सत्यकी-जलकी चाह रखनेवाला ।  
(२) पिप्पल = पानी, पीजल का पेड़, इन्द्रियभोग । (३) वितत = विस्तृत, सक्षिन्न, विरल, फैला हुआ ।

(२६२) युष्माद्दत्तस्य । मरुतः । विञ्चेतसः । रायः । स्याम । रथ्यः । वयस्वतः ।  
 न । यः । युच्छति । तिप्यः । यथा । दिवः । अस्मे इति । ररन्त । मरुतः । सहस्रिणम् ॥१३॥  
 (२६३) युष्म् । रुयिम् । मरुतः । स्पार्ह्वीरम् । युयम् । ऋपिम् । अवथ । सामंविप्रम् ।  
 युयम् । अर्वन्तम् । भरताय । वाजम् । युयम् । धृत्य । राजानम् । श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥  
 (२६४) तत् । वः । यामि । द्रविणम् । सद्यःऽऊतयः । येन । स्वः । न । ततनाम । नृन् । अभि ।  
 इदम् । सु । मे । मरुतः । हर्यत । वचः । यस्य । तरेम । तरसा । शतम् । हिमाः ॥१५॥

अन्वयः— २६२ (हे) वि-चेतसः मरुतः! युष्मा-दत्तस्य वयस्-वतः रायः रथ्यः स्याम, (हे) मरुतः! अस्मे यः, दिवः तिप्यः यथा, न युच्छति सहस्रिणं ररन्त । २६३ (हे) मरुतः! यूयं स्पार्ह्व-वीरं रयिं, यूयं साम-विप्रं ऋपिं अवथ, यूयं भरताय अर्वन्तं वाजं, यूयं राजानं श्रुष्टि-मन्तं धृत्य । २६४ (हे) सद्य-ऊतयः! वः तत् द्रविणं यामि, येन नृन् स्वः न अभि ततनाम, (हे) मरुतः! इदं मे सु-वचः हर्यत, यस्य तरसा शतं हिमाः तरेम ।

अर्थ— २६२ हे (वि-चेतसः मरुतः!) विदेश्य शर्मा वीर मरुतो! (युष्मा-दत्तस्य) तुम्हारे दिये हुए (वयस्-वतः) अन्नसे युक्त होकर (रायः) ऐश्वर्य के (रथ्यः) रथ भरके लानेवाले हम (स्याम) हैं। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अस्मे) हमें (यः) यह (दिवः तिप्यः यथा) आकाश में विद्यमान नक्षत्र के समान (न युच्छति) न नष्ट होनेवाला (सहस्रिणं) हजारों किस्म का धन देकर (ररन्त) संतुष्ट करो।

२६३ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यूयं) तुम (स्पार्ह्व-वीरं) स्पृहणीय वीरों से युक्त (रयिं) धन का संरक्षण करते हो; (यूयं साम-विप्रं) तुम शांतिप्रधान या सामगायक विद्वान (ऋपिं अवथ) ऋषि का रक्षण करते हो; (यूयं) तुम (भरताय) जनता का भरणपोषण करनेवाले के लिए (अर्वन्तं वाजं) घोड़े तथा अन्न देते हो और (यूयं) तुम (राजानं) नरेश को (श्रुष्टि-मन्तं) वैभवयुक्त करके उसे (धृत्य) धारित एवं पुष्ट करते हो।

२६४ हे (सद्य-ऊतयः!) तुरन्त संरक्षण करनेवाले वीरो! (वः तत्) तुम्हारे उस (द्रविणं यामि) श्लोक की हम इच्छा करते हैं। (येन) जिससे हम (नृन्) सभी लोगों को (स्वः न) प्रकाश के समान (अभि ततनाम) दान दे सकें। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (इदं मे सु-वचः) यह मेरा अच्छा वचन (हर्यत) स्वीकार कर लो; (यस्य तरसा) जिसके बलसे हम (शतं हिमाः) सौ हेमन्तऋतु, सौ वर्ष (तरेम) दुःखमें से तैरकर पार पहुँच सकें, जीवित रह सकें।

भावार्थ— २६२ सहस्रों प्रकारका धन और अन्न हमें प्राप्त हो। वह धन आकाशके नक्षत्रकी न्याईं अक्षय एवं अटल रहे। २६३ वीर हुए पुराणयुक्त धन का वितरण करके ज्ञानी तपस्व का पोषण करके प्रजापालनतत्पर भूषण का पालनपोषण एवं संवर्धन करते हैं।

२६४ हे संरक्षणकर्ता वीरो! हमें प्रचुर धन दो ताकि हम उसे सब लोगों में बाँट दें। मैं अपना यह वचन दे रहा हूँ। इसी भाँति करते हम सौ वर्षों तक दुःख हटाकर जीवनयात्रा वितायें।

टिप्पणी— [ २६३ ] (१) श्रुष्टि = सुननेवाला, सहायता, वर, वैभव, सुख ।

[ २६४ ] (१) स्वर = स्वर्ग, जल, सूर्यकिरण, प्रकाश । (२) हर्य (गतिकान्तयोः) = गति करना, हटाकर करना । (३) यामि (याचे) = याचना करता हूँ, चाहता हूँ । (४) स्वः न = (स्वरं न, स्वर्णं) = सूर्यप्रकाश-नद, जैसे सूर्य अपने किरणों को समान रूप से बाँट देता है वैसे । [ शतं हिमाः तरेम = पर्येव शतः शतम् । जीवेम शतः शतम् ॥ (वा० यजु० ३६/३४) ]

( क्र० ५।१।१-१० )

(२६५) प्रऽयज्यवः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्यः । वृहत् । वयः । दुधिरे । रुक्मऽवक्षसः ।  
ईयन्ते । अश्वैः । सुऽयमेभिः । आशुभिः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥१॥

(२६६) स्रयम् । दधिध्वे । तविपीम् । यथा । विद । वृहत् । महान्तः । उर्विया । वि । राजथ ।  
उत । अन्तरिक्षम् । ममिरे । वि । ओजसा । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अनुत्सत ॥२॥

अन्वयः- २६५ प्र-यज्यव भ्राजत्-ऋष्य रुक्म-वक्षस मरुत वृहत् वयःदधिरे, सु यमेभिः आशुभिः  
अश्वैः ईयन्ते, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६६ यथा विद म्ययं तविपीं दधिध्वे, महान्तः उर्विया वृहत् वि राजथ, उत ओजसा  
अन्तरिक्षं वि ममिरे, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ- २६५ ( प्र-यज्यवः ) विशेष यज्ञनीय कर्म करनेहारे ( भ्राजत्-ऋष्य ) तेजस्वी दृथियारों से युक्त  
तथा ( रुक्म-वक्षसः मरुत- ) वक्ष-स्थलपर स्वर्णहार धारण करनेहारे वीर मरुत, ( वृहत् वयः दधिरे ) बड़ा  
भारी बल धारण करते हैं । ( सु-यमेभि ) भली भोंति नियमित होनेवाले, ( आशुभिः ) वेगवान ( अश्वैः )  
घोड़ों के साथ, वे ( ईयन्ते ) चले जाते हैं । उनके ( रथाः ) रथ ( शुभं यातां ) लोककल्याण के लिए  
जाते समय उन्हीं के ( अनु अवृत्सत ) पीछे चले जाते हैं ।

२६६ ( यथा ) चूँकि तुम ( विद ) बहुत ज्ञान प्राप्त करते हो और ( स्रयं तविपीं दधिध्वे )  
स्वयमेव विशेष बल भी धारण करते हो, तुम ( महान्त ) बड़ हो और ( उर्विया ) मातृभूमि का  
हित करने की लालसा से ( वृहत् वि राजथ ) विशेष रूपसे सुशोभित होते हो । ( उत ) और ( ओजसा )  
अपने बल से, ( अन्तरिक्षं वि ममिरे ) अन्तरिक्षको भी व्याप्त कर डालते हो, ( रथाः ) इनके रथ ( शुभं  
यातां ) लोककल्याण के लिए जाते समय, ( अनु अवृत्सत ) इन्हीं का अनुसरण करते हैं ।

भावार्थ- २६५ अच्छे कर्म करनेहारे, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले, भावपूर्णों से सुशोभित वीर अपने बल को  
अलक्षिक रूप से बढ़ाते हैं और घबरा अश्वोंपर आरुढ़ होकर जनता का हित करने के लिए मनुद्वार पर आवा करना  
शुरू करते हैं ।

२६६ वीर पुरुष ज्ञान प्राप्त करके अपना बल बढ़ाकर मातृभूमि का यश बढ़ाने के लिए प्रयत्न करते हैं ।  
अपने इन अद्भ्य अश्वबलियों के फलस्वरूप वे अत्यन्त सुशोभित दीख पड़ते हैं और अपनी ऊँची उठानों से समूचा  
अन्तरिक्ष भी व्याप्त कर डालते हैं ।

टिप्पणी- [ २६५ ] ( १ ) वयस्= अन्न, बल, सामर्थ्य, तारण्य ।

[ २६६ ] ( १ ) उर्वे= ( हिंसावाम् ) घघ काना । ( उर्वी )= भूमि, मातृभूमि । ( उर्विया )= मातृभूमि के  
बाँ में शुभ बुद्धि, पृथ्वीविषयक विस्तृत भावना । ( २ ) मा ( माने )= गिनना, अन्तर्भूत हो जाना, व्याप्त होना ।

(२६७) साकम् । जाताः । सुऽभ्यः । साकम् । उक्षिताः ।  
 श्रिये । चित् । आ । प्रऽनृम् । ववृधुः । नरः ।  
 विऽरोकिणः । सूर्यस्यऽइव । रश्मयः ।  
 शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥३॥

(२६८) आऽभूषेण्यम् । वः । मरुतः । महिऽत्वनम् ।  
 दिदृक्षेण्यम् । सूर्यस्यऽइव । चक्षेणम् ।  
 उतो इति । अस्मान् । अमृतऽत्वे । दधातन् ।  
 शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥ ४ ॥

अन्वयः— २६७ साकं जाताः सु-भ्यः साकं उक्षिताः नरः श्रिये चित् प्र-तरं आ ववृधुः, सूर्यस्यइव रश्मयः वि-रोकिणः, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६८ (हे) मरुतः ! वः महित्वनं आ-भूषेण्यं सूर्यस्यइव चक्षेणं दिदृक्षेण्यं, उत अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन्, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ- २६७ जो ( साकं जाताः ) एक ही समय प्रकट होनेवाले, ( सु-भ्यः ) अच्छी प्रकार उत्पन्न हुए, ( साकं उक्षिता ) संघ करके चलसंपन्न होनेवाले ( नरः ) नेता थे वीर, ( श्रिये चित् ) वैभव पाने के लिए द्वा ( प्रतरं ) अधिकाधिक ( आ ववृधुः ) बढ़ते हैं, ये ( सूर्यस्यइव रश्मयः ) सूर्यकिरणों के समान ( वि-रोकिणः ) विशेष तेजस्वी हैं । ( रथा शुभं ... ) [ मंत्र २६५ पाँ देखिए । ]

२६८ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वः महित्वनं ) तुम्हारा बड़प्पन ( आ-भूषेण्यं ) सभी प्रकार से शोभायमान ह और वह ( सूर्यस्यइव चक्षेणं ) सूर्य के दृश्य के समान ( दिदृक्षेण्यं ) दर्शनीय है । ( उत ) इसीलिए तुम ( अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन् ) हमें अमरपन को पहुँचाओ । ( रथाः शुभं यातां० ) [ मंत्र २६५ पाँ देखिए । ]

भावार्थ- २६७ ये वीर शत्रुदलपर आक्रमण करते समय एक ही समय प्रकट होते हैं, अपना उत्तम जीवन बिताने हैं, संघ बनाकर अपने बल की वृद्धि करते हैं और सर्वे वश के लिए ही सचेष्ट रहा काने हैं । ये सूर्यकिरणवत् तेजस्वी यन प्रकाशमान होते हैं ।

२६८ हे वीरो ! तुम्हारा बड़प्पन सचमुच वर्जनीय है । तुम सूर्यवत् तेजस्वी हो, इसीलिए हमें अ-मृतोंमें स्थान दो ।

टिप्पणी- [ २६७ ] ( १ ) वि-रोकिन् = ( रोकि = तेजस्विता ) = विशेष तेजस्वी । ( २ ) सु-भ्यः = ( सु+भू ) अच्छी तरह उत्पन्न मतधर से चलनेवाला । सुभ्यन् = पमकीला, तेजस्वी । ( ३ ) उश्च = हीचना, घलवान होना । ( ४ ) जातः = प्रकट, पैदा हुआ ।

[ २६८ ] ( १ ) चक्षेणं = रूप, तथा दर्शन, रश्मि ।

(२६९) उत् । ईर्यथ । मरुतः । समुद्रतः । यूयम् । वृष्टिम् । वर्षयथ । पुरीषिणः ।  
 न । वः । दक्षः । उप । दस्यन्ति । धेनवः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥५॥  
 (२७०) यत् । अश्वान् । धूःऽसु । पृपतीः । अयुग्ध्वम् । हिरण्ययान् । प्रति । अत्कान् । अमुग्ध्वम् ।  
 विश्वाः । इत् । स्पृधः । मरुतः । वि । अस्यथ । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥६॥  
 (२७१) न । पर्वताः । न । नद्यः । वरन्त । वः । यत्र । अचिध्वम् । मरुतः । गच्छथ । इत् ।  
 ऊँ इति । तत् ।

उत् । द्यावापृथिवी इति । याथन । परि । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥७॥

अन्वयः— २६९ (हे) पुरीषिणः मरुतः ! यूयं समुद्रतः उत् ईर्यथ, वृष्टिं वर्षयथ, (हे) दक्षः ! वः धेनवः न उप दस्यन्ति, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२७० (हे) मरुतः ! यत् पृपतीः अश्वान् धूर्षु अयुग्ध्वं, हिरण्ययान् अत्कान् प्रति अमुग्ध्वं, विश्वाः इत् स्पृधः वि अस्यथ, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२७१ (हे) मरुतः ! वः पर्वताः न वरन्त, नद्यः न, यत्र अचिध्वं तत् गच्छथ इत् उ, उन द्यावा-पृथिवी परि याथन, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ— २६९ हे ( पुरीषिणः मरुतः ! ) जलसे युक्त वीर मरुतो ! ( यूयं ) तुम ( समुद्रतः ) समुद्र के जल को ( उत् ईर्यथ ) ऊपर प्रेरणा देते हो और ( वृष्टिं वर्षयथ ) वर्षा का प्रारम्भ करते हो । हे ( दक्षः ! ) शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीरो ! ( वः धेनवः ) तुम्हारी गौण ( न उप दस्यन्ति ) क्षीण नहीं होती हैं । ( रथाः शुभं ) [ २६५ वाँ मंत्र देखिए । ]

२७० हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( यत् पृपतीः अश्वान् ) जय ध्वजेवाले घोड़ों को तुम, ( धूर्षु ) रथों के अग्रभाग में जोड़ देते हो और ( हिरण्ययान् अत्कान् ) स्वर्णमय कवच ( प्रति अमुग्ध्वं ) हर कोई पहनते हो, तब ( विश्वाः इत् ) सभी ( स्पृधः ) चढाऊपरी करनेवाले दुश्मनोंको तुम ( वि अस्यथ ) विभिन्न प्रकारों से तितरवितर कर देते हो । ( रथाः शुभं ) [ मंत्र २६५ वाँ देखिए । ]

२७१ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुता ! ( वः ) तुम्हारे मार्गमें ( पर्वताः ) पहाड़ ( न वरन्त ) रुकावट न डालें, ( नद्यः न ) नदियाँ भी रोड़े न बटकायँ । ( यत्र ) जिधर ( अचिध्वं ) जाने की इच्छा हो, ( तत् ) उधर ( गच्छथ इत् उ ) जाओ, ( उत् ) और ( द्यावा पृथिवी ) भूमंडल एवं द्युलोक में ( परि याथन ) चारों ओर घूमो । ( रथाः शुभं ... ) [ मंत्र २६५ वाँ देखिए । ]

भावार्थ— २६९ समुद्र में विद्यमान जल को ये मरुत् ऊपर आकाश में उठा ले जाते हैं और वहाँ से फिर वर्षा के द्वारा उसे भूमिपर पहुँचा देते हैं । इस वर्षा के कारण गौधों का पोषण होता है । २७० वीर सुन्दर दिखाई देनेवाले अश्वों को रथ में जोड़कर कवचधारी बन बैठने हैं और सारे शत्रुओं को मार भगा देते हैं । २७१ पर्वत तथा नदियोंके कारण वीरों के पथ में कोई रुकावट नहीं न होने पाय । विजयी बनने के लिए जिधर भी जाना उन्हें पसंद हो, उधर बिना किसी विघ्न के वे चले जायँ और सर्वत्र विजय का शंका पहरायँ ।

टिप्पणी— [ २६९ ] ( १ ) दक्षः = जंगली, उप । ( दम् = फेंकना, नाश करना, जीतना, प्रवादमान होना । ) फेंकनेवाला, शत्रुविनाशक, विजयवीर, प्रवादमान । ( २ ) पुरीष = जल ( निघण्टु ), मरु, विष्टा । ( पुरि-इष ) नगी में जो इष्ट है वह; शरीर में जो इष्ट है वह ।

[ २७० ] ( १ ) अत्कः = ( अत् सावापगमने ) = यात्री, भवयत्र, जल, विशुत्, पक्ष, कवच । ( २ ) प्रति-मुष्ट = पहनना, शरीरपर धारण करना ।

- (२७२) यत् । पूर्वम् । मरुतः । यत् । च । नूतनम् । यत् । उद्यते । वसवः । यत् । च । शस्यते । विश्वस्य । तस्य । भवथ । नवेदसः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥८॥
- (२७३) मृळत । नः । मरुतः । मा । वधिष्टन । अस्मभ्यम् । शर्म । बहुलम् । वि । यन्तन । अधि । स्तोत्रस्य । सख्यस्य । गातन । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥९॥
- (२७४) यूयम् । अस्मान् । नयत । वस्यः । अच्छ । निः । अहतिः । मरुतः । गृणानाः । जुषधाम् । नः । हव्यः । दातिम् । यजत्राः । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१०॥

अन्वय — २७२ (हे) वसव मरुत ! यत् पूर्वम्, यत् च नूतन, यत् उद्यते, यत् च शस्यते, तस्य विश्वस्य नवेदस भवथ रथा शुभ याता अनु अवृत्सत ।

२७३ (हे) मरुत ! न मृळत, मा वधिष्टन, अस्मभ्य बहुल शर्म वि यन्तन, स्तोत्रस्य सख्यस्य अधि गातन, रथा. शुभ याता अनु अपृत्सत ।

२७४ (हे) गृणाना. मरुत ! यूय अस्मान् अहतिभ्य नि. वस्य अच्छ नयत, (हे) यजत्रा ! न हव्य दातिं जुषध्व वय रयीणा पतय स्याम ।

अर्थ- २७२ हे (वसव मरुत ! ) लोगों को वसानेहारे वीर मरुतो ! ( यत् पूर्वम् ) जो पुरातन, पुराना है ( यत् च नूतन ) वीर जो नया है ( यत् उद्यते ) जो उत्कृष्ट है और ( यत् च शस्यते ) जो प्रशसित होता है ( तस्य विश्वस्य ) उस सभाके तुम ( नवेदस भवथ ) जाननेवाले होओ । ( रथा शुभम् ) [ मंत्र २६५ वॉ देखिए । ]

२७३ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( न मृळत ) हमें सुखी बनाओ, ( मा वधिष्टन ) हमें न मार डालो ( अस्मभ्य ) हमें ( बहुल शर्म वि यन्तन ) बहुत सारा सुख दे दो और हमारी ( स्तोत्रस्य सख्यस्य ) स्तुतियोग्य मित्रता को तुम ( अधि गातन ) जान लो । ( रथा शुभम् ) [ मंत्र २६५ वॉ देखिए । ]

२७४ हे ( गृणाना मरुत ! ) प्रशसनीय वीर मरुतो ! ( यूय ) तुम ( अस्मान् अहतिभ्य नि. ) हमें दुर्दशासे दूर हटाकर ( वस्य अच्छ ) बसने के लिए योग्य जगह की ओर ( नयत ) ले चलो । हे ( यजत्रा ! ) यज्ञ करनेवाले वीरो ! ( न हव्य-दातिं ) हमारे दिये हुए हविष्याघका ( जुषध्व ) सेवन करो । ( वय ) हम ( रयीणा पतय स्याम ) विभिन्न प्रकारके धनों के स्वामी या अधिपति बन जायें, ऐसा करो ।

भावार्थ- २७२ पुगाना हो या नया, जो कुछ भी ऊँचा या वर्णनीय ध्येय है, उसे वीर जान लें और उसके लिए सचेत रहें । २७३ हमें सुख, आनन्द एवं कल्याण प्राप्त हो ऐसा करो । जिस से हमारा क्षति हो जाए ऐसा कुछ भी न करो और हम से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखो ।

२७४ हमें वीर पुरुष पावों से बचाएँ और सुखपूर्वक जहाँ निवास कर सकें उसे स्थान तक हमें पहुँचा दें । हम जो कुछ भी दृष्टिगत प्रदान करत हैं उसे स्वीकार कर हमें भौतिक भौतिक के धन मिले, ऐसा करना उम्हें उचित है ।

टिप्पणी- [ २७० ] ( १ ) यत् उद्यते = उद्यते = ऊर्ध्वं प्राप्यते ( सायणभाष्य ) ऊँचा प्राप्तम् है । ( २ ) नवेदस = नवेदस = " नभाणनपात्रवेदा० " - पा० सू० ६३ ७५ द्वारा इस पद की सिद्धि की है, पर अर्थ नित्य धामक हील पदवा है । वायणाचायने ' जाननेवाला ' ऐसा अर्थ किया है । क्र १ १६५ ३३ में ' नवेदा ' पद है और षडौंर भी ( सा० जा० में ) वही अर्थ किया है । ' अनुसप्त ' ( मन्त्रे उत्तम ) पदके समान ही ' नवेदा ' पदका अर्थ बहुवीडि समास से ' अधिक ज्ञानी ' वों करना चाहिए ।

[ २७४ ] ( १ ) अहति = दान, पाप, चिंता, कष्ट, दुःख, आपत्ति, बीमारी ।

( अ० ५।५६। १-९ )

- (२७५) अग्ने । शर्धन्तम् । आ । गणम् । पिष्टम् । रुक्मेभिः । अज्जिभिः ।  
 विशः । अद्य । मरुताम् । अर्ध । ह्वये । दिवः । चित् । रोचनात् । अधि ॥१॥
- (२७६) यथा । चित् । मन्यसे । हृदा । तत् । इत् । मे । जग्मुः । आऽशसः ।  
 ये । ते । नेदिष्टम् । हवनानि । आऽगमन् । तान् । वर्ध । भीमऽसदृशः ॥२॥
- (२७७) मीळहुष्मतीऽइव । पृथिवी । पराऽहता । मदन्ती । एति । अस्मत् । आ ।  
 ऋक्षः । न । वः । मरुतः । शिमीऽजान् । अमः । दुध्रः । गौऽइव । भीमऽयुः ॥३॥

अन्वय — २७५ (हे) अग्ने । अथ शर्धन्त रुक्मेभि अज्जिभि पिष्ट गण मरुता विश रोचनात् दिव  
 अधि अद्य आ ह्वये ।

२७६ हृदा यथा चित् मन्यसे तत् इत् आ शस मे जग्मु ये ते हवनानि नेदिष्ट आगमन्  
 तान् भीम-सदृश वर्ध ।

२७७ मीळहुष्मतीइव पृथिवी पर-अ-हता मदन्ती अस्मत् आ एति, (हे) मरुत ! व अम-  
 ऋक्ष न शिमी वान् दु ध्र गौ इव भीम-यु ।

अर्थ- २७५ हे (अग्ने) अग्ने ! (अद्य) आज दिन (शर्धन्त) शत्रुघनाशक, (रुक्मेभिः अज्जिभि) स्वर्ण  
 हारों एवं वीरों के आभूषणों से (पिष्ट) अलसृत (गण) वीर मरुतों क समुदाय को तथा (मरुता  
 विश) मरुता के प्रजाजनों को (रोचनात् दिव अधि) प्रकाशमय द्युलोक से (अद्य आ ह्वये) म नीचे  
 बुलाता हूँ ।

२७६ हे अग्ने ! तू उन्हें (हृदा यथा चित्) अत करणपूर्वक जैसे पूज्य (मन्यसे) समझता है, (तत्  
 इत्) उसी प्रकार वे (आ-शस) चतुर्दिक् शत्रुदल की धजिया उड़ानेवाले वीर (मे जग्मुः) मेरे निकट  
 आ चुके ह (ये) जो (ते) तुम्हारे (हवनानि) हवना के (नेदिष्ट) समीप (आगमन्) आ गये, (तान्  
 भीम-सदृश) उन उग्र-स्वरूपी वीरों का (वर्ध) तू बढ़ा द ।

२७७ (मीळहुष्मतीइव) उदार तथा (पर अ हता) शत्रुसे पराभूत न हर्द ओर इसीलिये (मदन्ती)  
 हर्षित हुई वीरसेना (अस्मत् आ एति) हमारे निकट आ रही है । हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! (व अम)  
 तुम्हारा बल (ऋक्ष न) सप्तर्षिया क समान (शिमी-वान्) कार्यक्षम तथा (दु ध्र) शत्रुओं से घिरे जाने  
 में अक्षम्य है और (गौ इव) गेले के समान बल (भीम-यु) भयकर ढंगसे सामर्थ्यवान है ।

भावार्थ- २७५ जनता के हित के लिए हम अपने बीच वीरों को बुलाते हैं । व वीर नैतिक इष्ट आ जायँ और  
 अच्छी रथा के द्वारा सब को सुखी बना द ।

२७६ पूज्य वीरों को अन्न आदि दकर उनका यथावत् आदरसंकार करें, तथा जिससे उनकी वृद्धि हो ऐसे  
 कार्य सम्पन्न करने चाहिए ।

२७७ शिकस्त न खापी हुई उमंग मरी वीर सेना हम महायता पहुँचाने के लिए आ रही है । वह  
 प्रबल है इसीलिये शत्रु उसे धर नहीं सकते हैं और इसे सब ऋषे से दशकों के मन में तनिक भय का संचार होता है ।

टिप्पणी- [ २७५ ] ( १ ) पिष्ट = ( पिशु-तजस्वी करना व्यवस्था करना अलकृत करना आकार देना )  
 विभूषित, सजाया हुआ । [ २७६ ] ( १ ) आ-शस = ( शस्-हिमायाम् ) शत्रुका वध, कत्ल । [ २७७ ] ( १ )  
 मीळहुष्मती = ( मीढ्यस-मती ) = उदार, दातृत्वयुक्त, स्नेहयुक्त । ( २ ) शिमी-वान् = ( शिमी = प्रयत्न उद्यम; कर्म )  
 प्रबल, प्रयत्नशील, तमर्ध । ( ३ ) ऋक्ष = विनाशक, घातक, सप्तर्षि, सर्वोत्तम, अग्नि ( सायण ) ।

- (२७८) नि । ये । रिणन्ति । ओजसा । वृथा । गावः । न । दुःधुरः ।  
 अश्मानम् । चित् । स्वर्धम् । पर्वतम् । गिरिम् । प्र । च्यवयन्ति । यामभिः ॥४॥
- (२७९) उत् । तिष्ठ । नूनम् । एषाम् । स्तोमैः । सम्-उक्षितानाम् ।  
 मरुताम् । पुरुऽवतमम् । अपूर्वम् । गवांम् । सर्गम्-ऽडव । ह्ये ॥५॥
- (२८०) युद्गध्वम् । हि । अरुपीः । रथे । युद्गध्वम् । रथेषु । रोहितः ।  
 युद्गध्वम् । हरी इति । अजिरा । धुरि । वोळ्हवे । वहिष्ठा । धुरि । वोळ्हवे ॥६॥

अन्वय — २७८ दुर-धुर गाव न ये ओजसा वृथा नि रिणन्ति यामभिः अश्मान गिरि स्वर्-यं पर्वतं चित् प्र च्यवयन्ति ।

२७९ उत् तिष्ठ, नूनं स्तोमैः सम्-उक्षितानां एषां मरुतां पुर-तमं अ-पूर्वं गवां सर्गैश्च ह्ये ।

२८० रथे हि अरुपी-युद्गध्वं, रथेषु रोहितः युद्गध्वं, अजिरा वहिष्ठा हरी वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि युद्गध्वं ।

अर्थ- २७८ (दुर-धुरः गावः न) जीर्ण धुराका नाद जैसे बेल करते हैं, उसी प्रकार (ये) जो वीर (ओजसा) अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं का (वृथा) आसानी से विनाश करते हैं, ये (यामभिः) हमलों से (अश्मानं गिरिं) पथरीले पहाड़ों को तथा (स्वर्-यं पर्वतं चित्) आकाशचुम्बी पहाड़ों को भी (प्र च्यवयन्ति) स्थानभ्रष्ट कर देते हैं ।

२७९ (उत् तिष्ठ) उठो, (नूनं) सचमुच (स्तोमैः) स्तोत्रों से (सम्-उक्षितानां) इकट्ठे चढ़े हुए (एषां मरुतां) इन वीर मरुतों के (पुर-तमं) बहुतही बड़े (अ-पूर्वं) एवं अपूर्व गण की, (गवां सर्गै-श्च) बैलों के समूह की जैसे प्रार्थना की जाती है, वैसे ही (ह्ये) मैं प्रार्थना करता हूँ ।

२८० तुम अपने (रथे हि) रथ में (अरुपी-) लालिमामय हरिणियों (युद्गध्वं) जोड़ दो और अपने (रथेषु) रथ में (रोहित-) पर लालचर्णवाला हरिण (युद्गध्वं) लगा दो, या (अजिरा) वेगवान् (वहिष्ठा हरी) दोनों की क्षमता गवनेवाले दो घोड़ों को रथ (वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि) खींचने के लिए धुरा में (युद्गध्वं) जोड़ दो ।

भावार्थ- २७८ अपनी शक्ति के महारे वीर शत्रुओं का यथ करते हैं और पर्वतश्रेणी को भी जगह से हिला देते हैं ।

२७९ मैं वीरों की सराहना करता हूँ । (वीरों के काव्य का गायन करता हूँ ।)

२८० रथ खींचने के लिए घोड़े, हरिणियाँ या हरिण खने हैं ।

टिप्पणी- [२७८] (१) स्वर्-यं = स्वर्ग तक पहुँचा हुआ, आकाश को छूनेवाला, । (२) दुर-धुर = वृथी धुरा, जीर्ण धुरा ।

[२७९] (१) सम्-उक्षित = सवर्धित, (सम्) एकतापूर्वक (उक्षित) बलवान् बनाया हुआ ।

[२८०] (१) अरुपी = (अरुप = लालिमामय) रक्तिम वर्णवाली (घोड़ी-हरिणी) अ-रुपी = (रु = श्रेय करना) = शीघ्र प्रकृति की (हरिणी) । (२) अजिरा = (अज् गतौ) वेगवान् । (रथों में हरिणी या कृष्ण-मार जोड़ने का उल्लेख मात्र १३ तथा १४ की टिप्पणी में देखा ।)



- (२८१) उत । स्यः । वाजी । अरुपः । तुविस्वनिः । इह । स्म । धायि । दर्शतः ।  
 मा । वः । यामेषु । मरुतः । चिरम् । करत् । प्र । तम् । रथेषु । चोदत ॥७॥
- (२८२) रथम् । जु । मारुतम् । वयम् । श्रवस्युम् । आ । हुवामहे ।  
 आ । यस्मिन् । तस्थौ । सु-रणानि । विभ्रती । सर्वा । मरुत्सु । रोदसी ॥८॥
- (२८३) तम् । वः । शर्धम् । रथेऽशुभम् । त्वेषम् । पनस्युम् । आ । हुवे ।  
 यस्मिन् । सु-जाता । सु-भगा । महीयते । सर्वा । मरुत्सु । मीळ्हुपी ॥९॥

अन्वयः— २८१ उत स्यः अरुपः तुवि-स्वनिः दर्शतः वाजी इह धायि स्म, (हे) मरुतः! वः यामेषु चिरं मा करत्, तं रथेषु प्र चोदत ।

२८२ यस्मिन् सु-रणानि विभ्रती रोदसी मरुत्सु सचा आ तस्थौ (तं) श्रवस्युं मारुतं रथं वयं आ हुवामहे ।

२८३ यस्मिन् सु-जाता सु-भगा मीळ्हुपी मरुत्सु सचा महीयते तं वः रथे-शुभं त्वेषं पनस्युं शर्धं आ हुवे ।

अर्थ- २८१ (उत) सचमुच (स्यः) वह (अरुपः) रक्तिम आभासे युक्त (तुवि-स्वनिः) बड़े जोरसे हिनहिनानेवाला (दर्शतः) देखनेयोग्य (वाजी) घोडा (इह) इस रथकी धुरा में (धायि स्म) जोटा गया है । हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः यामेषु) तुम्हारे चढाइयों में वह (चिरं मा करत्) विलम्ब न करेगा, (तं) उसे (रथेषु प्र चोदत) रथों में बैठकर भली भाँति हाँक दो ।

२८२ (यस्मिन्) जिसमें (सु-रणानि) अच्छे रमणीय वस्तुओंको (विभ्रती) धारण करनेवाली (रोदसी) द्वाधापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतों के साथ (आ तस्थौ) बैठी हुई हैं, उस (श्रवस्-युं) कीर्तिको समीप करनेवाले (मारुतं रथं) वीर मरुतों के रथका (वयं आ हुवामहे) धर्षण हम सभी तरह से कर रहे हैं ।

२८३ (यस्मिन्) जिस में (सु-जाता) भली भाँति उत्पन्न, (सु-भगा) अच्छे भाग्यसे युक्त एवं (मीळ्हुपी) उदार द्वाधापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतों के साथ (महीयते) महत्त्व को प्राप्त होती है, (तं) उस (वः) तुम्हारे (रथे-शुभं) रथ में सुढानेवाले (त्वेषं) तेजस्वी और (पनस्युं) सराहनीय (शर्धं) बलकी (आ हुवे) ठीक प्रकार में प्रार्थना करता हूँ ।

भाषार्थ- २८१ रथको शीघ्रही अश्वयुक्त करके शीघ्र चलनेके लिए उन्हे मरेणा करो और बहुत जल्द दुदमनों पर धावा करो ।

२८२ द्वाधापृथिवी अच्छे रमणीय वस्तुओं को धारण करके जिनके भाषार से डिकी है, उन मरुतों के विजयी रथ का काश्य हम रचते है तथा गायन भी करते हैं ।

२८३ जिसमें समूचा भाग्य समाया हुआ है, ऐसे तेजस्वी मरुतोंके दिव्य बलकी सराहना में करता हूँ ।

टिप्पणी- [२८१] (१) तं रथेषु प्र चोदत- यहाँ पर ऐसा दीख पड़ता है कि, एक वचन के लिए 'रथेषु' बहुवचन का प्रयोग किया गया है अथवा हर एक मरुत् के रथ की इसी भाँति योजना होने के कारण यह बहुवचन का प्रयोग बिलकुल सार्थ है, ऐसा कहा जा सकता है ।

[२८२] (१) रणः-र्ण = युद्ध, समरभूमि, आगंद, रमणीयता । (२) श्रवस्-युः = कीर्ति से संयुक्त होनेवाला, अश्व से जुड़ानेवाला ।

[२८३] (१) सु-जात = अच्छी तरह बना हुआ, कुलीन, उत्तम बंगसे प्रकट हुआ या निष्पन्न ।  
 (२) सु-भगा = वैभवशाली, भाग्ययुक्त, अच्छे भाग्यवाला ।

(अ० ५।५।५१-८)

(२८४) आ । रुद्रासः । इन्द्रवन्तः । सजोपसः । हिरण्यरथाः । सुविताय । गन्तुन ।  
 इपम् । वः । अस्मत् । प्रति । हर्यते । मतिः । तृष्णजे । न । दिवः । उत्साः । उदन्यवे ॥१॥  
 (२८५) वाशीमन्तः । ऋष्टिमन्तः । मनीषिणः । सुधन्वानः । इपुमन्तः । निपङ्गिणः ।  
 सुअश्वः । स्य । सुरथाः । पुश्रिमातरः । सुआयुधाः । मरुतः । याधन । शुभम् ॥२॥  
 (२८६) धनुथ । घाम् । पर्वतान् । दाशुपे । वसु । नि । वः । वना । जिहते । यामनः । भिया ।  
 कोपयथ । पृथिवीम् । पृश्रिमातरः । शुभे । यत् । उग्राः । पृपतीः । अपुग्धम् ॥३॥

अन्वयः— २८४ (हे) इन्द्र-वन्तः स-जोपसः हिरण्य-रथाः रुद्रासः ! सुविताय आ गन्तुन, इयं  
 अस्मत् मतिः वः प्रति हर्यते, (हे) दिवः ! तृष्णजे उदन्यवे उत्साः न !

२८५ (हे) पृश्रि मातरः मरुतः ! वाशी-मन्तः ऋष्टि-मन्तः मनीषिणः सु-धन्वानः इपु-मन्तः  
 निपङ्गिणः सु-अश्वः सु-रथाः सु-आयुधाः स्य शुभं याधन ।

२८६ दानुपे वसु दां पर्वतान् धनुथ, व. यामनः भिया वना नि जिहते, (हे) पृश्रि-मातरः !  
 शुभे यत् उग्राः पृपतीः अयुग्धे पृथिवीं कोपयथ ।

अर्थ— २८४ हे (इन्द्र-वन्तः) इन्द्रके साथ रहनेवाले, (स-जोपसः) प्रेम करनेवाले, (हिरण्य-रथाः) सुवर्ण  
 के यन्त्रों पर रहनेवाले तथा (रुद्रासः!) शत्रु को हलानेवाले वीरों ! (सुविताय) हमारे वैभव को  
 बढ़ाने के लिए (आ गन्तुन) हमारे समीप आओ। (इयं अस्मत् मतिः) यह हमारी स्तुति (वः प्रति हर्यते)  
 तुममें से हरेक की पूजा करती है। हे (दिवः!) तेजस्वी वीरों ! जिस प्रकार (तृष्णजे) प्यासे और  
 (उदन्यवे) जलको चाहनेवालेके लिए (उत्साः न) जलकुंड रखे जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लिए तुम हो।

२८५ हे (पृश्रि-मातरः मरुतः!) भूमि की माता माननेवाले वीर मरुतो ! तुम (वाशी-मन्तः)  
 कुठारसे युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) भाले धारण करनेवाले, (मनीषिणः) अच्छे शार्ङ्ग, (सु-धन्वानः) सुन्दर  
 धनुष्य साथ रखनेवाले, (इपु-मन्तः) बाण रखनेवाले, (निपङ्गिणः) तृणारवाले, (सु-अश्वः सु-रथाः)  
 अच्छे घोड़ों तथा रथोंसे युक्त एवं (सु-आयुधाः) अच्छे हथियार धारण करनेवाले (स्य) हो और इसी-  
 लिए तुम (शुभं) लोककल्याण के लिए (वि याधन) जाते हो।

२८६ (दानुपे) दानी को (वसु) धन देनेके लिए जय तुम चढ़ाई करते हो तब (दां) तुलोक  
 को और (पर्वतान्) पहाड़ोंको भी तुम (धनुथ) हिला देते हो। उस (वः) तुम्हारे (यामनः भिया)  
 हमले के डरसे (घना) अरण्य भी; नि जिहते) यहूतही काँपने लगते हैं। हे (पृश्रि-मातरः!) भूमिको  
 माता समझनेवाले वीरों ! (शुभे) लोककल्याण के लिए (यत्) जय तुम (उग्राः) उग्र स्वरूपवाले वीर  
 पन (पृपतीः) ध्वजेवाली हरिणियाँ रथों में (अयुग्धे) जोड़ते हो, तब (पृथिवीं कोपयथ) भूमिको क्षुब्ध  
 कर डालते हो।

भाषार्थ— २८४ वीर हमारे पास आ जायें और प्यासे हुए लोगोंको जल दें और हमारी धानी उनका काश्यपावन  
 करें। २८५ सभी ओंति के दास्यों एवं हथियारोंसे सुपुत्र वतकर वे वीर शत्रुदल पर भीषण आक्रमण का सूत्रगत  
 करते हैं। २८६ वीर मैत्रिक हाथ में दशरथ लेकर जय सज्ज होते हैं तब सभी लोग सहज जागे हैं।

टिप्पणी— [ २८४ ] ( १ ) इन्द्रः = इन्द्र, राजा, ईश्वर, श्रेष्ठ, प्रभु। इन्द्रवन्तः = राजा के साथ रहनेवाले वीर,  
 जिनका प्रभु इन्द्र हो। ( २ ) सुविता = सुदय, कल्याण, वैभव की सृष्टि। ( ३ ) स-जोपसः = (समानप्रीतवः)  
 एक दूसरे पर समान प्रीति करनेवाले, समान उत्साही।

(२८७) वातऽत्विषः । मरुतः । वर्षऽनिर्णिजः । यमाऽइव । सुऽसंदशः । सुऽपेशसः ।  
पिशङ्गऽअश्वः । अरुणऽअश्वः । अरेपसः । प्रऽत्वक्षसः । महिना । द्यौऽइव । उरवः ॥४॥

(२८८) पुरुऽद्रुप्साः । अञ्जिमन्तः । सुऽदानवः । त्वेपऽसंदशः । अनवभ्रजराधसः ।  
सुऽजातासः । जनुया । रुक्मऽवक्षसः । दिवः । अर्काः । अमृतम् । नाम । भेजिरे ॥५॥

(२८९) ऋष्टयः । वः । मरुतः । अंसयोः । अधि । सहः । ओजः । वाहोः । वः । वलम् । हितम् ।  
नृग्णा । शीर्षऽसु । आयुधा । रथेषु । वः । विश्वा । वः । श्रीः । अधि । तनूपु । पिपिशे ॥६॥

अन्वयः— २८७ मरुतः वात-त्विषः वर्ष-निर्णिजः यमाःइव सु-संदशः सु-पेशसः पिशङ्ग-अश्वः अरुण-  
अश्वः अरेपसः प्र-त्वक्षसः महिना द्यौ इव उरवः । २८८ पुरु-द्रुप्साः अञ्जि-मन्तः सु-दानवः त्वेप-  
संदशः अन्-अवभ्र-राधसः जनुया सु-जातासः रुक्म-वक्षसः दिवः अर्काः अ-मृतं नाम भेजिरे । २८९  
(हे) मरुतः ! वः अंसयोः ऋष्टयः, वः वाहोः सहः ओजः वलं अधि हितं, शीर्षसु नृग्णा, वः रथेषु विश्वा  
आयुधा, वः तनूपु श्रीः अधि पिपिशे ।

अर्थ— २८७ (मरुतः) वीर मरुत् (वात-त्विषः) प्रखर तेजसे युक्त, (वर्ष-निर्णिजः) स्वदेशी कपडा  
पहननेवाले हैं । (यमाःइव) यमज भाई के समान (सु-संदशः) धिलकुल तुल्यरूप तथा (सु पेशसः)  
सुन्दर रूपवाले हैं । वे (पिशङ्ग-अश्वः) भूरे रंगके एवं (अरुण-अश्वः) लाल रंगके घोडे समीप रखने-  
वाले, (अ-रेपसः) पापरहित तथा (प्र-त्वक्षसः) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाले, अपने (महिना)  
महत्त्व के कारण (द्यौःइव उरवः) आकाश के तुल्य बड़े हुए हैं । २८८ (पुरु-द्रुप्साः) यथेष्ट जल  
समीप रखनेवाले, (अञ्जि-मन्तः) घरालेकार गणवेश-धारण करनेवाले, (सु दानव) दानशूर, (स्वेप-  
संदशः) तेजस्वी दीख पडनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं ले जा सकता ऐसे,  
(जनुया सु-जातासः) जन्मसे उत्तम परिवारमें उत्पन्न (रुक्म-वक्षसः) सुवर्णके अलंकार छाती पर धरने-  
हारे, (दिवः) तेजःपुञ्ज तथा (अर्का) पूजनीय वीर (अ-मृतं नाम भेजिरे) अमर कीर्ति पा चुके । २८९ हे  
(मरुतः!) वीर मरुतो! (वः अंसयोः ऋष्टयः) तुम्हारे कंधों पर भाले रचे हैं । (वः वाहोः) तुम्हारी भुजाओं  
में (सहः ओजः) शत्रु को पराभूत करनेका बल तथा (वलं) सामर्थ्य (अधि हितं) रखा हुआ है । (शीर्षसु)  
माथों पर (नृग्णा) सुवर्णमय शिरविपिन, (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में (विश्वा आयुधा) सभी हथियार  
विद्यमान हैं । (वः तनूपु तुम्हारे शरीरों पर (श्रीः अधि पिपिशे) तेज अत्यधिक शोभा बढा रहा है ।

भाषार्थ— २८७ जो वीर शत्रुका नाश करते हैं, वे अपने प्रभावसे ही घटपनको प्राप्त होने हैं । २८८ वीर सैनिक पराक्रम  
करके बड़ी भारी यशस्विता एवं श्रेयसि प्राप्त करें । २८९ वीर सैनिक तथा उनके रथ हथियारोंसे सदैव सुमग्न रहते हैं ।

टिप्पणी— [ २८७ ] (१) वात = (वा गतिगन्धनयो) फूँका हुआ, भदकाया (प्रचर), वायु । (२) वर्ष = बरसात,  
देश, राष्ट्र । निर्णिज् = वस्त्र, आच्छादन । वर्ष-निर्णिज् = (१) वर्षा जिनका पहनावा है । (२) स्वदेशी पहनावा  
करनेवाले । मरुत् भूमिकी मावा समझनेवाले (पृश्नि-मातरः) है, इसलिए अपने देशमें बना हुआ कपडा ही पहनते  
हैं । यह अर्थ अधिमृतपक्ष में संभवनीय है । अधिदैवत पक्षमें मरुत् आँधी के वायुप्रवाह है, जिनका पहनावा वर्षा  
है । दोनों स्थलोंमें अर्थका रूप आसानीसे ध्यानमें आ सकता है । [ २८८ ] (१) द्रुप्स = गिर पडना, बिन्दु, जल-  
बिन्दु (Drops) । पुरु-द्रुप्स = समीप यथेष्ट जल रखनेवाले, पनीनेसे तर । [ २८९ ] (१) नृग्णं = पौर्य, बल,  
धैर्य, धन, पगड़ी (सायण) । हम मंत्र से प्रतीत होता है कि, मरुतोंका रथ बहुत ही विशाल तथा वृद्धाकार का रहा  
हो । क्योंकि इस रथ पर (विश्वा आयुधा) समूचे शस्त्रास्त्र रखे जाते हैं, शिथर धनुष्य (मंत्र ९३) तथा चल धनुष्य  
भी पाये जाते हैं । शत्रुदल के वीर धनुष्य की शोरियाँ तोड़ने पर तुले रहते हैं वीर कभी कभी धनुष्यके भी तोड़े जाने  
मरुत् [ हिं. ] १५

(२९०) गोऽमत् । अश्वऽवत् । रथऽवत् । सुऽवीरम् । चन्द्रऽवत् । राधः । मरुतः । दुद्र । नः ।

प्रऽशस्तिम् । नः । कृणुत । रुद्रियासः । भक्षीय । वः । अर्वसः । दैव्यस्य ॥७॥

(२९१) ह्ये । नरः । मरुतः । मरुतः । नः । तुविमघासः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।

सत्यऽश्रुतः । कवयः । युवानः । वृहत् गिरयः । वृहत् । उक्षमाणाः ॥८॥

(ऋ० ५५८१९-८)

(२९२) तम् । कुं इति । नूनम् । तविपीऽमन्तम् । एषाम् । स्तुपे । गणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।

ये । आशुऽअश्याः । अमऽवत् । वहन्ते । उत । ईशिरे । अमृतस्य । स्वऽराजः ॥१॥

अन्वयः— २९० (हे) मरुतः! गो-मत् अश्व-वत् रथ-वत् सु-वीरं चन्द्र-वत् राधः नः दद, (हे) रुद्रियासः! नः प्र-शस्ति कृणुत, वः दैव्यस्य अवसः भक्षीय । २९१ ह्ये नरः मरुतः! तुवि मघासः अमृता ऋतऽज्ञा सत्य-श्रुतः कवयः युवानः वृहत् गिरयः वृहत् उक्षमाणाः नः मरुतः । २९२ स्व-राजः ये जाशु अश्या अम वत् वहन्ते उत अमृतस्य ईशिरे तं उ नूनं एषां नव्यसीनां मारुतं तविपी-मन्तं गणं स्तुपे ।

अर्थ— २९० हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (गो-मत्) गोओं से युक्त, (अश्व-वत्) घोड़ों से युक्त, (रथ-वत्) रथों से युक्त, (सु-वीरं) वीरों से परिपूर्ण तथा (चन्द्र-वत्) स्वर्ण से युक्त, (राधः) अन्न (नः दद) हमें दे दो । हे (रुद्रियासः!) वीरो! (नः) हमारी (प्र-शस्ति) वैभवशालिता (कृणुत) करो । (वः) तुम्हारी (दैव्यस्य अवसः) दिव्य संरक्षणशक्ति का हम (भक्षीय) सेवन कर सकें, ऐसा बरो ।

२९१ (ह्ये नर, मरुतः!) हे नरा एषं वीर मरुतो! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतऽज्ञाः) सत्य को जाननेवाले, (सत्य-श्रुतः) सत्य कर्तित से युक्त, (कवयः युवानः) प्राणी एवं युवक, (वृहत् गिरयः) अत्यन्त सराहनीय और (वृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड बल से युक्त तुम (नः मरुत) हमें सुखी घनाओ ।

२९२ (स्व राजः) स्वयंशासन ऐसे (ये) जो वीर (आशु-अश्याः) बेगवान घोड़ों को समीप रखनेवाले हैं, इसलिये (अम-वत् वहन्ते) आतंके से चले जाते हैं, (उत) और जो (अ-मृतस्य ईशिरे) अमर लोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं (तं उ नूनं) उस सचमुच (एषां) इन (नव्यसीनां) सराहनीय (मारुतं) वीर मरुतों के (तविपी-मन्तं गणं स्तुपे) बलिष्ठ गण-संघ की नू स्तुति कर ले ।

भावार्थ— २९० हर तरह से सहायता करके और हमारा संरक्षण करके वीर हमारी प्रगति में मददगार हों। हमें धन भी प्राप्ति देनी हो कि निमके साथ गो, रथ, अथ एव वीर मैतिक की सचुंदि हो जाय ।

२९१ ऐसे वीर जनता का संरक्षण कर हम सब को सुखी बना दें ।

२९२ जो वीर वन्दनीय हों उनको प्रशंसा सभी को करनी चाहिए। येही वीर हृदलोक तथा परलोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने को क्षमता रखते हैं ।

की सम्भावना होने के कारण बहुत से घनुष्य रचना अनिवार्य हो, सो आश्रय नहीं। वैसे ही बुद्धादी, भाला, गदा तथा अन्य हथियार रथ में ही रखने पड़ते थे। अतः रथ बहुत बड़ा हो, तो स्वाभाविक है। ये सभी आयुध भली भाँति पृथक् पृथक् रखने चाहिए और प्रबंध ऐसा हो कि चाहे जो हथियार ठीक मंके पर हाथमें आ जाय। यदि इस तरहकी व्यवस्थाकी मानते तो यह दरद है कि, इन महाहथियारोंका रथ अत्यन्त विशाल प्रमाण पर बना हुआ होगा। [२९०]

(१) चन्द्र = कर्पूर, जल, मोना, चन्द्रमा । (२) प्र-शस्ति = स्तुति, वर्णन, मार्गदर्शकता, उद्गृहण (वैभव) । [२९१] (१) मघं = दान, धन, महत्त्वयुक्त द्रव्य । (२) गिरि = पर्वत, वागी, स्तुति, अश्वरणीय, माननीय । [२९२]

(१) स्व-राज = (राज्य शीलो = प्रजापति, अधिकार प्रस्थापित करना) स्वयंशासन, स्वयंप्रशास । (२) नव्यसीनां (सुरतुर्गां) = प्रशंसा करना; मयितुं वीर्यः नव्यः) = नूतन, सराहनीय । (१) अ-मृत = अमर, अमरपन, देव, स्वर्ग, संपत्ति ।

(२९३) त्वेषम् । गणम् । त्वसम् । खादिऽहस्तम् । धुनिऽव्रतम् । मायिनम् । दातिऽवारम् ।  
 मयःऽभुवः । ये । अमिताः । महिऽत्वा । वन्दस्व । विप्र । तुविऽराधसः । नृन् ॥२॥  
 (२९४) आ । वः । यन्तु । उदऽवाहासः । अद्य । वृष्टिम् । ये । विश्वे । मरुतः । जुनन्ति ।  
 अयम् । यः । अग्निः । मरुतः । संऽइन्द्रः । एतम् । जुपध्वम् । कवयः । युवानः ॥३॥  
 (२९५) यूयम् । राजानम् । इर्यम् । जनाय । विश्वऽतष्टम् । जनयथ । यजत्राः ।  
 युष्मत् । एति । मुष्टिऽहा । वाहुऽजूतः । युष्मत् । सत्ऽअश्वः । मरुतः । सुऽवीरः ॥४॥

अन्वयः— २९३ हे ( विप्र ! ) ये मयो-भुवः महित्वा अ-मिताः तुवि राधसः नृन्, त्वसं खादि हस्तं धुनि-  
 व्रतं मायिनं दाति-वारं त्वेषं गणं वन्दस्व । २९४ ये उद-वाहासः वृष्टिं जुनन्ति विश्वे मरुतः अद्य वः आ  
 यन्तु, ( हे ) कवयः युवानः मरुतः ! यः अयं अग्निः सम्-इन्द्रः एतं जुपध्वं । २९५ ( हे ) यजत्राः मरुतः !  
 यूयं जनाय इर्यं विश्व-तष्टं राजानं जनयथ, युष्मत् मुष्टि-हावाहु-जूतः एति. युष्मत् सत्-अश्वः सु-वीरः ।

अर्थ- २९३ हे ( विप्र ! ) ज्ञानी पुरुष ! ( ये मयो-भुवः ) जो मुखदायक, ( महित्वा ) वडप्पन से ( अ-  
 मिताः ) असीम म्नामर्थदान तथा ( तुवि-राधसः ) यथेष्ट धनाढ्य हैं, उन ( नृन् ) नेता वीरपुरुषों को  
 तथो ( त्वसं ) बलिष्ट एवं ( खादि-हस्तं ) हाथ में बलय कडे-धारण करनेवाले, ( धुनि-व्रतं ) शत्रुओं  
 को हिला देने का व्रत जिन्होंने ले लिया हो, ऐसे ( मायिनं ) कुशल ( दाति वारं ) दानी या शत्रु का  
 घघ करके उसे दूर करनेवाले, ( त्वेषं ) तेजस्वी ऐसे उन वीरों के ( गणं वन्दस्व ) संघ को नमन कर ।

२९४ ये उद-वाहासः ) जो जल देनेवाले ( वृष्टिं जुनन्ति ) वृष्टि को प्रेरणा देते हैं, वे ( विश्वे  
 मरुतः ) सभी वीर मरुत ( अद्य ) आज ( यः ) तुम्हारी ओर ( आ यन्तु ) आ जायें । हे ( कवयः ) ज्ञानी  
 तथा ( युवानः मरुतः ! ) युवक वीर मरुतो ! ( यः अयं ) जो यह ( अग्निः सम्-इन्द्रः ) अग्नि प्रज्वलित  
 किया गया है, ( एतं जुपध्वं ) इसका सेवन करा ।

२९५ हे ( यजत्राः मरुतः ! ) यज्ञ करनेवाले वीर मरुतो ! ( यूयं ) तुम ( जनाय ) लोक-  
 कल्याण के लिए ( इर्यं ) शत्रुविनाशक तथा ( विश्व-तष्टं ) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे ( राजानं )  
 राजा को ( जनयथ ) उत्पन्न कर देते हो । ( युष्मत् ) तुमस ( मुष्टि हा ) मुष्टि-योधी और ( वाहु-जूतः )  
 वाहुबल से शत्रु को हटानेवाला वीर ( एति ) आ जाता है, हमें भाग होता है । ( युष्मत् ) तुमसे ही ( सत्-  
 अश्वः ) अच्छे घोड़े रखनेवाला ( सु-वीरः ) अच्छा वीर तैयार हो जाता है ।

भावार्थ- २९३ सभी लोग ऐसे वीरोंका अभिवादन कर। २९४ सबको जल देकर संतुष्ट करनेवाले वीर जनताके निरुद-  
 भाकर उन्हें संतुष्ट करें और यहीं पर जलती या घबकती हुई अँगीठीके समीप बैठ जायें । २९५ जनताका हित हो इसलिए  
 दुश्मनों को विनष्ट करनेवाला, कुशलतापूर्वक सभी राज्यशासनके कार्य करनेवाला नरेश राष्ट्रपतिकी हेमियतसे पदाधिकारी  
 चुना जाता है । उसी प्रकार मुष्टियोधी महाबाहु वीर तथा अच्छे घोड़े समीप रखनेवाला वीर भी राष्ट्रमें जगमग लेता है ।

टिप्पणी- [ २९३ ] ( १ ) व्रत = शपथ, वचन, निश्चय, कृत्य, योजना । धुनि-व्रत = शत्रुबल को हिलाने का  
 व्रत जिसने लिया हो । ( २ ) दाति वारः = ( दातिः = देन, वारः = घटा प्रमाण, समूह ) बडे पैमाने पर दान  
 देनेवाला, ( दा अवलपडने ) [ दाति, ] वध करके [ वार ] विनाशक शत्रुको हटानेवाला । [ २९४ ] ( १ ) उद-वाह =  
 जल देनेवाला, मेघ, पानी पहुँचानेवाला । [ २९५ ] ( १ ) इर्यं = प्रेरक, स्वामी, चपल, दक्षिणार्ध, ( शत्रुओंका )  
 विनाश करनेहारा । ( २ ) राजानं इर्यं = तेजस्वी राजा को ( प्रभु को ) । ( ३ ) विश्व-तष्ट = ( विश्वः = कुशल,  
 बारीगर, व्यापक ) ; ( तष्ट ) = ( ठक्ष तमूकण = बनाना, ) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारा । ( विश्वः ) चतुर तथा  
 निष्णात शिक्षकों द्वारा सिखाकर ( तष्ट ) तैयार किया हुआ ।

(२९६) अराःइव । इत् । अचरमाः । अहाइव । प्रप्र । जायन्ते । अकवा । महःऽभिः ।  
 पृथैः । पुत्राः । उपमासः । रभिष्ठाः । स्वया । मत्या । मरुतः । सम् । मिमिधुः ॥५॥  
 (२९७) यत् । प्र । अयासिष्ट । पृपतीभिः । अश्वैः । वीळुपविऽभिः । मरुतः । रथैभिः ।  
 क्षोदन्ते । आपः । रिणते । वनानि । अवं । उन्नियः । वृपभः । क्रन्दतु । घौः ॥६॥  
 (२९८) प्रथिष्ट । यामन् । पृथिवी । चित् । एषाम् । भर्ताइव । गर्भम् । स्वम् । इत् । शवः । धुः ।  
 वातान् । हि । अश्वान् । धुरि । आऽपुयुजे । वर्पम् । स्वेदम् । चक्रिरे । रुद्रियासः ॥७॥

अन्वयः— २९६ अरा.इव इत् अचरमाः अहाइव महोभिः अकवा. प्र प्र जायन्ते, उप मासः रभिष्ठाः पृथैः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिधुः । २९७ ( हे ) मरुतः ! यत् पृपतीभिः अश्वैः वीळुपविभिः रथैभिः प्र अयासिष्ट आपः क्षोदन्ते वनानि रिणते, उन्नियः वृपभः घौः अश्व क्रन्दतु । २९८ एषां यामन् पृथिवी चित् प्रथिष्ट, भर्ताइव गर्भं स्वं इत् शवः धुः. हि वातान् अश्वान् धुरि आयुयुजे रुद्रियासः स्वेदं वर्पं चक्रिरे ।

वर्ण— २९६ ( अराःइव इत् ) पहिले के आरों के समानही ( अचरमाः ) सभी समान दोख पढ़नेवाले तथा ( अहाइव ) दिवस्तुल्य ( महोभिः ) बड़े भारी तेजसे युक्त होकर ( अकवाः ) अवर्णनीय उदरनेवाले ये वीर ( प्र प्र जायन्ते ) प्रकट होते हैं । ( उप मासः ) लगभग समान कदके ( रभिष्ठाः ) अतिथेगवान ये ( पृथैः पुत्राः । मातृभूमि के सुपुत्र ( मरुतः ) वीर मरुत ( स्वया मत्या ) अपने मनसे ही ( सं मिमिधुः ) सब कोई मिलकर एकतापूर्वक विशेष कार्य का सृजन करते हैं ।

२९७ हे ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( यत् ) जब ( पृपतीभिः अश्वैः ) घघेवाले घोड़े जोते हुए ( वीळुपविभिः. हृष्ट तथा सामर्थ्यवान पहिलोंसे युक्त ( रथैभिः ) रथोंसे तुम ( प्र अयासिष्ट ) जाने लगते हो तब ( आपः क्षोदन्ते ) सभी जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठते हैं, ( वनानि रिणते ) वनोंका नाश होता है, तथा ( उन्नियः वृपभः ) प्रशाशयुक्त वर्षा करनेहारा, ( घौः ) आकाश तक ( अश्व क्रन्दतु ) भीषण शब्दमें गूँज उठता है ।

२९८ ( एषां यामन् ) इन वीरों के आक्रमण से ( पृथिवी चित् ) भूमितक ( प्रथिष्ट ) विख्यात हो चुकी है, ( भर्ता इव ) पति जैसे पत्नी में ( गर्भं ) गर्भ की स्थापना करता है, जैसे ही इन्होंने ( स्वं इत् ) अपनाटा ( शवः धुः ) बल अपने राष्ट्र में प्रस्थापित किया ( हि ) और ( वातान् अश्वान् ) घगवान् घोड़ों को ( धुरि आऽपुयुजे ) रथ के अगले भाग में जोत दिया और ( रुद्रियासः ) उन वीरोंने ( स्वेदं वर्पं चक्रिरे ) अपने पसीने की मानों वर्षा की, पराक्रम की पराकाष्ठा कर दिखायी ।

भावार्थ— २९६ ये सभी वीर तुल्यरूप दीख पढ़ने हैं और समान ढंगके तेजस्वी हैं । ये अपने कर्तव्य वेगसे पूर्ण कर देते हैं और अपनी मातृभूमि की सेवामें मिलजुलकर अविषम भावसे विशिष्ट कार्योंको संपन्न कर देते हैं । २९७ जब मरुत दायुदल पर हमले करने लगते हैं, अपने वायु बढ़ने बरसती है, उस समय जलप्रवाह चौखल उठते हैं, वन के पेड़ टूट गिरने लगते हैं और आकाश के वर्षा करनेहारे मेघ भी गरजने लगते हैं । २९८ इन वीरों के दायुदल पर होनेवाले आक्रमणों के पक्षस्वरूप मातृभूमि विषयान् हुई । इन्होंने अपना बल राष्ट्र में प्रस्थापित किया और घोड़ों से रथ संयुक्त करके जब ये बघाईं करने लगे, तब ( हम युद्ध में ) पत्नीसे से तर होने तक वीरतापूर्ण कार्य करते रहे ।

टिप्पणी— [ २९६ ] ( १ ) अचरम = अतिम, निम्न श्रेणीका (छोटासा, अल्प प्रमाण का ) । अचरम = बड़ा, तुल्य, निम्न श्रेणीका नहीं । ( २ ) अकवाः ( क्व = वर्णन करना ) = अवर्णनीय अद्भुत, अकुसित । ( ३ ) संमिधु = संमिधु = मिश्रणकरना ( To mix with ), निर्माण करना ( endow with, to prepare, to furnish ) तयार करना, सुव्यव बनाना । उपमासः रभिष्ठाः पृथैः पुत्राः स्वया मत्या संमिधुः = ये मातृभूमि के सुपुत्र वीर समानतापूर्ण बर्ताव करते हैं अविषम दशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको वेकथसे निभाते हैं । देखो मंत्र २०५, ४५३; [ २९७ ] ( १ ) उन्निय = वाविषयक, ईदकें धारमें, ईल, प्रकाश, वृष्ट, पट्टा ।

(२९९) ह्ये । नरः । मरुतः । मूळत । नः । तुर्विऽमघासः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।  
सत्यऽश्रुतः । कत्रयः । युवानः । वृहत्ऽगिरयः । वृहत् । उक्षमाणाः ॥८॥

(ऋ० ५।५।१-८)

(३००) प्र । वः । स्पद् । अक्रन् । सुविताय । दावने । अर्च । दिवे । प्र । पृथिव्यै । ऋतम् । भरे ।  
उक्षन्ते । अश्वान् । तरुपन्ते । आ । रजः । अनु । स्वम् । भानुम् । श्रथयन्ते । अर्णवैः ॥१॥

(३०१) अमात् । एषाम् । भियसा । भूमिः । एजति । नौः । न । पूर्णा । क्षरति । व्यथिः । यती ।  
दूरेऽदृशः । ये । चितयन्ते । एमऽभिः । अन्तः । महे । विदथे । येतिरे । नरः ॥२॥

अन्वयः— २९९ [ ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए । ] ३०० वः सुविताय दावने स्पद् प्र अक्रन्, दिवे अर्च, पृथिव्यै ऋतं प्र भरे, अश्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरुपन्ते, स्वं भानुं अर्णवैः अनु श्रथयन्ते । ३०१ एषां अमात् भियसा भूमिः एजति, पूर्णा यती व्यथि नौः न, क्षरति, दूरे-दृशः ये एमभिः चिनयन्ते ( ते ) नरः विदथे अन्तः महे येतिरे ।

अर्थ— २९९ [ ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए । ]

३०० ( वः सुविताय ) तुम्हारा अच्छा कल्याण हो तथा (दावने) अच्छा दान दिया जा सके, इस-  
लिए (स्पद्) याज्ञक इस कर्म का ( प्र अक्रन् ) उपक्रम या प्रारंभ कर रहा है; तूमी ( दिवे अर्च )  
प्रकाशक देव की, खुलोककी पूजा कर और मैं भी ( पृथिव्यै ) मातृभूमि के लिए ( ऋतं प्र भरे ) स्तोत्र का  
गायन करता हूँ । वे वीर ( अश्वान् उक्षन्ते ) अपने घोड़ों को बलवान बनाते हैं तथा ( रजः आ तरुपन्ते )  
अन्तरिक्षसे भी परे चले जाते हैं और ( स्वं भानुं ) अपने नेत्रको ( अर्णवैः ) समुद्रों से-समुद्रपर्यटनोंद्वारा-  
समुद्रमें से भी ( अनु श्रथयन्ते ) फैला देते हैं ।

३०१ ( एषां ) इनके ( अमात् भियसा ) बलके डरसे ( भूमिः एजति ) पृथ्वी काँप उठती है  
और ( पूर्णा ) वस्तुओं से भरी होने के कारण ( यती ) जाते समय ( व्यथिः नौः न ) पीड़ित होनेवाली  
नौका के समान यह ( क्षरति ) आन्दोलित, स्पन्दित हो उठती है । ( दूरे-दृशः ) दूरसे दिखाई देनेवाले,  
( ये ) जो ( एमभिः ) धेगयुक्त गतियों से ( चितयन्ते ) पहचाने जाते हैं, वे ( नरः ) नेता वीर ( विदथे  
अन्तः ) युद्ध में रहकर ( महे ) बड़प्पन पाने के लिए ( येतिरे ) प्रयत्न करते हैं ।

भाषार्थ— [ २९९ ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए । ] ३०० सचका भला हो और सबको सहायता पहुँचे, इन हेतु से  
याज्ञक इस यज्ञका प्रारंभ करता है । प्रकाशके देवताकी पूजा करो और मातृभूमिके सुक्तोंका गायन करो । वीर अपने घोड़ों  
को किसी भी भूभाग पर चढ़ाई करनेके लिये सज्ज दशामें रखते हैं और ( विमान पर चढ़कर ) अन्तरिक्षमें संचार करते हैं;  
( तथा नौका एवं जहाजों परसे समुद्रयात्रा करके सुदूरवर्ती देशोंमें अपना सेज फैला देते हैं ) । ३०१ इन वीरोंमें भारी बल  
विद्यमान है, इस कारणसे भूमंडल परके देश मारे डरके काँपने लगते हैं । लड़ी हुई परिपूर्णनौकाजिस तरह पवनके कारण  
हिलनेडोलने लगी, तो तनिक भय प्रतीत होने लगता है, ठीक उसी प्रकार सभी लोग इनकी शीघ्रगामिता के परिणाम-  
स्वरूप कुछ अंश में भयभीत हो जाते हैं । चूँकि इनका धावा विद्युत्गत से हुआ करता है, अतः इन वीरों को सभी  
पहचानते हैं । जब ये रणक्षेत्र में शत्रुदल से जुड़ने हैं, तब इनके मनमें एक ही विचार तथा ख्याल जागृत रहता है कि,  
यथासंभव बड़प्पन प्राप्त करना ही चाहिए ।

टिप्पणी— [ २९९ ] [ ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए । ] [ ३०० ] (१) तरुपः = जीतनेवाला, तरुपयति = चढ़ाई  
करना, तरुस् = लड़ाई, छेड़व, हमला करना । (२) स्पद् (सश) = दृष्ट, होना, याज्ञक, निरीक्षक । स्वं भानुं अर्णवैः  
अनु श्रथयन्ते = अपना सेज समुद्रोंके परे ले जाकर फैला देते हैं । [ ३०१ ] (१) दूरे-दृशः = दूरसे दीख  
पड़नेवाले, दूरदर्शिता से कार्य करनेवाले, दूरदर्शी ।

- (३०२) गवांसइव । श्रियसे । शृङ्गम् । उत्तमम् । सूर्यः । न । चक्षुः । रजसः । विसर्जने ।  
 अत्याऽइव । सुभ्र्मः । चारवः । स्थन । मर्याऽइव । श्रियसे । चेतथ । नरः ॥२॥
- (३०३) कः । वः । महान्ति । महताम् । उत् । अश्रवत् । कः । काव्या । मरुतः । कः । ह । पाँस्या ।  
 यूयम् । ह । भूमिम् । किरणम् । न । रेजथ । प्र । यत् । भरध्वे । सुविताय । दावने ॥४॥

अन्वयः— ३०२ ( हे ) नरः । गवांसइव उत्तमं शृङ्गं श्रियसे, रजसः विसर्जने, सूर्यः न, चक्षुः; अत्याऽइव सु-भ्र्मः चारवः स्थन, मर्या इव, श्रियसे चेतथ ।

३०३ ( हे ) मरुतः ! महतां वः महान्ति कः उत् अश्रवत्, कः काव्या, कः ह पाँस्या, यत् सुविताय दावने प्र भरध्वे यूयं ह, किरणं न, भूमिं रेजथ ।

अर्थ— ३०२ हे ( नरः ! ) नेता वीरो ! ( गवांसइव उत्तमं शृङ्गं ) गौओं के अच्छे साँग के तुल्य ( श्रियसे ) शोभा के लिए तुम सुन्दर शिरोवेष्टन धारण करने हो, तथा ( रजसः विसर्जने ) अँधेरा दूर हटाने के लिए ( सूर्यः न चक्षुः ) सूर्य की नाईं तुम लोगों के नेत्र चन्ते हो । ( अत्याऽइव ) तुम शाघ्रगामी घोड़ों के समान स्वयमेव ( सु भ्र्मः ) उत्तम वने हुए एवं ( चारवः ) दर्शनीय ( स्थन ) हो और ( मर्याऽइव ) मर्याओं के समान ( श्रियसे चेतथ ) एश्वर्यप्राप्ति के लिए तुम सचेष्ट वने रहते हो ।

३०३ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( महतां वः ) तुम जैसे महान सैनिकों की ( महान्ति ) महानता या बड़प्पन की ( कः उत् अश्रवत् ) भला कौन बराबरी करता है ? ( कः काव्या ? ) कौन भला तुम्हारे काव्य रचने की स्फूर्ति पाता है ? ( कः ह पाँस्या ) किसे भला तुम्हारे तुल्य सामर्थ्य प्राप्त हुए ? ( यत् ) जय ( सुविताय दावने ) अत्यन्त उच्च कोटिके दान देनेके लिए तुम ( प्र भरध्वे ) पर्याप्त धन पाँता हो, तब ( यूयं ह ) तुम सचमुच ( किरणं न ) एकाध धूलिकणके समान ( भूमिं रेजथ ) पृथ्वीको भी हिला देते हो ।

भाषार्थ— ३०२ ये वीर शोभा के लिए मार्ग पर शिरोवेष्टन धर देते हैं । जैसे सूर्य अँधेरे को हटाता है, जैसे ही ये वीर जनता की उदासीनता को दूर भगा देने हैं और उसे उमंग एवं हौमले से भर देते हैं । सुदृढ़ के लिए तैयार किए हुए घोड़े जैसे सुन्दर प्रवीत होते हैं, वैसे ही ये मनोहर स्वरूपवाले होते हैं और हमेशा अपनी प्रगति तथा ईश्वर-शालिता करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं ।

३०३ हम अवनिकल पर भला पैसा कौन है, जो हन वीरोके समकक्ष बन सके ? इनके अतिरिक्त क्या कोई पैसा है, जिसके विषयमें वीरसम्पूर्ण काव्याँश रूतन कोई को ? इनमें जो वीरता है, जो पुरपार्थ है, भला वह किसी दूसरेमें पाये भी जाते हैं ? त्रिम समय ये भूमि भूमि दान देनेके लिए प्रचुर धन बटोरनेकी चेष्टामें संलग्न रहते हैं अर्थात् भीषण एवं क्रोधपूर्ण सुदृढ़ छेद देते हैं, तब समूची पृथ्वी विचलित हो उठती है, सारा भू-मंडल खंडित हो जाता है ।

टिप्पणी— [ ३०२ ] ( १ ) रजसु = धूलि, पराग, किण, अँधेरा, मानसिक अज्ञान, अस्तरिक्ष, मेघ । ( २ ) मर्याः = मार्ग, मानव, पुत्रक, दूत ( Suitor ) । मर्याः इव श्रियसे चेतथ = दुबड़े के समान शोभा के लिए तुम प्रयत्न करते हो ।

[ ३०३ ] ( १ ) किरण = किण, धूलिकण, किरणपत्र में क्षीय पड़नेवाला कण ।



(३०६) वयः । न । ये । श्रेणीः । प्तुः । ओजसा । अन्तान् । दिवः । बृहतः । सानुनः । परि ।  
अश्वासः । एषाम् । उभये । यथा । विदुः । प्र । पर्वतस्य । नभन् । अचुच्युः ॥७॥  
(३०७) मिमातु । द्यौः । अदितिः । वीतये । नः । सम् । दानुञ्चित्राः । उपसः । यतन्ताम् ।  
आ । अचुच्युः । दिव्यम् । कोशम् । एते । ऋषे । रुद्रस्य । मरुतः । गृणानाः ॥८

(श्र० ५।६।११-४; ११-१६)

(३०८) के । स्थ । नरः । श्रेष्ठतमाः । ये । एकः एकः । आऽप्य ।

परमस्याः । पुराऽवतः ॥१॥

अन्वयः— ३०६ ये वयः न, श्रेणीः भोजसा दिवः अन्तान् बृहतः सानुनः परि प्तुः, यथा उभये विदुः  
एषां अश्वासः पर्वतस्य नभन् प्र अचुच्युः ।

३०७ द्यौः अदितिः नः वीतये मिमातु, दानु-चित्राः उपसः सं यतन्तां, (हे) ऋषे ! गृणानाः  
एते रुद्रस्य मरुतः दिव्यं कोशं आ अचुच्युः ।

३०८ (हे) श्रेष्ठ-तमाः नरः । के स्थ ? ये एकः-एकः परमस्याः परावतः आयय ।

अर्थ— ३०६ (ये) जो वीर ( वयः न ) पंछियों का तरह (श्रेणीः) पंक्तिरूपमें समूह में ( भोजसा )  
वेगसे ( दिवः अन्तान् ) आकाश के दूसरे छोरतक तथा ( बृहतः ) घड़े घड़े ( सानुनः ) पर्वतों के शिखर  
पर भी ( परि प्तु ) चारों ओरसे पहुँचते हैं । ( यथा ) जैसे एक दूसरेका घल ( उभये विदुः ) परस्पर जान  
लेते हैं, वैसे ही ये कर्म करते हैं । ( एषां अश्वासः ) इनके घोड़े ( पर्वतस्य नभन् ) पहाड़ के टुकड़े करके  
( प्र अचुच्युः ) नीचे गिरा देते हैं ।

३०७ ( द्यौः ) सुलोक तथा ( अदितिः ) भूमि ( नः वीतये ) हमारे सुपसमाधानके लिए ( मिमातु )  
तैयारी कर लें, ( दानु-चित्राः ) दानुद्वारा आश्चर्यचकित कर डालनेवाले ( उपसः ) उपःकाल हमारे लिए  
( सं यतन्तां ) भली भाँति प्रयत्न करें । हे ( ऋषे ! ) ऋषियर ! ( गृणानाः ) प्रशंसित हुए ( एते ) ये  
( रुद्रस्य मरुतः ) वीरभद्र के वीर मरुत् ( दिव्यं कोशं ) दिव्य कोश या भाण्डार को ( आ अचुच्युः )  
सभी ओर से उण्डेल देते हैं ।

३०८ हे ( श्रेष्ठ-तमाः नरः ! ) अति उच्च कौटिक के तथा नेता के पदपर अधिष्ठित वीरो ! तुम ( के  
स्थ ) कौन हो ? ( ये ) जो तुम ( एकः-एकः ) अकेले अकेले ( परमस्याः परावतः ) अति सुदूर देश से  
यहाँ पर ( आयय ) आते हो ।

भाषार्थ— ३०६ में वीर पंक्ति में रहकर समान रूप से पग उठाते एवं धरते हुए चलने लगते हैं और इनकी वेग-  
शक्त गति के कारण दूसरे ओर सरसने लगता है कि, जहाँ के आकाश के अंतिम छोर तक इसी भाँति जाते रहेंगे ।  
पर्वतश्रेणियों पर भी ठीक इसी प्रकार ये बढ आते हैं । एक दूसरे की शक्ति से परिचित वीर जैसे लड़ते हों, वैसे ही ये  
जूमते हैं और इनके घोड़े पहाड़ों तक को चकनाचूर कर आगे निकल जाते हैं । ३०७ सुलोक तथा भूलोक हमारे सुख  
को बढ़ावे । उपःकाल का प्रारम्भ होते ही देन देने का प्रारम्भ हो जाय । ये सराहनीय वीर विजय पाकर धनका  
बृहदाकार अज्ञाना ले भाँपें और उस द्रविणभाण्डार को हमारे सामने सज्जल दें । ३०८ अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशों से  
बिना यकावट के आनेवाले वीर भला तुम कौन हो ?

टिप्पणी— [ ३०६ ] ( १ ) नभन् = ( नभ = षष्ठ देना, तोड़मोड़ देना ) क्षति पहुँचानेवाला, नदी, दृष्टाकृत  
विभाग । [ ३०७ ] ( १ ) दिव्य = स्वर्गीय, आश्चर्यकारक । ( २ ) च्यु = ( गवै ) बढोरना, गिर जाना । ( ३ )  
मा ( माने ) = मायना, समाना, तैयार करना, बाँटना, दर्शाना । ( ४ ) वीतिः = जाना, उत्पन्न करना, उत्पत्ति,  
उपभोग, मरना, तेज ।

- (३०९) कं । वः । अथाः । कं । अभीशवः । कथम् । शेक । कथा । यय ।  
पुष्टे । सदः । नसोः । यमः ॥२॥
- (३१०) जघने । चोदः । एषाम् । वि । सक्थानि । नरः । यमुः ।  
पुत्रऽकृथे । न । जनयः ॥३॥
- (३११) परा । वीरासः । इतन । मर्यासः । भद्रऽजानयः ।  
अग्निऽतपः । यथा । असथ ॥४॥

अन्वयः— ३०९ वः अथाः क्व ? अभीशव क्व ? कथं शेक ? कथा यय ? पुष्टे सदः नसोः यमः ।  
३१० एषां जघने चोदः, पुत्र-कृथे जनयः न नरः सक्थानि वि यमुः ।  
३११ हे वीरासः मर्यासः भद्र-जानयः अग्नि-तपः । यथा असथ परा इतन ।

अर्थ- ३०९ ( वः अथाः क्व ? ) तुम्हारे घोड़े किधर है ? ( अभीशव-क्व ? ) उनके लगाम कहाँ है ?  
( कथं शेक ? ) किसके आधार से या कैसे तुम सामर्थ्यवान हुए हो ? और तुम ( कथा यय ? ) भला कैसे  
जाते हो ? उनकी ( पुष्टे सदः ) पीठपर की काठी जीन [पर्याण] एवं ( नसोः यमः ) नधुनेमें डाली जानवाली  
रस्सी कहाँ धर दिये हैं ?

३१० जघ ( एषां ) इन घोड़ों की ( जघने ) जाँघों पर ( चोदः ) चातुरु लगता है, तब ( पुत्र-कृथे )  
पुत्रप्रसूति के समय ( जनयः न ) स्त्रियाँ जैसे गोदाँको तानती हैं, वैसे ही वे ( नरः ) नेता वीर सक्थानि)  
उन घोड़ों की जाँघों का ( वि यमुः ) विशेष ढंगसे नियमन करते हैं ।

३११ हे ( वीरासः ) वीर, ( मर्यासः ) जनता के हितकर्ता, ( भद्र-जानयः ) उत्तम जन्म पाये  
हुए और ( अग्नि-तपः ) अग्नि तुल्य तेजस्वी वीरो ! ( यथा असथ ) जैसे तुम अब हो, वैसे ही ( परा इतन )  
इधर आओ ।

भावार्थ- ३०९ इन वीरों के घोड़े लगाम, पर्याण, अन्य वस्तुएँ कहाँ हैं और कैसे हैं ?

३१० घुड़सवार होने पर ये वीर जब अश्वजयापर कोटे लगाना शुरू करते हैं, तब ये घोड़े अपनी जघाओंको  
विस्तृत करने लगते हैं, पर ये वीर सैनिक उन्हें नियमित करते अर्थात् रोक देते हैं । ( अपनी जघाओंसे घोड़ोंको दृढ़ धरते  
हैं, हिलने नहीं देते हैं । )

३११ वीर हमारे निकट आ जायें ।

टिप्पणी- [ ३०९ ] ( १ ) सदस् = घर, आसन, बैठ जाने का साधन, जीन । “ नसोः यमः ? = क्या  
घोड़ों के नधुनों में रस्सी डालते थे ? आत्रकल घोड़े के मुँह में लौहमय ढालाका ढाल कर उसे लगाम लगा देते हैं ।  
इस मंत्र में ‘ अथाः ’ पद पाया जाता है और अन्त में ( नसोः यमः ) ‘ नधुनेमें रस्सी ’ रखने का निर्देश है । यह प्रयोग  
विचार करनेयोग्य है ।

[ ३१० ] ( १ ) नरः सक्थानि वि यमु = वीर घोड़े पर अचल, अटल, अधिग हो बैठे, ताकि वह  
घोड़े पर से न गिर जाय ।

(३१२) मे । ईम् । वहन्ते । आशुभिः । पिन्तः । मदिरम् । मधु ।

अत्र । अवांसि । दधिरे ॥११॥

(३१३) येषाम् । श्रिया । अधि । रोदसी इति । रिऽभ्राजन्ते । रथेषु । आ ।

द्विषि । रुक्मऽइव । उपरि ॥१२॥

(३१४) युवा । सः । मारुतः । गणः । त्वेषरथः । अनेद्यः ।

शुभ्मुऽयावा । अप्रतिऽस्तुतः ॥१३॥

अन्वय — ३१२ ये मदिर मधु पिन्त आशुभिः ई वहन्ते अत्र अवांसि दधिरे ।

३१३ येषां श्रिया रोदसी अधि, उपरि द्विषि रुक्म इव, रथेषु आ विभ्राजन्ते ।

३१४ स मारुत गण युवा त्वेष-रथ. अनेद्य. शुभ यावा अ-प्रति-स्तुतः ।

अर्थ- ३१२ (ये) जो (मदिर मधु) मिठासमरा सोमरस (पिन्त) पीनेवाले वीर (आशुभिः) वेगवान घोड़ों के साथ (ई वहन्ते) शास्त्र चले जाते ह, वे (अत्र) यहाँ पर (अवांसि दधिरे) बहुतसा धन ढे देते ह ।

३१३ (येषां श्रिया) जिन की शोभासे (रोदसी) छुलोक तथा भूलोक (अधि) अधिष्ठित-सुशोभित हुए ह, वे वीर (उपरि द्विषि) ऊपर आकाश में (रुक्म इव) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (रथेषु आ विभ्राजन्ते) रथों में घातमान होते ह ।

३१४ (स) यह (मारुत गण) वीर महलों का संघ (युवा) तरुण, (त्वेष-रथः) तेजस्वी रथ में बैठेनेवाला, (अनेद्य) अनिर्दनीय, (शुभ्-यावा) शुभ कार्य के लिए ही हलचल करनेवाला और (अ प्रति स्तुत) अपराजित- सदैव विजयी है ।

भावार्थ- ३१२ अच्छे अस्त्रगण का सेवन करना चाहिए और वेगवान चाहनों द्वारा शत्रुसेनापर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कोटि का धन मिलता है ।

३१३ रथों में बैठकर वीर सैनिक जब कार्य करने लगते हैं, तब व अतीव सुदाने लगते हैं ।

३१४ वीरों का समुदाय सत्कर्म करनेमें निश्च, निष्ठाव, हमेशा विजयी तथा नवदुर्बलवत् उमरा एव उत्साह से परिपूर्ण रहता है ।

टिप्पणी- [३१२] (१) अथस् = सुनना, कीर्ति, धन मत्र, प्रशस्तनीय रूप । यहाँ पर 'अवांसि' बहुवच. नान्त पद है, हललिपु 'यस' अर्थ लेने की अपेक्षा 'धन' अर्थ करना, ठीक प्रतीत होता है क्योंकि यस का अनेक होनेका समय नहीं, लकिन धन विविध प्रकार के हुआ करते हैं, अत बहुवचनी प्रयोग किये जानेपर 'अवांसि' का अर्थ धनसमूह करनाही ठीक है ।

[३१३] रुक्मः = सुवर्णका टुकड़ा, मुहर, प्रकाशमान । द्विषि रुक्म = आकाश में प्रकाशमान (सूर्य) ।

[३१४] स्तु = ब्रह्मा, उठा लेना, ब्यास होना । प्रतिस्तु = ब्रह्मा (परास्तुत करना) अ-प्रतिस्तुतः = विजयी, जो कभी व हारा हुआ हो ।

- (३१५) कः । वेद । नूनम् । एषाम् । यत्र । मदन्ति । धृतयः ।  
 . ऋतऽजाताः । अरेपसः ॥१४॥
- (३१६) यूयम् । मर्तेम् । विपन्यवः । प्रऽनेतारः । इत्था । धिया ।  
 श्रोतारः । यामऽहृतिषु ॥१५॥
- (३१७) ते । नः । वसूनि । काम्या । पुरुऽचन्द्राः । रिशादसः ।  
 आ । यज्ञियासः । ववृत्तन ॥१६॥

धन्वयः— ३१५ धृतयः ऋत-जाताः अ-रेपसः यत्र मदन्ति एषां कः नूनं वेद ?  
 ३१६ ( हे ) वि-पन्यवः ! यूयं इत्था मर्ते प्र-नेतारः याम-हृतिषु धिया श्रोतारः ;  
 ३१७ पुरु-चन्द्राः रिश-अदसः यज्ञियासः ते नः काम्या वसूनि आ ववृत्तन ।

अर्थ— ३१५ ( धृतयः ) शत्रुओं को हिलानेवाले, ( ऋत-जाताः ) सत्य के लिए जन्मे हुए और ( अ-रेपसः ) निष्पाप ये वीर ( यत्र मदन्ति ) जहाँ आनन्द का उपभोग लेते हैं, वह ( एषां ) इनका डीर ( कः नूनं वेद ) सचमुच कौन भला जानता है ?

३१६ हे ( वि-पन्यवः ) प्रशंसनीय वीरो ! ( यूयं ) तुम ( इत्था ) इस प्रकारसे ( मर्ते प्र-नेतारः ) मानवों को उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और ( याम-हृतिषु ) शत्रुदल पर चढाई करते समय पुकारने पर तुम ( धिया ) मनःपूर्वक वडी लगनसे उस प्रार्थना को ( श्रोतारः ) सुन लेते हो ।

३१७ हे ( पुरु-चन्द्राः ) अत्यन्त आह्लाददायक, ( रिश-अदसः ) शत्रुदल के विनाशकर्ता ( यज्ञियासः ! ) तथा पूज्य वीरो ! ( ते ) ऐसे प्रसिद्ध तुम ( नः काम्या ) हमारे अभीष्ट ( वसूनि ) धन हमें ( आ ववृत्तन ) चापिस लौटा दो ।

भाषार्थ— ३१५ कौनसा स्थान वीरों को आनन्द देता है ?

३१६ शत्रु पर चढाई करते वक्त मददके लिए गुलाया जाय, तो ये वीर सैनिक तुम्हें उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं, सहायार्थी की पुकार सुन लेते हैं ।

३१७ वीरों की सहायता से हमें सभी प्रकारके धन मिले । [ यदि शत्रुने उन्हें डीर लिया हो, तो वह सारी सभ्यता हमें पुनः वापस मिले । ]

टिप्पणी— [ ३१५ ] ( १ ) ऋत-जात = सत्य के लिए वेदा हुआ, सीधा कार्य करने के लिए ही जो अपने जीवन का बलिदान देता है । ( २ ) रेपस् = हीम, टेडा, भूर, कलंक, पाप । अ-रेपस् = ऊँचा, सरल, शान्त, दिग्बलद, पापाहित ।

[ ३१६ ] ( १ ) यामः = दुश्मनों पर किया जानेवाला आक्रमण, हमला । ( २ ) हृतिः = पुरार, पुकावा । याम-हृतिः = शत्रुओं पर हमले चढाते समय की हुई पुकार ।

अत्रिपुत्र एवयामरुत् ऋषि ( ऋ० पा० ७१-९ )

(३१८) प्र । वुः । महे । मृतयः । यन्तु । विष्णवे । मरुत्वते । गिरिऽजाः । एवयामरुत् ।  
 प्र । शर्षाय । प्रऽयज्यये । सुऽखादये । त्वसे । मन्दत्ऽइष्टये । धुनिऽव्रताय । शर्वसे ॥१॥  
 (३१९) प्र । ये । जाताः । महिना । ये । च । नु । स्वयम् । प्र । विघ्ना । व्रुवते । एवयामरुत् ।  
 ऋत्वा । तत् । वः । मरुतः । न । आऽष्टये । शर्वः । दाना । म्हा । तत् । एयाम् ।  
 अधृष्टासः । न । अद्रयः ॥२॥

अन्वयः- ३१८ एवयामरुत् गिरि-जाः मृतयः वः मरुत्-वते महे विष्णवे प्र यन्तु, प्र-यज्यये सु-  
 खादये तयसे मन्दत्-इष्टयं धुनि-व्रताय शर्वसे शर्षाय प्र ।

३१९ ये महिना प्र जाताः, ये च नु स्वयं विघ्ना प्र, एवयामरुत् व्रुवते, ( हे ) मरुतः । वः तत्  
 शत्रुः कृत्वा न जा-धृष्टे, एषां तत् दाना म्हा, अद्रयः न, अ-धृष्टासः ।

वर्ध- ३१८ ( एवयामरुत् ) मरुतों के अनुसरण करनेवाले ऋषि की ( गिरि-जाः ) वार्षी से निकले  
 हुए ( मृतयः ) विचार एवं काव्यमय श्लोक ( वः ) तुम्हारे ( मरुत्-वते ) मरुतों से युक्त ( महे विष्णवे )  
 चडे व्यापक देव के पास ( प्र यन्तु ) पहुँचें । तुम्हारे ( प्र-यज्यये ) अत्यन्त पूजनीय, ( सु-खादये ) अच्छे  
 फडे, चलय धारण करनेवाले, ( तयसे ) चलवान, ( मन्दत्-इष्टये ) अच्छी आकांक्षा करनेवाले, ( धुनि-  
 व्रताय ) शत्रु को हटा देने का व्रत लेनेवाले ( शर्वसे ) वेगपूर्वक जानेवाले ( शर्षाय ) बल के लिए ही  
 तुम्हारे विचार एवं काव्यप्रवाह ( प्र यन्तु ) प्रयत्नित हो चले ।

३१९ ( ये ) जो अपनी निजी ( महिना ) महत्त्व से ( प्र जाताः ) प्रकट हुए ( ये च ) और जो ( नु )  
 स्वयमुच ( स्वयं विघ्ना ) अपनी निजी विघ्ना से ( प्र ) प्रसिद्ध हुए, उन वीरों का ( एवयामरुत् व्रुवते )  
 एवयामरुत् ऋषि वर्णन करता है । हे ( मरुतः ! ) शत्रु मरुतों ! ( वः तत् शर्वः ) तुम्हारा वह बल  
 ( ऋत्वा ) कृति से युक्त होने के कारण ( न आ धृष्टे ) पराभूत नहीं हो सकता है, ( एषां तत् ) ऐसे तुम  
 वीरों का वह बल ( दाना ) दानसे ( म्हा ) तथा महत्त्व से युक्त है । तुम ता ( अद्रयः न ) पर्यतों के समान  
 ( अ-धृष्टासः ) किसी से परास्त न होनेवाले हो ।

भाषार्थ- ३१८ ऋषि सर्वव्यापक ईश्वर के सम्मुख में विचार करते हैं, उसके शक्तियों का गायन करते हैं और उन  
 की प्रतिभा-शक्ति परमात्मा की ओर मुद्रा जाती है । उनी प्रशार, बल पदा कर शत्रु को मरिचामिट करने के गुरुर कार्य  
 की ओर भी बनशी मनोवृत्ति हुक जाय ।

३१९ तुम्हारी निचा एवं महत्ता अवाधान कोटिकी है । तुम्हारा बल इतना विशाल है कि, कोई तुम्हें पद-  
 दलित तथा पराभूत या परास्त नहीं कर सकता है । तुम्हारा दान भी बहुत बड़ा है और जैसे पर्वत अपनी जगह स्थिर  
 रखा करता है, वैसे ही तुम विघ्न कहीं रहते हो, उधर भले ही दुश्मन भीषण हमले कर डाले, लेकिन तुम अपने स्थान  
 पर अचल, अचल तथा अडिग रह कर उसे हटा देते हो ।

टिप्पणी- [ ३१८ ] ( १ ) मन्दत् = सुदौरी होना, उपम होना, आनन्दित बनना, सम्मान देना, पूजा करना । ( २ )  
 इष्टिः = इष्ट-आकांक्षा, प्रिय, इष्ट वस्तु यत्न । ( ३ ) एवयाम् = संरक्षण करना, मार्ग परसे जाना, निश्चित राह परसे  
 चलना । एवयामरुत् = मरुतों के पथ से जानेवाला, मरुतों का अनुगामी, ऋषि । ( ४ ) आ० भा० ।

[ ३१९ ] ( १ ) अद्रयः = वज्र बुद्धि, सधानात्मन, शक्ति, निश्चय, आयोजना, इष्टा । ( २ ) शर्वस्य = बल,  
 शत्रु का नाश करने में समर्थ बल । ( ३ ) अधृष्टे = अकृणित ।

(३२०) प्र । ये । दिवः । बृहत्तः । शृण्विरे । गिरा । सुशुक्लानः । सुभ्यः । एवयामरुत् ।  
 न । येषाम् । इरी । सधस्थे । ईष्टे । आ । अग्रयः । न । स्वविद्युतः । प्र ।  
 स्पन्द्रासः । धुनीनाम् ॥३॥

(३२१) सः । चक्रमे । महतः । निः । उरुक्रमः । समानस्मात् । सदसः । एवयामरुत् ।  
 यदा । अयुक्त । त्मना । स्वात् । अधि । स्नुभिः । विस्पर्धसः । विस्महसः ।  
 जिगति । शेवृधः । नृभिः ॥४॥

अन्वयः— ३२० सु-शुक्लानः सु-भ्यः ये बृहत्तः दिवः प्र शृण्विरे, एवयामरुत् गिरा, येषां सध-स्थे इरी न आ ईष्टे, अग्रयः न, स्व-विद्युतः, धुनीनां प्र स्पन्द्रासः ।

३२१ यदा एवयामरुत् स्नुभिः नृभिः त्मना स्वात् अधि अयुक्त, (तदा) उरु-क्रमः सः समानस्मात् महतः सदसः निः चक्रमे, वि-महसः शे-वृधः वि-स्पर्धसः जिगति ।

अर्थ- ३२० (सु-शुक्लानः) अत्यन्त तेजस्वी तथा (सु-भ्यः) उत्तम ढंग से रहनेवाले (ये) जो वीर (बृहत्तः) विशाल (दिवः) अन्तरिक्ष में मे जाते समय जनता की की हुई स्तुतियाँ (प्र शृण्विरे) सुनते हैं, उनकी ही (एवयामरुत् गिरा) एवयामरुत् कृपि अपनी वाणीद्वारा स्तुति करता है । (येषां सध स्थे) जिनके प्रदेदा में उनके (इरी) प्रेरक का हैसियत से उनपर (न आ ईष्टे) कोई भी प्रभुत्व नहीं प्रस्थापित करता है, वे (अग्रयः न) अग्नि के तुल्य (स्व-विद्युतः) स्वयंप्रकाशी वीर (धुनीनां) गर्जना करनेवाले शत्रुओं की भी (प्र स्पन्द्रासः) अत्यन्त विकम्पित कर डालनेवाले हैं ।

३२१ (यदा एवयामरुत्) जब एवयामरुत् कृपि अपने (स्नुभिः नृभिः) वेगवान लोगों के साथ (त्मना) स्वयं ही (स्वात्) अपने निवासस्थान के समीप (अधि अयुक्त) अश्व जोतकर तैयार हुआ, तब (उरु क्रमः सः) बड़ा भारी आक्रमण करनेवाला वह मरुतों का संग्र (समानस्मात्) सब के लिए समान पक्षे (सदसः) अपने निवासस्थान से (निः चक्रमे) बाहर निकल पड़ा और (वि-महसः) विलक्षण तेजस्वी एवं (शे-वृधः) मुख बढ़ानेवाले वे वीर (वि-स्पर्धसः) विना किसी स्पर्धा से तुरन्त उधर (जिगति) आ पहुँचे ।

भावार्थ- ३२० ये वीर तेजस्वी तथा अट्टा आचरण करनेवाले हैं । ये स्वयं-दायित्व हैं, इन पर अन्य किसी की प्रभुता नहीं प्रस्थापित है । ये स्वयंप्रकाशी होने हुए मरुतोंवाले बड़े बड़े वीर दुश्मनों को भी भयभीत कर देते हैं, जिस से वे कौपने लगते हैं ।

३२१ जब कृपि इन वीरों का सुस्वागत करने के लिए तैयार हुआ, तब ये वीर उस अपने निवासस्थल से, जो सब के लिए समान था, निकलकर स्वयं ही उग के समीप जा पहुँचे । ये वीर बड़े ही तेजस्वी एवं जनता का सुख बढ़ानेवाले थे ।

टिप्पणी- [३२०] (१) धुनि (धनु शब्दे) = गरजनेवाला, बृहत्त मानेवाला, (धृत् कम्पने) हिलानेवाला । (२) सु-भू = बलयान, संपौष्ट, अच्छे ढंग से रहनेवाले । (३) शुन्वन् = (शुच् = प्रकाशना) = प्रकाशमान, तेजस्वी । 'येषां इरी न ईष्टे' = तिन का दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं होता है, अर्थात् जो स्वयं-दायित्व हैं । (मंत्र १८, २९२, ३०८, देखिए ।)

[३२१] (१) समानं सदः = सब के लिए समान रूप से सुखा हुआ निवासस्थान, मैनिकों के बैरक (Barracks), (मंत्र ११७, ३२५, ४४७ देखिए ।) (२) वि-स्पर्धस् = विशेष स्पर्धा करनेवाले, स्पर्धारहित । (३) शे-वृधः = (शं=सुख, दास्य) = सुख में बड़े हुए, दास्यों में बड़े हुए- निर्यात, पारंगत । (तेज = सुख, मंगल, ऊँचाई-वृधः) सुख-संपदा करनेवाले ।

(३२२) स्वनः । न । वः । अमऽवान् । रेजयत् । वृषा । त्वेपः । ययिः । तव्विपः । एवयामरुत् ।  
येन । सहन्तः । ऋजत । स्वऽरौचिपः । स्थाःऽरश्मानः । हिरण्ययाः । सुऽआयुधासः ।  
इष्मिणः ॥५॥

(३२३) अपारः । वः । महिमा । वृद्धऽशयसः । त्वेपम् । शयैः । अवतु । एवयामरुत् ।  
स्थातारः । हि । प्रसंसितौ । संऽदृशि । सन । ते । नः । उरुप्यत । निदः । शुभ्र-  
कांसः । न । अग्रयः ॥६॥

अन्वयः— ३२२ वः अम-वान् वृषा त्वेपः ययिः तव्विपः स्वनः एवयामरुत् न रेजयत्, येन सहन्तः  
स्व-रोचिपः स्थाः-रश्मानः हिरण्ययाः सु-आयुधासः इष्मिणः ऋजत ।

३२३ (हे) वृद्ध-शयसः । वः महिमा अ पारः, त्वेपं शयः एवयामरुत् अवतु, प्रसंसितौ हि  
संदृशि स्थातारः स्वन, अग्रयः न, शुभ्रकांसः ते नः निदः उरुप्यत ।

अर्थ- ३२२ ( वः अम वान् ) तुम्हारा बलवान् ( वृषा ) समर्थ, ( त्वेपः ) तेजस्वी, ( ययिः ) वेग से  
जानेहारा एवं ( तव्विपः स्वन ) प्रभावशाली शब्द । एवयामरुत् न रेजयत् । एवयामरुत् ऋषि को  
कंपित या भयभीत न करे । ( येन ) जिससे ( सहन्तः ) शत्रुओं का प्रतिकार करनेहारे ( स्व-रोचिपः )  
जपने तेजसे युक्त, ( स्थाः-रश्मानः ) स्थायी तेज धारण करनेहारे, ( हिरण्ययाः ) सुवर्णालंकार पहननेवाले,  
( सु-आयुधासः ) अच्छे दृष्टियार रखनेवाले तथा ( इष्मिणः ) अन्न का संग्रह समीप रखनेवाले तुम  
घोर प्रगति के लिए ( ऋजत ) प्रयत्न करते हो ।

३२३ हे ( वृद्ध-शयसः ! ) प्रबल सामर्थ्यवान् धीरो ! ( वः महिमा ) तुम्हारा बड़प्पन सचमुच  
( अ पारः ) असीम एवं अमर्याद है । तुम्हारा ( त्वेपं शयः ) तेजस्वी बल इस ( एवयामरुत् अवतु )  
एवयामरुत् ऋषि का रक्षण करे । शत्रु का ( प्रसंसितौ ) आक्रमण होने पर भी ( संदृशि ) दृष्टिपथ में  
ही तुम, स्थातार-मथन ) स्थिर रहते हो । ( अग्रयः न ) अश्लिष्य ( शुभ्रकांसः ) तेजस्वी ( ते ) ऐसे  
तुम ( नः ) हमें ( निदः उरुप्यत ) निन्दक से बचाओ ।

भावार्थ- ३२२ तुम्हारी धनि में सामर्थ्य है, पर वह ऋषि उस गम्भीर दृष्टाद से भयभीत नहीं होगा है, क्योंकि  
इस के साथ तुम अच्छे शस्त्र लेकर सब की उन्नति के लिए सचेष्ट रहा करते हो ।

३२३ तुम धीरों की महिमा असीम है और उन के सामर्थ्य से ऋषियों का रक्षण होता है । तुम्हारे की  
बहादुरी है, जो के समीप ही रहते हैं, इसलिए धीर आदर जनताकी मदद करते हैं । हमारी दृष्टा है कि, वे हमें निन्दकों  
से बचायें ।

टिप्पणी- [ ३२२ ] ( १ ) अम = बल, शक्ति, भय, धार, अनुयायी । ( २ ) ऋज्जु = वेग से दौड़ना, हुसना,  
प्रयत्न करना, शोभा लाना । ( ३ ) सह् = सहन करना, धारण करना, परभाव करना, प्रतिकार करना ।

[ ३२३ ] ( १ ) प्रसंसितौ = जाला, घंघन, हमला, शक्ति, सत्ता । ( २ ) उरुप्यु = रक्षा करने की दृष्टा  
करनेहारा । ( इष्म्यति ) प्रतिकार करना, रक्षा करना ।

(३२४) ते । रुद्रासः । सुसम्राः । अग्रयः । यथा । तुविऽद्युम्नाः । अबन्तु । एवयामरुत् ।  
दीर्घम् । पृथु । पप्रथे । सन्न । पार्थिवम् । येषाम् । अज्मेपु । आ । गृहः । शर्धांसि ।  
अद्भुतऽएनसाम् ॥७॥

(३२५) अद्वेपः । नः । मरुतः । गातुम् । आ । इतन । श्रोतं । हवम् । जरितुः । एवयामरुत् ।  
विष्णोः । महः । सुसमन्यवः । युयोतन । स्मत् । रथ्यः । न । दंसना । अप ।  
द्वेषांसि । सनुतरिति ॥८॥

(३२६) गन्तं । नः । यज्ञम् । यज्ञियाः । सुसशर्मि । श्रोतं । हवम् । अरक्षः । एवयामरुत् ।  
ज्येष्ठासः । न । पर्वतासः । विऽओमनि । यूयम् । तस्य । प्रऽचेतसः । स्यात् । दुःऽधर्तवः । निदः ॥९॥

अन्वयः— ३२४ सु-मराः, अग्रय यथा तुवि-द्युम्नाः, ते रुद्रास एवयामरुत् अबन्तु, दीर्घं पृथु पार्थिवं सन्न पप्रथे, अद्भुत-एनसां येषां अज्मेपु मह शर्धांसि आ । ३२५ (हे) मरुतः ! अ-द्वेपः गातुं न आ इतन जरितु एवयामरुत् हवं श्रोत, (हे) स मन्यव ! विष्णोः महः युयोतन, रथ्यः न स्मत्, दंसना सनुतः द्वेषांसि अप । ३२६ (हे) यज्ञियाः ! सु-शर्मि न यज्ञं गन्त, अ-रक्ष एवयामरुत् हवं श्रोत, वि-ओमनि, पर्वतास न, ज्येष्ठास, प्र-चेतसः यूयं तस्य निद दुर्-धर्तवः स्यात् ।

अर्थ ३२४ (सु-मराः) उच्च कोटि के यज्ञ करनेहारे, (अग्रयः यथा) अग्नि के तुल्य (तुवि द्युम्नाः) अति तेजस्वी (ते रुद्रासः) वे शत्रु को रलानेवाले वीर (एवयामरुत् अबन्तु) एवयामरुत् ऋषि का संरक्षण करें । (दीर्घं) विस्तीर्ण तथा (पृथु) भव्य (पार्थिवं सन्न) भूमंडल पर का निवासस्थान उन्हीं के कारण (पप्रथे) विख्यात हो चुका है । (अद्भुत एनसां) पापराहित ऐसे (येषां) जिन वीरों के (अज्मेपु) आक्रमणों के समय (महः शर्धांसि) बड़े बड़े बल उनके साथ (आ) आते हैं ।

३२५ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (अ-द्वेपः) द्वेष न करनेहारे तुम वीरों के (गातुं) काव्य का गायन करने के समय तुम (नः आ इतन) हमारे समीप आओ । (जरितुः एवयामरुत्) स्तुति करनेवाले, एवयामरुत् ऋषि की यह प्रार्थना (श्रोत) सुन लो । हे (स-मन्यवः ! ) उस्ताही वीरो ! तुम (विष्णोः महः) व्यापक देव की शक्तियों से (युयोतन) एकरूप बनो । तुम (रथ्यः न) रथमें जोतनेयोग्य घोड़े के समान (स्मत्) प्रशंसा के योग्य हो, इसलिए (दंसना) अपन पराक्रम से, कर्म से (सनुतः द्वेषांसि) गुप्त शत्रुओं को (अप) दूर हटाओ । ३२६ हे (यज्ञियाः ! ) पूज्य वीरो ! (सु-शर्मि) अच्छे शान्त ढंगसे (नः यज्ञं) हमारे यज्ञकी ओर (गन्त) आओ । (अ-रक्षः) अरक्षित ऐसे (एवयामरुत्) एवयामरुत् ऋषि की (हवं) यह प्रार्थना (श्रोत) सुनो । (वि-ओमनि) विशेष रक्षण के कार्य में तुम (पर्वतासः न) पहाड़ों के तुल्य (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हो । (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ढंग से विचार करनेहारे तुम (तस्य निदः) उस निन्दक के लिए (दुर्-धर्तवः) दुर्धर्ष-अजिम्ब्य (स्यात्) बनो ।



बृहस्पतिपुत्र शंशुभ्रपि (तृणपाणि) (ऋ० ६।१८।११-१५, २०-२१)

(३२७) आ । सखायः । सवःऽदुधांम् । धेनुम् । अजघ्नम् । उप । नव्यसा । वचः ।

सृजध्वम् । अनपस्फुराम् ॥११॥

(३२८) या । शर्षीय । मरुताय । स्वभानवे । श्रवः । अमृत्यु । पुक्षत ।

या । मृळीके । मरुताम् । तुराणाम् । या । सुम्नैः । एवऽयावरी ॥१२॥

(३२९) भरत्ऽवाजाय । अर्ष । पुक्षत । द्विता ।

धेनुम् । च । विश्वऽदौहसम् । इपम् । च । विश्वभोजसम् ॥१३॥

अन्वयः— ३२७ (हे) सखायः ! नव्यसा वचः सवर्-दुधां धेनुं उप आ अजघ्वं अन्-अप स्फुरां सृजध्वं ।  
३२८ या स्व-भानवे मादताय शर्षीय अ-मृत्यु श्रवः पुक्षत, या तुराणां मरुतां मृळीके, या सुम्नैः एवया-वरी ।

३२९ भरत्-वाजाय द्विता अर्ष पुक्षत, विश्व-दोहसं च धेनुं विश्व भोजसं इपं च ।

ार्थ ३२७ हे (सखायः!) मित्रे! (नव्यसा वचः) नया काव्यगायन सुनते हुए (सवर्-दुधां) विपुल दूध देनेहारों (धेनुं उप) गाय के निम्न (आ अजघ्वं) आश्रो ओर उस (अन्-अप-स्फुरां) स्थिर गौ को (सृजध्वं) बंधन में से छोड़ दो ।

३२८ (या) जो (स्व भानवे) स्वयंप्रकारा (मादताय शर्षीय) वीर मरुता के बल के लिए दुग्धरूप (अ-मृत्यु) कभी नष्ट न होनेवाली (श्रवः) सम्पत्ति या (पुक्षत) उत्पादन करती है, (या) जो (तुराणां मरुतां) घगवान वीर मरुतां को (मृळीके) आनन्द देने के लिए तत्पर वीर्य पडती है, (या) जो (सुम्नैः) अनेक सुनों के साथ (एवया-वरी) आकर इच्छा का पूर्ति करती है ।

३२९ हे वीरो! (भरत्-वाजाय) ऋषि भरद्वाज को (द्विता) दो दान (अर्ष पुक्षत) दे दो; एक तो (विश्व दोहसं धेनुं) सब के लिए दूध देनेहारों गाय और दूसरा (विश्व भोजसं) सब के भरणपोषण के लिए पर्याप्त (इपं च) अन्न ।

भावार्थ— ३२७ मयें वाच्य का गायन करते हुए तर्ष गौ-शाला में जाकर यथेष्ट दूध देनेहारों तथा दुहते समय निप्रल सखी रहनेवाली गौ के समीप चलकर उसे पहल बंधन से अन्मुक्त करना चाहिए ।

३२८ गौ अपने जीवनवर्धक दूध से वीरों को वृद्धित करती है । वह उन्हें हर्ष देती है और कई प्रकार के सुखों को तार्प लेकर उन के निरुक्त जाकर इच्छाओं की पूर्ति करती है ।

३२९ प्रभु नात्रा से दूध देनेहारों गौ तथा यथेष्ट अन्न का सृजन करनेवाली भूमि दो वस्तुएँ समीप हों, तो जीवननिर्वाह ही बढिन समस्या हल होती है और आजीविका की सुविधा हुआ करती है ।

सुख, वैभवे, आरोग्य, दांदि । (२) अ-रक्ष = (नास्ति रक्षा यस्य) अरक्षित । (३) वि+अभिन् = (विशेष) संरक्षण, कृपा, दया । [३२७] (१) स्फुर = दिलना । अनपस्फुर = स्थिर तथा अचक रूपसे खड़े रहना । अन्-अप-स्फुरा = दूध दुहते समय न दिलते हुए शांति से खड़ी होनेवाली (गाय) । [३२८] (१) एवया = रक्षा करना, वेगपूर्क जाना, इच्छापूर्ति करना । (२) अ मृत्यु-श्रवः = मृत्यु को दूर हटानेवाला यज्ञ, पुण्य निवोदा हुआ धारोण्य दूध । [३२९] भरत्-वाज = एक ऋषि का नाम, (जो अन्न, चक एवं सम्पत्ति को ससृष्टि करता हो ।)

- (३३०) तम् । वः । इन्द्रम् । न । सुऽऋतुम् । वरुणम्ऽइव । मायिनम् ।  
 अर्यमणम् । न । मन्द्रम् । सुप्रऽभोजसम् । विष्णुम् । न । स्तुपे । आऽदिशि ॥१४॥
- (३३१) त्वेपम् । शर्धः । न । मारुतम् । तुविऽस्वनि । अनर्वाणम् । पूषणम् । मम् । यथा । जता ।  
 सम् । सहसा । कारिपत् । चर्षणिऽभ्यः । आ । आविः । गृह्हा । वसु । कर्त् ।  
 सुऽवेदा । नः । वसु । कर्त् ॥१५॥
- (३३२) वामी । वामस्य । धृतयः । प्रऽनीतिः । अस्तु । सूनृता ।  
 देवस्य । वा । मरुतः । मर्त्यस्य । ज्ञा । ईजानस्य । प्रऽयज्यवः ॥२०॥

अन्वय — ३३० इन्द्र न सु-ऋतु, वरुणश्च मायिन, अर्यमण न मन्द्र, विष्णु न सुग भोजस य त आ दिशे स्तुपे । ३३१ न त्वेप तुवि स्वनि अन् अर्वाण पूषण मारुत शर्ध यथा चर्षणिभ्य शतास सहस्रा स आ कारिपत्, गृह्हा वसु आवि करत्, न- वसु सु-वेदा कर्त् । ३३२ (हे) धृतय प्र-यज्यव मरुत- ! देवस्य वा ईजानस्य मर्त्यस्य वा वामस्य प्र नीति वामी सूनृता अस्तु ।

अर्थ— ३३० ( इन्द्र न ) इन्द्रके समान ( सु-ऋतु ) अच्छे कर्म करनेहार ( वरुणश्च ) वरुण की नाउ ( मायिन ) कुशल कारीगर ( अर्यमण न ) अर्यमणे तुरय ( मन्द्र ) जान-बूझायक ( विष्णु न ) विष्णु के जैसे ( सुप्र-भोजस ) पर्याप्त अन्न देनेवाले, पालनपोषण करनेहार ( व त ) तुम्हारे उन धीरोंके सवर्नी, हमें ( आ-दिशे ) मार्ग दर्शाये, इसलिए ( स्तुपे ) सराहना करता ह ।

३३१ ( न ) अत्र ( त्वेप ) तेजस्वी ( तुवि-स्वनि ) मरान् जावाज करनेहार, ( अन्-अर्वाण ) शत्रु रहित तथा ( पूषण ) पोषण करनेवाले ( मारुत शर्ध ) उन धीर मरुतोंका साक्षिक बल ( यथा ) जैसे ( चर्षणीभ्य ) मानवों को ( शता स ) सो गकार के धन या ( सहस्रा स ) हजारों ढग के धन एकही समय ( आ कारिपत् ) समीप लाये और ( गृह्हा वसु ) गुप्त धनको ( आवि कर्त् ) प्रकट करे, उसी प्रकार ( न ) हमें ( वसु ) धन ( सु-वेदा ) सुगमतापूर्वक प्राप्त हा सने ऐसा करे ।

३३२ हे ( धृतय ) शत्रुसेनाओं हिला देनेवाले तथा ( प्र-यज्यव ) अत्यन्त पृञ्जनीय ( मरुत ! ) धीर मरुतो ! ( देवस्य वा ) देवकी या ( ईजानस्य मर्त्यस्य वा ) यज्ञ करनेवाले मानवकी ( वामस्य प्र नीति ) धन पानकी प्रणाली ( वामी ) प्रशासनीय तथा ( सूनृता ) सत्यपूर्ण ( अस्तु ) हो जाण ।

भावावर्थ— ३३० अच्छे कर्म करनेहार, कुशल, जान-बूझ एवं पयास अन्नपानीय देनेवाले धीरों के का प्र वा गायव हम प्रवर्तित करते हैं, क्योंकि उस के कारण सम्भव है कि हम उग्रा पथ का ज्ञान हो जाय । [इन मरुतों में इन्द्र का पराक्रम, वरुण की कुशलता, अर्यमा का सुखदायित्व और विष्णु का प्रजापालक व समाया हुआ है ।] ३३१ अज्ञात शत्रु एवं महाबलवान धीर मरुत् अपने बल से सभी जानवाको विभिन्न ढग के धन द सुने हैं और उनी प्रकार वह सुग भी मिल सके, ऐसा व कर । ३३२ नागव न्यायपूर्वक धन प्राप्त कर ।

टिप्पणी— [ ३३० ] ( १ ) भोजसू = खानपान, अन्न । ( २ ) सुप्र भोजसू = सरपट अन्न देनेवाला । ( सुपू = धीरधीरे जाना, सरकते हुए जाना, भुज्ज = रथा करना उपभोग लगा, सत्प्रदर्शन करना ) = शरण आये हुए लोगों की रक्षा करनेवाला शत्रु पर सत्ता प्रस्थापित करनेवाला । ( ३ ) आ दिशे = दर्शाना, पथप्रदर्शक होना, आज्ञा देना लक्ष्यवेध करना । [ ३३१ ] ( १ ) गृह्हा वसु = भूमि म पत्रा हुआ धन ( धनिग सपति ? ) गुप्त धन । ( २ ) आ-ऋ ( To bring near ) समीप लाया, कगेरगा, पूर्व रूपसे बगाना । ( ३ ) अर्बु = ( गगा हिसाया व ) अर्जुन = गणिमान, घोडा, हिसक दुश्मता । अनर्वा = अ शत्रु अभावशत्रु, पित्त के समीप घोडा न हो । [ मत्र ६ मरु [ हि ] १७

(३३३) सद्यः । चित् । यस्ये । चर्कतिः । परि । धाम् । देवः । न । एति । स्यैः ।  
 त्वेषम् । शर्वः । दुधारे । नाम । युजियम् । मरुतः । वृत्रऽहम् । शर्वः । ज्येष्ठम् ।  
 वृत्रऽहम् । शर्वः ॥२१॥

वृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि ( ऋ० ६।६।१-११ )

(३३४) वपुः । नु । तत् । चिकितुषे । चित् । अस्तु । समानम् । नाम । धेनु । पत्यमानम् ।  
 मतेषु । अन्यत् । दोहसे । पीपाय । सुकृत् । शुक्रम् । दुदुहे । पृश्निः । ऊधः ॥१॥

(३३५) ये । अग्रयः । न । शोशुचन् । इधानाः । द्विः । यत् । त्रिः । मरुतः । ववृधन्त ।  
 ओरणवः । हिरण्ययासः । एषाम् । साकम् । नृग्नैः । पौंस्येभिः । च । भुवन् ॥२॥

अन्वय — ३३३ यस्य चर्कति देवः सूर्यं न, सद्य चित् धाम् परि एति मरुतः त्वेषं शवः यक्षियं नाम दुधारे, शवः वृत्र-हं वृत्र-हं शवः ज्येष्ठं । ३३४ तत् धेनु समानं नाम पत्यमानं वपुः नु चित् चिकितुषे अस्तु अन्यत् मतेषु दोहसे पीपाय, शुक्रं सकृत् पृश्नि ऊधः दुदुहे । ३३५ ये मरुतः इधाना-अग्रयः न, शोशुचन्, यत् द्वि त्रिः ववृधन्त, एषां अ-रेणवः हिरण्ययासः नृग्नैः पौंस्येभि च साकं भुवन् ।

अर्थ— ३३३ (यस्य) जिनका (चर्कतिः) कर्म (देवः सूर्यः न) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (सद्यः चित्) तुरन्त (धाम् परि एति) दुलोभमें चारों ओर फैलता है, उन (मरुतः) घोर मरुतोंने (त्वेषं शवः) तेजस्वी बल तथा (यक्षियं नाम) पूजनीय यज्ञ (दुधारे) प्राप्त किया। उनका वह (शवः) बल (वृत्र-हं) वृत्रना बध करनेवाला था और सचमुच वह (वृत्र हं शवः ज्येष्ठं) वृत्रविनाशक बल उच्च कोटिका था ।

३३४ (तत्) वह जो (धेनु समानं नाम) धेनु एकही नाम है, (पत्यमानं) उसे धारण करने-वाला (वपुः) स्वरूप (नु चित्) सचमुचही (चिकितुषे) शानी पुरपोंको परिचित (अस्तु) रहे। (अन्यत्) उनमेंसे एक रूप (मतेषु) मानवोंमें मर्त्य लोकमें (दोहसे) दूध का दोहन करने के लिए गोरूप से (पीपाय) पुष्ट होता रहता है और (शुक्रं) दूसरा तेजस्वी रूप (सकृत्) एक बारही (पृश्निः) अन्तरिक्ष के मेघरूपी (ऊधः) दुग्धाशय से (दुदुहे) दोहन किया हुआ है ।

३३५ (ये मरुतः) जो मरुत-घोर (इधानाः) प्रज्वलित (अग्रयः न) अग्निके तुल्य (शोशुचन्) घेतमान हुआ करते हैं और (यत्) जो (द्विः त्रिः) दुगुनी या त्रिगुनी मात्रामें बलिष्ठ होकर (ववृधन्त) पढते हैं (एषां) इनके रथ (अरेणवः) निर्मल (हिरण्ययासः) स्वर्णरन्जित हैं, और वे घोर (नृग्नैः) गुद्धि तथा (पौंस्येभि च साकं) बलके साथ (भुवन्) प्रकट होते हैं ।

भाष्यार्थ— ३३३ जैसे सूर्य का प्रकाश दुलोक में फैलता है, वही प्रकार मरुतोंका अथ वधका बल चिकितुषे अस्तु होकर है और घोरनेवाला शवु को कुचल देता है । ३३४ दो प्रसिद्ध गौरु 'धेनु' नाम से विख्यात हैं । एक धेनु नामवाली गोमाता मानवोंके पोषणार्थ दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें रहनेवाली (मेघरूपी माता) वर्षमें एक बार जलकी यथेष्ट वर्षा करके सबको गृह करती है । ३३५ घोर सैनिक अपने बलको दुगुना, त्रिगुना बढ़ाते हैं और अत्यधिक बढे हो जाते हैं । इन के रथ साकसुधरे तथा स्वर्गसे विभूषित हैं । अपनी बुद्धि तथा बलको स्पष्ट करके ये घोर विख्यात बनते हैं ।

टिप्पणी देखिए । ] [ ३३९ ] ( १ ) धाम = धन । ( २ ) नीतिः = बर्ताव रखने के नियम । ( ३ ) प्र नीतिः = मार्गदर्शकता, बर्ताव । ( ४ ) सुरुत = रमणीय, सयपूर्ण, मन प्रसन्न, सौम्य, विनयशील । [ ३३३ ] ( १ ) वृत्रः = ( युगोति इति ) दहनवाला, घेदनकर्ता, शत्रु, दुष्ट राक्षस । ( २ ) चर्कतिः = कृति, कर्म, चारोंबार की जानेवाली कृति, बस, हीति । ( ३ ) यक्षियं नाम = मन्त्र १ तथा १४९ टिप्पणी देखिए । [ ३३४ ] ( १ ) वपुः = धारि, सुन्दर, आकृति,

(३३६) रुद्रस्य। ये। मीळहुपः। सन्ति। पुत्राः। यान्। चो इति। नु। दाधृविः। भरध्वै। विदे। हि। माता। महः। मही। सा। सा। इत्। पृश्निः। सुडम्बे। गर्भम्। आ। अधात् ॥३॥  
 (३३७) न। ये। ईपन्ते। जनुषः। अया। नु। अन्तरिति। सन्तः। अवद्यानि। पुनानाः। निः। यत्। दुहे। शुचयः। अनुं। जोषम्। अनुं। श्रिया। तन्वम्। उक्षमाणाः ॥४॥  
 (३३८) मधु। न। येषु। दोहसे। चित्। अयाः। आ। नाम। धृष्णु। मारुतम्। दधानाः। न। ये। स्तौनाः। अयासः। मद्वा। नु। चित्। सुदानुः। अयं। यासत्। उग्रान् ॥ ५ ॥

अन्वयः— ३३६ ये मीळहुप रुद्रस्य पुत्राः सन्ति, दाधृवि-यान् चो नु भरध्वै, महः हि माता मही विदे, सा पृश्निः सु-भ्ये इत् गर्भं आ अधात् । ३३७ अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनाना ये नु अया जनुष-न ईपन्ते, यत् श्रिया तन्वं अनु उक्षमाणा शुचयः जोषं अनु नि दुहे । ३३८ येषु धृष्णु मारुतं नाम आ दधाना न दोहसे चित् मधु अयाः, सु-दानु न ये अयासः स्तौनाः उग्रान् नु चित् मद्वा अय यासत् ।

अर्थ— ३३६ (ये) जो वीर (मीळहुपः रुद्रस्य) स्नेहयुक्त रुद्रके (पुत्राः सन्ति) सुपुत्र हं, (दाधृवि-) सबका धारण करनेवाली पृथ्वी (यान् चो नु) जिनके सचमुचही (भरध्वे) पालनपोषणके लिए ह और जो (महः हि) महान वीरोंकी (माता) माता होनेके कारण (मही) बड़ी (विदे) समझी जाती है, (सा पृश्नि यह मातृभूमि (सु-भ्ये इत्) जनताका कल्याण हो। इसीलिये (गर्भं आ अधात्) गर्भ धारण कर चुकी है।

३३७ (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि) दोषाको, पापोंको (पुनाना-) पवित्र करते हुये (ये नु) जो वीर सचमुचही (अया) अपनी गतिसे (जनुषः) जनतासे (न ईपन्ते) दूर नहीं जाते हैं, तथा (यत्) जो (श्रिया) अपनी आभासे (तन्वं) शरीरका (अनु) अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) बलवान करते हैं वे (शुचयः) पवित्र वीर (जोषं अनु) इच्छाके अनुकूल दान (निः दुहे) देते रहते हैं।

३३८ (येषु) जिनमें वीर (धृष्णु) शत्रुसेनाका धर्षण करनेद्वारा (मारुतं नाम) मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिए (मधु) नुरन्त (अया-) अग्रगामी बनते हैं वे (सु-दानुः) अच्छे दानी वीर (न) अभी (ये) जो (अयास-) भट करनेवाले (स्तौनाः) चोर हैं उन्हें (उग्रान् नु चित्) भीषण डाकुओंको भी (अय यासत्) परास्त कर देते हैं।

भाषार्थ— ३३६ ये वीर सैनिक बाह्रके सुपुत्र हैं। सारी पृथ्वी इनका पोषण करती है। यही कारण है कि पृथ्वीका बढप्पन चहुँओर बिलवात है। लोककल्याणके लिए पृथ्वी धान्यरूपी गर्भका धारण करती है। ३३७ ये वीर समाजमेंही रहते हैं और दोषोंको दूर हटाकर पवित्रतापूर्ण धातावरण फैला देते हैं। वे कभी जनताका परित्याग करके दूर नहीं जाते हैं। और अपना तेज बढाकर सबको अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं। ३३८ जिन्होंने मारुत नाम धारण किया है और जो जनताके दुष्टार्थ प्रयत्नशील बने रहते हैं वे मरुत डाकुओंको भी दूर हटाते हैं।

रूप। (२) अन्वयत् = दूसरा, बदला हुआ, अलग, अनूठा। (३) चिकित्त्वस् = जाननेवाला, परिचित, अनुभविक, ज्ञानी। [३३५] (१) रेणुः = धूलि, मल, अ रेणवः = निर्मल (निष्पाव)। [३३६] (१) मीळहुप = (मीळवस्) स्नेहयुक्त, बदार, प्रभावी, ऐश्वर्यसंपन्न, सिंचन करनेवाला। (२) दाधृविः = (ध धारणे) सदैव धारण करनेवाली (पृथ्वी)। (३) भरध्विः = (भ्र धारणपोषणयोः) पालनपोषण। [मह. माता मही] = महान् पुरपोषी माता है, क्या इसीलिये पृथ्वीको 'मही' नाम दिया गया है। [३३७] (१) अया = गति। (२) ईप् = उर जाना, देना, देखना, चढाई करना, यथ करना, सुपकेले चले जाना, सटक जाना। (३) जनुस् = उत्पत्ति, प्राणी, जीव, जन्मभूमि। (४) जोष = समाधान, सुख, आनन्द, उपभोग। (५) [अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः] = शरीरके

(३३९) ते । इत् । उग्राः । शर्वसा । धृष्णुऽसेनाः । उभे इति । युजन्त । रोदसी इति ।

सुमेके इति सुऽमेके ।

अर्ध । स्म । एषु । रोदसी । स्वऽशोचिः ।

आ । अमवत्सु । तस्थौ । न । रोकेः ॥६॥

(३४०) अनेनः । वः । पुरुतः । यामः । अस्तु । अनश्वः । चित् । यम् । अजति । अरथीः ।

अनवसः । अनभीशुः । रजऽन्तः ।

वि । रोदसी इति । पथ्याः । याति । मार्धन् ॥७॥

अन्वय — ३३९ ने शर्वसा उग्रा धृष्णु सेनाः सुमेके उभे रोदसी युजन्त इत्, अध स्म एषु अम-चन्सु रोदसी स्व शोचिः, रोके न जा तस्थौ ।

३४० (हे) मरतः ' वः यामः अन्-पनः अस्तु, अन् अश्वः अरथी चित् यं अजति, अन्-जयसः अन-अभीशु रजस नृः साधन् रोदसी पथ्याः वि याति ।

अर्थ— ३३९ (ने) वे (शर्वसा) अपने बलसे (उग्रा) उग्र प्रतीत होनेवाले, और (धृष्णु-सेना) साहसी सेनासे युक्त वीर (सुमेके) सुहानेवाले (उभे रोदसी) भूलोक एवं द्यूलोकमें (युजन्त इत्) सुसज्ज बने रहते हैं । (अध स्म) और (अम-चन्सु) बलवान (एषु) उन वीरोंके तैयार रहते समय (रोदसी) आकाश तथा पृथ्वी (स्व-शोचिः) अपने तेजस युक्त होने के और पश्चान् (रोकेः) उन्हें किसी रक्षाप्रदसे (न जा तस्थौ) मुठभेड़ नहीं करनी पड़ती है ।

३४० हे (मरत ' ) वीर मरतो ! ( वः याम ' ) तुम्हारा रथ ( अन्-पनः ) दोपरहित ( अस्तु ) रहे, उभे ( अन-अश्व ) घोड़े न जोते हो, तोभी ( अ रथीः ) रथपर न बैठनेवाला भी ( यं अजति ) जिने चलाता है । ( अन् पन ) जिसमें रक्षाका साधन नहीं तथा ( अन्-अभीशुः ) लगाम नहीं और ( रजस नृः ) धूल उड़ानेवाला हो तथापि वह ( साधन् ) इच्छापूर्ति करता हुआ ( रोदसी ) आकाश एवं पृथ्वी परके ( पथ्या ) मार्गमें ( वि याति ) विविध प्रकारसे जाता है ।

भावार्थ— ३३९ में वीर तथा इनकी साहसपूर्ण सेना सदैव तैयार रहती है, अत इनकी राहमें कोई रक्षावट नहीं रहती है । इसी कारणसे जिना किसी कठिनाई या विघ्नके ये अपना कर्तव्य पूरा करते हैं ।

३४० मरतोके रथमें घोड़े नहीं हैं । उसमें घोड़े नहीं जोते हैं । जो मनुष्य रथ चलानेमें अनश्वस्त है, वह भी उसे चला सकता है । युद्धमें समय उपयोग दे सके, ऐसा कोई रक्षाका साधन उसपर नहीं है और खींचनेके लिए लगाम भी नहीं है । वह रथ जब चलने लगता है, तब धूल या गर्द उड़ाना हुआ भूमिपरसे जाता है और उसी प्रकार अन्तर्िक्षमेंसे भी जाता है ।

अन्तर रहकर प्राचीनिक रूप दूर दृष्टाकर उसे पवित्र करनेवाले ( अत्यात्मपक्षमें मन्त्र-प्राण ) । [३३८] ( १ )

धृष्णु नाम = ऐसा नाम कि जिससे मनुके दिलमें शय उत्पन्न हो । ( २ ) स्तोत्र = गीत, और, उच्चारण । ( ३ ) यस्म = प्रधान कला । अन्-यस्म = दूर करना, हटाना । [३३९] ( १ ) रोके = तेजस्विता, दीप्ति । [३४०] ( १ )

अन्वय = अश्व, मनुक, मंत्रक्षम, धन, यति, यश, समाधान, इच्छा, आकाश । ( २ ) रजसू-नृः = अन्तर्िक्षमेंसे रजसूतैर वेगसे जानेवाला । ( ३ ) रोदसी पथ्याः याति = अन्तर्िक्षमेंसे रथ जाता है । ( वेनी मय ६०, ८० ) ।

(३४१) न । अम्य । वर्ता । न । तरुता । सु । अस्ति ।

मरुतः । यम् । अवथ । वाजऽसातो ।

तोके । घा । गोपु । तनये । यम् । अप्सु ।

सः । वृजं । दर्ता । पार्ये । अर्ध । द्योः ॥८॥

(३४२) प्र । चित्रम् । अर्कम् । गृणते । तुरार्य । मरुताय । स्वस्तये । भरध्वम् ।

ये । महामि । सहसा । सहन्ते । रेजते । अग्ने । पृथिवी । मुखेभ्यः ॥९॥

अन्वयः— ३४१ मरुतः ! वाज-सातो यं अवथ अस्य वर्ता न तरुता तु न अस्ति, अथ तोके तनये गोपु अप्सु वा यं स पार्ये द्योः प्रज दर्ता ।

३४२ ( हे ) अग्ने ! ये सहसा सहांसि सहन्ते, मुखेभ्य पृथिवी रेजते, गृणते तुरार्य स्व-तनये माग्नाय चित्रं अर्कं प्र भरध्वं ।

अर्थ— ३४१ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! (वाज सातो) संग्राममें (यं अवथ) जिसकी रक्षा तुम करते हो, (अस्य) उसका (वर्ता न) घेनेवाला कोई नहीं है, या उसका (तरुता) बिनाशक भी कोई (तु न अस्ति) नहीं रहता है। (अथ) उसी प्रकार (तोके) पुत्रोंमें, (तनये) पौत्रोंमें, (गोपु) गोधोंमें या (अप्सु) जलमें रहनेवाले (यं) जिस मानवका संरक्षण तुम करने हो, (सः) वह (पार्ये) युद्धमें (द्योः) तेजस्वी तुल्योक्तनी (प्रजं) गोशालाका भी (दर्ता) विचारण करता है, अपने अधीन करता है।

३४२ हे (अग्ने ! ) अग्ने ! तया अग्निके अनुयायी लोगों ! (ये) जो अपने (सहसा) बलसे (सहांसि) शत्रुओंके आक्रमणों को (सहन्ते) बरदाश्त करते हैं, उन (मुखेभ्यः) बड़े वीरोंके वेगसे (पृथिवी रेजते) भूमितक दहल उठती है, उन (गृणते) स्तोत्रपाठ करनेहारे, (तुरार्य) शीघ्र जानेवाले एवं (स्व-तनये) अपने निजी बलसे युक्त (माग्नाय) वीर मरुतों के संघ के लिए (चित्रं) आश्चर्य-कारक, (अर्कं) पूजनीय तथा प्रशंसनीय वस्तु (प्र भरध्वं) पर्याप्त मात्रामें दे दो ।

भावार्थ— ३४१ ये वीर जिसके संरक्षणका बीडा उठाने हैं, वह कभी पराभूत या विनष्ट नहीं होता है। पुत्रपौत्रों, पशुओं या जलप्रवाहोंके मध्य रहनेवाले जिन अनुयायियोंका संरक्षण ये वीर करने लगते हैं वे स्वर्गके तमाम दानुधोमा विध्वंस कर सकते हैं, (देवी दत्तामें वे भूमन्त्वर विररनेवाले दानुधोमी यजिष्य उडाकेरी क्षमता रखें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं) ।

३४२ इन वीरोंके आक्रमण के समय पृथ्वी ती विरहित हो उठती है। ऐसे इन वीरोंके सब को सभी तरह का अन्न दे दो और इन्हें मनुष्य रखो ।

टिप्पणी— [३४१] (१) वर्तुं = ( घृणोतेः ) आवरक, घेरनेवाला, घेदनकर्ता । ( २ ) वाजः = लडाई, शब्द, अन्न, जल, यज्ञ, धन । वाज साति = अन्न पानेके लिए की हुई चढाऊपरी । ( ३ ) साति = देना, स्वकारना, देन, मदद, विनाश, सम्पत्ति । ( ४ ) तन्तुः = जीतनेवाला, अक्रामक, पार ले चलनेवाला । ( ५ ) वृजः = गोष्ठ, गोशाला, ( ६ ) द्योः प्रजः = स्वर्गकी गोशाला । [३४२] ( १ ) मुख = ( मग् गतौ = जाना, हिलना, हिलाना ) वेगसे जानेहारा, हिलनेवाला, हिलानेवाला, पूज्य, रमणीय, आनदी, चपल, महान, बडा । ( २ ) अर्धः = सूर्य, अग्नि, प्रकाशकिरण, तेज, पूज्य, धार्मिक ।

- (३४३) त्विषिंमन्तः । अध्वरस्यइव । दिद्युत् । तृपुऽच्यवसः । जुह्वः । न । अग्नेः ।  
 अर्चत्रयः । धुनेयः । न । वीराः । भ्राजत्जन्मानः । मूर्तः । अधृष्टाः ॥ १० ॥  
 (३४४) तम् । वृधन्तम् । मार्हतम् । भ्राजत्ऽक्रष्टिम् । रुद्रस्य । सुनुम् । ह्यवसा । आ । विवासे ।  
 दिवः । शर्घीय । शुचयः । मनीषाः । गिर्यः । न । आपः । उग्राः । अस्पृधन् ॥ ११ ॥

मित्रावरणपुत्र वसिष्ठऋषि ( ऋ० ७।५।१-२५ )

- (३४५) के । ईम् । विऽअंक्ताः । नरः । सऽनीळाः ।  
 रुद्रस्य । मर्याः । अर्घ । सुऽअन्धोः ॥ ११ ॥

अन्वय.— ३४३ मरतः अध्वरस्यइव त्विषि-मन्तः तृपु-च्यवसः, अग्नेः जुह्वः न, दिद्युत् अर्चत्रयः, वीराः न धुनेयः, भ्राजत्-जन्मानः अ-धृष्टाः । ३४४ तं वृधन्तं भ्राजत्-ऋष्टि रूद्रस्य सुनुं मार्हतं ह्यवसा भा विवासे, दिव शर्घीय उग्रा शुचयः मनीषाः, गिर्यः आप न, अस्पृधन् । ३४५ अघ रूद्रस्य स-नीळाः मर्यां सु-अन्ध्याः व्यक्ताः नरः ई के ?

अर्थ— ३४३ (मरतः) वे वीर मरत (अ-ध्वरस्यइव) अहिंसायुक्त कर्मके समान (त्विषि-मन्तः) तेजस्वी, (तृपु-च्यवसः) वेगपूर्वक बाहर निकलनेवाले, (अग्नेः जुह्वः न) अग्नि की लपटों के तुल्य (दिद्युत्) प्रकाशमान, (अर्चत्रय) पूजनीय, (वीराः न) वीरोंके समान (धुनेयः) शत्रुओंके हिलानेवाले, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवन धारण करनेहारि हे तथा (अ-धृष्टाः) इनका पराभव दूसरे कभी नहीं कर सकते हैं । ३४४ (तं वृधन्तं) उस बढनेवाले तथा (भ्राजत्-ऋष्टि) तेजस्वी भाले धारण करनेहारि (रूद्रस्य सुनुं) वीरभद्रके सुपुत्र (मार्हतं) वीर मरतोंके संघका भ (आ विवासे) सभी तरहसे स्वागत करता हैं । उसी प्रकार (दिवः शर्घीय) दिव्य बलकी प्राप्ति के लिए हमारी (उग्राः शुचयः) उग्र तथा पवित्र (मनीषाः) इच्छाएं (गिर्यः आपः न) पर्वत से बहनेवाली जलधाराओंके समान (अस्पृधन्) स्पर्श करती हैं । ३४५ (अघ) और (रूद्रस्य स-नीळाः मर्यां) महावीरके, एक घरमें रहनेहारि वीर मर्यां (सु-अन्ध्याः व्यक्ताः नरः) उत्कृष्ट घोड़े समीप रखनेवाले, सबको परिचित एवं नेता (ई के) भला सबमुख कौन है ?

भाषार्थ— ३४३ वे वीर तेजस्वी, वेगसे धावा करनेवाले, शत्रुदलको हटानेवाले हैं, अतएव इनका पराभव होना कदापि संभव नहीं ।

३४४ में इन तत्त्वस्त्रीसे सुतऽन वीरोंका सुस्वागत करता हूँ । हम अपनी पवित्र आकांक्षानोंको उनके निकट बड़ी स्पर्शसे भेजते हैं, ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और इस विषयमें सचेष्ट रहते हैं कि लघिकाधिक बल हमें प्राप्त हो जाय ।

३४५ हे लोगो ! जो महावीरके सैनिक, जगताके हितकर्ता एव अच्छे घोड़े समीप रखनेवाले होनेके कारण सबको परिचित हैं, भला वे कौन हैं ?

टिप्पणी— [३४३] (१) तृपु=प्यासा, शीघ्र-वेगसे जानेवाला । (२) जुहु=बाहर निकलना, गिर पडना, टपकना । [३४५] (१) व्यक्तः = साफ दिखाई देनेवाला, प्रकट हुआ, अलङ्कृत, स्वच्छ, सबको ज्ञात, सपाना । (२) मर्यां = (मर्त्यो) दित्ता । सायणभाष्य) मानसोऽयं हित करनेहारि । रूद्रस्य मर्यां = महावीरके वीर सैनिक (३) स-नीळाः = एक पारमें (Barrack में) रदनेवाले । (देखिये मंत्र ११७, ३२१, ४४७) ।

- (३४६) नकिः । हि । एषाम् । जन्पि । वेद । ते । अङ्ग । विद्रे । मिथः । जनित्रम् ॥२॥  
 (३४७) अभि । स्वऽपूमिः । मिथः । वपन्त । वातऽस्वनसः । श्येनाः । अस्पृधन् ॥४॥  
 (३४८) एतानि । धीरः । निष्या । चिकेत । पृश्निः । यत् । ऊधः । मही । जभार ॥४॥  
 (३४९) सा । विद् । सुऽवीरा । मरुत्ऽभिः । अस्तु । सनात् । सहन्ती । पुष्यन्ती । नृग्नम् ॥५॥  
 (३५०) यामम् । येषां । शुभा । शोभिष्ठाः । श्रिया । सम्ऽमिः । ओजःऽभिः । उग्राः ॥ ६

अन्वयः— ३४६ एषां जन्पि नकिः हि वेद, ते मिथः जनित्रं अङ्ग विद्रे ।

३४७ स्व-पूमिः मिथः अभि वपन्त, वात-स्वनसः श्येनाः अस्पृधन् ।

३४८ धी-रः एतानि निष्या चिकेत, यत् मही पृश्निः ऊधः जभार ।

३४९ सा विद् मरुद्भिः सु-वीरा, सनात् सहन्ती, नृग्नं पुष्यन्ती अस्तु ।

३५० यामं येषां, शुभा शोभिष्ठाः, श्रिया सं-मिः, ओजोभिः उग्राः ।

अर्थ— ३४६ (एषां) इन वीरोंके (जन्पि) जन्म (नकिः हि वेद) कोईभी नहीं जानता है। (ते) वे वीर ही (मिथः) एक दूसरेका (जनित्रं) जन्मस्थान (अङ्ग) सचमुच (विद्रे) जानते हैं। ३४७ वे वीर जब (स्व-पूमिः) अपने पवित्रता करनेहारे साधनोंके साथ (मिथः अभि वपन्त) एकत्र जुट जाते हैं, तब (वात-स्वनसः) पवनके तुल्य बड़ा भारी शब्द करनेवाले वे वीर (श्येनाः) वाज पंछियोंकी नाईं वेगमें (अस्पृधन्) स्पर्धा करते हैं ।

३४८ (धी-रः) बुद्धिमान पुरुष इन ही वीरों के (एतानि निष्या) ये गुप्त कार्यकलाप (चिकेत) जान सकता है। (यत्) जिन्हें (मही) महान (पृश्निः) गौने अपने (ऊधः) दुग्धादायमें से दूध पिलाकर (जभार) पुष्ट किया है ।

३४९ (सा विद्) वह प्रजा (मरुद्भिः) वीर महतों के सहायता से (सु-वीरा) अच्छे वीरों से युक्त होकर (सनात्) हमेशा ही (सहन्ती) शत्रुका पराभव करनेहारी तथा (नृग्नं पुष्यन्ती) बलका संवर्धन करनेहारी (अस्तु) बने ।

३५० वे वीर शत्रु पर (यामं) हमले करनेके (येष्ठाः) प्रयत्न करनेहारे, (शुभा शोभिष्ठाः) अलंकारों से सुहानेवाले, (श्रिया) क्रांति से (सं-मिः) जुट जानेवाले तथा (ओजोभिः उग्राः) शारीरिक सामर्थ्य से उग्र स्वरूपवाले प्रतीत होते हैं ।

भाषार्थ— ३४६ किसीकोभी इनका जन्मवृत्तान्त ज्ञात नहीं, शायद वेही अपना जन्म जानते हों। ३४७ वीर सैनिक अपनी क्रांति बढानेके कार्यमें चढाऊपरी करते हैं, होड़ लगाते हैं। ३४८ इन वीरोंके श्रुतापूर्ण कार्य केवल बुद्धिमान पुरुषकोही विदित हैं। इन वीरोंका पोषण गौने अपने दुग्धके प्रदानसे किया है। [ ये गौँके अपनी माता समझनेवाले हैं । ] ३४९ समूची प्रजा शत्रु एवं वीर बने, वह अपना बल बढाती रहे और शत्रुका पराभव करती रहे। ३५० वे वीर शत्रुपर हमले चढानेमें तत्पर, शोभायमान, तेजस्वी, एवं सामर्थ्यवान हैं ।

टिप्पणी— [ ३४७ ] (१) वपं= बोना, फैलाना, फैलना, उत्पन्न करना। अभि-वपं = फैलाना, बोना, ढरना। (२) पू= (पवने) पवित्र करना, स्वच्छ करना, उन्मुक्त करना, [ ३४८ ] (१) निषयं= ढका हुआ, गुप्त, आश्रय-जनक। [ ३५० ] (१) येष्ठा= (येषु= प्रयत्न करना, चेष्टा करना, कोशिश करना + स्थ= स्थिर रहना) कोशिश करते हुए अटल खट रहनेवाले। या= जाना, (या+इष्ट) भयान्त वेगसे जानेवाले (अर्थात् शत्रुपर चढाई करते समय वेगसे जानेवाले। )



(३५१) उग्रम् । वः । ओर्जः । स्थिरा । शवासि । अर्ध । मृतऽभिः । गणः । तुर्विमान् ॥ ७  
 (३५२) शुभ्रः । वः । शुष्मः । कुष्मी । मनांसि । धुनिः । मुनिऽइव । शर्धस्य । धृष्णाः ॥ ८  
 (३५३) सनेमि । अस्त् । युगेत् । दिद्युम् । मा । वः । दुऽस्मतिः । इत् । प्रणक् । नुः ॥ ९  
 (३५४) प्रिया । वः । नाम । हुवे । तुराणांम् ।  
 आ । यत् । तृप्त् । मृतः । तुराणाः ॥ १० ॥

अन्वय — ३५१ व ओज उग्र शवासि स्थिरा मध मरुद्भि गण तुर्विमान् । ३५२ व शुष्म शुभ्र मनांसि कुष्मी धृष्णा शर्धस्य धुनि मुनि इव । ३५३ स-नेमि दिद्यु अस्त् युयोत्, व इर-मति इह न मा प्रणक् । ३५४ (हे) मरुत् । तुराणा व प्रिया नाम आ ये, यत् तुराणाता तृप्त् ।

अर्थ— ३५१ (व ओज) तुम्हारा शारीरिक सामर्थ्य (उग्र) उग्र स्वरूप का है और तुम्हारे (शवासि स्थिरा) सभी बल स्थिर है । (अध) और (मरुद्भि) वीर मरुतोंके कारणही (गण) तुम्हारा सघ (तुर्विमान्) सामर्थ्यवान हो चुका है । ३५२ (व शुष्म) तुम्हारा बल (शुभ्र) निष्कल है, तुम्हारे (मनांसि) मन शत्रुओंके बारेमें (कुष्मी) जाधसे भरे होत है जार (धृष्णा) शत्रुका धर्षण करने की तुम्हारे (शर्धस्य) सामर्थ्यश (धुनि) धग (मुनि इव) मुनिकी तरह मननपूजक होनेवाला है । ३५३ यह तुम्हारा (स नेमि) अत्यन्त तदिण आराका (दिद्यु) तेरास्वी हथियार (अस्त् युयोत्) हमसे दूर हटाओ । (व) तुम्हारी शत्रुको दूर करनेहारी बुद्धि (इह), यहाँपर (न) हमें (मा प्रणक्) विनष्ट न कर । ३५४ (हे) मरुत् । 'तुराणा व' (तुराणा व) त्वरित कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम) प्यारे नामसे तुम्हें (आ हुवे) युगता है । (यत्) जिसकीही (तुराणा) इच्छा करनेहारे तुम (तृप्त्) हत हो ।

भावार्थ— ३५१ इन वीरोंकी शक्ति कमा घटती नहीं, इतनाही नहीं अभिलष वह हमसा वशीला है ।

३५२ वीरोंका बल निष्कल है अतः यह, सधना कल्याण करनेके लिए जो कार्य करना है, उसमें उपयुक्त रहता । जो शत्रु है उसपरहः बोध करना उचित है और विचारसात मनुष्यके उत्प, आक्रमण न वना निश्चित करत समय सावधानीसे काम करना चाहिए ।

३५३ वीरोंका हथियार पुत्र उनका वह शत्रुको कुचलनकी भावना का बल शत्रुपरही प्रयुक्त होव । स्वकीय जनतापर उसका प्रयोग न होने पाव । (जो शत्रु शत्रुपर प्रयाग करनेके लिए है, उनका उपयाग अपनेही बाधवां तथा लोगोंपर नहीं करना चाहिए ।)

३५४ वीर सनिक अपना काय शीघ्रतासे करत हैं और तब अपने यशका वणन सुन लते हैं तब शत्रु हो जात है ।

टिप्पणी— [३५१] (१) शवासि स्थिरा स्थायी बल अर्थात् शत्रु चाहे जैसे आक्रमण कर ले तोभी या चाह जैसे आपत्तिया उठ लडा हों, तथापि इन बलोंमें दूनान न दीव पड । (२) गण तुर्विमान् = समूचा सघ बलवान, बुद्धिवान एव सतत वाधिष्णु रहनेवाला । (३) तुर्विस् बुद्धि, बल, शान । [३५२] (१) मुनि इव धृष्णा शर्धस्य धुनि = मनन करनेहार मानवकी हलचलये उत्प, शत्रुका विध्वंस करनेके लिए कामम आनेवाले सामर्थ्यश धग वशी सतर्कतासे निर्धारित करना चाहिए । अनिचारवश वा उपायलेपनसे यथही धागाधीनी नहीं मचानी चाहिए । (२) शुभ्र = (शुभ र) साधुसुधा निर्मल, शुभ, निष्कलक । (३) शुष्म धम = (स्य, अग्नि, वायु) शक्ति, बल तेज । शुष्मन् = बल, शक्ति का अग्नि । [३५३] (१) सनेमि = (सन्-पति) बहुत प्राचीन (सायण) । स-नेमि = (नेमि = परिष धारा वल्लभ शेर) अनिजय तीव्र धारासे युक्त ।

- (३५५) सुऽआयुधासः । इष्मिणः । सुऽनिष्काः । उत । स्वयम् । तन्वः । शुम्भमानाः ॥११॥  
 (३५६) शुचीं । वः । हव्या । मरुतः । शुचीनाम् । शुचिम् । हिनोमि । अध्वरम् । शुचिऽभ्यः ।  
 ऋतेन । सत्यम् । ऋतऽसापः । आयन् । शुचिऽजन्मानः । शुचयः । पावकाः ॥१२॥  
 (३५७) अंसेषु । आ । मरुतः । रादयः । वः । वक्षःऽसु । रुक्माः । उपऽशिथियाणाः ।  
 वि । विद्युतः । न । वृष्टिभिः । रुचानाः । अनु । स्वधाम् । आयुधैः । यच्छमानाः ॥१३॥

\* अन्वयः— ३५५ सु-आयुधासः इष्मिणः सु-निष्काः उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः । ३५६ (ह) मरुतः ! शुचीनां वः शुची हव्या, शुचिभ्यः शुचि अध्वरं हिनोमि, ऋत-साप-शुचि-जन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन् । ३५७ (हे) मरुतः ! वः अंसेषु रादयः आ, वक्ष-सु रुक्माः उप-शिथियाणाः, विद्युतः न, रुचानाः वृष्टिभिः आयुधैः स्व-धां अनु यच्छमानाः ।

अर्थ— ३५५ वे वीर (सु-आयुधासः) अच्छे हथियार समीप रखनेहारे, (इष्मिणः) वेगसे जानेहारे, (सु-निष्काः) सुन्दर मुहरोंके द्वार धारण करनेवाले (उत) और वे (स्वयं) अपनेही (तन्वः) शरीरोंको (शुम्भमानाः) सुशोभित करनेहारे हैं ।

३५६ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (शुचीनां व) पवित्र ऐसे तुम्हें (शुची हव्या) शुद्ध ही हविष्यान्न हम देते हैं, (शुचिभ्यः) विशुद्ध ऐसे तुम्हारे लिए (शुचि अध्वरं) पवित्र यज्ञको ही (हिनोमि) मैं करता हूँ । (ऋत-साप) सत्यकी उपासना करनेहारे, (शुचि-जन्मानः) विशुद्ध जन्मवाले, कुलीन (शुचयः) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र करनेवाले तुम (ऋतन) सत्यकी सहायतासे (सत्यं) अमरपनको (आयन्) पाते हो ।

३५७ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (वः अंसेषु) तुम्हारे कंधोंपर (खादयः आ) आभूषण तथा (वक्षःसु रुक्माः) छातीपर स्वर्णमुद्राओंके द्वार (उप-शिथियाणा) लटकते रहते हैं । (विद्युतः न) यिजलियोंके तुल्य (रुचानाः) चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) वर्षा करनेवाले हथियारोंकी सहायतासे (स्व-धां) धारकशक्ति बढ़ानेवाला पुष्टिकारक अन्न हमें (अनु यच्छमानाः) देते रहो ।

भावार्थ— ३५५ वीर सैनिकोंके हथियार अच्छे हैं और वे वेगसे हमला करनेवाले एवं घनाद्वय हैं । वे वस्त्रों एवं आभूषणोंसे अपने शरीर को सुशोभित करते हैं । ३५६ वीर पुरुष स्वयमेव विशुद्ध हैं और उनका धर्मांत निर्दोष है । वे शुद्ध भक्षण सेवन करते हैं और सत्यका पालन करते हैं । वे स्वयं पवित्र जीवन बिताते हुए दूसरों को पवित्र करते हैं । सत्यकी राहपर चलते हुए वे अमृतत्वको प्राप्त कर लेते हैं । ३५७ वीर सैनिकोंके कंधोंपर तथा वक्षस्थलोंपर आभूषण दीख पड़ते हैं । दामिनीकी दमकके तुल्य उनके हथियार चमक उठते हैं । इन अपने हथियारोंसे वे शत्रुदलकी घडिजियाँ उड़ा देते हैं और हमें पौष्टिक एवं श्रेष्ठ कोटिके अन्न दिया करते हैं ।

टिप्पणी— [ ३५५ ] ( १ ) निष्क = सुवर्ण, सोनेकी मुद्रा, स्वर्णका अलंकार । [ तन्वः शुम्भमानाः उत सु-निष्काः ] = वे वीर शारीरिक दृष्टया सुन्दर हैं और अलंकारोंसे भी शोभा एवं शरणाको बढ़ाते हैं । इष्मिन् = इष्ट अन्न तथा धनसे युक्त । [ ३५६ ] ( १ ) ऋत = ( Right ) सरलता । ( २ ) सत्य = ( Sooth ) सत्य । ( ३ ) साप = ( समवाये ) प्राप्त होना । ( ४ ) ऋत-सापः = ( ऋत = सत्य, साप = सम्मान देना, जोडना, पूजा करना ) सत्यकी उपासना करनेवाले ( Observers of law ) । [ ३५७ ] ( १ ) रादि = आभूषण, वलय, कँगन । ( २ ) वृष्टि = ( वृष् = बलवान होना ) बल, वर्षा ( किसी भी वस्तुकी यथेष्ट समृद्धि या विपुलता ) । ( ३ ) रुचानाः = ( रच् = प्रकाशित होना, सुन्दर दीख पडना, मिय होना ) प्रकाशमान ।

(३५८) प्र । वृध्न्या । वः । ईरते । महांसि । प्र । नामानि । प्रुडयज्यवः । तिरध्वम् ।  
 सहस्रियम् । दम्यम् । भागम् । एतम् । गृह्णमेधीयम् । मरुतः । जुषध्वम् ॥१४॥  
 (३५९) यदि । स्तुतस्य । मरुतः । अधिऽइथ । इत्या । विप्रस्य । वाजिनः । हवीमन् ।  
 मधु । रायः । सुवीर्यस्य । दातु । नु । चित् । यम् । अन्यः । आऽदभत् । अरावा ॥१५॥  
 (३६०) अत्यासः । न । ये । मरुतः । सुऽअञ्चः । यक्षऽदशः । न । शुभयन्त । मर्याः ।  
 ते । हर्म्येऽस्थाः । शिशवः । न । शुभ्राः । वत्सासः । न । प्रऽक्रीलिनः । पयःऽधाः ॥१६॥

अन्वय — ३५८ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! वः वृध्न्या महांसि प्र ईरते, नामानि प्र तिरध्वं, एतं सहस्रियं दम्यं गृह-मेधीयं भागं जुषध्वं । ३५९ (हे) मरुतः ! वाजिनः विप्रस्य हवीमन् स्तुतस्य यदि इत्या अधीयं, सु-वीर्यस्य रायं मधु दातु, अन्यः अ रावा नु चित् यं आदभत् । ३६० ये मरुतः अत्यासं न सु-अञ्चः, यक्ष-दशः मर्याः न शुभयन्त, ते हर्म्येऽस्थाः शिशवः न शुभ्राः, पयोऽधाः वत्सासः न प्र क्रीलिनः ।

अर्थ—३५८ हे (प्र-यज्यवः मरुतः ! ) पूज्य वीर मरुतो ! ( वः ) तुम्हारे ( वृध्न्या महांसि ) मौलिक धान्तरोय सामर्थ्य तथा बल ( प्र ईरते ) प्रकट होते हैं । तुम अपने ( नामानि ) यज्ञोक्तो ( प्र तिरध्वं ) पर तटको ले चलो, बड़ा दो । ( एतं ) इस ( सहस्रियं ) सहस्रावधि गुणोंसे युक्त ( दम्यं ) घरके ( गृह-मेधीयं ) गृहयज्ञके ( भागं ) विभागका तुम ( जुषध्वं ) सेवन करो ।

३५९ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वाजिनः ) अश्वयुक्त ( विप्रस्य ) शानी पुरुषकी ( हवीमन् ) हविष्याश्च प्रदान करते समय की हुई ( स्तुतस्य ) स्तुतिको ( यदि ) अगर ( इत्या ) इस प्रकार तुम ( अधीयं ) जानते हो, तो ( सु-वीर्यस्य ) अच्छी वीरतासे युक्त ( रायः ) धन ( मधु ) तुरन्तही उसे ( दातु ) दे दो । नहीं तो ( अन्यः ) दूसरा कोई ( अ-रावा ) शत्रु ( नु चित् ) सबमुचही ( यं ) उसे ( आदभत् ) विनष्ट कर डालेगा ।

३६० ( ये मरुतः ) जो वीर मरुत् ( अत्यासं न ) घुड़दोड़के घोड़ोंके तुल्य ( सु-अञ्चः ) उत्तम ढंगसे शीघ्रतया जानेवाले हैं, ( यक्ष-दशः ) यज्ञका दर्शन लेने आये हुए ( मर्याः न ) लोगोंके तुल्य जो ( शुभयन्त ) अपने आपको शोभायमान करते हैं, ( ते ) ये वीर ( हर्म्येऽस्थाः ) राजप्रासादमें रहनेवाले ( शिशवः न ) बालकों के समान ( शुभ्राः ) सुदानेवाले हैं और ( पयोऽधाः वत्सासः न ) दूधपर पले जानेवाले बालकों के समान ( प्र-क्रीलिनः ) अत्याधिक खिलोडीपनसे परिपूर्ण हैं ।

भावार्थ—३५८ वीरोंमें जो बल छिप चके हैं वे प्रकट हों और उनका यज्ञ दशदिशाओंमें प्रकट हो । गृहयज्ञके समय उनके लिए दिये हुए भागका ये सेवन करें । ३५९ अश्वदान करते समय शानीकी धारणाको यदि ये वीर समझ लें, तो ये उसे तुरन्त श्रुतासे पूर्ण धन दे दालें । अगर ऐसा न हुआ तो दूसरा कोई शत्रु उस सम्पत्तिको दबा बैठेगा । ३६० ये वीर सैनिक गतिमान, सुसोभित, सुन्दर तथा खिलोडी हैं ।

टिप्पणी— [ ३५८ ] ( १ ) प्र-तिर = मरुतोंके पार चल जाना, पैदल पहुँचना । ( २ ) वृध्न्य = शरीर, आकाश, मौलिक, अथवा, अतर्थात् । ( ३ ) दम्य-मं = घर, स्तनियक्षण, घरेलू धनाना, जो कर्मसे मनको परावृत्त करानेवाली शक्ति । दम्य = घरपर किया हुआ । ( ४ ) गृह-मेध = घरमें किया हुआ यज्ञ, गृहयज्ञका कर्तव्य यज्ञ, गृहस्थ । गृह-मेधीय = गृहस्थका दिया हुआ, घरके यज्ञका । [ ३५९ ] ( १ ) अरावा = ( अ-रावा ) दान न देनेवाला शत्रु, दुष्टामा ( दुष्ट लोग, शत्रु ) । ( २ ) दम् ( दम्भ ) = दुबाना ( नाश करना ) टगाना, जाना, दवाना । [ ३६० ] ( १ ) यक्ष = ( यक्ष पूजायां ) पूजा, यज्ञ, यक्षजातिका वीर ।

(३६१) दशस्यन्तः । नः । मरुतः । मृळन्तु । वरिवस्यन्तः । रोदसी इति । सुमेके इति सुडमेके ।  
 आरे । गोऽहा । नृऽहा । वधः । वः । अस्तु । सुम्नेभिः । अस्मे इति । वसवः । नमध्प्रम् ॥१७  
 (३६२) आ । वः । होवा । जोहवीति । सत्तः । सत्राचीम् । रातिम् । मरुतः । गृणानः ।  
 यः । ईवतः । वृपणः । अस्ति । गोपाः । सः । अद्वावी । हवते । वः । उन्धैः ॥१८  
 (३६३) इमे । तुरम् । मरुतः । रमयन्ति । इमे । सहः । सहसः । आ । नमान्ति ।  
 इमे । शंसम् । वनुप्यतः । नि । पान्ति । गुरु । द्वेषः । अरूपे । दधन्ति ॥१९॥

अन्वय.— ३६१ दशस्यन्त सुमेके रोदसी वरिवस्यन्त मरुत. न मृळन्तु (हे) वसव ! गो हा नृ-हा व वधः आरे अस्तु, सुम्नेभि अस्मे नमध्प्र। ३६२ (हे) वृपण. मरुत. ! सत्त सत्राचीं राति गुणान होता व. आ जोहवीति, यः ईवत गोपा अस्ति स अ द्वयावी वः उन्धै हवते। ३६३ रम मरुत तुरं रमयन्ति, इमे सह सहस. आनमान्ति, इमे शस वनुप्यत नि पान्ति, अरूपे गुरु द्वेष दधन्ति।

अर्थ— ३६१ शत्रुओंका (दशस्यन्त.) विनाश करनेहारे तथा (सुमेके रोदसी) सुस्थिर धावापृथ्वीको (वरिवस्यन्त.) आश्रय देनेहारे (मरुत) वीर मरुत् (न मृळन्तु) हमें सुखी बना दें। हे (वसव ! ) यज्ञानवाले वीर ! (गो-हा) गोवध करनेहारा (नृ-हा) तथा शत्रुदलम विद्यमान धीरोंको मार गिरानेवाला (व. वध) तुम्हारा आयुध हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे, तुम (सुम्नेभि.) अनेक सुखोंके साथ (अस्मे नमध्प्र) हमारी ओर आनेके लिए निकल पडो। ३६२ हे (वृपण मरुत ! ) दलवान वीर मरुतो ! (सत्त) अपने स्थानपर बैठ आ तथा (सत्रा-अर्चा) सभी जगह पहुँचनेवाले (राति) दानगी (गृणान) स्तुति करनेहारा एवं (होता) बुलानेवाला याजक (व आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है, (य) जो (ईवत गोपा) प्रगति करनेवालोंका सरक्षक ( अस्ति ) है, ( स ) वध ( अ-द्वयावी ) अनन्यभावासे युक्त होकर ( व ) तुम्हारी (उन्धै) स्तोत्रोंसे (हवते) प्रार्थना करता है। ३६३ (इमे मरुत) ये वीर मरुत् (तुर) तुराशील वीरोंको (रमयन्ति) आनन्द दते ह। (इमे) ये अपनी (सह) सहनशक्तिसे सहारे (सहस) विजयश्रीको (आ नमान्ति) झुकाते ह, पाते ह। (इमे) ये (शस) स्तोत्रना (वनुप्यत) आदर करनेहारे भक्तोंकी (नि पान्ति) रक्षा करते हैं। (अरूपे) शत्रुओं पर अपना (गुरु द्वेष) बड़ा भारी द्वेष (दधन्ति) करते ह।

भाषार्थ— ३६१ समूचे विश्वको सुख देनेहारे तथा शत्रुका नाश करनेवाले ये वीर हमें सुख दें। इनके जो आश्रयार शत्रुदलके सहायक हैं, ये हमपर न गिर पडें। उनके कारण हम मौतके मुहमें न चले जायें। हमें ये सभी प्रकारके सुख दे दें। ३६२ याजक इन वीरोंको यज्ञमें बुला लता है और वह प्रगतिशील जानकोंका सरक्षण करता है। वह छल कपटपूर्ण बर्ताव न करता हुआ वीरोंके काव्यका गायन करता है। ३६३ जा श्राद्ध कर्म करते हैं, उन्हें वीर पुरुष आनन्दित करते हैं, अपने पौरुषमें विजयी बनते हैं, भक्तोंका सरक्षण करते हैं और शत्रुओं परही अपना साग मोघ डालते हैं।

टिप्पणी— [ ३६१ ] ( १ ) सु-मेक = सुस्थिर। ( २ ) दशस्यन्त = ( दश = चषाचषाकर ताना, काट ताना, [नाश करना] विनाशक। ( ३ ) वरिवस्यन्त = स्थान देनेहारा, विश्राम देनेवाला। वरिवसु = स्थान, विश्राम, सुप्त। [ ३६२ ] ( १ ) सत्त = ( सद् = बैठना ) स्थापयत्त हुआ, अपनी जगह बैठनेवाला। ( २ ) राति = दान, उदार, मित्र, शृणु। ( ३ ) ईवत् = जानेवाला, ( प्रगति करनेवाला ) अत्यन्त बड़ा भन्व। ( ४ ) अ-द्वयाविन् = द्विधा भाव विचारों नहीं ( अनन्यभावासे प्रेरित ), अद्वैत एक बाहर अन्यही कुछ दो आचरण न करनेवाला। ( ५ ) गो-पा = गौका सरक्षक, सरक्षक। [ ३६३ ] ( १ ) तुर = वेगवान, शक्तिमान, अग्रगामी, प्रगतिशील, घायल, वेग। ( २ ) सहसु = बल, वेग, तेज, जल, विजय। ( ३ ) नम = श्रुता, सुदना, ( पाना ) ( ४ ) वनु = ( वन्द्याचनसम्भक्तिपु ) = सम्मान देना, पूजा

(३६४) इमे । रधम् । चित् । मरुतः । जुनन्ति ।  
भूमिम् । चित् । यथा । वसवः । जुपन्त ।  
अर्प । वाघध्वम् । वृषणः । तमांसि ।  
धत्त । विश्वम् । तनयम् । तोकम् । अस्मे इति ॥२०॥

(३६५) मा । वः । दाघ्रात् । मरुतः । निः । अराम ।  
मा । पश्चात् । दुध्म । रथ्यः । विऽभागे ।  
आ । नः । स्वाहेँ । भजतन । वसव्ये ।  
यत् । ईम् । सुऽजातम् । वृषणः । वः । अस्ति ॥२१॥

अन्वय — ३६४ इमे वसवः मरुतः यथा रधे चित् जुनन्ति भूमिं चित् जुपन्त, (हे) वृषणः । तमांसि अप वाघध्वं, अस्मे विश्वं तोकं तनयं धत्त ।

३६५ (हे) रथ्यः मरुत । व. दाघ्रात् मा निः अराम, वि-भाग पश्चात् मा दुध्म, (हे) वृषणः । य सु-जातं यत् ई अस्ति स्वाहेँ वसव्ये न आ भजतन ।

अर्थ- ३६४ (इमे) ये (वसवः) वसनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (यथा) जैसे (रधं चित्) समृद्धि-नाली मानवके निकट (जुनन्ति) जाते हैं, उसी प्रकार (भूमिं चित्) भटकनेवाले भीखमँगेके समीप भी ये (जुपन्त) जाते रहते हैं; हे (वृषण ! ) वलिष्ठ वीरो ! (तमांसि अप वाघध्वं) अंधेरे को दूर हटा दो और (अस्मे) हमारे लिए (विश्वं तनयं तोकं) सभी पुत्रपौत्रों-संतानों-को (धत्त) दे दो ।

३६५ हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे (दाघ्रात्) दानके स्थानसे हम (मा निः अराम) बहुत दूर न रहें । (वि-भागे) धनका बँटवारा होते समय (पश्चात् मा दुध्म) हमें सवके पीछे न रखो । हे (वृषण ! ) वलिष्ठ वीरो ! (वः) तुम्हारा (सु-जातं) उच्चकोटिका (यत् ई) जो कुछ धन (अस्ति) है, उम (स्वाहेँ वसव्ये) स्पृहणीय धनमें (नः) हमें (आ भजतन) सब प्रकारसे अंदाभागी करो ।

भावार्थ- ३६४ वीर सैनिक जिस प्रकार घनाड्योंका संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वे निधनोंका भी संरक्षण करते हैं । वीरोंको उचित है कि ये निधनभी खले जायँ उधर भँपियारी दूर करके मचको प्रनाशका भाग बटला दें । हमारे पुत्रपौत्रों-को सुरक्षित रख दें ।

३६५ हमें धनका बँटवारा ठीक समयपर मिल जाय ।

करना, उच्चार करना, हैंटना, भिय होना । (५) अररस् = जानेवाला, हिलनेवाला, दायु, शय्य (अ-प्रयच्छन्, सायनः ।) रा = देना, ररस् = देनेवाला, अ-ररस् = न देनेहारा, जो दान न देता हो- (कज्म, कृपण ।)

[ ३६४ ] (१) रध = (शय्य संसिद्धी) = घनिक, उदार, सुखी, दुःख देनेवाला, पूजा करनेहारा । (२) भूमि = (भ्रम् चलने = भटकना) मैसावात, शीघ्रता, इधर उधर घूमनेवाला (भीखमँगा) । (३) जुनु (गती) = जाना, हिलना ।

[ ३६५ ] (१) दाघ्रं = काटनेका हथियार, दान, दानका स्थान । दा+घ्रं = जिस दानसे प्राण-रक्षण होता हो, वह दान ।

(३६६) सम् । यत् । हनन्त । मन्युऽभिः । जनासः ।

शूराः । यद्हीषु । ओपधीषु । विशु ।

अध । स्म । नः । मरुतः । रुद्रियासः । आतारः । भूत । पृतनासु । अर्यः ॥२२॥

(३६७) भूरि । चक्र । मरुतः । पित्र्याणि ।

उक्थानि । या । वः । शस्यन्ते । पुरा । चित् ।

मरुतऽभिः । उग्रः । पृतनासु । साल्हा ।

मरुतऽभिः । इत् । सनिता । वाजम् । अर्वा ॥२३॥

अन्वय - ३६६ (हे) रुद्रियासः अर्यः मरुत ! यत् शूरा जनास यद्हीषु ओपधीषु विशु मन्युभिः न हनन्त अध पृतनासु न आतार भूत स्म ।

३६७ (हे) मरुतः ! पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र, व या पुरा चित् शस्यन्ते, उग्र मरुद्रिः पृतनासु साल्हा, मरुद्रिः इत् अर्वा वाजं सनिता ।

अर्थ- ३६६ हे (रुद्रियासः) महावीरके (अर्य) पूज्य (मरुतः!) वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम्हारे (शूराः जनास) शूर लोग ( यद्हीषु ) नदियों में ( ओपधीषु ) अरण्य में- वृक्षकुंजमें ( विशु ) प्रजा में ( मन्युभिः ) उत्साह-पूर्वक शत्रुपर ( सं हनन्त ) मिलकर हमला करते हैं ( अध ) तब इन ऐसे ( पृतनासु ) युद्धों में ( न ) हमारे ( आतारः भूत स्म ) संश्रक बने रहो ।

३६७ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! तुम ( पित्र्याणि ) पितरों के संबंध में ( भूरि ) बहुतसे ( उक्थानि ) स्तोत्र ( चक्र ) कर चुके हो, ( व ) तुम्हारे ( या ) इन स्तोत्रों की ( पुरा चित् ) पढ़लेले ( शस्यन्ते ) प्रशंसा होती है । ( उग्र ) उग्र स्वरूपवाला वीर ( मरुद्रिः ) मरुतोंकी सहायतासे ( पृतनासु ) युद्धों में शत्रुओं का ( साल्हा ) पराभव करता है, ( मरुद्रिः इत् ) वीर मरुतोंकी प्रेरणासे ( अर्वा ) घोड़ा भी ( वाजं ) युद्धक्षेत्रके ( सनिता ) अपने कार्य पूर्ण करता है ।

भाषार्थ— ३६६ वीर सैनिक जब उत्साहपूर्वक शत्रुपर हमले करते हैं, तब उनकी सहायता नदियोंमें, नरण्यांमें विद्यमान बने निकुंजोंमें तथा जनताके मध्य हुआ करती हैं । ऐसे युद्धोंमें वे हमारी रक्षा करें ।

३६७ वीर मरुत कवि हैं । उनके कान्धोंकी प्रशंसा सभी करते हैं और इनकी सहायतासे वीर सैनिक शत्रुओंको परास्त करते हैं तथा घोड़े भी युद्धमें अपना कार्य ठीक प्रकारसे निभाते हैं ।

टिप्पणी— [ ३६६ ] ( १ ) यद्= यद्वा, दानिमान, चपल, चंचल । यद्ही= नदी, आकाश, वृषी, प्रातःकाल का-सायकालका दिनका-रात्रिका भाग । युद्ध तीन स्थलोंमें हुआ करते हैं । ( १ ) यद्हीषु= नदियोंके स्थलमें, नदी छाँवते समय हमले होते हैं । ( २ ) ओपधीषु= नगरोंमें, मवन वृक्षनिकुंजोंमें त्रिरे दगसे बैठकर शत्रुपर चढ़ाई की जाती हैं और ( ३ ) विशु= जनतामें, नगरोंमें चर्चा वास्तव्यों के मध्य, नगर कस्बोंमें लेनेके लिए । इस भाँति तीन प्रकारके समारोंमें वे वीर हमें बचायें । ( २ ) ओपधी= ( दोपधी, निरक्त ) शरीरके दोष हटानेके लिए उपयुक्त औषधि ( ओप ) वेन ( धी ) धारण करनेहारी वनस्पति, जगल, कुज, अरण्य । [ ३६७ ] ( १ ) उग्रं= वाहय, श्लोक, सोन, यज्ञ । ( २ ) वाजं= भल, युद्ध, जल, बल । ( ३ ) साल्हा= ( मरु- पराभव करना, जीतना ) पराभव करनेद्वारा, विजिता । ( ४ ) सन्= ( सम्भवी ) विभाग करना, सेवन करना, पाना, ग्रिय होना, सम्मान देना । मरुतोवे कवि होनेके मध्यन्धमे बहेश २००, २०१, २०४, २०५; ३९३ मर्मोंमें देखिए ।

(३६८) अस्से इति । वीरः । मरुतः । शुष्मी । अस्तु । जनानाम् । यः । असुरः । विडधर्ता ।  
 अपः । येन । सुदक्षितये । तरेम । अध । स्मम् । ओकः । अभि । वृः । स्याम् ॥२४॥  
 (३६९) तत् । नः । इन्द्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । यनिनः । जुपन्त ।  
 शर्मन् । स्याम् । मरुताम् । उपसस्ये । यूयम् । पात । स्तस्तिर्भिः । सदा । नः ॥२५॥

( क्र० ७५७१-७ )

(३७०) मध्यः । वः । नाम । मारुतम् । यज्ञज्ञाः । प्र । यज्ञेषु । शर्वसा । मुदन्ति ।  
 ये । रेजयन्ति । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति । पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । अर्यासुः । उग्राः ॥१॥

जन्म्य.—३६८ हे मरुतः ! य असु-र जनाना विधर्ता अस्से वीरः शुष्मी अस्तु, येन सु-क्षितये अप  
 तरेम, जघ व स्वं ओक् अभि स्याम् । ३६९ इन्द्र. मित्र वरुणः अग्नि. आप ओषधी यनिन नः तत्  
 जुपन्त, मरुतां उप-स्ये शर्मन् स्याम्. यूयं स्वस्तिभिः सदा न पात । ३७० ( हे ) यज्ञज्ञाः । वः मारुतं  
 नाम मध्य यज्ञेषु शर्वसा प्र मदन्ति, यत् उग्रा अर्यासु, ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति, उत्सं पिन्वन्ति ।

अर्थ- ३६८ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( य ) जो अपना (असु-र.) जीवन देकर ( जनानां वि धर्ता )  
 लोगों का विशेष ढंगसे धारण करता है वह ( अस्से वीर ) हमारा वीर ( शुष्मी अस्तु ) बलिष्ठ रहे ।  
 ( येन ) जिनकी सहायतासे हम ( सु क्षितये ) उत्तम निवास करने के लिये ( अप. ) समुद्रको भी ( तरेम )  
 तैरकर चले जाते हैं, ( अध ) और ( न ) तुम्हारे मित्र बनकर हम ( स्वं ओक् ) अपने निजी घरमें ( अभि  
 स्याम् ) सुखपूर्वक निवास करते ह ।

३६९ ( इन्द्र ) इन्द्र, ( मित्र. ) मित्र, ( वरुण. ) वरुण, ( अग्नि. ) अग्नि, ( आपः ) जल, ( ओषधी. )  
 औषधियों तथा ( यनिन ) वनके पेड़ ( न तत् ) हमारा यह स्त्रोत्र ( जुपन्त ) प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं ।  
 ( मरुतां उप स्ये ) वीर मरुतों के निम्नतम सहवास में हम ( शर्मन् स्याम् ) सुखसे रहे । हे धीरो !  
 ( यूयं ) तुम ( स्वस्तिभिः ) बल्याणकारक उपायों से ( सदा ) हमेशा ( नः पात ) हमारी रक्षा करो ।

३७० हे ( यज्ञज्ञा ! ) पूज्य धीरो ! ( य मारुतं नाम ) तुम वीर मरुतों का नाम सचमुच ही  
 ( मध्यः ) मिठासका चोतक है । ये वीर ( यज्ञेषु ) यज्ञों में ( शर्वसा ) बलके कारण ( प्र मदन्ति ) अतीव  
 हर्षित एवं संतुष्ट हो उठते हैं । ( यत् ) जब ये ( उग्रा. ) उग्र वीर ( अर्यासु ) शत्रुओंपर चढ़ाई करने  
 जाने लगते हैं तब ( ये ) ये ( उर्वी चित् ) बड़ी विस्तीर्ण ( रोदसी ) आकाश एवं पृथ्वी को भी ( रेजयन्ति )  
 विचलित, प्रभ्रमित कर डालते हैं और ( उत्सं पिन्वन्ति ) जलप्रवाहको भी उहाँ देते हैं ।

भाषार्थ- ३६८ अपने जीवनका बलिदान करके समूची जनताका संरक्षण करनेहारा हमारा पुत्र बलवान वीर बने ।  
 हमारा निवास सुप्रसन्न हो, हमलिये हम वीरकी सभी कठिनाइयों दूर करेंगे और वीरोंके मित्र बनकर अपने स्थानमें  
 सुनसे रहेंगे । ३६९ हमारा स्त्रोत्रका सेवन सभी देव बरहें । वीरोंके समीप हम सर्वथे जीवनयात्रा विधाय । वीर कल्याण-  
 वर्धक साधनों से हमारी रक्षा करें । ३७० यज्ञके कारण हर्षित होनेवाले ये वीर यज्ञमें अपनी सामर्थ्यसे प्रसन्नचला  
 हो जाते हैं । जब ये वीर शत्रुओंपर आक्रमण कर बैठते हैं तब समूची पृथ्वी दहल उठती है और उस समय ये  
 जलप्रवाहोंको भूमिपर प्रवर्तित कर देते हैं । इनके वेगपूर्ण तथा विद्युत्प्रति से चलाये हमलियोंके कलखरूप सत्कारभरमें  
 कंपर्षी पड़ा हो जाती है और जलप्रवाह बहने लगते हैं ।

टिप्पणी— [ ३६८ ] ( १ ) अप = जल्पवाह, गल, कर्म, पण । ( २ ) नृ = लेर जाना, हावी बाना, जीवना,  
 नाश करना, किसी के चारने का जाना । [ ३७० ] ( १ ) नाम = नाम, यज्ञ, वीरि ।

(३७१) निःचेतारः । हि । मरुतः । गृणन्तम् । प्रऽनेतारः । यजमानस्य । मन्म ।  
 अस्माकम् । अद्य । विद्वेषु । वहिः । आ । वीतये । सदत् । पिप्रियाणाः ॥२॥  
 (३७२) न । एतावत् । अन्ये । मरुतः । यथा । इमे । भ्राजन्ते । रुक्मैः । आयुधैः । तनूमिः ।  
 आ । रोदसी इति । विश्वऽपिशः । पिशानाः । समानम् । अञ्जि । अञ्जते । शुभे । कम् ॥३॥  
 (३७३) ऋधक् । सा । वः । मरुतः । दिद्युत् । अस्तु । यत् । वः । आगः । पुरुषता । कराम ।  
 मा । वः । तस्याम् । अपि । भूम । यजत्राः । असे इति । वः । अस्तु । सुऽमतिः । चर्निष्ठा ॥४॥

अन्वयः— ३७१ (हे) मरुतः ! गृणन्तं नि-चेतारः हि, यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः, पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विद्वेषु वीतये वहिः आ सदत् । ३७२ इमे मरुतः रुक्मैः आयुधे तनूमिः यथा भ्राजन्ते, न एतावत् अन्ये, विश्व-पिश रोदसी पिशानाः शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते । ३७३ (हे) यजत्राः मरुतः ! यत् व. आग पुरुषता कराम सा व दिद्युत् ऋधक् अस्तु, वः तस्यां अपि मा भूम, असे वः चर्निष्ठा सु-मति अस्तु ।

अर्थ— ३७१ हे (मरुत ! ) वीर मरुतो ! तुम ( गृणन्त ) काव्यका सृजन करनेवालोंको ( नि-चेतारः हि ) इकट्ठे करते हो और ( यजमानस्य ) याजक के ( मन्म ) मननीय काव्यका ( प्र-नेतार ) निर्माता भी हो । ( पिप्रियाणाः ) सदा हर्षित एवं प्रसन्न रहनेवाले तुम ( अद्य ) आज ( अस्माकं विद्वेषु ) हमारे यज्ञमें ( वीतये ) हविष्याशका सेवन करनेके लिए इस ( वहिं ) कुशामनपर ( आ सदत् ) आकर बैठो ।

३७२ ( इमे मरुतः ) ये वीर मरुत् ( रुक्मैः ) स्वर्णमुद्राओंके हारोंसे ( आयुधैः ) हथियारोंसे तथा ( तनूमि ) अपने शरीरोंसे भी ( यथा भ्राजन्ते ) जिस भाँति जगमगाते हैं ( न एतावत् अन्ये ) उस प्रकार दूसरे कोई नहीं प्रकाशमान हो उठते हैं । ( विश्व-पिशः ) सजको तेजस्वी बनानेहारे तथा ( रोदसी ) बुलोक एवं भूलोकको भी ( पिशाना- ) संघारते हुए वे वीर ( शुभे ) शोभाके लिए ( समानं अञ्जि ) सदृश वीरभूषण या गणवेश पहनते हैं, प्रकाशमान होते हैं ।

३७३ हे ( यजत्रा मरुतः ! ) पूज्य वीर मरुतो ! ( यत् ) यद्यपि हमसे ( व आगः ) तुम्हारा अपराध ( पुरुष-ता कराम ) मानवताको भूल करना, अपराध करना, स्वाभाविक होनेसे हुआ हो, तो भी ( सा वः ) वह तुम्हारा ( दिद्युत् ) चमकनेवाला सङ्घ हमसे ( ऋधक् अस्तु ) दूर रहे, ( वः ) तुम्हारे ( तस्यां ) उस आयुधके समीप हम ( अपि ) तनिकभी ( मा भूम ) न रहे । ( असेम् ) हमारे लिए अनुकूल ( यः ) तुम्हारे ( चर्निष्ठा ) अन्न देनेकी ( सु मति अस्तु ) अच्छी बुद्धि हो ।

भाषार्थ— ३७१ ये वीर काव्य बनानेवालोंकी एकत्रिण करनेवाले तथा स्वयंभी काव्यकी रचना करनेवाले हैं । अतः हमारे यज्ञमें वे आ जायँ और भासनपर बैठ हविष्याशका ग्रहण तथा सेवन कर लें । ३७२ ये वीर आभूषण एवं हथियार धारण करके बड़े ही अन्दे ढंगसे अपने आरको भँजारते हैं और दूसरे लोगोंकोभी सुशोभित करते हैं । ये सभी वीर समान अलङ्कार या गणवेश पहनते हैं । ३७३ हमसे भूलें, गलतियाँ होना स्वाभाविक है, क्योंकि हम मानव ही हैं । अतः अगर हमसे इन वीरोंका कोई अपराध हुआ हो, तोभी वे कृपया हमपर हथियार न चलायँ । हाँ, हमें यथेष्ट अन्न प्रदान करनेकी इनकी सद्बुद्धि हमेशा हमारी ओर मुड़ जाए ।

टिप्पणी— [ ३७१ ] ( १ ) नि + चि = झूठना, इकट्ठा करना, घटोरना । ( २ ) मन्म = इच्छा, स्तोत्र, मनन करने योग्य काव्य । ( ३ ) प्र + नी = ले चलना, प्रवृत्त करना, आधार देकर चलाना । प्रणेता = निर्माण करनेवाला नेता, पथप्रदर्शक । [ ३७२ ] ( १ ) अञ्ज = स्वभावदर्शन करवाना, दर्शाना, सम्मान देना, अलङ्कृत करना, ( मंत्र ७ देखिये ) । अञ्जि- सैनिक



(३७४) कृते । चित् । अग्र । मरुतः । रणन्त । अनवघातः । शुचयः । पावकाः ।  
प्र । नः । अवत । सुमतिभिः । यजत्रा ।

प्र । वाजेभिः । तिरत । पुण्यसे । नः ॥ ५ ॥

(३७५) उत । स्तुतासः । मरुतः । व्यन्तु । विश्वेभिः । नामभिः । नरः । हवीषि ।  
ददात । नः । अमृतस्य । प्रऽजायै ।  
जिघृत । शयः । सनुता । मघानि ॥ ६ ॥

अन्वयः- ३७४ अन्-अवघास शुचय पावकाः मरुत अत्र कृते चित् रणन्त, (हे) यजत्राः ! सु-मतिभिः  
प्र अवत, न-वाजेभि- पुण्यसे प्र तिरत ।

३७५ उत विश्वेभिः स्तुतास नरः मरुतः हवीषि व्यन्तु, नः प्रजायै अ-मृतस्य ददात, सनुता  
रायः मघानि जिघृत ।

अर्थ- ३७४ ( अन्-अवघासः ) अनिदनीय ( शुचय ) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र  
करनेहारो ये ( मरुतः ) वीर मरुत् ( अत्र कृते चित् ) यहाँपर हमारे चलाये हुए कर्ममें-यज्ञमें ( रणन्त )  
रममाण हों, हे ( यजत्राः ! ) पूजनीय वीरो ! ( नः ) हमारी तुम ( सु-मतिभिः ) अच्छी बुद्धियोंसे ( प्र अवत )  
भली भाँति रक्षा करो । ( नः ) एम ( वाजेभिः ) अश्वोंसे ( पुण्यसे ) पुष्ट हों, इस लिए हमें संकटोंसे  
( प्र तिरत ) परे ले चलो ।

३७५ ( उत ) निश्चयपूर्वक ( विश्वेभिः नामभि ) सभी नामोंसे ( स्तुतासः ) प्रशंसित ये ( नरः  
मरुतः ) नेता वीर मरुत् ( हवीषि व्यन्तु ) हविष्यत्त प्राप्त करें । हे वीरो ! ( नः प्रजायै ) हमारी प्रजाको  
( अ-मृतस्य ) अमरणका ( ददात ) प्रदान करो और ( सनुता रायः ) आनन्ददायक धन तथा ( मघानि )  
सुखोंकोभी ( जिघृत ) दे दो ।

भाषार्थ- ३७४ ये वीर निष्कलक, विभुद तथा पवित्रता कानेहारो हैं । हम जिस कार्यका सूत्रगत करने चले हैं,  
उसमें ये रममाण हो । यह कार्य उन्हें अश्व लगे । ये हमारी रक्षा करें और अश्व अश्वसे हमारा पोषण हो, इसलिये  
हमें संकटोंसे छुड़ा दें ।

३७५ प्रशस्तनीय वीर सभी प्रकारके उत्तम अन्न प्राप्त कर लायें । समूची प्रजाको अविच्छिन्न सुख प्रदान  
करें और सभी भाँतिके धन एवं सम्पत्ति प्राप्त कर दें ।

भरने वारीरर ( समाने अत्र Uniform ) समानरूपका वेश धर देते हैं । ( १ ) पिशु = आकार देना, सजाना,  
व्यवस्थित होना, प्रकाशमान होना, तैयार रहना, अलकृत करना ।

[ ३७३ ] ( १ ) क्षधन्-( ५ ) = शूधक्, दूर । ( २ ) वानिष्ठा = ( वनस्-स्थ ) बहुतसा अन्न देनेहारी,  
दायादगुणमे स्थिर । [ आग. पुरुषता कराम- भूलें करना मानवी स्वभावके अनुकूल है- To err is human ]

[ ३७४ ] ( १ ) प्र-तिर- = पहले तत्पर जाना, उस पार चले जाना । ( २ ) कृत = कृत्य, कर्म, श्रवण,  
सेवा, परिणाम ।

[ ३७५ ] ( १ ) वी = ( गति-प्राप्ति-प्रजनन-कामि-प्रसन्न सादनेषु ) = लाना, उत्पन्न करना,  
पाना, लाना । ( २ ) सनुत = सत्यपूर्ण, आनन्ददायक, मंगल, शिव । ( ३ ) मघ = सुख, दान, सम्पत्ति । ( ४ )  
शु = देना ।

(३७६) आ । स्तुतासः । मरुतः । विश्वे । ऊती । अच्छ । सूरीन् । सर्वज्ञाता । जिगात ।  
ये । नः । त्मना । शतिनः । वर्धयन्ति । यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥७॥

( ऋ० ७।५।१-६ )

(३७७) प्र । साकृन् उक्षे । अर्चत । गणाय । यः । दैव्यस्य । धाम्नः । तुविष्मान् ।  
उत । क्षोदन्ति । रोदसी इति । महिद्वा । नक्षन्ते । नार्कम् । निःस्र्कतेः । अवंशात् ॥१॥  
(३७८) जन्ः । चित् । वः । मरुतः । त्वेष्येण । भीमासः । तुविष्मन्वयः । अयासः ।  
प्र । ये । महःभिः । ओजसा । उत । सन्ति । विश्वः । वः । यामन् । भयते । स्वःऽदृक् ॥२॥

अन्वयः— ३७६ (हे) स्तुतास मरुतः ! विश्वे सर्व-ताता सूरीन् अच्छ ऊती आ जिगात, ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात । ३७७ यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान् साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत, उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति, महित्वा रोदसी नार्कं नक्षन्ते । ३७८ (हे) भीमासः तुविष्मन्वयः अयास मरुतः ! वः जन्ः त्वेष्येण चित्, उत ये महोभि ओजसा प्र सन्ति, वः यामन् स्वः-दृक् विश्वः भयते ।

अर्थ— ३७६ हे (स्तुतासः मरुतः ! ) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी लोग उस (सर्व ताता) सभी जगह फैलनेवाले यक्षर्म में काम करनेवाले (सूरीन् अच्छ) विद्वानोंकी ओर (ऊती) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ जिगात) आओ । (ये) जो तुम (त्मना) स्वयंही (शतिनः नः) हम जैसे सैकड़ों मानवोंको (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं । (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) सदैवके लिए (नः पात) हमारी रक्षा करो । ३७७ (य) जो (दैव्यस्य धाम्नः) दिव्य स्थान का (तुविष्मान्) शाता है, उस (साकं-उक्षे) संघ के बलको धारण करनेहारि (गणाय) वीरों के समूहकी (प्र अर्चत) पूजा करो । (उत) क्योंकि ये वीर (अवंशात्) वंश के विनाशरूपी (निर्ऋते) आपत्ति को (क्षोदन्ति) चकनाचूर कर देते हैं, विनष्ट करते हैं, और (महित्वा) वडप्पनसे (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी तथा (नार्कं) स्वर्ग के मध्य (नक्षन्ते) जा पहुँचते हैं, व्याप्त होते हैं । ३७८ हे (भीमासः) भीषण रूपधारी, (तुविष्मन्वय) अत्यंत उतसाह से परिपूर्ण एवं (अयास मरुतः ! ) वेगवान वीर मरुतो ! (वः जन्) तुम्हारा जन्म (त्वेष्येण चित्) तेजस्वितासे युक्त है, (उत) उसी प्रकार (ये महोभि) जो महत्त्वसे तथा (ओजसा) शारीरिक बलसे (प्र सन्ति) प्रसिद्ध हैं, ऐसे (व) तुम्हारे (यामन्) शत्रुदलपर हमले करते समय (स्वः-दृक्) आकाश की ओर दृष्टि देकर (विश्वः भयते) समूचा प्राणिसमूह भयभीत हो उठता है ।

भावाार्थ— ३७६ ये वीर सैकड़ों मानवोंका सवर्धन करते हैं । इस यज्ञकर्ममें जो विद्वान् कार्यमें निरत हुए हैं, उनकी रक्षाका भार ये वीर उठाएँ और कल्याण करनेके सभी साधनोंसे हम सबकी रक्षा करें । ३७७ ये वीर उस दिव्य स्थानको जानते हैं, जहाँ पहुँचनेकी इच्छा सबके मनमें उठ खड़ी होती है । इन वीरोंमें सांघिक बल विद्यमान है, इसीलिए इनका सत्कार करो । ये वंशनाशकी घोर आपत्ति से बचाते हैं और अपने वडप्पनसे भूगंडल, आकाश एवं स्वर्गमें भी अप्रतिहत संचार करते हैं । ३७८ ये वीर सैनिक बड़ेही उतसाही एवं प्रभावी हैं । उनका जन्मही तेजस्वी वृद्धि करनेके लिए है । अपने बलसे तथा प्रभावसे वे सभी जगह प्रसिद्ध हैं । जब वे शत्रुपर आक्रमण कर बैठते हैं, तब उनके प्रचण्ड वेगसे सभी जीवजन्तु भयभीत हो जाते हैं ।

टिप्पणी— [ ३७६ ] (१) सर्व-ताता= बड़, जिसका परिणाम सभी जगह फैल सके ऐसा अच्छा कर्म । (२) ताति= वंश, फैलनेवाला । [ ३७७ ] (१) तुविष्= वृद्धि, शक्ति, ज्ञान । (२) निर्ऋतिः= नाश, विपत्ति, संकट,

(३७९) वृहत् । वयः । मघर्वत्ऽभ्यः । दधात । जुजोपन् । इत् । मरुतः । सुऽस्तुतिम् । नः । गतः । न । अध्वा । वि । तिराति । जन्तुम् । प्र । नः । स्पार्हाभिः । ऊतिऽभिः । तिरेत ॥३॥  
 (३८०) युष्माऽऊतः । विप्रः । मरुतः । शतस्वी । युष्माऽऊतः । अर्वा । सहुरिः । सहस्री । युष्माऽऊतः । सम्-राट् । उत । हन्ति । वृत्रम् । प्र । तत् । वः । अस्तु । धृतयः । देष्णम् ॥४॥

अन्वयः— ३७९ (हे) मरत ! मघ वद्भ्य वृहत् वयः दधात, न सु-स्तुतिं जुजोपन् इत्, गतः अध्वा जन्तुं न वि तिराति, नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्र तिरेत ।

३८० (हे) मरतः ! युष्मा-ऊतः विप्र- शतस्वी सहस्री, युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः, उत युष्मा-ऊतः सम्- राट् वृत्रं हन्ति, (हे) धृतयः ! वः तत् देष्णं प्र अस्तु ।

अर्थ— ३७९ (हे मरतः ! ) वीर मरतो ! ( मघ-वद्भ्यः ) धनिकों के लिए ( वृहत् वयः ) बहुत आरोग्य एवं सुदीर्घ जीवन ( दधात ) दे दो । ( नः सु-स्तुतिं ) हमारी अच्छी सराहना का तुम ( जुजोपन् इत् ) सेवन करो । तुम ( गतः अध्वा ) जिस राहपरसे जा चुके हो, वह मार्ग ( जन्तुं ) प्राणी को बिलकुल ( न तिराति ) चिनष्ट नहीं करेगा । उसी प्रकार ( नः ) हमारा ( स्पार्हाभिः ऊतिभिः ) स्पृहणीय संरक्षक शक्तियों से ( प्र तिरेत ) संवर्धन करो ।

३८० हे ( मरतः ! ) वीर मरतो ! ( युष्मा-ऊतः ) तुमसे सुरक्षित हुआ, ( विप्रः ) शानी मनुष्य ( शतस्वी सहस्री ) सैकड़ों तथा हजारों प्रकार के धनसे युक्त होता है । ( युष्मा-ऊतः ) जिसकी रक्षा एवं देवभाल तुमने की हो, ऐसा ( अर्वा ) घोडातरु ( सहुरिः ) सहनशक्तिसे युक्त होता है- विजयी बनता है । ( युष्मा-ऊतः ) तुम्हारी सहायतासे सुरक्षित बना हुआ ( सम्-राट् ) सार्वभौम नरेश ( वृत्रं ) निरोधक दुश्मनोंको ( हन्ति ) मार डालता है । हे ( धृतयः ! ) शत्रुओंको हिलानेवाले वीरो ! ( वः तत् ) तुम्हारा वह ( देष्णं ) दान हमें ( प्र अस्तु ) पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध हो ।

भावार्थ— ३७९ जो धनिक है, उन्हें उत्तम आरोग्य तथा दीर्घ जीवन मिले । जिस राहपरसे वीर पुरुष चले हैं, उसपर उनके अष्टे प्रबंधके कारण अब किसीभी की कुछ कष्ट नहीं उठाना पड़ता है और इनकी संरक्षक शक्ति उधर काम कर रही हैं, अतः सभी की उत्तम रक्षा हो रही है ।

३८० यदि ये वीर किसी मानव के संरक्षण का धीना उठा लें, तो वह अवश्यही धनाढ्य, विजयी, एवं सार्वभौम बनता है ।

शाप, पृष्ठीना तल । ( ३ ) ध्रुव् ( गतौ सपेपणे च ) = जाना, कुचलना, चकनाचूर करना । ( ४ ) नक्ष् ( गतौ ) = समीप भावा, पहुँचना । ( ५ ) अ-वंदा = निर्बंध होना, वंशनाश । अ-वंशात् निर्गति = निर्बंध हो जानेका भय । यह बड़ा गतरनाक है, क्योंकि संततिसातत्यसे अमरपन की प्राप्ति होती है । ( शिल्पि-प्रजाभिः अमृतत्वं । ऋग्वेद ५।१।१० ) । [ ३७८ ] ( १ ) अयः = गवि, वेग, चवर्ह, हमला । ( २ ) यामन् = गवि, जाना, आक्रमण, हमला । ( ३ ) स्वर-टक् = अपने आत्मिक ( २ ) प्रकाशकी ओर दृष्टिपात करनेहारा, स्वर्ग का विचार करनेहारा, आकाश की ओर टकटकी लगाकर देखनेवाला । [ ३७९ ] ( १ ) मघ = सुख, दान; संपत्ति । ( २ ) वयस् = अन्न, आरुष्य, जीवन, शक्ति, हविष्यान्न, आरोग्य । ( प्रायः देखा जाता है कि धनिक लोग रोगी, क्षीण, अल्पायु तथा संतानविहीन होते हैं, इसीलिए यहाँपर जो यह प्रतिपादन किया है कि धनाढ्य पुरुषोंको दीर्घ जीवन एवं आरोग्य मिले, वह बिलकुल उचित है । ) [ ३८० ] ( १ ) सहुरि ( सह मर्षणे वृत्तौ च ) = बरदास करनेहारा, पराभव करनेवाला, विजयी, पृथ्वी, सूर्य । ( २ ) वृत्र = ( वृन् आवरणे ) दायु, मेघ, अंधेरा, आवाज, घेरनेवाला दुश्मन । ( ३ ) देष्णं = दान, देन ।

(३८१) तान् । आ । रुद्रस्य । मीळ्हुपः । विवासे । कुवित् । नंसन्ते । मरुतः । पुनः । नः ।  
यत् । सस्वर्ता । जिहीळिरे । यत् । आविः । अर्व । तत् । एनः । ईमहे । तुराणाम् ॥५॥

(३८२) प्र । सा । वाचि । सुस्तुतिः । मघोनाम् । इदम् । सुस्तुक्तम् । मरुतः । जुपन्त ।  
आरात् । चित् । द्वेषः । वृषणः । युयोत । यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

(श्र० ७५११-११)

(३८३) यम् । त्रायध्वे । इदम् इदम् । देवासः । यम् । च । नयथ ।  
तस्मै । अग्ने । वरुण । मित्र । अर्यमन् । मरुतः । शर्म । यच्छत ॥१॥

अन्वयः— ३८१ मीळ्हुपः रुद्रस्य तान् आ विवासे, मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते, यत् सस्वर्ता यत्  
आविः जिहीळिरे तुराणां तत् एनः अर्वा ईमहे ।

३८२ मघोनां सु-स्तुतिः सा वाचि प्र, मरुतः इदं सूक्तं जुपन्त, (हे) वृषणः । द्वेषः आरात्  
चित् युयोत, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।

३८३ (हे) देवासः । यं इदं-इदं त्रायध्वे यं च नयथ, तस्मै (हे) अग्ने । वरुण । मित्र ।  
अर्यमन् । मरुतः । शर्म यच्छत ।

अर्थ— ३८१ (मीळ्हुपः) बलिष्ठ (रुद्रस्य तान्) रुद्रके उन वीरोंकी (आ विवासे) में सेवा करता हूँ।  
(मरुतः) वे वीर मरुत् (नः) हमें (कुवित्) अनेक बार तथा (पुन) बार-बार (नंसन्ते) सहायता पहुँचाते  
हैं, हममें सामिलित होते हैं। (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त या (यत् आवि.) प्रकट पापोंके कारण वे  
(जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं, उन (तुराणां) शोषतासे अपना कर्तव्य करनेवालों  
के संबंधमें किया हुआ वह (एनः) पाप हम अपनेसे (अर्वा ईमहे) दूर हटाते हैं।

३८२ (मघोनां) धनाढ्य वीरोंकी यह (सु-स्तुतिः) उत्कृष्ट सराहना है, (सा) वह सदैव  
हमारे (वाचि प्र) संभाषणमें निवास करे। (मरुतः) वीर मरुत् (इदं सूक्तं) इस सूक्तका (जुपन्त)  
सेवन करें। हे (वृषणः) बलिष्ठ वीरो ! हमारे (द्वेष) द्वेषाओं को (आरात् चित्) जब तक वे दूर हैं,  
तभीतक हमसे (युयोत) दूर करो। (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) हमेशा  
(नः पात) हमारी रक्षा करो।

३८३ हे (देवासः) ! देवो ! (यं) जिसे तुम (इदं-इदं) इस भाँति (त्रायध्वे) सुरक्षित रखते  
हो (यं च) और जिसे अच्छी तरहसे (नयथ) ले चलेते हो, (तस्मै) उसे हे (अग्ने ! ) अग्ने !  
हे (वरुण) ! वरुण ! हे (मित्र) ! मित्र ! हे (अर्यमन्) ! अर्यमन् ! तथा हे (मरुतः) ! वीर मरुतो !  
(शर्म यच्छत) सुख दे दो।

भावार्थ— ३८१ हम इन वीरोंकी सेवा करते हैं, इसलिये वे बार-बार हमारी मदद करते हैं। पाप कानसे उन्हें  
क्रोध आता है, अतः हम पापी विचारधाराको बहुत दूर हटाते हैं।

३८२ इन वीरोंके संबंधमें यह काव्य हमारे मुँहमें सदैव रहने पाय। जबलौ हमारे शत्रु सुदूर स्थानोंमें हैं,  
समीतक उनका नाश वे वीर सैनिक करें और हमारी रक्षाका अच्छा प्रबंध करके कल्याण करें।

३८३ जिसकी रक्षाका भार वीर अपने ऊपर ले लेते हैं, वह सुखी बनता है।

टिप्पणी— [३८१] (१) नस्= पहुँचना, समीप जाना, छुटना, नष्ट होना, सामने रखा होना। (२) एनस्=  
पाप, अपराध, दोष, त्रुटि। (३) जिहीळिरे = (देह बनादरे) अनादर दर्शाया, धिंभार किया, दुताारा।

- (३८४) युष्माकम् । देवाः । अर्चसा । अहनि । प्रिये । ईजानः । तरति । द्विपः ।  
 प्र । सः । क्षयम् । तिरिते । वि । महीः । इपः । यः । वः । वराय । दाशति ॥२॥
- (३८५) नहि । वः । चरमम् । चन । वसिष्ठः । परिऽमंसते ।  
 अस्माकम् । अद्य । मरुतः । सुते । सर्वा । विश्वे । पियत । कामिनः ॥३॥
- (३८६) नहि । वः । ऊतिः । पृतनासु । मर्धति । यस्मै । अराध्वम् । नरः ।  
 अभि । वः । आ । अवर्त्त । सुऽमतिः । नवीयसी । तूयम् । यात । पिपीपवः ॥४॥

अन्वयः— ३८४ (हे) देवा ! युष्माकं अर्चसा प्रिये अहनि ईजानः द्विपः तरति, यः वः वराय महीः इपः वि दाशति सः क्षयं प्र तिरिते ।

३८५ (हे) मरुतः ! वसिष्ठः वः चरमं चन नहि परिमंसते, अद्य अस्माकं सुते कामिनः विश्वे सचा पियत ।

३८६ (हे) नर ! यस्मै अराध्वं, वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति, वः नवीयसी सु-मतिः अभि अवर्त्त, पिपीपवः नृपं आ यात ।

अर्थ— ३८४ (हे देवा ! ) प्रकाशमान वीरो ! ( युष्माकं अर्चसा ) तुम्हारी रक्षाके सुरक्षित हो ( प्रिये अहनि ) अर्थात् दिन ( ईजान ) यज्ञ करनेद्वारा ( द्विपः तरति ) द्वेषा लोगोंको बँध जाता है, शत्रुओंका पराभव करता है । ( यः ) जो ( वः वराय ) तुम जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंको ( महीः इपः ) बहुत सारा अन्न ( वि दाशति ) प्रदान करता है, ( सः ) वह ( क्षयं ) अपने निवासस्थान को ( प्र तिरिते ) निर्भय बना देता है ।

३८५ (हे मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( वसिष्ठः ) यह वसिष्ठ ऋषि ( वः चरमं चन ) तुममेंसे अंतिमका भी ( नहि परिमंसते ) अनादर नहीं करता है, सबकी वरावर सराहना करता है । ( अद्य अस्माकं ) आज दिन हमारे यहाँ ( सुते ) सोमरसके निचोड़ चुकनेपर उसे पानिके लिए ( कामिनः ) अपनी चाह व्यक्त करनेवाले तुम ( विश्वे ) सभी ( सचा ) मिलजुलकर उस रसको ( पियत ) पी लो ।

३८६ (हे नरः ! ) नेता वीरो ! तुम ( यस्मै ) जिसे संरक्षण ( अराध्वं ) देते हो, वह ( वः ) ऊति ) तुम्हारी संरक्षणधम शक्ति ( पृतनासु ) युद्धोंमें उसका ( नहि मर्धति ) विनाश नहीं करती है । ( वः ) तुम्हारी ( नवीयसी ) नाशिन्यपूर्ण ( सु-मतिः ) अच्छी बुद्धि ( अभि अवर्त्त ) हमारी ओर मुड़ जाए । ( पिपीपवः ) सोमपान करनेकी इच्छा करनेहारे तुम ( नृपं आ यात ) शीघ्रही इधर आओ ।

भावार्थ— ३८४ वीरोंकी सहायता पाकर मानव सुरक्षित पने, यज्ञ करे, अन्नदान करे और निर्भय बन सुखपूर्वक पालनपना करे ।

३८५ वीरोंका आदर करना चादिप, उन्हें सोमरस पीनेके लिए देना चादिप और वीर भी उसे ग्रहण कर सेवन करे ।

३८६ जिन्हें वीरोंका संरक्षण प्राप्त हुआ, वे सदैव सुरक्षित रहते हैं ।

टिप्पणी— [ ३८४ ] ( १ ) वरः = चुनाव, इच्छा, चिन्ति, दान, वरा, श्रेष्ठ, उत्तम । [ ३८५ ] ( १ ) मन् = (माने, अवबोधने सम्भवे च) मानना, पूजा करना, आदर करना । परि-मन् = विपरीत ढंगसे मानना, अनादर करना, पूजा के भाव दशाना । ( २ ) वसिष्ठः ( वासवति इति ) = जो कि सबका निवास सुखपूर्वक हो, इसलिये प्रयत्नशील रहता है, पद करि । [ ३८६ ] ( १ ) नृपं = वीर ।

(३८७) ओ इति । सु । घृष्ट्विऽराधसः । यातनं । अन्धांसि । पीतये ।

इमा । वः । हृव्या । मरुतः । रेरे । हि । कम् । मो इति । सु । अन्यत्र । गन्तु ॥५॥

(३८८) आ । च । नः । वहिः । सद्दत् । अचित् । च । नः । स्पर्हाणि । दातवे । चसु ।

अस्त्रेधन्तः । मरुतः । सोम्ये । मधौ । स्वाहा । इह । मादयाध्वे ॥६॥

(३८९) सस्वरिति । चित् । हि । तन्वः । शुम्भमानाः । आ । हंसासः । नीलऽपृष्ठाः । अपसन् । विश्वम् । शर्धः । अभितः । मा । नि । सेद् । नरः । न । रण्याः । सवने । मदन्तः ॥७॥

अन्वयः— ३८७ (हे) घृष्ट्वि-राधसः मरुतः ! अन्धांसि पीतये सु ओ यातन, हि वः इमा हृव्या रेरे, अन्यत्र मो सु गन्तन ।

३८८ स्पर्हाणि वसु दातवे नः अचित् च, नः वहिः आ सद्दत् च, (हे) अस्त्रेधन्तः मरुतः ! इह मधौ सोम्ये स्वाहा मादयाध्वे ।

३८९ सस्वः चित् हि तन्वः शुम्भमानाः नील-पृष्ठाः हंसासः सवने मदन्तः रण्याः नरः न आ अपसन्, विश्वं शर्धः मा अभितः नि सेद् ।

अर्थ— ३८७ हे (घृष्ट्वि-राधसः मरुतः ! ) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर मरुतो ! (अन्धांसि पीतये) अन्धरस पीनेके लिए (सु ओ यातन) अच्छी ज्यवस्थाले आओ । (हि) क्योंकि (वः) तुम्हें (इमा हृव्या) ये हविष्यान्न में (रेरे) प्रदान कर रहा हूँ, अतः तुम (अन्यत्र) दूसरी ओर कहीं भी (मो सु गन्तन) विलकुल न जाओ ।

३८८ (स्पर्हाणि) स्पृहणीय (वसु) धन (दातवे) देनेके लिए (नः) हमारी ओर (अचित् च) आओ और (नः वहिः) हमारे इन आसनोंपर (आ सद्दत् च) बैठ जाओ । हे (अस्त्रेधन्तः मरुतः ! ) आहिंसक वीर मरुतो ! (इह) यहाँके (मधौ) मिठास से पूर्ण (सोम्ये) सोमरस के (स्वाहा) भागका, स्वीकार कर (मादयाध्वे) आनन्दित हो जाओ ।

३८९ (सस्वः चित् हि) गुप्त जगह रहनेपरभी (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील-पृष्ठाः हंसासः) नीलवर्ण-काली पीठसे युक्त हंसों की नाई या (सवने मदन्तः) यज्ञमें आनन्दित होनेवाले (रण्याः नरः न) रमणीय नेताओं के तुल्य (आ अपसन्) हमारे समीप आ जायँ और इनका (विश्वं शर्धः) समूचा बल (मा) मेरे (अभितः नि सेद्) चारों ओर रहे ।

भावार्थ— ३८७ वीर हमारे समीप आ जायँ और हम खाद्यपयसामग्रीका सेवन करें, तथा इस संघर्षमें यज्ञ मिलने-लक्ष सहायक बनें ।

३८८ अच्छा धन प्रदान करो । यहाँपर पधारकर मिठासभरे भन्नका सेवन करके प्रसन्नचेता बनो ।

३८९ गुप्त स्थानपर-दुर्गमें-रहते हुए भी अपने आपको सजाते-सँवारते हुए ये वीर सैनिक अपने सारे बलोंके साथ हममें आकर निवास कर लें । जैसे हंस पंक्तिमें, कतारोंमें उड़ने लगते हैं, वैसेही ये वीर कतारमें चलने लगें, और जिस प्रकार यज्ञमें उपदिष्ट रहनेके लिए यात्रा करनेवाले नेतागण घन-टनके प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार ये वीर शोभायमान होते हुए सभी कार्यकलाप निभायँ ।

टिप्पणी— [ ३८७ ] (१) घृष्ट्वि= संघर्षमें चतुर, राधस्= सिद्धि, दान, यज्ञ । घृष्ट्वि-राधस्= संघर्षमें सफलता पानेवाला । (२) अन्धस्= अज्ञ, सोम, सोमरस । [ ३८८ ] (१) स्पर्हा= हुल्लाहा, विनाश करना, घष करना,

(२) स्वाहा = हविभाग, अन्नभाग । [ ३८९ ] (१) सस्वः= अस्तर्हित, दवा, पुष्पा, गुप्त (निघंटु ३।२५) ।

- (३९०) यः । नः । मरुतः । अभि । दुःऽहृणायुः । तिरः । चिचानि । वसवः । जिघांसति ।  
 दुहः । पाशान् । प्रति । सः । मुचीष्ट । तपिष्टेन । हन्मना । हन्तुन । तम् ॥८॥
- (३९१) सांस्तपनाः । इदम् । हविः । मरुतः । तत् । जुजुष्टुन ।  
 युष्माकं । ऊती । रिशादसः ॥९॥
- (३९२) गृहमेधासः । आ । गत । मरुतः । मा । अप । भूतन ।  
 युष्माकं । ऊती । सुदानवः ॥१०॥
- (३९३) इहइह । वः । स्वत्वसः । कवयः । सूर्यस्त्वचः ।  
 यज्ञम् । मरुतः । आ । वृणे ॥११॥

अन्वय — ३९० (हे) वसव मरुतः ! दुर्हृणायुः तिरः यः नः चिचानि अभि जिघांसति सः दुहः पाशान्  
 प्रति मुचीष्ट तं तपिष्टेन हन्मना हन्तुन ।

३९१ (हे) सान्तपनाः रिश-अदसः मरुत ! इदं तत् हविः जुजुष्टुन, युष्माकं ऊती ।

३९२ (हे) गृह-मेधासः सु-दानव मरुत ! युष्माक ऊती आ गत, मा अप भूतन ।

३९३ (हे) स्व-त्वस कवयः सूर्य-त्वच मरुतः ! इह-इह यज्ञं वः आ वृणे ।

अर्थ- ३९० हे (वसव, मरुत, ! ) बसानेवाले घोर मरुतो ! ( दुर्हृणायुः ) अतीव क्रोधी तथा ( तिरः )  
 तिरस्करणीय ( य ) जो दुरात्मा ( न, चिचानि ) हमारे दिलका ( अभि जिघांसति ) नाश करना चाहता  
 है, ( स ) वह ( दुह, पाशान् ) द्रोहके फंदों को ( प्रति मुचीष्ट ) हमपर डाल देगा, तव ( तं ) उस हत्यारे  
 को ( तपिष्टेन हन्मना ) अति तप्त आयुधसे ( हन्तुन ) मार डालो ।

३९१ हे ( सान्तपना ) शत्रुओंको परित्याग देनेवाले तथा ( रिश-अदसः ) हिंसकों को धिन्ध  
 करनेवाले ( मरुतः ! ) घोर मरुतो ! तुम ( इदं तत् हविः ) इस उस हविष्यान्नका ( जुजुष्टुन ) सेवन  
 करो और ( युष्माक ऊती ) तुम्हारी संरक्षणशक्ति बढ़ाओ ।

३९२ ( गृह-मेधासः ) गृहस्थधर्म को निभाते हुए ( सु-दानवः ) उच्चम दान करनेवाले  
 ( मरुतः ! ) घोर मरुतो ! तुम ( युष्माक ऊती ) अपनी संरक्षक शक्तियों के साथ ( आ गत ) हमारे  
 समीप आओ, हमसे ( मा अप भूतन ) दूर न चले जाओ ।

३९३ ( स्व-त्वसः ) अपने निजी मूलसे युक्त होनेवाले, ( कवय ) ज्ञानी और ( सूर्य-त्वच ) सूर्यवत्  
 तेजस्वी ( मरुतः ! ) घोर मरुतो ! ( इह-इह ) अर यहाँ ( यज्ञं ) यज्ञ करके ( व ) तुम्हें ( आ वृणे )  
 संतुष्ट करता हँ ।

भावार्थ— ३९० दुरात्मा शत्रु हमारे मनमें विद्यमान सुविचारोंको नष्ट करके, हमसे द्वेषपूर्ण व्यवहार करके, हमें परतन्त्र  
 भी करना चाहते हैं । ऐसे लोगों का समी जगह तिरस्कार हो और तीक्ष्ण हथियारोंसे उनका विनाश किया जाय ।

३९१ जनताको दबित है कि वह वीरोंके द्विष्ट अन्न दें और इससे वे अपनी संरक्षक शक्ति बढ़ा दें ।

३९२ घोर पुरुष हमारे समीप रहे और हमारी रक्षा करें । वे कभी हमसे दूर न हों ।

३९३ यज्ञमें घोर सैनिकों एवं पुरुषोंको बुलवाकर उनका सम्मान करना चाहिये ।

टिप्पणी— [३९०] (१) दुर्-हृणायुः = (दुर्हृणयते, हृ लज्जायां रोपणे च), (हृणायुः=क्रोधी) - बहुत क्रोध करनेवाला,  
 बहुत निंदा करनेवाला । (२) तपिष्ट= (तप सवाणे) तपाया हुआ, विनाशक । (३) दुह= द्वेष करना, विरोध करना ।  
 [३९३] (१) वृण (वीणे) = संतुष्ट करना, सुल-भाण्ड देना । आ + वृण= अपनासा करना, स्वीकारना ।

(४० ७१०४१८)

(३९४) वि । तिष्ठध्वम् । मरुतः । विश्वु । इच्छत । गुभायत । रक्षसः । सम् । पिनष्टन ।  
वयः । ये । भूत्वी । पतयन्ति । नक्तभिः । ये । वा । रिपः । दधिरे । देवे । अध्वरे ॥१८॥

विंदु या अङ्गिरसपुत्र पृतदक्षन्पि । (४० ८१०४१-१२)

(३९५) गौः । धयति । मरुताम् । श्रवस्युः । माता । मघोनाम् । युक्ता । वह्निः । रथानाम् ॥१९॥  
(३९६) यस्याः । देवाः । उपस्ये । व्रता । विश्वे । धारयन्ते । सूर्यामासा । दशे । कम् ॥२०॥

अन्वय — ३९४ (हे) मरुत- ! विश्वु वि तिष्ठध्वं, ये वयः भूत्वी नक्तभि पतयन्ति, ये वा देवे अध्वरे रिपः दधिरे रक्षसः इच्छत, गुभायत, सं पिनष्टन । ३९५ रथानां वह्निः युक्ता श्रवस्युः मघोनां मरुतां माता गौः धयति । ३९६ यस्याः उप-स्ये विश्वे देवाः व्रता धारयन्ते, सूर्या-मासा दशे कं ।

अर्थ— ३९४ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (विश्वु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वं) रहो । (ये) जो (वयः भूत्वी) बलिष्ठ यनकर (नक्तभिः) रात्री के समय (पतयन्ति) टूट पड़ते हैं, (ये वा) अथवा जो (देवे अध्वरे) दिव्य यज्ञमें (रिपः दधिरे) हिंसा करते हैं, उन (रक्षसः) राक्षसों को (इच्छत) तुम ढूँढ निकालो, (गुभायत) पकड़ लो और उनको (सं पिनष्टन) पूरी तरह कुचल दो । ३९५ (रथानां वह्निः) रथों को सींचनेवाली, (युक्ता) योग्य, (श्रवस्यु) यशकी इच्छा करनेवाली (मघोनां मरुतां माता) धनाढ्य वीर मरुतांकी माता (गौ) गाय या पृथ्वी उन्हें (धयति) दूध पिटाती है । ३९६ (यस्याः उप-स्ये) जिसके समीप रहकर (विश्वे देवाः) सभी देवता अपने अपने (व्रता धारयन्ते) कर्तव्य उचित ढंगसे निभाते हैं । (सूर्या-मासा) सूर्य तथा चंद्रभी जनताको (दशे कं) प्रकाश देनेके लिए जिसके समीप रहते हैं ।

भावार्थ— ३९४ जनतासे वीर भौतिकीतिवै रूप धारण कर निवास करें । जो प्रजापर विभिन्न ढंगोंसे हमले करते हैं, टूट पड़ते हैं और जनता से माछ, धन छीन लेते हैं, या लूटमारके कार्यमें लगे रहते हैं, उन्हें पकड़कर कारागृहमें रखे या उनका समूल नाशही कर डालें । ३९५ रथोंको जोती हुई मरुतांकी माता गौ उन्हें दूध पिटाती है और वह चाहती है कि मरुतांका यश प्रतिपल बढ़े । ३९६ समूचे देवता तथा सूर्यचंद्र भी गौ (पृथ्वी) के निकट रहकर अपने अपने कर्तव्य करते हैं । (गौकी रक्षा करते हैं) अर्थात् यहाँपर गौमाताका चङ्गण बतलाया है ।

टिप्पणी— [ ३९४ ] (१) विश्वु वि तिष्ठध्वं = प्रजामेंमिं गुप्त स्वप्ने विविधरूपधारी होकर प्रजाका रक्षण करनेके लिए निवास करें । (२) रिपु = (रिप्सु = बुरा, अशुद्धि, दुर्गन्धी, पाप, हिंसा) अशुद्धि करना, बधय करना, हिंसा करना । (३) इप् = ढूँढना, पानेका प्रयत्न करना, चाहना । (४) गुभू = पकड़ना । (५) वय = शरीरसे टूट, बल, आरोग्य, आयु, पंजी । [ ३९५ ] (१) कौंकि वीर सैनिक मरुत् गोदुग्ध का यद्येष्ट पान करके पुष्ट एवं बलिष्ठ होते हैं, इसलिये यहाँपर बतलाया है कि, गौ उनकी माता माता है । यह सुतरां स्वाभाविक है कि माता अपने पुत्रोंमें यशके सम्बन्धमें सचित रहे । (रथानां वह्निः युक्ता गौः) इस मन्त्रमें कहा है कि, रथसे संयुक्त गौही (धयति) दूध पिटाती है । यह विचार करनेयोग्य बात है, क्योंकि साधारणतया ऐसी धारणा प्रचलित है कि जो गाय बेश डोने जैसे परिश्रमसाध्य कठिन काम करती है, वह धीरे धीरे कम दूध देने लगती है । यह असंभवसा दृष्ट पड़ता है कि बंध्या गौ के भित्तिरिक्त अन्य गायों को रथमें जोतते हो । ऐसी बंध्या गौओं को अगर वाहनोंमें जोत ले, तो वे प्रजननक्षम हो दुहाय बनती हैं, ऐसी कुछ छोटी-छोटी धारणा है, पर शास्त्रज्ञ निर्धारित करें, उसमें वैज्ञानिकता कहाँतक है । (२) युक्ता = (युज् योगे संयमने च) लुभा हुआ, कुशल, योग्य (कर्म में कुशल) । (३) वह्निः (वह प्रारणे) = डोनेवाला, धारण करने-हारा, भवन । [ ३९६ ] (१) उप-स्ये = समीप, मध्य-भाग ।



(३९७) तत् । सु । नः । विश्वं । अर्यः । आ । सदा । गृणन्ति । कारवः ।  
मरुतः । सोम-पीतये ॥३॥

(३९८) अस्ति । सोमः । अयम् । सुतः । पियन्ति । अस्य । मरुतः ।  
उत । स्वराजः । अश्विनी ॥४॥

(३९९) पियन्ति । मित्रः । अर्यमा । तना । पूतस्य । चरुणः ।  
त्रिस्रधस्थस्य । जास्यतः ॥५॥

(४००) उतो इति । नु । अस्य । जोषम् । आ । इन्द्रः । सुतस्य । गो-मतः ।  
प्रातः । होताइव । मत्सति ॥६॥

अन्वयः- ३९७ नः अर्यः विश्वे कारवः सदा सु आ तत् गृणन्ति, ( हे ) मरुतः ! सोम-पीतये ।

३९८ अयं सोमः सुतः अस्ति, अस्य स्व-राजः मरुतः उत अश्विना पियन्ति ।

३९९ मित्रः अर्यमा चरुणः त्रि-सध-स्थस्य तना पूतस्य जा-वतः पियन्ति ।

४०० उतो इन्द्रः नु प्रातः होताइव गो-मतः अस्य सुतस्य जोषं मत्सति ।

अर्थ- ३९७ ( नः ) हमारे ( अर्यः ) अत्यन्त पूज्य ( विश्वे कारवः ) सभी कवि, काव्यरचनामें कुशल,  
( सदा ) हमेशा तुम्हारे ( तत् ) उस बलकी ( सु आ गृणन्ति ) भली भाँति स्तुति करते हैं । हे ( मरुतः ! )  
वीर मरुतो ! ( सोम-पीतये ) सोमपान करनेके लिए तुम इधर आओ ।

३९८ ( अयं सोमः ) यह सोमरस ( सुत-अस्ति ) पूर्णतया निचोड़ा जा चुका है । ( अस्य ) इसका  
( स्व-राजः मरुत ) स्वयंतेजस्वी मरुत्-वीर ( उत ) उसी प्रकार ( अश्विना ) अश्विनी-देव भी ( पियन्ति )  
पान करते हैं ।

३९९ ( मित्रः अर्यमा चरुणः ) मित्र, अर्यमा एवं चरुण ( त्रि-सध-स्थस्य ) तीन स्थानोंमें रचे  
हुए ( तना पूतस्य ) छलनी से पवित्र किए हुए एवं ( जा-वतः ) सभी जनोंके सेवनके योग्य सोमरसको  
( पियन्ति ) पी लेते हैं ।

४०० ( उतो ) और ( इन्द्रः नु ) इन्द्र भी ( प्रातः होताइव ) प्रातःकालके समय होताकी नाई  
( गो-मतः ) गोदुग्धके मिलावटसे तैयार किये हुए ( अस्य ) इस ( सुतस्य ) निचोड़े हुए सोमका ( जोषं )  
सेवन करके ( मत्सति ) हर्षित हो उठता है ।

भाषार्थ- ३९७ सभी कवि काव्यका पञ्चन करके वीरोंके हस्तबलकी सराहना करते हैं । इसी लिए सोम पीनेके लिए  
वे इधर अवश्य आ जायें ।

३९८ यह सोमरस पूर्णरूपेण सिद्ध है । तेजस्वी वीर एवं अश्विनी-देव इसका ग्रहण करें ।

३९९ तीन स्थानोंमें विद्यमान तीन छलनियोंसे शुद्ध किए हुए सोमरस का सेवन वे सभी वीर करते  
हैं । कारण यही है कि सोमरस सबके पीनेके लिए योग्य है ।

४०० इन्द्र भी सोमरसमें दूध मिलाकर उस पेय का सेवन करता है और प्रसन्नचेता बनता है ।

टिप्पणी- [ ३९७ ] ( १ ) अर्यः = ( ऋ गतौ-अरिः अर्यः ) = गतिशील, पूज्य, श्रेष्ठ । [ ३९८ ] ( १ ) स्व-  
राजः = ( राज् दीप्तौ-प्रकाशना, शासन करना, प्रमुख होना ) सब मिलाकर शासन करनेइसके-स्वयंशासक ( देखिए  
मंत्र ६८, २९२ तथा ३९८ ) । [ ३९९ ] ( १ ) जा = माता, जाति, देवराणी ।

- (४०१) कत् । अत्विपन्त । सूर्यः । तिरः । आपःइव । सिधः ।  
अर्पन्ति । पूतदक्षसः ॥७॥
- (४०२) कत् । वः । अद्य । महानाम् । देवानाम् । अयः । वृणे ।  
त्मना । च । दुस्मद्वर्चसाम् ॥८॥
- (४०३) आ । ये । विश्वा । पार्थिवानि । पप्रथन् । रोचना । दिवः ।  
मरुतः । सोमदपीतये ॥९॥
- (४०४) त्वान् । नु । पूतदक्षसः । दिवः । वः । मरुतः । हुवे ।  
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१०॥

अन्वयः— ४०१ सूर्यः सिधः तिरः आपःइव अत्विपन्त, पूत-दक्षसः कत् अर्पन्ति ?

४०२ त्मना च दुस्म-वर्चसां देवानां महानां वः अयः अद्य कत् वृणे ?

४०३ ये विश्वा पार्थिवानि दिवः रोचना आ पप्रथन्, मरुतः सोम-पीतये ।

४०४ (हे) मरुतः ! पूत-दक्षसः दिवः त्वान् वः नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे ।

अर्थ- ४०१ वे (सूर्यः) शानी तथा (सिधः) शत्रुविनाशक वीर (तिरः) टेढ़ी राहसे जानेवाले (आपःइव) जलप्रवाहोंकी नाई (अत्विपन्त) प्रकाशमान होते हैं और वे (पूत-दक्षसः) पवित्र बल धारण करनेवाले वीर (कत्) भला कय हमारी ओर (अर्पन्ति) पधारेंगे ?

४०२ (त्मना च) स्वाभाविक ढंगसे (दुस्म-वर्चसां) सुन्दर आकारवाले (देवानां) तेजस्वी एवं (महानां) बड़े महनीय (वः) तुम जैसे सैनिकोंसे (अयः) संरक्षणकी (अद्य कत्) आज भला कय मैं (वृणे) याचना करूँ ?

४०३ (ये) जो (विश्वा पार्थिवानि) सभी भूमंडलस्थ वस्तुओं को और (दिवः) रोचना) दु-लोकके तेजस्वी पदार्थोंको (आ पप्रथन्) विस्तृत कर चुके, उन (मरुतः) वीर मरुतों को (सोम पीतये) सोमपान करनेके लिए मैं बुलाता हूँ ।

४०४ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (पूत-दक्षसः) पवित्र बलसे युक्त और (दिवः) तेजस्वी (त्वान् वः) ऐसे तुम्हें (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरस के पान के लिए (हुवे) बुलाता हूँ ।

आश्चर्य- ४०१ जैसे ब्रह्मी जगहसे गिरनेवाला जलप्रवाह चमकने लगता है, वैसेही ये जाती वीर अपने प्रकाशसे जगमगाने लगते हैं । पवित्र कार्य के लिए अपने बलका उपयोग करनेवाले वे वीर सैनिक हमारे यजमें आ जायें ।

४०२ ये तेजस्वी एवं शक्तिशाली वीर हमारी रक्षा करनेका बीडा उठावें ।

४०३ आकाशस्थ एवं भूमंडलस्थ सभी वस्तुओं को मरुतोंने विस्तृत किया है, हमीलिए मैं उन्हें सोमपान करनेके लिए बुलाता हूँ ।

४०४ बलवान् एवं तेजस्वी वीरोंको आश्चर्यपूर्वक बुलाकर भक्षणपानके प्रदानसे उनका सत्कार करना चाहिये ।

टिप्पणी— [४००] (१) मत्सति= (मदि स्तुतिमोदमदरवमकाशितगतिवु) दर्पित होता है । [४०१] (१) दक्ष= योग्यता, बल, बौद्धिक शक्ति । (२) सिधू= विनाश करना, दुःख देना । (३) क्रुप् (गती)= बह जाना, फिमलना, (आना) । [४०२] (१) दुस्म = (दम् = उपश्रये) विनाशक, सुन्दर, आश्चर्यकारक, याजक, चोर, दृष्ट, अग्नि । (२) वर्चस् = शक्ति, तेज, आकार, सौंदर्य, धीर्य, विद्या । (३) अद्य= आज, आजकल, अद्य ।

मलर [ हि. २० ]

(४११) यूयम् । घृऽपु । प्रऽयुजः । न । रश्मिऽभिः । ज्योतिष्मन्तः । न । भासा । विऽउष्टिपु ।  
 श्येनासः । न । स्वऽयशसः । रिशादसः ।  
 प्रवासः । न । प्रऽमितासः । परिऽद्रुपः ॥५॥

(४१२) प्र । यत् । वहध्वे । मरुतः । पराकात् । यूयम् । महः । संऽवरणस्य । वस्यः ।  
 विदानासः । चसवः । राध्यस्य ।  
 आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोत ॥६॥

अन्वयः- ४११ यूयं रश्मिभिः धूपं प्र-युज. न, व्युष्टिपु ज्योतिष्मन्. न भासा, श्येनास न स्व-यशस, रिशा-अदस परि-द्रुप, प्र-वासः न, प्रसितासः ।

४१२ (हे) वसव. मरुतः । यूयं यत् पराकात् प्र वहध्वे महः संवरणस्य राध्यस्य वस्यः वि दानास. सनुतः द्वेष आरात् चित् युयोत ।

अर्थ- ४११ (यूयं) तुम (रश्मिभिः) लामासै (धूपं) घुरासै (प्र-युजः न) जोते हुए थोड़ोंके समान वेगवान, (व्युष्टिपु) प्रात कालीन (ज्योतिष्मन्तः न) आदित्यों के समान (भासा) तेजसे युक्त, (श्येनास न) वाज पंछिओंकी नाई (स्व-यशस) स्वयंही अन्न पानेहारे, (रिशा अदसः) हिंसकों वा वध करनेहारे और (परि-द्रुपः) सभी प्रकारसे पोषण करनेहारे बनकर (प्र-वास न) प्रवासियों वा यात्रियोंके समान (प्रसितास) सदा सिद्ध हो ।

४१२ हे (वसव. मरुतः) । वसनेवाले वीर मरुतो । (यूयं) तुम (यत्) जब (पराकात्) सुदूर देशसे (प्र वहध्वे) वेगपूर्वक आते हो, तब (महः) विपुल, (संवरणस्य) स्वीकारनेयोग्य तथा (राध्यस्य) सिद्धियुक्त (वस्य) धनवा (वि दानासः) दान देनेवाले तुम (सनुतः द्वेषः) दूरसे आनेवाले द्वेषाओंको (आरात् चित्) दूरसेही (युयोत) दूर करो, हटा दो ।

भाष्यार्थ- ४११ वे वीर वेगसे क्रमं करनेवाले, तेजस्वी, अपने प्रबलसे अन्नही प्राप्ति करके शत्रुओंका वध करनेहारे और अपनी पुष्टि करनेवाले हैं तथा यात्रियोंके समान सदैव सिद्ध हैं ।

४१२ ये वीर जब दूर देशसे अतिवेगपूर्वक आते हैं तब वे विपुल धन साथ ले आते हैं और वधारेही सब शत्रुओंको घट प्रचुर धनसाथ भेंट देते हैं। हमारी यह इच्छा है कि आते समय राहमें ही ये वीर हमारे शत्रुओंको दूर रहते रहतेही विनाश कर देंगे ।

सर भिदनेके लिए सैवार ही लड़नेवाले वीर, मरुतः । [४०९] (१) घर्हणा = (घर्ह-परिभाषणहिंसाप्रदानेषु) प्रमुख दगसे, दानसे, प्रमुख स्थान पानेसे । ग्रहण-पलवान, शक्तिमा । (२) रिष्णु = (विरेचने, विशेषजनवपचनयोः) = सूना करना, भक्षण करना, छोड़ना, मिलना । प्र+रिष्णु = विशेष होना, बडा होना, विशेष दगसे समर्थ बनना । [४१०] (१) सुधुन = तल, शरीर । (२) प्पु = अन्न (प्पा = पापा) विश्व-प्पु = सर्व अन्नमय । विश्व-प्पु यज्ञः = सारे के मोठे अन्नके प्रदानसे होनेवाला यज्ञ । (३) स्वाच. = सब मिलकर एक विशिष्ट चालसे जानेवाले । [४११] (१) प्रसित = बद्ध, निराश, मांगस्थ, सभद्ध, मेघार । (२) यदात् = यग, सुन्दरता, तेज, कृपा, धन, अन्न, जल । स्व-यदास. = अपने पराक्रमसे यग पानेवाले । [४१२] (१) पराकात् (पराके = बृह दूरीपर, अपारपर) = सुदूर देशसे दूग्मेही । (२) सनुतः = दूग्मे, घृत दगसे ।

(४१३) यः । उत्त्-ऋचि । यज्ञे । अध्वरेऽस्थाः ।  
 मरुत्ऽभ्यः । न । मानुषः । ददाशत् ।  
 रेवत् । सः । वयः । दधते । सुऽवीरम् ।  
 सः । देवानाम् । अपि । गोऽपीथे । अस्तु ॥७॥

(४१४) ते । हि । यज्ञेषु । यज्ञियांसः । ऊमाः ।  
 आदित्येन । नाम्ना । शम्भविष्ठाः ।  
 ते । नः । अवन्तु । रथऽतुः । मनीषाम् ।  
 महः । च । यामन् । अध्वरे । चकानाः ॥८॥

अन्वयः—४१३ अध्वरे-स्थाः य मानुषः यमे उत्त् ऋचि मरुद्भ्यः न ददाशत्, सः रे-वत् सु-वीरं वयः दधते, देवानां अपि गो-पीथे अस्तु ।

४१४ ते हि ऊमाः यज्ञेषु यज्ञियांसः आदित्येन नाम्ना शं-भविष्ठाः, रथ-तुः अध्वरे यामन् महः चकानाः च ते नः मनीषा अवन्तु ।

अर्थ— ४१३ (अध्वरे-स्थाः) यज्ञमें स्थिर रहनेवाला, यज्ञ करनेवाला (यः मानुषः) जो मनुष्य (यज्ञे उत्त्-ऋचि) यज्ञसमाप्ति के उपरान्त (मरुद्भ्यः न) वीर मरुतों को दिया जाता है, उसी भौति (ददाशत्) दान देता है, (सः) वह (रे-वत्) धनयुक्त एवं (सु-वीरं) अच्छे वीरों से युक्त (वयः) अन्न (दधते) धारण करता है, अपने समीप रखता है और वह (देवानां अपि) देवों के भी (गो-पीथे) गौरसपान के समय उपास्थित (अस्तु) रहता है ।

४१४ (ते हि) वे वीर सचमुचही सयमी (ऊमा) रक्षा करनेवाले हैं, अतः (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (यज्ञियांसः) पूजनीय हैं; उसी प्रकार वे (आदित्येन नाम्ना) आदित्यके रूपसे सयमी (शं-भविष्ठाः) सुख देनेवाले हैं । (रथ-तुः) रथमें बैठकर घेगले जानेवाले वे वीर (अध्वरे यामन्) यज्ञमें जाकर (महः चकानाः) च महत्त्व प्राप्त करने की इच्छा करने हैं । ये (नः मनीषां) हमारी आकांक्षाओं को (अवन्तु) सुरक्षित करें ।

भावार्थ— ४१३ यज्ञसमाप्तिके समय जैसे दान दिया जाता है, वैसेही जो दान देने लगता है, वह पूरा तरह से अपने समीप विद्यमान अन्न को बढ़ाता है और इसी कारणसे उसे पर्याप्त मात्रामें वीर संतान प्राप्त होती है तथा देवोंके सोमरस या गौरसपान के मौकेपर वहाँ उपस्थित होनेका गौरव एवं सम्मान भी उसे मिल जाता है ।

४१४ वे वीर सबके सरक्षक हैं, इसलिए यह अत्यन्त उचित है कि, यज्ञमें उनका सम्मान हो । सूर्यवन् वन वे सबको सुखी करते हैं । रथमें बैठकर वे यज्ञोंमें उपस्थित होते हैं और वहाँपर दृक्भाग का आदान करना चाहते हैं । ऐसे वे वीर हमारी आकांक्षाओंकी भली भौति रक्षा करें ।

टिप्पणी— [४१३] (१) गो-पीथे= गौरक्षण, पवित्र स्थान, रजा, सोमरस पीनेका स्थान, गोदुग्ध सेवन करनेकी जगह । (२) उत्त्-ऋचु= बड़ी आवाजमें कही जानेवाली ऋचा, श्रेष्ठ ऋचा । [४१४] (१) नामन्= नाम, कीर्ति, चिन्हा, जल, आकृति, स्वरूप । (२) चकाना= (कन= सनुष्ट होना, प्रोत्ति करना) सनुष्ट बननेवाले, सनुष्ट होनेवाले, प्यार करनेवाले ।

( क्र० १०।७८।१-८ )

- (४१५) विप्रासः । न । मन्मभिः । सुऽआर्घ्यः । देवऽअर्घ्यः । न । युज्ञैः । सुऽअर्पसः ।  
 राजानः । न । चित्राः । सुऽसंदेशः ।  
 क्षितीनाम् । न । मर्याः । अरेपसः ॥१॥
- (४१६) अग्निः । न । ये । भ्राजसा । रुक्मऽवक्षसः ।  
 वातासः । न । स्वऽयुजः । सद्यऽऊतयः ।  
 प्रऽवातारः । न । ज्येष्ठाः । सुऽनीतयः ।  
 सुऽशर्माणः । न । सोमाः । ऋतम् । युवे ॥२॥

अन्वय - ४१५ विप्रासः न, मन्मभिः सु-आर्घ्यः, देवाव्यः न, युज्ञैः सु-अर्पसः, राजानः न चित्राः सु-संदेशः, क्षितीनां मर्याः न अ-रेपसः ।

४१६ ये, अग्निः न, भ्राजसा रुक्म-वक्षसः, वातासः न स्व-युजः, सद्य-ऊतयः, प्र-वातारः न ज्येष्ठाः, सोमाः न सु-शर्माणः, ऋतं यत्ते सु-नीतयः ।

अर्थ- ४१५ वे वीर ( विप्रास न ) ज्ञानी पुरुषों के समान ( मन्मभिः ) मन्तीय कार्यों से ( सु-आ-र्घ्यः ) उत्कृष्ट विचार प्रकट करनेहारे, ( देवाव्यः न ) देवोंको संतुष्ट करनेहारे भक्तों के तुल्य ( युज्ञैः सु-अर्पसः ) घटनसे यज्ञ करके अच्छे कार्य करनेवाले, ( राजानः न ) नरेशोंके समान ( चित्राः ) आश्चर्य-कारक कर्म करनेवाले वीर ( सु-संदेशः ) अतिशय सुन्दर स्वरूपवाले हैं तथा ( क्षितीनां ) अपने गृहमें ही संतुष्ट रहनेवाले ( मर्याः न ) मानवों के समान ( अ-रेपसः ) पापरहित हैं ।

४१६ ये जो ( अग्निः न ) अग्नि-तुल्य ( भ्राजसा ) तेजसे युक्त ( रुक्म-वक्षसः ) स्वर्णमुद्राओंके हार वक्षःस्वल्पपर धारण करनेहारे, ( वातासः न ) वायुप्रवाहके समान ( स्व-युजः ) स्वयंही काममें जुट जानेवाले, ( सद्य-ऊतयः ) तुरन्त रक्षा करनेहारे, ( प्र-वातारः न ) उत्कृष्ट धानियोंके तुल्य ( ज्येष्ठाः ) श्रेष्ठ, ( सोमाः न ) सोमों के समान ( सु-शर्माणः ) अत्यन्त सुखदायक तथा ( ऋतं यत्ते ) सत्यकी ओर जानेवाले के लिए ( सु-नीतयः ) उत्तम पथप्रदर्शक हैं ।

भाषार्थ- ४१५ वे वीर ज्ञानी लोगोंके समान मन्तीय कार्योंसे सुविचारों का प्रचार करनेवाले, यज्ञरूपी सरकर्मोंसे देवताओं को संतुष्ट करनेहारे, नरेशों की तरह अग्नेय एवं सहायक कार्यकलाप निभातेवाले और अपरिमित मनोवृत्तिके सख्तनोके तुल्य निष्पार हैं ।

४१६ जगमगाते मुद्राहार पहननेके कारण घोषमान, रवेच्छा से कार्यमें निरत, ज्ञानी, श्रेष्ठ, शाश्वत, सुखदायी, तथा सन्मार्ग से चलनेवाले मानवों के तुल्य दूसरों को अच्छी राह बतलानेवाले वे वीर पैलिक हैं ।

टिप्पणी- ४१५ ( १ ) स्वार्घ्य = [ सु+आ+र्घ्य ( र्घ्वं चिन्तायाम् ) चिन्तन करना, ध्यान करना, सोचना ] भली भाँति सोचनेहारा । ( २ ) देवाव्य = ( देव+अर्घ्यो प्रीतिवृष्यो ) देवों को संतुष्ट करनेहारा । ( ३ ) स्वर्पसः = ( सु+अर्प = ह्य ) अच्छे ह्य करनेहारे, सः कर्म करनेवाले । ( ४ ) क्षितीः = पृथ्वी, मनुष्य, स्वदेश । क्षि-ति = [ क्षि निवासे, घृहे तिष्ठतीति । यथा प्रतिप्रहार्थं अन्यत्र अगत्या स्वगृहे पथ अनुतिष्ठन्तः निर्दोषाः भवन्ति तादृशाः ( सां भा० ) ] जो घृष्ट करने पापर मिटेगा, उषोंमें संतुष्ट रहकर प्रतिप्रदके लिए घरघर न घूमनेवाला, अपरिमित मनोवृत्ति का ।

(४१७) वातासः । न । ये । धुनयः । जिगत्नवः । अग्नीनाम् । न । जिह्वाः । विदराकिणः ।  
 चर्मण्वन्तः । न । योधाः । शिमीवन्तः । पितृणाम् । न । शंसाः । सुस्रातयः ॥३॥  
 (४१८) रथानाम् । न । ये । अराः । सनाभयः । जिगीवांसः । न । शूराः । अभिद्यवः ।  
 चरेद्यवः । न । मर्याः । घृतस्रुपः । अभिस्वतारः । अर्कम् । न । सुस्तुभः ॥४॥  
 (४१९) अश्वासः । न । ये । ज्येष्ठासः । आशयः । दिधिपवः । न । रथ्यः । सुदानवः ।  
 आपः । न । निम्नैः । उदभिः । जिगत्नवः । विश्वरूपाः । अङ्गिरसः । न । सामभिः ॥५॥

अन्वयः— ४१७ ये, वातासः न धुनयः, जिगत्नवः, अग्नीनां जिह्वाः न विरोकिणः, चर्मण्वन्त योधाः न शिमी-वन्तः, पितृणां शंसाः न सु-रातयः । ४१८ ये, रथानां अराः न स-नाभयः, जिगीवांसः शूराः न अभि-द्यवः, चर-ईयवः मर्याः न घृत-स्रुपः, अर्कं अभि-स्वतारः न सु-स्तुभः । ४१९ ये, अश्वासः न, ज्येष्ठासः आशयः, दिधिपवः रथ्यः न, सु-दानवः, निम्नैः उदभिः, आपः न, जिगत्नवः, विश्व-रूपाः सामभिः अङ्गिरसः न ।

अर्थ— ४१७ (ये) जो ये वीर (वातासः न) वायुके समान (धुनयः) शत्रुदलको हिला देनेवाले, (जिगत्नवः) वेगपूर्वक जानेहारि, (अग्नीनां जिह्वाः न) अग्नी की लपटों के तुल्य (विरोकिणः) देदीप्यमान, (चर्मण्वन्तः) कवचधारी (योधा न) योद्धाओं के समान (शिमी-वन्तः) शूरतापूर्ण कार्य करनेहारि और (पितृणां शंसाः न) पितरोंके आत्मीवादों के समान (सु-रातयः) अच्छे दान देनेवाले हैं ।

४१८ (ये) जो वीर (रथानां अराः न) रथोंके पहियोंमें विद्यमान आरों के तुल्य (स-नाभयः) एकहा केन्द्रमें रहनेवाले, (जिगीवांसः शूराः न) विजयचतु वीरोंके समान (अभि-द्यवः) सभी प्रकारसे तेजस्वी, (चर-ईयवः) अभीष्ट प्राप्त करनेहारि (मर्याः न) मानवोंके समान (घृत-स्रुपः) घृत आदि पौष्टिक वस्तुओंकी समृद्धि करनेवाले, (अर्कं) पूज्य देवताके (अभि-स्वतारः न) स्तोत्र पढ़नेवाले के समान (सु-स्तुभः) भली प्रकार काव्यगायन करनेवाले हैं ।

४१९ (ये) जो (अश्वासः न) घोड़ोंके समान (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हैं, तथा (आशयः) शीघ्र गतिसे जानेवाले हैं, (दिधिपवः) विपुल धन समीप रखनेवाले (रथ्यः न) रथोंसे संपन्न होनेवाले महारथियोंके समान (सु-दानवः) अच्छे दानशूर, (निम्नैः उदभिः) ढलती जगह की ओर जानेवाले जलप्रवाहोंके (आपः न) जलोंकी नाई (जिगत्नवः) बड़े वेगसे जानेवाले, (विश्व-रूपाः) भौतिक भौतिके रूप धारण करनेहारि और (सामभिः) सामगानों से (अङ्गिरसः न) अंगिरसोंके तुल्य ये वीर अच्छे गायक हैं ।

भावार्थ— ४१७ ये वीर शत्रुको जड़ मूलसे उखाड़ फेंक देनेवाले, अत्रिपत् तेजस्वी, कवचधारी बनकर लड़नेवाले तथा शूरा दशानेवाले हैं और इनके दान पितरोंके आत्मीवादोंके समान बहुतही सहायक है । ४१८ ये वीर एक उद्देश्यसे प्रभावित हो कार्य करनेवाले, विजय पानेकी चाह रखनेवाले, तेजस्वी, शूर, सबको समृद्धि प्रदान करनेहारि तथा पूजनीय वीरोंके काव्यका गायन करनेवाले हैं । ४१९ ये वीर घोड़ोंके समान वेगसे जानेहारि, महारथियोंके समान उदार, उचित मौकेपर विभिन्न स्वरूप धारण कर कार्य करनेमें बड़ेही कुशल, जलोंवाँके समान निम्न स्थानों में पहुँचकर शान्ति प्रदान करनेहारि और सामगान करनेमें विश्वकुल अंगिरसोंके समान कुशल है ।

टिप्पणी— [४१८] (१) नाभिः = पहियेकी नाभि, केन्द्र, नेता, प्रमुख । (२) अभि-स्वतृ = (स्व = शब्दोपतापयोः) भावाज करनेहारा, उच्चार करनेहारा, (स्तुति करनेवाला) । (अराः न) जिस भौतिक चक्रके बारे समान होते हैं, वैसेही ये सभी वीर सैनिक समान हैं । (देखिए मंत्र ९५, ३०५, ४५३ ।)

(४२०) प्रावाणः । न । सूर्यः । सिन्धुऽमातरः । आऽद्विंशसः । अद्रयः । न । विश्वहा ।  
 शिशूलाः । न । क्रीळ्यः । सुऽमातरः । महाऽग्रामः । न । यामन् । उत । त्रिषा ॥ ६ ॥  
 (४२१) उपसाम् । न । केतवः । अध्वरऽधियः । शुभम्ऽययः । न । अजिभिः । वि । अश्वितन् ।  
 सिन्धवः । न । ययियः । आजत्ऽऋष्यः । पराऽवतः । न । योजनानि । ममिरे ॥७॥  
 (४२२) सुऽभागान् । नः । देवाः । कृणुत । सुऽरत्नान् । अस्मान् । स्तोतृन् । मरुतः । ववृधानाः ।  
 आधि । स्तोत्रस्य । सख्यस्य । गात । सनात् । हि । वः । रत्नधेयानि । सन्ति ॥८॥

अन्वय — ४२० सूर्य, प्रावाण न सिन्धु-मातर, आ-द्विंशस अद्रय न विश्व हा, सु-मातरः शिशूला न क्रीळ्य, उत महा ग्राम न यामन् त्रिषा। ४२१ उपसा केतव न, अध्वर-धिय, शुभ-यय न, अजिभि वि अश्वितन्, सिन्धव न ययिय, आजत्-ऋष्य, परावत न योजनानि ममिरे। ४२२ (हि) देवा ववृधाना मरुत । अस्मान् न स्तोतृन् सु-भागान् सु-रत्नान् कृणुत, सख्यस्य स्तोत्रस्य अधि गात, हि व रत्न-धेयानि सनात् सन्ति।

अर्थ— ४२० (सूर्य) ये शानी वीर (प्रावाण न) मेघोंके समान (सिन्धु मातर) नदियोंके बनाने वाले, (आ-द्विंशस) सभी प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेवाले (अद्रय न) यज्ञोंके तुल्य (विश्व-हा) सभी शत्रुओंका संहार करनेवाले, (सु मातर) उत्तम माताओंके (शिशूला न) निरोगी पुत्र-संतानोंके समान (क्रीळ्य) खिलाड़ी (उत) और (महा-ग्राम न) बड़े सग्राम चतुर योद्धाके समान शत्रुपर (यामन्) हमला करते समय (त्रिषा) तेजस्वी दीख पड़ते हैं।

४२१ ये वीर उपसा केतव न) उप कालीन किरणोंके समान तेजस्वी, (अध्वर-धिय) यज्ञके कारण सुहानेवाले (शुभ यय न) कल्याणप्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले वीरोंके समान (अजिभि) वीरभूषणों या गणवेशोंसे (वि अश्वितन्) विशेष ढंगसे प्रकाशित हो रहे हैं। ये (सिन्धव न) नदियोंके समान (ययिय) वेगपूर्वक जानेवाले, (आजत्-ऋष्य) तेजस्वी हाथियार धारण करनेवाले तथा (परा वत न) दूर जानेवाले प्रवासियोंके समान (योजनानि) कई योजन (ममिरे) पार कर चले जाते हैं।

४२२ हे (देवा) प्रकाशमान तथा (ववृधाना) बढ़नेवाले (मरुत ! ) मरुतो ! (अस्मान्) हमें और (न स्तोतृन्) हमारे सभी कवियोंको (सु-भागान्) अच्छे भाग्यवान् एवं (सु-रत्नान्) उत्तम रत्नोंसे युक्त (कृणुत) करो। (सख्यस्य स्तोत्रस्य) हमारी मित्रताके काव्यका (अधि गात) गायन करो। (हि) क्योंकि (व) तुम्हारे (रत्न धेयानि) रत्नोंके दान (सनात्) चिरकालसे (सन्ति) प्रचलित हैं।

भावार्थ— ४२० ये वीर पनतके सहायक, शत्रुओंके तुल्य शत्रुनाशक उत्तम माताके भारोग्रसपन्न बच्चोंकी नाई खिलाड़ी और युद्धकुशल योद्धाके जैसे शत्रुदलपर दृष्ट पड़ते समय प्रसन्नबोला बननेवाले हैं। ४२१ ये वीर तेजस्वी, अपने शरीरोंकी सँभारनेवाले, वेगपूर्वक दौड़नेवाले, आभामय हाथियार रखनेवाले, शत्रु पहुँच जानेकी हड्डी करनेवाले यशियोंके समान कई घोषण धकावट न दवाते हुए जानेवाले हैं। ४२२ हे वीरो! हमें तथा हमारे सभी कवियोंकी प्रभु मात्राभे धन एवं रत्न दे दो, क्योंकि तुम्हारा धनदानकी कार्य लगातार प्रचलित रहता है। मित्रदृष्टि हर स्थानपर पनपने लगे इसीलिए इस काव्यका गायन करो और मित्रतापूर्ण दृष्टिको बढ़ाओ।

टिप्पणी— [४२०] (१) प्रावन् = पदार, मेघ, पर्वत। (२) आ-द्विंश = (आ + दृ = फोड़ना, नाश करना) विनाशक। [४२१] (१) पर+अवत् = दूर जानेवाला। [४२२] (१) धेय = बटोरना, लेना, पोषण करना। (२) स्तोता = कवि। (३) सख्यस्य स्तोत्र = मित्रत्व बढ़ानेके लिए किया हुआ काव्य, सभी जगह मित्रभाव बढ़े, इस हेतुसे रचा हुआ काव्य।

( वा० यजु० ३।६४ )

(४२३) प्रघासिनऽइति प्रऽघासिनः । हवामहे । मरुतः । च । रिशार्दसः ।  
करम्भेण । सजोर्पसऽइति सऽजोर्पसः ॥४४॥

( वा० यजु० ७।३६ )

(४२४) उपयामर्गृहीत इत्युपयामऽर्गृहीतः । असि । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । एषः । ते ।  
योनिः । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । उपयामर्गृहीत इत्युपयामऽर्गृहीतः । असि । मरुताम् । त्वा ।  
ओजसे ॥३६॥

( वा० यजु० १।७।८०-८६ )

(४२४) शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मोश्च । शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंथहाः ॥८०॥

[१] शुक्रज्योतिरिति शुक्रऽज्योतिः । च । चित्रज्योतिरिति चित्रऽज्योतिः । च । सत्यज्यो-  
तिरिति सत्यऽज्योतिः । च । ज्योतिष्मान् । च ।

शुक्रः । च । ऋतपाऽइत्यृतऽपाः । च । अत्यंथहा इत्यतिऽअथंहाः ॥८०॥

अन्वयः— ४२३ प्र-घासिनः रिश-अदसः करम्भेण स-जोपस. च मरुतः हवामहे । ४२४ उपयाम-  
गृहीतः असि, मरुत्वते इन्द्राय त्वा, एष ते योनि, मरुत्वते इन्द्राय उपयाम-गृहीतः असि, मरुतां ओजसे  
त्वा । ४२४ (१) शुक्र-ज्योतिः च चित्र-ज्योतिः च सत्य-ज्योतिः च ज्योतिष्मान् च शुक्रः च  
ऋत-पाः च अत्यंहाः [ हे ऋमरुतः । यूयं असिन् यशे एतन् ] ।

अर्थ— ४२३ ( प्र-घासिनः ) उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे, ( रिश-अदसः ) हिंसकोंका वध करनेहारे  
और ( करम्भेण स-जोपसः च ) दहीआटेको सब मिलकर सेवन करनेवाले ( मरुतः हवामहे ) वीर मरुतों  
को हम बुलाते हैं । ४२४ तू ( उपयाम-गृहीतः असि ) उपयाम वर्तनमें धरा हुआ सोम है, ( मरुत्वते  
इन्द्राय ) वीर मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए ( त्वा ) तू है । ( एषः ते योनिः ) यह तेरा उत्पत्तिस्थान  
है । ( मरुतां ओजसे ) वीर मरुतोंके तुल्य बल प्राप्त हो जाय, इसीलिये हम ( त्वा ) तुझे अर्पित करते हैं या  
तेरा ग्रहण करते हैं । ४२४ (१) ( शुक्र ज्योति च ) अति शुभ्र तेजसे युक्त, ( चित्र-ज्योति च )  
आश्चर्यजनक तेजसे पूर्ण, ( सत्य ज्योतिः च ) सत्यके तेजसे भरा हुआ, ( ज्योतिष्मान् च ) पर्याप्त मात्रामें  
प्रकाशमान, ( शुक्रः च ) पवित्र, ( ऋत-पा. च ) सत्यका संरक्षण करनेहारा और ( अत्यंहा ) पापसे दूर  
रहनेवाला [ इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतो ' इस हमारे यशमें तुम पधारो ]

भावार्थ— ४२३ शशुविनाशक तथा सब इकट्ठे होकर अन्नका सेवन करनेवाले मरुतोंको हम अपने समीप बुलाते हैं ।  
४२४ उपयामनामक पात्रमें सोमरस डेडेलकर इन्द्र तथा मरुतोंको दिया जाता है और ऐसा करनेसे मरुतोंके समान बल  
प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना उपासक करता है तथा वह उस सोमरसका ग्रहण पत्रं दान करता है । ४२४ (१) १ शुक्रज्योति,  
२ चित्रज्योति, ३ सत्यज्योति, ४ ज्योतिष्मान्, ५ शुक्र, ६ ऋतपाः ७ अत्यंहाः ये सात मरुत हैं । यह मरुतोंकी पहली पक्ति है ।

टिप्पणी— [ ४२३ ] ( १ ) प्र-घासिन् = ( घन् अदने = खाना, घासः = अन्न ) उत्तम अन्नको खानेवाले,  
पर्याप्त अन्नका सेवन करनेवाले । ( २ ) करम्भ = सत्का आटा दहीमें मिलाकर तैयार किया हुआ साय पदार्थ । दही-  
भात, कोईभी अन्न दहीमें मिला देनेपर सिद्ध होनेवाली खानेकी चीज । [ ४२४ (१) ] ( १ ) अत्यंहस् =  
( अति + अंहस्- ) पापसे दूर रहनेवाला । [ हे ऋमरुतः ! — यह अथाहार अन्न ४२५ में से लिया है ।



- (४२४) ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥८१॥
- [२] ईदृङ् । च । अन्यादृङ् । च । सदृङ् । सदृङ्ङित्सदृङ् । च । प्रतिसदृङ्ङिति प्रतिसदृङ् । च ।  
मितः । च । सम्मितऽइति समुसमितः । च । सभराऽइति सभराः ॥८१॥
- (४२५) ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च ध्रुणश्च । धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥८२॥
- [३] ऋतः । च । सत्यः । च । ध्रुवः । च । ध्रुणः । च । धर्ता । च । विधर्तेति विधर्ता । च ।  
विधारयऽइति विधारयः ॥ ८२ ॥
- (४२६) ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुपेणश्च । अन्तिमित्रश्च दुरेऽभिमित्रश्च गणः ॥८३॥
- [४] ऋतजिदित्यृत्सजित् । च । सत्यजिदिति सत्यसजित् । च । सेनजिदिति सेनसजित् । च ।  
सुपेणः । सुसेनुऽइति सुसेनः । च ।  
अन्तिमित्रऽइत्यान्तिमित्रः । च । दुरेऽभिमित्रऽइति दुरेऽभिमित्रः । च । गणः ॥ ८३ ॥

धन्वयः— ४२४ (०) ई-दृङ् च अन्या-दृङ् च स-दृङ् च प्रति-सदृङ् च मितः च सं-मितः च स-भराः [ हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन । ] ४२४ (३) ऋतः च सत्यः च ध्रुवः च ध्रुणः च धर्ता च वि-धर्ता च वि-धारयः [ हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन ] । ४२४ (४) ऋत-जित् च सत्य-जित् च सेन-जित् च सु-पेणः च अन्ति-मित्रः च दुरेऽभ-मित्रः च गणः [ हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन ] ।  
अर्थ— ४२४ (०) (ई-दृङ् च) समीप की वस्तुपर दृष्टि रखनेवाला, (अन्या-दृङ् च) दूसरी ओर निगाह डालनेवाला, (स-दृङ् च) सबको सम दृष्टिसे देखनेवाला, (प्रति-सदृङ् च) प्रत्येकको एक विशिष्ट दृष्टिसे देखनेवाला, (मितः च) संतुलित भावसे वर्ताव रखनेवाला, (सं-मितः च) सबसे समरस होनेवाला, (स-भराः) सभी वारोंका बोझ अपने सरपर उठानेवाला— [इन नामोंसे प्रख्यात वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आ जाओ। ४२४ (३) (ऋतः च) सरल व्यवहार करनेवाला, (सत्यः च) सत्यावरणी, (ध्रुवः च) अटल एवं अटिग भावसे पूर्ण, (ध्रुणः च) सबको आश्रय देनेवाला, (धर्ता च) धारकशाक्तसे युक्त, (वि धर्ता च) विविध ढंगोंसे धारण करनेमें समर्थ और (वि-धार-यः) विशेष रीतिसे धारण कर प्रगतिशील बननेवाला— [ इन नामोंसे विख्यात वीर मरुतो ! हमारे यज्ञमें पधारो । ] ४२४ (४) (ऋत-जित् च) सरल राहसे चलकर यज्ञस्थी होनेवाला, (सत्य-जित् च) सत्यसे जीतनेवाला, (सेन-जित् च) शत्रुसेनापर विजय पानेवाला, (सु-पेणः च) अच्छी सेना समीप रखनेवाला, (अन्ति-मित्रः च) मित्रोंको समीप करनेवाला, (दुरेऽभ-मित्रः च) शत्रुको दूर हटानेवाला और (गणः) गिनती करनेवाला— [ इन नामोंसे विभूषित वीरो ! हमारे इस यज्ञमें आओ ]

भाष्यार्थ— ४२४ (३) ८ ईदृङ्, ९ अन्यादृङ्, १० सदृङ्, ११ प्रतिसदृङ्, १२ मित, १३ संमित तथा १४ सभर इन सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी दूसरी कतार है। ४२४ (३) १५ ऋत, १६ सत्य, १७ ध्रुव, १८ ध्रुण, १९ विधर्ता, २० धर्ता, २१ विधारय ऐसे सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर है। यह मरुतोंकी तीसरी पंक्ति है। ४२४ (४) २२ ऋतजित्, २३ सत्यजित्, २४ सेनजित्, २५ सुपेण, २६ अन्तिमित्र, २७ दुरेऽभिमित्र, २८ गण इन सात मरुतोंका निवेश यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी चतुर्थ कतार है।

टिप्पणी— [ ४२४ (३) ] (१) ऋत = सरल, विद्यामार्ग, पूज्य, प्रदीप्त, सत्य, यज्ञ, सारकर्म। (२) ध्रुण = होनेवाला, छे जानेवाला, आश्रय देनेवाला। [ ४२४ (४) ] (१) गणः = (गण् परिसंख्याने) गिनती करनेवाला, चण्डादिन्, भयान देनेवाला, चौराहा।

(४२५) ईदक्षासः । एतादक्षासः । ऊँस्त्यै । सु । नः । सदक्षासइति सदक्षासः । प्रतिसदक्षासइति प्रतिसदक्षासः । आ । इतन् । मितार्सः । च । सम्भितासइति सम्भितासः । नः । अद्य । सभरसइति सभरसः । मरुतः । यज्ञे । अस्मिन् ॥८४॥

(४२६) स्वर्तवानिति स्वर्तवान् । च । प्रघासीति प्रघासी । च । सान्तपनइति साम्तपनः । च । गृहमेधीति गृहमेधी । च । क्रीडी । च । शाकी । च । उज्जेपीत्युत्तजेपी ॥८५॥

[(४२६) उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्यांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा । ( पा०य० ३१७ )

[१] उग्रः । च । भीमः । च । ध्वान्तःइति धुर्धान्तः । च । धुनिः । च । सासह्यान् । ससह्यानिर्ति ससह्यान् । च । अभियुग्मेत्यभियुग्वा । च । विक्षिपइति विदक्षिपः । स्वाहा ॥७॥ ]

(४२७) इन्द्रम् । दैवीः । विशः । मरुतः । अनुवर्तमानइत्यनुवर्तमानः । अभवन् । यथा ।

इन्द्रम् । दैवीः । विशः । मरुतः । अनुवर्तमान इत्यनुवर्तमानः । अभवन् । एवम् । इमम् ।

यजमानम् । दैवीः । च । विशः । मानुषीः । च । अनुवर्तमानइत्यनुवर्तमानः । भवन्तु ॥८६॥

अन्वयः— ४२५ ई-दक्षासः एता-दक्षासः ऊ-स-दक्षासः प्रति-सदक्षासः सु- मितार्सः सं-मितार्सः नः स-भरसः ( हे ) मरुतः ! अद्य नः अस्मिन् यज्ञे एतन् । ४२६ स्व-तवान् च प्र-घासी च सान्तपनः च गृह-मेधी च क्रीडी च शाकी च उत्-जेपी च [ हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन् ] । ४२६ (१) उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च सासह्यान् च अभि-युग्वा च विक्षिपः स्वाहा । ४२७ दैवीः विशः मरुतः इन्द्रं अनु-वर्तमानः अभवन् ( यथा दैवीः ०००० अभवन् ) एवं दैवीः मानुषीः च विशः इमं यजमानं अनु-वर्तमानः भवन्तु ।

अर्थ— ४२५ ( ई-दक्षासः ) इन समीपस्थ वस्तुओंपर विशेष दृष्टि रखनेहारे, ( एता-दक्षासः ) उन सुदूर वर्तों चीजोंपर विशेष ध्यान केन्द्रित करनेवाले, ( ऊ-स-दक्षास ) सब मिलकर एक विचारले देनेहारे, ( प्रति-सदक्षासः ) प्रत्येककी ओर विशेष ध्यान देनेवाले, ( सु-मितार्सः ) अच्छे ढंगसे प्रमाणबद्ध, ( सं-मितार्सः ) मिलजुलकर काम करनेहारे तथा ( नः ) हमारा ( स-भरसः ) समान अनुपातमें पोषण करनेवाले हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( अद्य ) आज दिन ( नः अस्मिन् यज्ञे ) हमारे इस यज्ञमें ( एतन् ) आओ ।

४२६ ( स्व-तवान् ) अपने निजी बलके सहारे पडा हुआ, ( प्र-घासी च ) भली भाँति अद्य तैयार करनेवाला, ( सान्तपनः च ) शत्रुओंको परिताप देनेवाला, ( गृह-मेधी च ) गृहस्थधर्म का पालन करनेवाला, ( क्रीडी च ) खिलाडी, ( शाकी च ) सामर्थ्ययुक्त तथा ( उत्-जेपी च ) दुश्मनोंपर अच्छी विजय पानेहारा [ इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आओ । ]

४२६ (१) ( उग्रः च ) उग्र, ( भीमः च ) भीमण, ( ध्वान्तः च ) शत्रुओं के आँखों में अंधियारी छा जाय ऐसा कार्य करनेहारा, ( धुनिः च ) शत्रुदलको हिला देनेवाला, ( सासह्यान् च ) सहनशक्तिसे युक्त, ( अभि-युग्वा च ) शत्रुदलसे सामने जूझनेवाला, ( वि-क्षिपः च ) धिविध ढंगोंसे शत्रुओं को भगा-नेवाला-इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतोंको ये दृष्टिप्यात्र ( स्वाहा ) अर्पित हों ।

४२७ ( दैवीः विशः मरुतः ) ये वीर मरुत् दैवी प्रजाजन हैं और वे ( इन्द्रं अनु-वर्तमानः ) इन्द्र के अनुयायी ( अभवन् ) हुए हैं । ( एवं ) इसी भाँति ( दैवीः मानुषीः च विशः ) देवलोक एवं मनुष्यलोक के प्रजाजन ( इमं यजमानं ) इम यज्ञ करनेहारे के ( अनु-वर्तमानः भवन्तु ) अनुयायी हों ।

भाषार्थ— ४०५ २९ ईदशास, ३० एतादशास, ३१ सटशास, ३२ प्रतिस्वशास, ३३ सुमितासः, ३४ संमिता-  
सः, ३५ सभरस इत सात मरतो का उल्लेख इस मंत्रमें है। यह मरतोकी पंचम पंक्ति है।

४२६ ३६ स्वतवान्, ३७ प्रघासी, ३८ सान्तपन, ३९ गृहमेधी, ४० क्रीडी, ४१ शाकी, ४२ अग्नेयी इत  
सात मरतोका निर्दिष्ट यहाँ है। यह मरतोकी छठी पंक्ति है।

४२६ (१) ४३ उग्र, ४४ भीम, ४५ ध्वान्त, ४६ धुनि, ४७ सासद्धान्, ४८ अभियुग्वा, ४९ विक्षिप,  
इस भौति सात मरतोकी संख्या यहाँपर निर्दिष्ट है। यह मरतोकी सप्तम पंक्ति है।

टिप्पणी— [ ४२६ (१) ] (१) ध्वान्तः = (ध्वन् दग्धे) तन्द्रकारी, अंधेरा। (२) सासद्धान् = (स-भा-  
[ यह नर्पणे ]+ध्व) सहनशक्तिसे युक्त। [ भा० ८. १६. ८ मंत्रमें "त्रि पष्टिस्त्वा मरतो वायुधाना"  
अथान् सम्ये मरतोवा सत्या ६३ ऐ, ऐसा स्पष्ट कहा है। उसी मंत्रपर की हुई सायणाचार्यजी की टीकामें भी लिखा है-  
"त्रिः प्रयः। पष्टि-युस्तरसंख्याकाः मरतः। ते च तैत्तिरीयके 'ईदृश् चान्यादृश् च' (सै० सं० ४।६।५।५)  
इत्यादिना नयतु गणेषु सप्त सप्त प्रतियादिताः। तत्रादितः यच्च गणाः संहितायामान्नायन्ते। 'स्वतवांश्च  
प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी चोऽग्नेयी' (वा० सं० १०।८५) इति खैलिकः पष्ठो गणः।  
ततो 'धुनिश्च ध्वान्तश्च' (सै० भा० ४।१६) इत्याद्यास्तयोऽरण्येऽनुवाक्याः। इत्थं त्रयःपष्टिसंख्या-  
याः— "

तैत्तिरीय संहिताया परिगणन इस भौति है--

	संख्या	
(१) ईदृश् च—	३	(वा० यनु० मंत्रसंख्या १०।८१)
(२) एवञ्चै तिथ-	७	( " " " ८०)
(३) कनविष-	३	( " " " ८३)
(४) कनय-	७	( " " " ८२)
(५) ईदशास -	३	( " " " ८४)
	२५	

टीकाके अनुसार देलना हो तो-

(६) स्वतास-	३	(वा० य० १०।८५)
(७) धुनिश्च ध्वान्तश्च.	७	(सै० भा० ४।१६)
(८) उग्रश्च धुनिश्च-	१२	" "
	१९	

टीकामें 'धुनिश्च ह्याद्यास्तया' यों कहा है, परन्तु ७×३ = २१ मरतु स्वतंत्र रीतिसे नहीं पाये गये हैं। केवल  
१९ है। गिनतेसे ५ पुनरक्त है। सब मिलाकर सै० य ३५ + वा० य० ७ + सै० भा० १४ = ५६ मरतोकी गिनती पाई  
जानी है। (वा० य० ३।१०) 'उग्रश्च भीमश्च' गिनतीकीभी इसीसे सशुद्ध करें और उससेलेभी पुनरक्त ४ नाम हटा  
दें तो (पढके के ५६ +) दीप ३ मिलानेपर कुल ५९ मरतोकी दौध पडती है। शेष ४ नामोंका अनुमन्वान गिना।  
शुभोरी करना चाहिए। 'एकोनपञ्चाशत्संख्यायाः मरतः' ऐसा वर्णन अनेक स्थानोंपर पाया जाता है, उस प्रकार  
(वा० य० १०।८० से ८५ और ३।१०) तक ४९ मरतोकी गणना स्पष्ट है।

अथ (वा० य० १०।८० से ८५ और ३।१०), (सै० सं० ४।६।५।५) और (सै० भा० ४।२४) इन सभी मंत्रोंकी  
गणना निम्नलिखित रंगकी है--

[ वा. य. १७/८० - ८५ व ३९/७ ]—

१	२	३	४	५	६	७
१ शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	शुक्र	ऋतप	अत्यंहम्
२ ईहद्	अन्याहद्	सहद्	प्रतिसहद्	मित	संमित	सभरस्
३ ऋत	सत्य	ध्रुव	धरण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
४ ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुपेण	अन्तिमिन	दूरेऽमिन	गण
५ ईहक्षास	एताहक्षास	सहक्षान्	प्रतिसहक्षासः	सुमितास	संमितासः	सभरसः
६ स्वतवान्	प्रघासी	सान्तपन	गृह्मेधी	वीडी	शाकी	उज्जेयी
७ उग्र	भीम	ध्वान्त	धुनि	सासहान्	अभियुग्वा	विक्षिप

( पंचम पंक्तिमें 'संमितासः' तथा 'सभरस्' का एकपचन किया जाय तो 'संमित' तथा 'सभरस्' दोनों नाम दूसरी पंक्तिमें पाये जाते हैं यह विचार करने योग्य बात है । )

( तै. सं. ४।६।५।५ )

१	२	३	४	५	६	७
१ ईहद्	अन्याहद्	एताहद्	प्रतिसहद्	मित	संमित	सभरस्
२ शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	सत्य	ऋतप	अत्यंहस्
३ ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुपेण	अन्ति अमिन	दूरेऽमिन	गण
४ ऋत	सत्य	ध्रुव	धरण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
५ ईहक्षासः	एताहक्षास	सहक्षास	प्रतिमहक्षासः	मितासः	संमितास	सभरस

( तै. आ. ४।२४ )—

१	२	३	४	५	६	७
१ धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	निलिम्प	विलिम्प	विक्षिप
२ उग्र	धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	सहसहान्	सहगाम
३ सहस्वान्	सहीमान्	एत्य	प्रेत्य	विक्षिप	×	×

यह समूची गणना १०३ हुई। इसमेंसे ४० पुनरुक्त हटा दे तो ६३ नेप रहते हैं। इस प्रकार (फ. ८।९।६।८) पर की टीका में जो ६३ संख्या बतलायी है, वह सुसंगत प्रतीत होती है।

इससे ऐसा जान पड़ता है कि इन ६३ मद्युक्तोंकी रचना यों बतलायी जा सकती है --

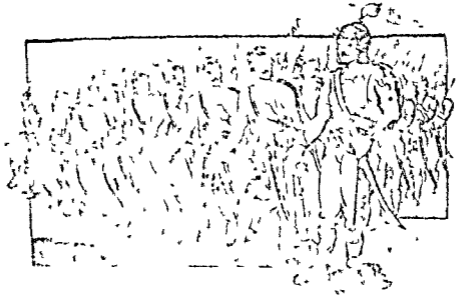
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×

७ पार्थ-रक्षक 1 \_\_\_\_\_ ४९ मरुत् \_\_\_\_\_ 1 ७ पार्थ-रक्षक

= कुल ६३ मरुत्

ध्यानमें रहे कि इन मरुत्की सेनाओं छोटेसे छोटा सगुदाय ( Unit ) ६३ सैनिकोंका माना जाता है। हमना चित्र भागके प्रारम्भ पर देखिये ।

# मरुतोंका एक संघ



पार्श्वरक्षकोंकी  
पंक्ति  
७ मरुत्

मरुतोंकी सात पंक्तियां  
४९ मरुत्

पार्श्वरक्षकोंकी  
पंक्ति  
७ मरुत्

७ पार्श्वरक्षक + ४९ मरुत् + ७ पार्श्वरक्षक = कुल ६३ मरुतोंका एक संघ.

(वा० यजु० २५००)

(४२८) पृषदश्वा इति पृषत्-अश्वाः । मरुतः । पृश्निमातर इति पृश्निमातरः ।  
 शुभंयावान् इति शुभमस्यावानः । विदथेषु । जग्मयः ।  
 अग्निजिह्वा इत्याग्निजिह्वाः । मनवः । सूरचक्षस इति सूरचक्षसः ।  
 विश्वे । नः । देवाः । अरसा । आ । अगमन् । इह ॥२०॥

अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि ( वान० ३५६ )

(४२९) यदि । वहन्ति । आशवः । आजमानाः । रथेषु । आ ।  
 पिबन्तः । मदिरम् । मधु । तत्र । श्रवासि । कृण्वते ॥५॥

प्रथा ऋषि ( अथ० १।२६।३-४ )

(४३०) यूयम् । नः । प्रसृतः । नपात् । मरुतः । सूर्यस्त्वचमः ।  
 शर्म । यच्छाथ । सप्रथाः ॥३॥

अन्वय — ४२८ पृषत्-अश्वा पृश्नि-मातर शुभ यावान, विदथेषु जग्मय अग्नि जिह्वा मनवः सूर-  
 चक्षस, मरुत विश्वे देवा अवसा न इह आगमन् ।

४२९ यदि आशव रथेषु आजमाना, मधु मदिर पिबन्त आ वहन्ति तत्र श्रवासि कृण्वते ।

४३० (हे) सूर्य-त्वचस मरुत 'प्रवत नपात् । यूय न स प्रथा शर्म यच्छाथ ।

अर्थ— ४२८ रथों को (पृषत्-अश्वा) धन्वेवाले घोड़े जोतनेवाले, (पृश्नि-मातर) भूमि एवं गौको  
 माता माननेवाले, (शुभ यावान) लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले (विदथेषु जग्मय) युद्धोंमें  
 जानेवाले, (अग्नि-जिह्वा) अग्निकी लपटों, की नार्द तेजस्वी, (मनव) विचारशील (सूर-चक्षस)  
 सूर्यवत् प्रकाशमान (मरुत) वीर मरुत् ओर (विश्वे देवा) सभी देव (अवसा) सरक्षक शक्तियोंके साथ  
 (न. इह) हमारे यहाँ (आगमन्) आ जायें ।

४२९ (यदि) जहाँ जहाँ ये (आशव) वेगपूर्वक जानेवाले, (रथेषु आजमाना) रथोंमें चमकने  
 वारे तथा (मधु मदिर पिबन्त) मीठा सोमरस पीनेवाले वीर (आ वहन्ति) चले जाते ह (तत्र)  
 वहाँ वहाँपर (श्रवासि कृण्वते) विपुल धन पाते ह ।

४३० हे (सूर्य-त्वचस, मरुत ! ) सूर्यवत् तजस्वी वीर मरुतो ! ओर (प्रवत, नपात्) अग्ने'  
 (यूय) तुम सभी मिलकर (न) हमें (स-प्रथा) विपुल (शर्म) सुख (यच्छाथ) दे दो ।

भावार्थ— ४२८ (भावार्थ स्पष्ट है ।) ४२९ निधर वे वीर सैनिक चले जाते ह, उधर वे भौतिके भौतिके धन  
 कमात ह । ४३० हम इन दलों की कृपासे सुख मिले ।

टिप्पणी— [ ४३० ] (१) प्रवत्= सुगम मार्ग, ढाल । (२) नपात्= पोता, पुत्र (न-पात्) जिसका पतन न  
 होता हो । प्रवतो नपात्—(Son of the heavenly height i e Agni) सीधी राहसेल जाकर न गिरानेवाला ।  
 (३) स प्रथा = (प्रधस्=विस्तार) विस्तारसे युक्त, विशाल, विपुल ।

(४३१) सुसूदत । मृडत । मृडय । नः । तनूभ्यः । मयः । तोकेभ्यः । कृधि ॥४॥

( अर्थ० ५१२१५ )

(४३२) छन्दांसि । यज्ञे । मरुतः । स्वाहा ।

माताश्व । पुत्रम् । पिपृत । इह । युक्ताः ॥५॥

( अर्थ० १३११३ )

(४३३) यूपम् । उग्राः । मरुतः । पृश्निमातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र । मृणीत । शत्रून् ।

आ । वः । रोहितः । शृणवत् । सुदानवः ।

मिदुसप्तसः । मरुतः । स्वादुसमुदः ॥३॥

अन्वयः— ४३१ सु-सूदत मृडत मृडय नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि ।

४३२ ( हे ) मरुतः ! युक्ताः इह यज्ञे माताश्व पुत्रं छन्दांसि पिपृत, स्वाहा ।

४३३ ( हे ) पृश्नि मातरः उग्राः मरुत ! यूपं इन्द्रेण युजा शत्रून् प्र मृणीत, ( हे ) सु-दानवः स्वादु-सं-मुदः त्रि-सप्तसः मरुत ! वः रोहितः आ शृणवत् ।

अर्थ— ४३१ हमारे शत्रुओं को ( सु-सूदत ) विनष्ट करो । हमें ( मृडत ) सुखी करो; हमें ( मृडय ) सुखी करो । ( न तनूभ्यः ) हमारे शरीरों को और ( तोकेभ्यः ) पुत्रपौत्रोंको ( मय ) सुखी ( कृधि ) करो ।

४३२ हे ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( युक्ता ) हमेशा तैयार रहनेवाले तुम ( इह यज्ञे ) इस यज्ञमें ( माताश्व पुत्रं ) माता जैसे पुत्रका पालनपोषण करती है, उसी प्रकार हमारे ( छन्दांसि ) मन्त्रों का, इच्छाओं का ( पिपृत ) संगोपन करो । ( स्वाहा ) ये हविष्यान्न तुम्हें अर्पित हों ।

४३३ हे ( पृश्नि-मातरः ) भूमिको माता माननेवाले, ( उग्राः ) शूर ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( यूपं ) तुम ( इन्द्रेण युजा ) इन्द्रसे युक्त होकर ( शत्रून् प्र मृणीत ) शत्रुओंका संहार करो । हे ( सु-दानव ) दानी, ( स्वादु-सं मुद ) मीठे अन्नसे अच्छा आनन्द पानेहारे तथा ( त्रि-सप्तसः ) इषकीस विभागोंमें बँटे हुए ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( वः रोहितः ) तुम्हारा लाल रंगवाला हरिण ( आ शृणवत् ) तुम्हारी बात सुन ले, तुम्हारी आज्ञामें रहे ।

भाषार्थ— ४३१ हमारे शत्रुओंका विनाश होकर हमें सुख प्राप्त हो ।

४३२ हमारी आकांक्षाओंका भली भाँति संगोपन हो और वह वीरोंके प्रयत्नसे हो, अतः इन वीरोंको हम यह लपंग कर रहे हैं ।

४३३ वीर सैनिक अपने प्रमुख सेनापतिकी आज्ञामें रहकर शत्रुदलकी पंक्तियाँ उखा दें । अच्छा अन्न प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करें। अपने सभी सेनाविभागोंकी सुस्पष्टथा रखकर हरएक वीर, प्रमुखकी आज्ञाके अनुसार, कार्य करता रहे, सेना अनुशासनका प्रबंध रहे ।

टिप्पणी— [ ४३१ ] ( १ ) सूद ( क्षरणे ) = विनाश करना, बघ करना, दु ख देना, दूर केंक देना, रखना ।

[ ४३२ ] ( १ ) छन्दस् = इच्छा, स्तुति, वेद ।

[ ४३३ ] ( १ ) स्वादु = मीठा, ( मिठासमयी खाद्य वस्तु, सोमरस ) । ( २ ) सप्त = ( सप् = सम्मान देना ) सात, सम्मानित ।

अथवा ऋषि ( अर्थ० ३।१।२, ६ )

(४३४) यूयम् । उग्राः । मरुतः । ईदृशे । स्थ । अभि । प्र । इत् । मृणत । सहध्वम् ।  
अमीमृणन् । वसवः । नाथिताः । इमे । अग्निः । हि । एषाम् । दूतः । प्रतिऽएतु । विद्वान् ॥२॥

(४३४) इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो ब्रह्मन्त्वोजसा । चक्षुष्यगिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

[१] इन्द्रः । सेनाम् । मोहयतु । मरुतः । घ्नन्तु । ओजसा ।

चक्षुषि । अग्निः । आ । दत्ताम् । पुनः । एतु । पराजिता ॥६॥

( अर्थ० ३।१।६ )

(४३५) असां । या । सेनां । मरुतः । परेषाम् । अस्मान् । आऽएति । अभि । ओजसा । स्पर्धमाना ।  
ताम् । विध्यत । तमसा । अपऽव्रतेन । यथा । एषाम् । अन्यः । अन्यम् । न । जानात् ॥६॥

अन्वयः— ( हे ) उग्राः मरुतः ! यूयं ईदृशे स्थ, अभि प्र इत्, मृणत सहध्वं, इमे नाथिताः वसव. अमी-  
मृणन्, एषां विद्वान् दूतः अग्निः हि प्रत्येतु । ४३४ ( १ ) इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतः ओजसा घ्नन्तु,  
अग्निः चक्षुः आ दत्तां, पराजिता पुनः एतु । ४३५ ( हे ) मरुतः ! जसौ परेषां या सेना ओजसा  
स्पर्धमाना अस्मान् अभि आ-एति तां अप-व्रतेन तमसा विध्यत यथा एषां अन्यः अन्यं न जानात् ।

अर्थ— ४३४ हे ( उग्रा मरुतः ! ) उग्र स्वरूपग्राहे वीर मरुतो ! ( यूयं ) तुम ( ईदृशे ) ऐसे समरमे ( स्थ )  
स्थिर रहो और शत्रुओंपर ( अभि प्र इत् ) आक्रमण करो । शत्रुओंके वीरोंको ( मृणत ) मारकर ( सहध्वं )  
उनका पराभव करो । उसी प्रकार ( इमे ) ये ( नाथिताः ) प्रशंसित और ( वसव. ) बसानेवाले वीर हमारे  
शत्रुओंके ( अमीमृणन् ) बिनष्ट कर डालें । ( एषां विद्वान् दूत. ) इनका ज्ञानी दूत ( अग्निः हि ) अग्निमी  
( प्रत्येतु ) हर शत्रुपर चढाई करे । ४३४ ( २ ) ( इन्द्रः ) इन्द्र ( सेनां ) शत्रुसेनाको ( मोहयतु ) मोहित कर  
डाले, ( मरुतः ) वीर मरुत् ( ओजसा ) अपने बलसे विरोधी पक्षके लोगोंको ( घ्नन्तु ) मार डाले, ( अग्निः ) अग्नि  
उनकी ( चक्षुः ) दृष्टिको ( आ दत्तां ) निकाल ले और इस ढंगसे ( पराजिता ) परास्त हुई शत्रुसेना ( पुनः एतु )  
फिर एक बार पीछे हटकर लोट जाय । ४३५ हे ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! ( असौ ) यह ( परेषां या सेना )  
शत्रुओंकी जो सेना ( ओजसा ) अपने बलके जाभारसे ( स्पर्धमाना ) स्पर्धा करती हुई, हो उ लगती हुईसी  
( अस्मान् अभि आ-एति ) हमपर चढाई करती हुई आती है, ( तां ) उसे ( अप-व्रतेन ) जिसमें कुछ  
भी नहीं किया जा सकता है, ऐसा ( तमसा ) जंघरा फेलाकर, उससे उस सेनाको ( विध्यत ) विध डालो,  
इस भाँति ( यथा ) कि ( एषां ) इनमें से ( अन्य ) अन्य न जानात् ) एक दूसरे को जान नहीं सके ।

भावार्थ— ४३४ युद्ध छिड जानेपर वीर सैनिक अपनी जगह टटकर खड़े रहें और दुश्मनोपर दृष्ट पड़े । शत्रुओंको  
गाजरमूलीकी तरह काट देना चाहिए और दुश्मनोंकी चढाईके पलस्वरूप अपना स्थान छोड़कर भागना नहीं चाहिए,  
क्योंकि ऐसा करनेसे स्वयं अपनेकी पराजित होना पडेगा । ४३४ ( १ ) शत्रुदल परास्त हो जाय, उसे शिकस्त खाना  
पडे । ४३५ शत्रुदलपर इस भाँति आक्रमण कर देना चाहिए कि, सभी शत्रुसैनिक पूर्ण रूपसे भ्रातचेता ही  
बैठें । अंधेरा उत्पन्न करनेवाले ( तमम् )—अन्ध का प्रयोग करके दुश्मनोंकी सेनाको अकिंचित्तर बनाया जाय ।

टिप्पणी— [ ४३४ ] ( १ ) मृण = ( हिसायाम् ) बध करना, नाश करना । ( २ ) घ्नन्तु = उपनिवेश बसानेमें सहायता  
करनेहारा, ( वागयतीति ) । [ ४३५ ] ( १ ) अप व्रत ( व्रत = रम, वर्तन्व्य ) = जिसमें वर्तन्व्यका विनाश हुआ हो । अपव्रतं तम. =  
यह एक अन्ध है । शत्रुसेनामें तीव्र अंधियारा फैलती है, युद्ध के मारे सैनिकों को ख्यात लेना दूभर प्रतीत होता है, दम  
बुद्धि लगता है । उन्हें ज्ञात नहीं होता कि, क्या किया जाय । जो करना सो नहीं करते और अग्निष्ट से बन जाने के  
कारण नहीं करना है, यही कर बैठने है । ' अपव्रततम ' नामक अस्त्रका प्रभाव इसी भाँति पडा अन्ध है ।



(४३६) मरुतः । पर्यंतानाम् । अधिपतयः । ते । मा । अनुन्तु ।

अस्मिन् । ब्रह्मणि । अस्मिन् । कर्मणि । अस्याम् । पुरोऽधायाम् । अस्याम् । प्रतिस्थायाम् ।  
अस्याम् । चित्याम् । अस्याम् । आऽकृत्याम् । अस्याम् । आऽशिषि । अस्याम् । देव-  
हृत्याम् । स्वाहा ॥६॥

शन्ताति ऋषि । ( अथर्व० ५१३१४ )

(४३७) त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः ।

त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असन् ॥७॥

( अथर्व० ६१२०१२-३ )

(४३८) पर्यस्वतीः । कृणुथ । अपः । ओपधीः । शिवाः । यत् । एजथ । मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।  
ऊर्जम् । च । तत्र । सुऽमुतिम् । च । पिन्वत । यत्र । नरः । मरुतः । सिञ्चथ । मधु ॥२॥

अन्वय — ४३६ पर्यंताना अधिपतय ते मरुत अस्मिन् ब्रह्मणि अस्मिन् कर्मणि अस्यां पुरो-धायाम्  
अस्या प्र-तिष्ठाया अस्या चित्या अस्या आकृत्या अस्या आशिषि अस्यां देव हृत्यां मा अवनतु स्वाहा ।

४३७ देवा इम त्रायन्ता, मरुता गणा, त्रायन्ता, विश्वा भूतानि यथा अयं अ-रपाः असन्  
त्रायन्ता ।

४३८ ( हे ) रुक्म-वक्षस मरुत ! यत् एजथ पयस्वती- अपः शिवा- ओपधी- कृणुथ, ( हे )  
नर मरुत ! यत्र मधु सिञ्चथ तत्र ऊर्जं च सु-मतिं च पिन्वत ।

अर्थ— ४३६ ( पर्यंताना अधिपतय- ) पहाड़ों के स्वामी ( ते मरुत- ) ये चीर मरुत ( अस्मिन् ब्रह्मणि )  
इस ज्ञानमें, ( अस्मिन् कर्मणि ) इस कर्म में, ( अस्या पुरो-धायाम् ) इस नेतृत्व में, ( अस्यां प्र-तिष्ठाया )  
इस अच्छी प्रकारकी स्थिरतामें ( अस्या चित्या ) इस विचारमें, ( अस्या आकृत्या ) इस अभिप्रायमें, ( अस्यां  
आशिषि ) इस आशीर्वादमें ( अस्या देव-हृत्या ) और इस देवोंकी प्रार्थनामें ( मां अवनतु ) मेरी रक्षा करें ।  
( स्वाहा ) ये हविष्याद्य उनके लिए अर्पित ह ।

४३७ ( दयाः ) देवतागण ( इमं त्रायन्तां ) इसका संरक्षण करें, ( मरुतां गणा- ) चीर मरुतों के  
सङ्घ इसकी ( त्रायन्ता ) रक्षा करें । ( विश्वा भूतानि ) समूचे जीवजन्तु भी ( यथा ) जिस भाँति ( अय अ-रपाः  
असन् ) यह निर्दोष निष्पाप, निरोगी हो, उसी ढंगसे इतने ( त्रायन्ता ) बचायें ।

४३८ हे ( रुक्म-वक्षस मरुत ! ) वक्ष स्थलपर स्वर्णमुद्राके हार धारण करनेवाले चीर मरुतो !  
( यत् एजथ ) जब तुम चलने लगते हो तब ( पयस्वती अप ) चलपथके जल तथा ( शिवाः ओपधी- )  
पल्याण-कारक वनस्पतिया ( कृणुथ ) उत्पन्न करते हो और हे ( नर मरुत ! ) नेतापदपर अधिष्ठित चीरो-  
सेनिको ! ( यत्र मधु सिञ्चथ ) जहाँपर तुम मीठासभरे अन्नकी समृद्धि करते हो, ( तत्र ) वहाँपर ( ऊर्जं  
च सुमतिं च ) जल एवं उत्तम वृद्धि को ( पिन्वत ) निमित्त करते हो ।

भावार्थ— ४३८ पवन वहती है, मधु यहाँ कल्ले लगते हैं, वनस्पतियाँ बढ़ती हैं और मीठासभरे फल खानेके  
लिए मिलते हैं । इस अन्नसे वृद्धि की वृद्धि होनेमें बड़ी भारी सहायता मिलती है ।

टिप्पणी— [ ४३६ ] ( १ ) चित्ति = विचार, मनन, ज्ञान, भक्ति, कीर्ति ।

• (४३९) उदुःप्रुतः । मरुतः । तान् । इयर्त । वृष्टिः । या । विश्वाः । निःसवतः । पूणाति ।  
एजाति । ग्लहा । कन्याऽइव । तुन्ना । एरुम् । तुन्दाना । पत्याऽइव । जाया ॥३॥

मृगार ऋषि । (अथर्व ४।२।११-७)

(४४०) मरुताम् । मन्वे । अधि । मे । वृवन्तु । प्र । इमम् । वाजम् । वाजःसाते । अवन्तु ।  
आशून्ऽइव । सुऽयमान् । अहे । ऊतये । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१॥

(४४१) उत्सम् । अक्षितम् । विऽअञ्चन्ति । ये । सदा । ये । आऽसिञ्चन्ति । रसम् । ओपधीपु ।  
पुरः । दुधे । मरुतः । पृश्निऽमातृन् । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥२॥

अन्वय- ४३९ (हे) मरुतः ! उदः प्रुतः तान् इयर्त, या वृष्टिः विश्वाः निवतः पूणाति, तुन्दाना ग्लहा, तुन्ना कन्याइव, एरुं पत्याइव जाया एजाति । ४४० मरुतां मन्वे, मे अधि वृवन्तु, वाज साते इमं वाजं अवन्तु, आशून्इव सु-यमान् ऊतये अहे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु । ४४१ ये सदा अ-क्षितं उत्सं वि-अञ्चन्ति, ये ओपधीपु रसं आसिञ्चन्ति, पृश्नि मातृन् मरुतः पुरः दुधे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु ।

अर्थ- ४३९ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (उद-प्रुतः तान्) जलको गति देनेवाले उन मेघोंको (इयर्त) प्रेरित करो । उनसे हुई (या वृष्टिः) जो वारिदा (विश्वाः निवतः) सभी दरीकंदराओंको (पूणाति) परिपूर्ण कर देती है, उस समय । तुन्दाना ग्लहा) दहाटनेवाली विजली (तुन्ना कन्याइव) उपवर कन्या (एरुं) नवयुवक को प्राप्त करती है, उस समयकी तरह तथा (पत्याइव जाया) पतिके आलिङ्गनमें रही नारीकी नाई (एजाति) विकम्पित हो उठती है । ४४० (मरुतां) वीर मरुतांको मैं (मन्वे) सम्मान देता हूँ, वे (मे) मुझे (अधि वृवन्तु) उपदेश दें, पथप्रदर्शन करें और (वाज-साते) युद्धके अवसरपर (इमं) इस मेरे (वाजं) यलकी (अवन्तु) रक्षा करें । (आशून्इव) वेगवान घोड़ोंके तुल्य अपना (सु-यमान्) अच्छा नियमन भली प्रकार करनेवाले उन वीरोंको हमारे (ऊतये) संरक्षणार्थ (अहे) मैं बुलाता हूँ । (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चन्तु) छुड़ा दें । ४४१ (ये) जो (सदा) हमेशा (अ क्षितं) कभी न न्यून होनेवाले (उत्सं) जलप्रवाहकी (वि-अञ्चन्ति) विशेष ढंगसे प्रवर्तित करते ह, (ये) जो (ओपधीपु) औपधियोंपर (रसं आसिञ्चन्ति) जलका छिटाकाव करते हैं, उन (पृश्नि मातृन् मरुतः) भूमिको माता समझनेवाले वीर मरुतांको मैं (पुर दुधे) अगभागमें रख देता हूँ । (ते) वे वीर (नः अंहसः मुञ्चन्तु) हमें पापांसे बचायें ।

भावार्थ- ४३९ वायुप्रवाह मेघोंको प्रेरित कर तथा वर्षाका प्रारंभ करके समूची दरीकंदराओंको जन्से परिपूर्ण कर डालते हैं । उस समय विशुण् मेघोंसे इस भाँति सम्मिलित हो जाती है, जैसे युवतियों अपने नवयुवक पतिदेवको गले लगाती हैं । ४४० वीर हमें योग्य मार्ग दर्शायें, लोगोंके चक्का सरक्षण करें तथा उत्तरा दुरवयोग होने न दें । सिपायें हुए घोड़े जिस भाँति आशूनुवर्ता रहते हैं उसी प्रकार वे वीर हैं और वे हमें पापसे बचाकर सुखित रखें । ४४१ वायुप्रवाहोंके कारण वर्षा हुआ करती है, भूमिपर जलके स्रोत पृथ करने रहते हैं, वनस्पतियोंमें रसकी वृद्ध होती है । पापसे बचनेमें वीर हमें सहायता दें ।

टिप्पणी- [ ४३९ ] (१) निवत- भूमिका निम्न विभाग, दरी । (२) ग्लहाः = छतकोडा कितव । (३) तुन्ना = क्षतविधत, निकल, (कामवाचासे पीडित), ( तुद्- बधने = बध देना, मारना, दुःख देना ।) (४) एरुं = जानेवाला, (मास करनेवाला) । [ ४४१ ] (१) पुरः दुधे = हमेशा भाँतिके सामने धर देगा ह, अगभागमें रक्षना ह मार्गदर्शन समझता ह ।

- (४४२) पर्यः । धेनुनाम् । रसम् । ओषधीनाम् । ज्वम् । ज्वताम् । क्वयः । ये । इन्वयः ।  
 शग्माः । भ्रन्तु । मरुतः । नः । स्वोनाः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥३॥
- (४४३) अपः । समुद्रात् । दिवम् । उत् । वहन्ति । दिवः । पृथिवीम् । अभि । ये । सृजन्ति ।  
 ये । अत्सभिः । ईशानाः । मरुतः । चरन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥४॥
- (४४४) ये । कीलालेन । तर्पयन्ति । ये । घृतेन । ये । वा । वयः । मेदसा । समुत्सृजन्ति ।  
 ये । अत्सभिः । ईशानाः । मरुतः । वर्पयन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥५॥

अन्वय — ४४२ ये क्वय धेनुना पय आपधीना रस अर्चना जय इन्वय (ते) शग्मा मरुत न स्वोना-  
 भ्रन्तु, ते न अहस मुञ्चन्तु । ४४३ ये समुद्रात् अप दिव उत् वहन्ति दिव पृथिवीं अभि सृजन्ति,  
 ये अत्सि ईशाना मरुत चरन्ति ते न अहस मुञ्चन्तु । ४४४ ये कीलालेन ये घृतेन तर्पयन्ति, ये  
 वाचप मेदसा ससृजन्ति, ये अत्सि ईशाना मरुत वर्पयन्ति, ते न अहस मुञ्चन्तु ।

अर्थ— ४४२ (ये क्वय ) जो पानी घोर ( धेनुना पय ) गोआँसे दुग्धना तथा ( ओषधीना रसं )  
 चास्पतियोंके रसका सेवन करके ( त्वना जय ) थोड़ोंके वेगको ( इन्वय ) प्राप्त करते ह, ये  
 (शग्मा ) रामर्य (मरुत ) घोर मरुत् (न हमारे लिए (स्वोना भ्रन्तु) सुखगाए हों । (ते) ये (न) हमें  
 (अहस मुञ्चन्तु) पापाँसे बचाय । ४४३ (ये) जो (समुद्रात्) समुन्द्रमें से (अप) जलोंकी  
 (दिव उत् वहन्ति) अन्तरिक्षमें ऊपर ले चले ह गोर (दिव) अन्तरिक्षसे (पृथिवीं अभि)  
 भ्रमणकरके वर्षाने रूपमें (सृजन्ति) छोट डेटे ह जोर (ये) जो ये (वृभि) जलोंकी पत्रहसे  
 (ईशाना) सत्कारपर प्रभु प्रस्थापित करनेवाले (मरुत) घोर मरुत् (चरन्ति) संचार करते ह, (ते)  
 ये (न) अहसा मुञ्चन्तु) हमें पापाँसे रिहा कर दे । ४४४ (ये) जो (कीलालेन) जलसे तथा (ये)  
 जा (घृतेन) घृतादि पोष्टिक पदार्थों से सयकों (तर्पयन्ति) वृत्त करते ह, (ये वा) अथवा जो (वय)  
 गच्छिया जो भी मेदसा ससृजन्ति) मरुत् ससृज करके ह, (आर (ये) जो (वृभि ईशाना) जलकी  
 वज्र से वि वपर प्रभु प्रस्थापित करनेवाले (मरुत वर्पयन्ति) वीर मरुत् वर्षा करते ह (ते) ये  
 (न) हमें (अहस मुञ्चन्तु) पापाँसे छुड़ाये ।

भावार्थ— ४४२ जो भी क मोक्ष तथा मोक्षरहस चास्पतियोंके रसके सेवनसे अपनी जाति बढ़ाते है । ऐसे वीर  
 हम पुत्र दे और वाताँसे हम सुखित रख । ४४३ वायुआही महाभाग (समुद्रमें विद्यमान) अपार पानीके भागके  
 रूपमें ऊपर उठ जाओ है और भवनरूपक रूप में वरिष्ठा । जो पुत्रनेत्र बचाके रूपमें फिर पृथिवीपर आ जाते है । इस  
 भाँति ये वायुवगाद विद्युत् तलक प्रदेवस टार सत जो जीवन देनेवाले है अत यहाँ पृष्टि सत्त्व अधिपति है । ये हमें  
 पापाँसे छुड़ाये । ४४४ वायुआँद अन्धर से रूप से पर्या होती है और सभी वृक्षवन्स्पतियोंमें अतिभौतिक  
 रमणीय छवि होती है तथा जो आदि पशुओंमें कृष आदि पुष्टिगात्रक रमणीय कृच्छि होती है । इस भाँति ये मरुत्  
 स्वनादि विन्यक्त कर समूची पृथिवी पर प्रस्थापित करते है । हम वादर है कि ये हम पापाँसे मुक्तित रख ।

टिप्पणी— [ ४४२ ] ( १ ) इन्व (स्वाँत) = जाना + पात होना, परठना बचना करना आनादि देना भर देना,  
 प्रनु होना । ( २ ) शग्मा ( शरमा शक् शक् ) - समर्थे । ( ३ ) स्वोना = सुप्रदायक, सुखर । [ ४४४ ] ( १ )  
 वयस् = पत्नी, पौरा अथ शक्ति, भारीप । वय मेदसा ससृजन्ति = यौवनामे मेद या मग्नासे सुख कर देने है ।  
 प्राक्को मेद वय गज स जोर दे है, अ मग्नामे गतीमें मेद की बगाने है, बतेही अगुक क्षितिपी पयास गान स  
 निभाया रता है ।

- (४४५) यदि । इत् । इदम् । मरुतः । मारुतेन । यदि । देवाः । देव्येन । ईदक् । आर ।  
यूयम् । ईशिध्वे । वसवः । तस्य । निःऽकृतेः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥६॥  
(४४६) तिग्मम् । अनीकम् । विदितम् । सहस्वत् । मारुतम् । शर्धः । पृतनासु । उग्रम् ।  
स्तौमि । मरुतः । नाथितम् । जोहवीमि । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥७॥

अङ्गिरा ऋषि (अध्या० अ०२१३)

- (४४७) समुऽवत्सरीणाः । मरुतः । सुऽअर्काः । उरुऽक्षयाः । सऽगणाः । मानुषामः ।  
ते । अस्वत् । पाशान् । प्र । मुञ्चन्तु । एनसः । सामुऽतपनाः । मत्सराः । मादधिष्णयः ॥३॥

अन्वयः— ४४५ ( हे ) वसवः देवाः मरुतः । यदि इदं मारुतेन इत्, यदि देव्येन ईदक् आर, यूयं तस्य निःपृतेः ईशिध्वे, ते न अंहसः मुञ्चन्तु । ४४६ तिग्मं अनीकं विदितं सहस्-वत् मारुतं शर्धं पृतनासु उग्रं, मरुतः स्तोमि, नाथितं जोहवीमि, तेन अंहसः मुञ्चन्तु । ४४७ संवत्सरीणाः सु-अर्काः स-गणाः उरु-क्षयाः मानुषासं सान्तपनाः मत्सराः मादधिष्णय ते मरुतः अस्वत् एनसः पाशान् प्र मुञ्चन्तु ।

अर्थ— ४४५ हे ( वसवः ) जनताको वसानेवाले ( देवा ) द्योतमान ( मरुतः ! ) वीर-मरुतो ! ( यदि ) अगर ( इदं ) यह पाप ( मारुतेन इत् ) मरुट्टणों के सम्बन्धमें या ( यदि ) अगर ( देव्येन ) देवों के संबंधमें ( ईदक् ) ऐसे ( आर ) उत्पन्न हुआ हो, तो ( यूयं ) तुम ( तस्य निःपृतेः ) उस पापका निनाश करनेके लिए ( ईशिध्वे ) समर्थ हो । ( ते ) वे ( नः ) हमें ( अंहसः मुञ्चन्तु ) पापसे बचा दें ।

४४६ ( तिग्मं ) प्रखर, अति तीव्र ( अनीकं ) सेन्यमें प्रकट होनेवाला, ( विदितं ) विख्यात तथा शत्रुओंका ( सहस्-वत् ) पराभव करनेमें समर्थ ( मारुतं शर्धं ) वीर मरुतोंका बल ( पृतनासु ) संग्रामोंमें, लडाइयोंमें ( उग्र ) भीषण है, उन ( मरुतः स्तोमि ) वीर मरुतोंकी मैं सराहना करता हूँ । ( नाथित ) कष्टसे पीड़ित होता हुआ मैं ( जोहवीमि ) उनसे प्रार्थना करता हूँ, उन्हें पुकारता हूँ । ( ते ) वे ( नः ) हमें ( अंहसः ) पापसे ( मुञ्चन्तु ) छुड़ायें ।

४४७ ( संव-सरीणा ) हर साल बारंबार आनेवाले, ( सु-अर्का ) अत्यंत पूज्य, ( स गणाः ) संघ बनाकर रहनेवाले, ( उर क्षयाः ) विस्तृत धरम रहनेवाले, ( मानुषामः ) मानवोंके हित करनेवाले, ( सान्तपनाः ) शत्रुओंको परित्याप देनेवाले, ( मत्सरा ) सोम पीनेवाले या आनन्दित होनेवाले तथा ( मादधिष्णयः ) दूसरोंको आनन्द देनेवाले ( ते मरुतः ) ये वीर मरुत ( शस्त्र ) हस्तरि ( एनसः ) पापके ( पाशान् ) फंदोंको ( प्र मुञ्चन्तु ) तोड़ डालें ।

नामार्थ— ४४५ देवोंकी कृपासे हम पापोंसे दूर रह ।

४४६ वीरोंका युद्धमें प्रकट होनेवाला प्रकट एवं विख्यात वत् सवको विदित है । शत्रुसे पीडा पहुँचनेके कारण मैं इन वीरोंकी सराहना करता हूँ । ये वीर मुझे पापसे छुटायें । ४४७ बड़े धरम संघ बनाकर रहनेवाले, पृथ्वीय, तथा जनताका कल्याण करनेवाले वीर हमें पापोंसे बचा दें ।

टिप्पणी— [ ४४६ ] ( १ ) नाथित = जिसे सहायताकी आवश्यकता है, पीड़ित, ( नाथ = नाथ = याज्ञो-पतापैधर्वासीःसु ) समर्थ होना, आशीर्वाद देना, प्रार्थना करना, भौंगा, कष्ट देना । ( २ ) अनीकं = सेन्य, समूह, युद्ध, प्रमुख, तेज, अग्र । [ ४४७ ] ( १ ) उरु-क्षय = बड़ा चौड़ा घर, बैरक, सैनिकोंके रहनेका स्थान । ( मत् ११७, ३२१ तथा ३४५, देविण् ) । ( २ ) मत्सराः ( मद् + मरः ) = सोमरस पीकर द्रवित हो भागे घटनेवाला-पगारिनीक ।

अत्रिपुत्र त्रमुद्युत ऋषि ( ऋ० ५।३।३ )

(४४८) तत्र । श्रिये । मरुतः । मर्जयन्त । रुद्र । यत् । ते । जनिम । चारु । चित्रम् ।  
पदम् । यत् । विष्णोः । उपमम् । निधायि ।  
तेन । पासि । गुह्यम् । नाम । गोनाम् ॥३॥

अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि ( ऋ० ५।६०।१-८ )

(४४९) ईळे । अग्निम् । मुऽअवसम् । नमःऽभिः । इह । प्रऽसत्तः । वि । चयत् । कृतम् । नः ।  
रथैःऽइव । प्र । भरे । वाजयत्ऽभिः ।  
प्रऽदक्षिणित् । मरुताम् । स्तोमम् । ऋध्याम् ॥३॥

अन्वयः— ४४८ ( हे ) रुद्र ! तव श्रिये मरुतः मर्जयन्त, ते यत् जनिम चारु चित्रं, यत् उपमं विष्णोः पदं निधायि तेन गोनां गुह्यं नाम पासि ।

४४९ सु-अवसं अग्निं नमोभिः ईळे, इह प्र-सत्तः नः कृतं वि चयत्, वाजयद्भिः रथैःइव प्र भरे, प्र-दक्षिणित् मरुतां स्तोमं ऋध्यां ।

अर्थ— ४४८ हे ( रुद्र ! ) भीषण वीर ! ( तव श्रिये ) तुम्हारी शोभा पानेके लिये ( मरुतः ) वीर मरुत् ( मर्जयन्त ) अपने आपको अत्यन्त पवित्र करते हैं । ( ते यत् जनिम ) तेरा जो जन्म है, वह सचमुच ही ( चारु ) सुन्दर तथा ( चित्रं ) आश्चर्यपूर्ण है । ( यत् ) क्योंकि ( उपमं ) स्वयं अत्युच्च ( विष्णोः पदं ) विष्णुके स्थानमें-आकाशमें तेरा स्थान ( निधायि ) स्थिर हो चुका है । ( तेन ) उसी कारणसे तू ( गोनां ) गौरी, याणियोंके ( गुह्यं नाम ) रहस्यपूर्ण यशको ( पासि ) सुरक्षित रखता है ।

४४९ ( सु-अवसं ) भली भाँति रक्षा करनेहारे ( अग्निं ) अग्नि की मैं ( नमोभिः ) नमनपूर्वक ( ईळे ) स्तुति करता हूँ । ( इह ) यहाँपर ( प्र-सत्तः ) प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुआ वह अग्नि ( नः कृतं ) हमारा यह कृत्य ( वि चयत् ) निष्पन्न करे, सिद्ध करे । ( वाजयद्भिः ) अश्वमय यज्ञसे, ( रथैःइव ) जैसे रथोंसे अभीष्ट जगह पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार मैं अपने अभीष्टको ( प्र भरे ) पाता हूँ और ( प्र-दक्षिणित् ) प्रदक्षिणा करनेवाला मैं ( मरुतां स्तोमं ) वीर मरुतों के काव्यका गायन करके ( ऋध्यां ) त्रमुद्युति पाता हूँ ।

भावार्थ— ४४८ शोभा पानेके लिए ये वीर मरुत् अपनी तथा समीपस्थ वस्तुओंकी सफाई करते हैं । सभी इषियाओंको चमकीले बनाते हैं । इन वीरोंका जन्म सममुच लोककल्याण के लिए है, अतः वह एक रहस्यमय बात है । विष्णुपद इन वीरोंका अटल एवं अडिग स्थान है ।

४४९ संरक्षणकृत इत अग्निकी स्तुतिना मैं करता हूँ । यह अग्नि हमारा यह यज्ञ पूर्ण करे । जिनमें अश्व-दान करना पड़ता है, वैसे यज्ञ प्रारंभ कर मैं अपनी दृष्टा की पूर्ति करता हूँ । इस अग्निकी प्रदक्षिणा करते हुए मैं इन वीरोंके श्लोक का गायन करता हूँ ।

टिप्पणी— [ ४४८ ] ( १ ) मृज् ( सुदौ दौचाळंशरयोश्च ) = घोरना, मौजना, मुझ करना, लक्षकृत करना । ( २ ) विष्णोः पदं = आकाश, लवकात । ( ३ ) उपमं = ऊँचा, मधोमि, उत्कृष्ट । ( ४ ) गुह्यं = गुप्त, आश्चर्यजनक, रहस्यमय ।

[ ४४९ ] ( १ ) वि-चि ( चयने ) = विशेष सूक्ष्म निगाहसे देखना-जानना, इकट्ठा करना, जाँच करना, अलगा करना, पकड़ करना, नाश करना, साफ करना, बनाना, जोड़ देना । ( २ ) ऋध् ( रुद्रे ) = वैवायव्यना, विजयी होना, मरना । ( ३ ) प्र-दक्षिणित् = प्रदक्षिणा करनेवाला, मरुतोंपरिचरण करनेवाला ।

(४५०) आ । ये । तस्थुः । पृथ्वीषु । श्रुतासु । सुखेषु । रुद्राः । मरुतः । रथेषु ।  
 वना । चित् । उग्राः । जिह्वे । नि । वः । भिया । पृथिवी । चित् । रेजते । पर्वतः ।  
 चित् ॥ २ ॥

(४५१) पर्वतः । चित् । महि । वृद्धः । विभाय । दिवः । चित् । सानु । रेजत । स्त्रने । वः ।  
 यत् । क्रीळथ । मरुतः । ऋष्टिमन्तः । आपःइव । सध्वञ्चः । धवध्वे ॥३॥

(४५२) वराःइव । इत् । रैवतासः । हिरण्येः । अभि । स्वधामिः । तन्वः । पिपिथे ।  
 थिये । श्रेयांसः । तवसः । रथेषु । सत्रा । महांसि । चक्रिरे । तनृषु ॥४॥

अन्वयः— ४५० ये रुद्राः मरुतः श्रुतासु पृथ्वीषु सुखेषु रथेषु आ तस्थुः, (हे) उग्रा ! वः भिया वना चित् नि जिह्वे पृथिवी चित्, पर्वतः चित् रेजते । ४५१ (हे) मरुतः ! वः स्त्रने महि वृद्धः पर्वतः चित् विभाय, दिव सानु चित् रेजते, ऋष्टिमन्त यत् सध्वञ्चः क्रीळथ आपःइव धवध्वे । ४५२ रैवतासः वराःइव इत् हिरण्येः स्व-धामिः तन्वः अभि पिपिथे, श्रेयांसः तवसः थिये रथेषु सत्रा तनृषु महांसि चक्रिरे ।

अर्थ— ४५० (ये रुद्राः मरुतः) जो शत्रुदलको हलानेवाले वीर मरुत् (श्रुतासु पृथ्वीषु) विख्यात धम्येवाली हरिणियाँ जोते हुए (सुखेषु रथेषु) सुखकारक रथोंमें जब (आ तस्थुः) बैठते हैं, तब हे (उग्राः ! ) उग्र वीरो ! (वः भिया) तुम्हारे उरसे (वना चित्) वनतक (नि जिह्वे) विकंपित होते हैं; (पृथिवी चित्) भूमितक ओर (पर्वतः चित्) पहाडतक (रेजते) धरधर कॉप उठते हैं ।

४५१ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! (वः स्त्रने) तुम्हारी गर्जनाके उपरान्त (महि) बडा (वृद्धः) पढा हुआ (पर्वतः चित्) पर्वत भी (विभाय) वजरा उठता है, (दिवः) द्युलोक का (सानु चित्) विभाग भी (रेजते) विकम्पित हो उठता है । (ऋष्टि-मन्तः) भाले लेकर तुम (यत्) जब (सध्वञ्चः) इकट्ठे होकर (क्रीळथ) खेलते हो, तब (आप इव) जलप्रवाह के समान (धवध्वे) दौडते हो ।

४५२ (रैवतासः वरा इव इत्) धनिक दूहणोंकी नाई (हिरण्येः) सुवर्णालंकारों से विभूषित होते हुए ये वीर (स्व-धामिः) पौष्टिक अन्नोंसे या, धारक शक्तियोंसे अपने (तन्वः) शरीरोंको (अभि पिपिथे) सभी प्रकारोंसे सुन्दर सजाते हैं । (श्रेयांसः) श्रेष्ठ तथा (तवसः) बलवान वीर (थिये) यश-शक्तिके लिए जब (रथेषु) रथोंमें बैठते हैं, तब उन वीरोंने (सत्रा) प्रकृतिले होकर (तनृषु) अपने शरीरोंपर (महांसि चक्रिरे) बहुतहि तेज धारण किया ।

भावार्थ— ४५० रथोंपर चढे हुए वीर जब शत्रुसेनापर हमला करनेके लिए निकल पडते हैं, तब पृथ्वी, पर्वत, एवं वन सभी दहक उठते हैं । क्योंकि इनका वेगही इतना प्रचंड है कि, उसके प्रभावसे बौद्ध वस्तु पूर्णतया भ्रमभावित नहीं रह सकती हैं । ४५१ इन वीरोंकी गर्जना होनेपर पहाड तथा शिपर कॉपने लगते हैं । अपने हवियार लेकर जब ये एक जगह मिलकर रणभूमिमें युद्धक्रोडा करते हैं, तब इनका वेग इतना प्रचंड रहता है कि, मानों ये दौडतेही हैं, ऐसा प्रतीत होता है । ४५२ दूहडे जब वधूके निकट जानेकी तैयारी करते हैं, तब जिस प्रकार सजावट करते हैं, उसी प्रकार ये वीर वनाव-सिंगार करते हैं, अतः दीपनेमें चढेही सुन्दर प्रतीत होते हैं । जब विजय पानेके लिए ये वीर रथपर बैठकर निकलते हैं, उस समय इनका तेज आँखोंको बाँधिया देता है ।

टिप्पणी— [४५१] (१) धवध्वे = दौडते हैं । (सा० भा०)

(४५३) अज्येष्ठासः । अरुनिष्ठासः । एते । सम् । आर्तरः । वृधुः । सौभगाय ।  
 युवा । पिता । सुऽअपाः । रुद्रः । एषाम् । सुऽदुघा । पृथिः । सुऽदिना । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥  
 (४५४) यत् । उत्ऽतमे । मरुतः । मध्यमे । वा । यत् । वा । अग्ने । सुऽभगासः । द्विभि । स्थ ।  
 अतः । नः । रुद्राः । उत । वा । नु । अस्य । अग्ने । वित्तात् । हविषः । यत् । यजाम ॥६॥  
 (४५५) अग्निः । च । यत् । मरुतः । विश्वऽदेसः । दिवः । वहध्ने । उत्ऽतरात् । अधि । स्नुऽभिः ।  
 ते । मन्दसानाः । धुनयः । रिशदसः । वामम् । धत्त । यजमानाय । सुन्वते ॥७॥

जन्वय — ४५३ अ-ज्येष्ठास अ कनिष्ठास एते आर्तर सौभगाय स वृधु, एषा सु-अपा. युवा पिता रुद्र सु दुघा पृथि मरुत्भ्य सु दिना । ४५४ (हे) सु-भगास रुद्रा मरुत ! यत् उत्तमे मध्यमे वा यत् वा अग्ने दिवि स्थ अत न, उत वा (हे) अग्ने ! यत् नु यजाम अस्य हविष वित्तात् । ४५५ (हे) विश्व-वेदस मरुत ! अग्नि च यत् उत्तरात् दिव अधि स्नुभि वहध्ने ते मन्दसाना धुनय रिश-अदस सुन्वते यजमानाय वाम धत्त ।

अर्थ— ४५३ ये वीर ( अ-ज्येष्ठास ) श्रेष्ठ भी नहीं ह और ( अ-कनिष्ठास , कनिष्ठ भी नहीं ह, तो ( एते ) ये परस्पर ( आर्तर ) भाई-पनसे घर्तव रखते हुए ( सौभगाय ) उत्तम ऐश्वर्य पानेके लिए ( स वृधुः ) एकतापूर्वक अपनी वृद्धि करते ह । ( एषा ) इनका ( सु-अपा ) अच्छे कर्म करनेहारा ( युवा ) युवक ( पिता ) पिता ( रुद्र ) महावीर हे और ( सु-दुघा ) उत्तम दूध देनेहारी-अच्छे पेय देनेवाली ( पृथि ) गौ या भूमि इन ( मरुत्भ्य ) वीर महत्तोंको ( सु-दिना ) अच्छे शुभ दिन दर्शाती हे ।

४५४ हे ( सु भगास ) उत्तम ऐश्वर्यसंपन्न ( रुद्रा ) शत्रुआ वीर खलानेवाले ( मरुत ! ) वीर महत्ता ! ( यत् जिस ( उत्तमे ) ऊपरके, ( मध्यमे वा ) मँदाले ( यत् वा अग्ने ) या नीचेके ( दिवि ) प्रनादा स्थानम तुम ( स्थ ) हो ( अत ) वहाँसे ( न ) हमारो ओर आओ, ( उत वा ) ओर हे ( अग्ने ! ) अग्ने ! ( यत् नु यजाम ) जिसका आज हम यजन कर रहे ह ( अस्य हविष ) वह हविष्यात् ( वित्तात् ) तुम जान लो, अर्थात् उधर ध्यान दे दो ।

४५५ हे ( विश्व-वेदस ) सब धनॉसे युक्त ( मरुत ! ) वीर मरुतो ! तुम ( अग्नि. च ) तथा अग्नि ( यत् ) ऊँकि ( उत्तरात् दिव ) ऊपर विद्यमान बुलोकने ( स्नुभि ) ऊँच स्थानके मार्गॉसही ( अधि वहध्ने ) सदैव जाते हो अत ( ते ) ये ( मन्दसाना ) प्रसन्न ह्युत्तिवे, ( धुनय ) शत्रुदलको हिला नेवाले तथा ( रिश-अदस ) हिंसकोंका वध करनेवाले तुम ( सुन्वते यजमानाय ) सोमरस तैयार करने वाले याजन्तो ( वाम ) श्रेष्ठ धन ( धत्त ) दे दो ।

भाषार्थ— ४५३ य वीर परस्पर समभावसे सत्ता रखत हैं, इसीलिए इनम कोईभी न कनिष्ठ या श्रेष्ठ पाया जाता है । भाइचारा इनम विद्यमान है और ये एकतासे श्रेष्ठ पुरपाय करके अपनी समृद्धि करते हैं । महावीर इनका पिता है और माय या पृथ्वी इनकी माता है जो इन्हें अच्छे दिन दर्शाता है । ४५४ वीर निजभी हों उधरसे हमारे निकट चल आये और जो हविर्भाग हम दे रहे हैं उसे सबी भौति तुमकर स्वीकार कर लें । ४५५ य वीर उच्च स्थानम रहते हैं । उल्लसित मनोवृत्ति और शत्रुदलको परास्त करनेवाले ये वीर याजनोंके धन देते हैं ।

टिप्पणी— ४५३ ( १ ) स्वपा ( सु+अप+व = हृष )- अच्छे कर्म निष्पन्न करनेद्वारा । ( २ ) अ-ज्येष्ठास ०००० ( मन्त्र ३०५ इति ) । [ ४५४ ] ( १ ) [ यहाँपर बुलोकके तीन भाग माने गये हैं उगमे, मध्यम अवमे दिवि । ] [ ४५५ ] ( १ ) वाम = सुन्दर, दडा, चापों, धन, संपत्ति । ( २ ) मन्दसान ( मन् हॉं ) = हर्षयुक्त ।

(४५६) अग्ने । मरुत्सभिः । शुभयत्सभिः । ऋक्सभिः । सोमम् । पित्र । मन्दसानः ।  
गणश्रिसभिः ।

पावकेभिः । निथमसुन्नेभिः । आयुसभिः । वैश्वानर । प्रसदिवा । केतुना । ससजूः ॥८॥

अथर्वा ऋषि ( अ० ११-०११ )

(४५७) अदारससुत् भवतु । देव । सोम । अस्मिन् । यज्ञे । मरुतः । मूर्तः । नः ।

मा । नः । विदत् । अभिसभाः । मो इति । अशस्तिः । मा । नः । विदत् । वृजिना ।  
द्वेष्या । या ॥ १ ॥

( अ० ११-११० )

(४५८) गणाः । त्वा । उप । गायन्तु । मारुताः । पर्जन्य । घोषिणः । पृथक् ।

सर्गाः । वर्षस्य । वर्षतः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ४ ॥

अन्वयः- ४५६ (हे) वैश्वानर अग्ने! प्र-दिवा केतुना सजः शुभयद्भिः ऋक्सभि गण श्रिभि. पावकेभिः विश्वे-इन्वेभिः आयुभिः मरुद्भि मन्दसानः सोमं पितॄ । ४५७ (हे) देव सोम! अ-दार-ससुत् भवतु, (हे) मरुतः! अस्मिन् यज्ञे नः मूर्तः, अभि-भा न मा विदत्, अ-शस्तिः मो, या द्वेष्या वृजिना न. मा विदत् । ४५८ (हे) पर्जन्य! घोषिणः मारुताः गणाः पृथक् त्वा उप गायन्तु, वर्षत वर्षस्य सर्गाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु ।

अर्थ- ४५६ हे (वैश्वानर) विश्वेक नेता (अग्ने!) अग्ने! (प्र-दिवा) प्रसर तेजसे तथा (केतुना) ज्वालाओं से (सजूः) युक्त होकर नू (शुभयद्भिः) शोभायमान, (ऋक्सभिः) सराहनीय, (गण-श्रिभिः) संघजन्य शोभासे युक्त, (पावकेभिः) पवित्र, (विश्वे-इन्वेभिः) सबको उरसाह देनेहारे तथा (आयुभिः) दीर्घ जीवन का उपभोग देनेवाले (मरुद्भि) वीर मरुतों के साथ (मन्दसानः) जानन्दित होकर (सोमं पितॄ) सोमरसका सेवन कर ।

४५७ हे (देव सोम!) तेजस्वी सोम हमारा शत्रु अपनी (अ-दार ससुत्) खाँसे भी न मिलानेवाला (भवतु) हो जाय, अर्थात् मर जाए। हे (मरुत!) वीर मरुतो! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (न मूर्तः) हमें सुखी करो। हमारा (अभि-भा.) तेजस्वी दुदमन (न मा विदत्) हमें न मिले, हमारी और न आ जाए। हमें (अ-शस्तिः मो) अपयश न मिले। (या द्वेष्या) जो निन्दनीय (वृजिना) पाप है, वे (नः मा विदत्) हमें न लगे।

४५८ हे (पर्जन्य!) पर्जन्य! (घोषिण) गर्जना करनेहारे (मारुताः गणा) मरुतों के संघ (पृथक्) विभिन्न ढंगसे (त्वा उप गायन्तु) तुम्हारी स्तुति का गायन करें। (वर्षत. वर्षस्य) बड़े वेगसे होनेवाली धुँवाँधार वर्षा की (सर्गा) धाराएँ (पृथिवीं अनु वर्षन्तु) भूमिपर लगातार गिरती रहें।

भावार्थ- ४५७ हमारा शत्रु विनष्ट होवे। (यह अपनी हठीसे मिलकर सत्तान उपर करनेमें समर्थ न होवे।) हमारे शत्रु हमसे दूर हों और उनका आक्रमण हमपर न होने पाय। हम अपनी कीर्ति तथा पावसे कौसो दूर होकर सुखसे रहें।

टिप्पणी- [ ४५६ ] (१) विद्व-मिन्व= (मिन्व- स्नेहने सेचने च) सबपर प्रेम करनेवाला, सभी जगह वर्षा करनेवाला। (२) ससुत्= युक्त। [ ४५७ ] (१) अ-दार ससुत्=हठीके समीप न जानेवाला, घर न लँट जानेवाला (रगभूमिमें धराशायी होनेवाला)।



(अथर्व २११५५-१०)

- (४५९) उत् । ईर्यत् । मरुतः । समुद्रतः । त्वेषः । अर्कः । नभः । उत् । पातयाथ ।  
 महाऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ॥ ५ ॥
- (४६०) अभि । क्रन्द । स्तनय । अर्दय । उदधिम् । भूमिम् । पर्जन्य । पयसा । सम् । अहि ।  
 त्वया । सृष्टम् । बृहलम् । आ । एतु । वर्षम् । आशारः । पर्षी । कृशः । गुः । एतु ।  
 अस्तम् ॥ ६ ॥
- (४६१) सम् । वः । अवन्तु । सुदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।  
 मरुत्समिः । प्रच्युताः । मेघाः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अन्तु ॥ ७ ॥

अन्वय.— (६) मरुत ! समुद्रतः उत् ईर्यथ, त्वेष अर्कः नभः उत् पातयाथ, नदत. महा-ऋषभस्य नभस्वत. वाश्रा. आपः पृथिवी तर्पयन्तु ।

४६० (हे) पर्जन्य ! अभि क्रन्द स्तनय उदधिं अर्दय भूमिं पयसा सं आदिष्य, त्वया सृष्टं वृहलं वर्षं आ एतु, आशार-पर्षी कृश-गु. अस्त एतु ।

४६१ (हे) सु-दानव ! वः अजगराः उत उत्सा. सं अवन्तु, मरुद्भिः प्र-च्युता मेघाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु ।

अर्थ— ४५९ हे (मरुत ! ) मरुतो ! तुम (समुद्रत) समुद्रके जलको (उत् ईर्यथ) ऊपर ले चलो । (त्वेष) तेजस्वी तथा (अर्कं.) पृथ्वी (नभ) मेघको आकाशमें (उत् पातयाथ) इधरसे उधर घुमाओ । (नदत. महा ऋषभस्य) दहाड़ते हुए बड़े भारी वैल के समान प्रतीत होनेवाले (नभस्वत.) मेघों के (वाश्रा आपः) गरजते हुए जलसमूह (पृथिवीं तर्पयन्तु) भूमिको संतृप्त करें ।

४६० हे (पर्जन्य ! ) पर्जन्य ! (अभि क्रन्द) गरजते रहो, (स्तनय) दहाड़ना शुरु करो, (उदधिं) समुद्रमें (अर्दय) खलवली मचा दो, (भूमिं) पृथ्वी को (पयसा) जलसे (सं आदिष्य) भली प्रकार गीली करो । (त्वया सृष्टं) तुझसे निर्मित (वृहलं वर्षं) प्रचुर वर्षा (आ एतु) इधर आये तथा (आशार-पर्षी) यड़ी वर्षा की कामना करनेहारा (कृश-गुः) दुर्बल गौरे साथ रखनेवाला रूपक (अस्तं एतु) घर चले जाकर आनन्दसे रहे ।

४६१ हे (सु-दानव ! ) दानवों वीरो ! (वः) भुम्हारे (अजगराः उत) अजगरके समान दीपक उजनेप्राले (उत्सा) जलप्रवाह (सं अवन्तु) हमारी भली भाँति रक्षा करें । (मरुद्भिः) मरुतों की ओर से वर्षाके रूपमें (प्र-च्युताः) नीचे टपके हुए (मेघाः) बादल (पृथिवीं अनु वर्षन्तु) भूमिजलपर लगा-तार वर्षा करें ।

टिप्पणी— [४६०] (१) आशार-पर्षी कृश-गु अस्तं एतु = वर्षां क्व होगी, इस आशसे आकाशकी ओर टरती धौंपकर देखनेवाला और कृश गायों को भी प्यार से समीप रखनेवाला किसान वर्षा होनेके पश्चात् सहर्ष अपने घर लौटकर धाम्पद से दिन बिठाने लगे । (यदि वर्षा न हो, वासतिनका न मिले, तो कृषक अपने गोधनकी साथ ले लदा जब पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता है ऐसे स्थानपर जा बसते हैं. और कृषि की राह देखते रहते हैं । वर्षा होनेके उपरान्त कृषकों यथष्ट सन्धि होतेही वे अपने पूर्व निवासस्थानमें लौट आते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि, इस मन्त्रमें इस प्रणाली का उल्लेख किया हो । )

(४६२) आशांऽआशाम् । वि । द्योतताम् । वाताः । वान्तु । दिशःऽदिशः ।

मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । सम् । यन्तु । पृथिवीम् । अन्तु ॥ ८ ॥

(४६३) आपः । विऽद्युत् । अभ्रम् । वर्षम् । सम् । यः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः ।  
अजगराः । उत ।

मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । प्र । अवन्तु । पृथिवीम् । अन्तु ॥ ९ ॥

(४६४) अपाम् । अग्निः । तनूभिः । समऽविदानः । यः । ओषधीनाम् । अधिऽपाः । बभूव ।  
सः । नः । वर्षम् । वनुताम् । जातऽवेदाः । प्राणम् । प्रऽजाभ्यः । अमृतम् । दिवः । परि ॥ १० ॥

अग्निमरुतश्च । (अग्निदेवता मन्त्र २४३८ ते २४४६)

कण्वपुत्र मेघातिथि ऋषि (ऋ० १।१९।१-९)

४६५ प्रति त्वं चारुमधुरं गोपीथाय प्र ह्यसे । मरुद्भिर्म आ गहि ॥१॥ [२४३८]

(४६५) प्रति । त्वम् । चारुम् । अध्रम् । गोऽपीथाय । प्र । ह्यसे । मरुत्ऽभिः । अग्ने ।  
आ । गहि ॥१॥

अन्वय — ४६२ आशां-आशां वि द्योततां, दिशः-दिशः वाताः वान्तु, मरुद्भिः प्र-च्युताः मेघाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु । ४६३ (हे) सु-दानव ! यः आप विद्युत् अभ्र वर्ष अजगरा उत उत्सा सं अयन्तु, मरुद्भिः प्र-च्युता मेघा, पृथिवीं अनु प्र अवन्तु । ४६४ अपां तनूभिः संविदानः यः जात-वेदाः अग्निः ओषधीनां अधि-पाः बभूव सः नः प्रजाभ्यः दिव परि अमृतं वर्ष प्राणं वनुतां । ४६५ त्वं चारुं अधारं प्रति गो-पीथाय प्र ह्यसे, (हे) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि ।

अर्थ— ४६२ (आशां-आशां) हर दिशामें विजली (वि द्योततां) चमक जाए। (दिशः-दिशः) सभी दिशाओंमें (वाता वान्तु) वायु चढ़ने लगे। (मरुद्भिः) मरुतों से (प्र-च्युता) नीचे गिरे हुए मेघाः) बादल वर्षा के रूपमें (पृथिवीं अनु सं यन्तु) भूमिसे मिल जायें ।

४६३ हे (सु-दानव ! ) दानी वीरो ! (यः) तुम्हारा (आप) जल, (विद्युत्) विजली, (अभ्रं) मेघ, (वर्षं) बारिश तथा (अजगराः उत उत्साः) अजगर की नाईं प्रतीत होनेवाले शरने, जलप्रवाह सभी प्राणियोंको (सं अयन्तु) बराबर बचा दें । (मरुद्भिः प्र-च्युता, मेघा) मरुतों से नीचे गिराये हुए मेघ (पृथिवीं अनु) भूमिको अनुकूल ढगसे (प्र अयन्तु) ठीकठीक सुरक्षित रखे ।

४६४ (अपां तनूभिः) जलों के शरीरों से (सं-विदानः) तादात्म्य पाया हुआ (यः जात-वेदाः अग्निः) जो वस्तुमात्रमें विद्यमान अग्नि (ओषधीनां अधि-पाः) औषधियोंका संरक्षण करनेवाला है, (स) वह (न प्रजाभ्य) हमारी प्रजाके लिए (दिव परि) शुलोकका (अमृतं) मानों अमृतही ऐसा (वर्षं) बारिशका पानी (प्राणं वनुता) प्राणशक्तिके साथ दे दे ।

४६५ (त्वं चारुं अध्रं प्रति) उस सुन्दर हिसारहित यज्ञमें (गो-पीथाय) गोरस पीनेके लिए तुझे (प्र ह्यसे) बुलाते हैं, अतः हे (अग्ने) अग्ने ! (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके साथ इधर (आ गहि) जा जाओ ।

भावार्थ— ४६४ आकाशमें जो वर्षा होती है, उसीके साथ एक प्रकार का प्राणवायु भी पृथ्वीपर उतरता है । यह सभी प्राणियों को तथा वनस्पतियोंको सुख देता है ।

टिप्पणी— [४६५] (१) गो-पीथ (या पाने रक्षणे च) = गोरसवा पान, गौहा संरक्षण ।

- ४६६ नहि देवो न मर्त्या महस्तत्र ऋतुं परः । मरुद्भिर्ग्न आ गृहि ॥२॥ [२४३९]
- (४६६) नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तर्ष । ऋतुम् । परः । मरुत्सर्भिः । अग्ने ।  
आ । गृहि । ॥२॥
- ४६७ ये महो रजमो विदुर्विश्वे देवामो अद्रुहः । मरुद्भिर्ग्न आ गृहि ॥३॥ [२४४०]
- (४६७) ये । महः । रजमः । विदुः । विश्वे । देवामः । अद्रुहः । मरुत्सर्भिः । अग्ने । आ ।  
गृहि ॥३॥
- ४६८ य उग्रा अर्कमान्चु र्नावृष्टास ओजसा । मरुद्भिर्ग्न आ गृहि ॥४॥ [२४४१]
- (४६८) ये । उग्राः । अर्कम् । अन्चुः । जनावृष्टासः । ओजसा । मरुत्सर्भिः । अग्ने । आ ।  
गृहि ॥४॥
-

४६९ ये शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्धिरग्र आ गहि ॥५॥ [२४४२]  
 (४६९) ये । शुभ्राः । घोरवर्षसः । सुक्षत्रासः । रिशादसः । मरुत्जभिः । अग्ने । आ ।  
 गहि ॥५॥

४७० ये नाकस्यार्थि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्धिरग्र आ गहि ॥६॥ [२४४३]  
 (४७०) ये । नाकस्य । अर्थि । रोचने । दिवि । देवासः । आसते । मरुत्जभिः । अग्ने । आ ।  
 गहि ॥६॥

४७१ य ईह्वयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्धिरग्र आ गहि ॥७॥ [२४४४]  
 (४७१) ये । ईह्वयन्ति । पर्वतान् । तिरः । समुद्रम् । अर्णवम् । मरुत्जभिः । अग्ने । आ ।  
 गहि ॥७॥

४७२ आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्धिरग्र आ गहि ॥८॥ [२४४५]  
 (४७२) आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिभिः । तिरः । समुद्रम् । ओजसा । मरुत्जभिः । अग्ने ।  
 आ । गहि ॥८॥

अन्वयः— ४६९ ये शुभ्रा. घोर-वर्षसः सु-क्षत्रास रिश-वदस मरुद्धि (हे) अग्ने ! आ गहि ।

४७० ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते, मरुद्धि. (हे) अग्ने ! आ गहि ।

४७१ ये पर्वतान् ईह्वयन्ति, अर्णवं समुद्रं तिरः, मरुद्धि (हे) अग्ने ! आ गहि ।

४७२ ये रश्मिभि ओजसा समुद्रं तिरः तन्वन्ति, मरुद्धिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।

अर्थ- ४६९ (ये शुभ्रा) जो गोरवर्षवाले, (घोर-वर्षस) देखनेवाले के दिलको तनिक स्तिमित कर सके, ऐसे बृहदाकार शरीरसे युक्त, (सु-क्षत्रास) उच्च कोटिके क्षत्रिय हं, अत (रिश-वदस.) हिंस्रों का वध करनेवाले हं, उन (मरुद्धि) वीर मरुतोंके झुंडके साथ हे (अग्ने!) अग्ने! इधर पधारो ।

४७० (ये देवासः) जो तेजस्वी होते हुए (नाकस्य अधि) सुखदायक स्थान में या (रोचने दिवि) प्रकाशयुक्त ब्रुलोकमें (आसते) रहते हं, उन (मरुद्धि) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने!  
 (आ गहि) इधर आ-जो ।

४७१ (ये) जो (पर्वतान्) पहाटों को (ईह्वयन्ति) हिला देते हं और जो (अर्णवं समुद्रं) प्रबुद्ध समुन्द्रको भी (तिर) तरकर पर चले जाने हे, उन (मरुद्धि.) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने!  
 (आ गहि) इधर आ जाओ ।

४७२ (ये) जो (रश्मिभि) अपने तेजसे तथा (ओजसा) बलसे (समुद्रं) समुन्द्रको (तिरः तन्वन्ति) लॉचकर परे जा पहुँचते हं, उन (मरुद्धि.) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने!  
 (आ गहि) इधर आ जाओ ।

भावार्थ- ४६९ वीर सैनिक अपनी सामर्थ्य बढावें, शरीरको बलिष्ठ बना दें और शत्रुभोका हर दगसे पराभव करें ।

टिप्पणी—[४६९] (१) वर्षस=भूमि, आकृति, शरीर । (२) सु-क्षत्रास.= अच्छे, उच्च क्षत्रिय । [इस पदसे साप साफ जाहिर होता है कि, मरुत् क्षत्रिय वीर है । ऋ० १११५५५ देखिए। वहाँ 'स्वक्षत्रेभिः' पद पाया जाता है।]

[४७०] (१) नाक= (न-अ-क) क= सुख, अन् = दुःख, नाक= सुखमय लोक ।

[४७१] (१) पर्वतान् ईह्वयन्ति = (देविए मरुदेवता मन १७,१०,१९ ।)

४७३ अमि त्वां पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरम् आ गहि ॥९॥ [२४४६]  
 (४७३) अमि। त्वा। पूर्वपीतये। सृजामि। सोम्यम्। मधु। मरुत्सभिः। अग्ने। आ। गहि ॥९॥

ऋग्वेदपुत्र सोमरि ऋषि (ऋ० ८।१०।३।१४) (अग्निदेवता मन् २४४७)

४७४ आग्रे याहि मरुत्संसा रुद्रेभिः सोमपीतये। सोमर्ष्या उप सुष्टुतिं मादयस्व सर्षणे ॥१४॥  
 (४७४) आ। अग्ने। याहि। मरुत्संसा। रुद्रेभिः। सोमपीतये। सोमर्ष्याः। उप। सुष्टुत्-  
 तिम्। मादयस्व। सर्षणे। ॥१४॥ [२४४७]

इन्द्र-मरुत्संसा। (इन्द्रदेवता मन् ३२४५-३२४६)

विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि (ऋ० १।६।५।७)

४७५ वीळु चिंदा रुजन्तुभिर्गुहां चिदिन्द्रं वह्निभिः। अविन्द उक्षिया अनु ॥५॥ [३२४५]  
 (४७५) वीळु। चित्। अरुजन्तुभिः। गुहां। चित्। इन्द्र। वह्निभिः। अविन्दः।  
 उक्षियाः। अनु ॥५॥

अन्वय — ४७३ त्वा पूर्व पीतये मधु साम्य अमि सृजामि, (हे) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि । ४७४ (हे) अग्ने ! मरुत्-संसा रुद्रेभिः सोम पीतये स्वर-नरे आ याहि, सोमर्ष्याः सु-स्तुतिं उप मादयस्व । ४७५ (हे) इन्द्र ! वीळु चित् आ-रजन्तुभिः वह्निभिः (मरुद्भिः) गुहा चित् उक्षिया अनु अविन्दः । अर्थ- ४७३ (त्वा) तुष्ट (पूर्व पीतये) प्रारम्भमें ही पीने के लिए यह (मधु सोम्य) मीठा सोमरस (अमि सृजामि) में निर्माण कर दे रहा हूँ हे (अग्ने ! ) अग्ने ! (मरुद्भिः आ गहि) वीर मरुत्संसा के साथ दूधर आओ ।

४७४ हे (अग्ने ! ) अग्ने ! तू (मरुत्संसा) वीर मरुत्संसा मिर है, पत तू (रुद्रेभिः) शशुओं को रलानेवाले इन वीरों के संग (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (स्वर-नरे) अपने प्रकाश का जिससे विस्तार होता है, ऐसे इस यज्ञम । आ याहि) पधारो जांर (सोमर्ष्या सु-स्तुतिं) इस सोमरि ऋषिकी अच्छी स्तुतिमें सुनकर (मादयस्व) मनुष्ट वनो ।

४७५ हे (इन्द्र ! ) इन्द्र ! (वीळु चित्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् शत्रु गोंका भी (आ-रजन्तुभिः) विनाश करनेहारि ओर (चदिभिः) धन होनेवाले इन वीरोंकी सहायतासे शशुओंने (गुहा चित्) गुफामें या गुप्त जगह रखी हुई (उक्षिया) गोजाँको तू (अनु अविन्द) पा सजा, यापिस लेनेमें समर्थ हो गया ।

भाषार्थ— ४७५ वे वीर दुर्भयोंके बड़े बड़े गर्दोंका विधात करके अपने अधीन करनेमें, बड़ेही सफल होते हैं । इन्हीं वीरोंकी मदद पाकर यह, शत्रुओंके बड़ी सतकंतापूर्वक किसी गुप्त स्थानमें रखी हुई गौर्षु या घनसपदाका पता लगानेमें, सफलता पावा है । यदि वे वीर सहायता न पहुँचाते, तो किसी अज्ञात, दुर्गम तथा ब्रीहट भूभागमें छिपी हुई गोसपदाको पाना उसके लिये दूभर होता, इसमें क्या सतय ?

टिप्पणी— [४७३] (१) सोमर्ष्या (सोम) [सोमरि-सुमभिः] = सोमरिनामक ऋषिकी, उत्तम ङगसे पाठनपोषण करनेहारि की (प्रकाश) । (२) सर्षणे (स्वर-नरे) = (स्व) अपने (रा) प्रकाशका विस्तार करनेके कार्यमें-पशुमें । (स्वर) अपना प्रकाश हो तथा (न-रम्) वैयक्तिक भोगलक्ष्य न हो, देना वन ।

[४७५] (१) आ-रजन्तु= (आ+रज भङ्गे हिंसायां च) - लोखनेवाला, क्षति पैदा करनेवाला, विनाशक, दुकड़े दुकड़े करनेवाला, रोषपीडित । (२) उक्षिया (यम् विवासे) = रहनेवाला, बैठ, गाय, बल्लभ, वृष, जेन, प्रकाश । (३) चित् (यद् गायथे) लीनेवाला, ले चनेवाला अग्नि ।

४७६ इन्द्रेण सं हि दक्षसे राज्जमानो अविभ्युपा । मन्दू संमानवर्चसा ॥७॥ [३२४६]  
 (४७६) इन्द्रेण । सम् । हि । दक्षसे । समुज्जमानः । अविभ्युपा । मन्दू इति । समानवर्चसा  
 ॥७॥

मरत्वानिन्द्रः । ( इन्द्रदेवता मन् ३२४०-३२६९ )  
 काण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि ( क्र० ११-३१७-९ )

४७७ मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजुर्गणेन तृम्पतु ॥७॥ [३२४७]  
 (४७७) मरुत्वन्तम् । हवामहे । इन्द्रम् । आ । सोमऽपीतये । सजुः । गणेन । तृम्पतु ॥७॥  
 ४७८ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्रणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥८॥ [३२४८]  
 (४७८) इन्द्रऽज्येष्ठाः । मरुत्सगणाः । देवासः । पूषरातयः । विश्वे । मम । श्रुत । हवम्  
 ॥८॥

अन्वय.— ४७६ ( हे मरुत्-गण ! ) अ-विभ्युपा इन्द्रेण सं-जमानः सं दक्षसे हि, समान-वर्चसा मन्दू (स्थः) ।

४७७ मरुत्वन्तं इन्द्रं सोम-पीतये वा हवामहे, गणेन सजुः तृम्पतु ।

४७८ ( हे ) देवासः पूष-रातयः इन्द्र-ज्येष्ठा. मरुत्-गणा ! विश्वे मम हवम् श्रुत ।

अर्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम सदैव ( अ-विभ्युपा इन्द्रेण ) न डरनेवाले इन्द्रसे ( सं-जमानः ) मिलकर आक्रमण करनेहारे ( सं दक्षसे हि ) सचमुच दंगल पडते हो । तुम दोनों ( समान-वर्चसा ) सदृश तेज या उत्साहसे युक्त हो और ( मन्दू ) हमशा प्रसन्न एवं उद्वसित बने रहते हो ।

४७७ ( मरुत्वन्तं ) वीर मरुतों से युक्त । इन्द्रं इन्द्रको ( सोम-पीतये ) सोमपान के लिए हम ( आ हवामहे ) बुलाते हैं । यह इन्द्र ( गणेन सजुः ) इन वीरोंके गणके साथ ( तृम्पतु ) वृत्त होवे ।

४७८ हे ( देवास. ) तेजस्वी, ( पूष-रातय ) सबके पोषणके लिए पर्याप्त हो इस ढंगसे दान देनेहारे, तथा ( इन्द्र-ज्येष्ठाः ) इन्द्रको सर्वोपरि प्रमुख समग्रनेवाले ( मरुत्-गणाः ) वीर मरुतों ! ( विश्वे ) तुम सभी ( मम हवम् श्रुत ) मेरी प्रार्थना सुनो ।

भावार्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम निरर इन्द्रके मदवात में सदैव रहते हो । इन्द्र को छोडकर तुम कभी छन भरती नहीं रहते हो । तुममें एव इन्द्रमें समान वीरिका तेज एव प्रभाव विद्यमान है । तुम्हारा उत्साह कभी घटता नहीं है ।

४७८ इन वीरोमें सभी समान रूपसे तेजस्वी हैं और सबके लिए पर्याप्त अन्न एव धन पाकर सब लोगोंमें बौद्ध देते हैं । ऐसे इन वीरोका प्रभु एव नेता इन्द्र है । ये सभी मेरी प्रार्थना सुन लेनेकी कृपा करें ।

टिप्पणी— [ ४७६ ] ( १ ) वर्चस्= शक्ति, बल, उत्साह, तेज, आकार । ( २ ) मन्दुः= ( मन्दू स्तुतिगोदमदस्वम-काण्वपुत्रिषु ) आनन्दित, स्तुति करनेहारा, निद्रासुख भोगनेवाला ।

[ ४७७ ] ( १ ) तृम्पू= ( मीनने ) वृत्त होना, समाधान पाना । ( २ ) सजुस्= युक्त ।

[ ४७८ ] ( १ ) पूष-रातिः ( पूष वृद्धी )= सनकी पुष्टि के द्विजे योग्य एव पर्याप्त भक्ष धन आदि का दान देनेवाला ।

४७९ हत वृत्रं सुदानय इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंसं ईशत ॥९॥ [३२४९]  
(४७९) हत। वृत्रम्। सुदानयः। इन्द्रेण। सहसा। युजा। मा। नः। दुःशंसः। ईशत॥९॥

मिनावरणपुत्र जगस्य ऋषि ( २० ११३०-११-१४ ) ( इन्द्रदेवता मंत्र ३०५०-३०६३ )

४८० कया शुभा सर्वयसः मनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।

कया मती कुत एतास एते अर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१॥ [३२५०]

(४८०) कया। शुभा। ससर्वयसः। सनीळाः। समान्या। मरुतः। सम्। मिमिक्षुः।

कया। मती। कुतः। आस्तासः। एते। अर्चन्ति। शुष्मम्। वृषणः। वसुस्या॥१॥

अन्वय- ४७९ ( ह ) सु-दानय ! सहसा इन्द्रेण युजा वृत्रं हत, दुस्-शंसः नः मा ईशत ।

४८० स-वयस स-नीळाः स-मान्या मरुतः कया शुभा सं मिमिक्षु ? एते कुतः एतासः ?  
वृषणः वसु-या कया मती शुष्मं अर्चन्ति ?

अर्थ- ४७९ हे ( सु-दानय ! ) दानशूर वीरो ! तुम ( सहसा ) शत्रुको परास्त करनेकी सामर्थ्यसे युक्त ( इन्द्रेण युजा ) इन्द्रके साथ रहकर ( वृत्रं हत ) निरोधक दुश्मनका वध कर डालो । ( दुस्-शंसः ) दुष्की-तिसे युक्त यह शत्रु ( नः मा ईशत ) हमपर प्रभुत्व प्रस्थापित न करे ।

४८० ( स-वयस ) समान उग्रवाले, ( स-नीळा ) एकही घरमें निवास करनेवाले, ( स-मान्या ) समान रूपसे सम्माननीय ( मरुतः ) ये धीर मन्त्र ( कया शुभा ) जिस शुभ इच्छासे भला सभी ( सं मिमिक्षुः ) मिलजुलकर कार्य करते ह ? ( एते ) ये ( कुत एतासः ) किधरसे यहाँ आ गये और ( वृषण ) बलवान होते हुए भी ( वसु-या ) धन पानेके लिए ( कया मती ) किस विचारसे ये ( शुष्मं अर्चन्ति ) बलकी पूजा करते ह- अपनी सामर्थ्य बढ़ाते ही रहते ह ।

भावार्थ- ४७९ ये धीर बड़े अच्छे दानी हैं और इन्द्रसदृश सेनापतिके नेत्र वने रहकर दुरा मा दुश्मनका वध तथा विजय करते हैं । ऐसे दायुओंका प्रभाव इन वीरोंके अधिक परिधमसे कहींभी नहीं टिकने पाता । जो दायु हमपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी लात्लासे प्रेरित हों, उन्हें ये धीर धरासाथी कर डालें और ऐसा प्रबंध करें कि, ये दुष्ट दायु अपना सर ऊँचा न उठा सकें तथा इस दायुसेनाके वैशुष्मे न फँसे ।

४८० ये सभी धीर समान उग्रवाले हैं और वे एकही घरमें रहते हैं [ सेनिक Barracks घेरकर रहते हैं, सो प्रसिद्ध है । ] सभी उन्हें सम्माननीय समझते हैं और लोगका हित हो, इसलिए ये दायुओपर एकजिंत रूप से आक्रमण कर बैठते हैं । सुदूरवर्ती दुश्मनोंपर भी ये विजय पाते हैं और समूची जनताकर हित हो, इस हेतु धन कमानेके लिए अपना बल बढ़ाते रहते हैं ।

टिप्पणी- [४७९] ( १ ) दोसः ( दाम् सुनां दुर्गतौ च ) = स्तुति, बुलाना, दुर्गति, सदिच्छा, दशनिहारा, भागी-वाँद, शाप । दुस्-शंस = दुष्ट इच्छा रखनेवाला, तुरी लालसासे प्रेरित, अपकीलिसे युक्त । ( २ ) सहस् = बल, सामर्थ्य, दायुका पराभव करनेकी शक्ति, दायुबलका आक्रमण परदायन करते हुए अपनी जगह स्थायी रूप से टिकनेकी शक्ति । [४८०] ( १ ) स-वयस = ( वयस् = वय, यौवन, अग्र, बल, पंजी, आरोग्य ) अग्रयुक्त, बलवान, नवयुवक, आरोग्यसंपन्न, समान उग्रका । ( २ ) वसु-या = धन पानेके लिए जानेवाले, चेष्टा करनेमें निरत । ( ३ ) शुष्म-नीमा, सेज, मुञ्ज, विजय, अलंकार, जल, तेजस्वी रथ । ( ४ ) मिक्षु = मिलाना ( Mix ), तैयार करना, एकट्ठा करना । ( ५ ) स-नीळा = एक घरमें रहनेवाले, ( देखो मरदेवताके मंत्र ३२१, ३४५, ४४७ ) ।

४८१ कस्य ब्रह्माणि जुजुपुर्वानः को अध्वरे मरुत आ वर्तत ।

श्येनाइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२॥ [३२५१]

(४८१) कस्य । ब्रह्माणि । जुजुपुः । युवानः । कः । अध्वरे । मरुतः । आ । वर्तत ।

श्येनान्इव । ध्रजतः । अन्तरिक्षे । केन । महा । मनसा । रीरमाम ॥२॥

४८२ कुतस्त्वभिन्द्र माहिनः सन्नेत्रौ यासि सत्पते किं त इत्या ।

सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचिस्तत्रा हरिजो यत् तं असे ॥३॥ [३२५२]

(४८२) कुतः । त्वम् । इन्द्र । माहिनः । सन् । एकः । यासि । सत्पते । किम् । ते । इत्या ।

सम् । पृच्छसे । समराणः । शुभानैः । वोचेः । तत् । नः । हरिजः । यत् । ते ।

असे इति ॥३॥

अन्वय — ४८१ युवानः कस्य ब्रह्माणि जुजुपु ? क मरुत अ ध्वरे आ वर्तत ? अन्तरिक्षे श्येनान्इव ध्रजत ( तान् ) केन महा मनसा रीरमाम ? ४८२ ( हे ) सत् पते इन्द्र ! त्व माहिन एक सन् कुत यासि ? ते इत्या किं ? शुभानै स-अराण स पृच्छसे ( हे ) हरि-न ! यत् ते असे तत् वाच ।

अर्थ-४८१ ये ( युवान ) वीर युवक इस समय ( कस्य ब्रह्माणि जुजुपु ) भला किसके स्तोत्र सुनते होंगे ? ( क ) कौन इस समय ( मरुत ) इन वीर मरुतोंको अपने ( अध्वरे ) हिंसारहित यज्ञमें ( आ वर्तत ) आनेके लिए प्रवृत्त करता होगा ? ( अन्तरिक्षे ) आकाशपथमेंसे ( श्येनान्इव ) वाज पछी कीनाई ( ध्रजत ) वेगपूर्वक जानहारे इन वीरोंको ( केन महा मनसा ) किस उदार मनोभावसे हम ( रीरमाम ) भला रममाण कर लें ?

४८२ हे सत्-पते इन्द्र ! सज्जनोंका पालन करनेहारे इन्द्र ! ( त्व माहिन ) तू महान् हाते हुए भी इस भौति ( एक सन् ) अकेलाही ( कुत यासि ) मिथर भला चला जा रहा है ? ( ते ) तेरा ( इत्या ) इसी तरह यतीव ( किं ) भला किस लिए है ? ( शुभानै ) अच्छे कर्म करनेहार वीरोंसे साथ ( स-अराण ) शत्रुदलपर धावा करनेहारा तू ( स पृच्छसे ) हमसे कुशल प्रश्न पूछता है । हे ( हरि व ! ) उत्तम अर्थोंसे युक्त इन्द्र ! ( यत् त असे ) जो कुछ तुझ हों वतलाना हो ( तत् वाचे ) वह कह दे ।

भावार्थ— ४८१ ये वीर युवकद्वय में है और व यज्ञमें जाकर का-वगायनका ध्रयण करत है, वीरगाथाओंका गायन सुनते हैं । वे ( अपने वायुयानोंमें बैठे ) अन्तरिक्षकी राहसे वगपूर्वक चल जात है । हमारी चाह है कि व हमारे इस हिंसारहित कर्ममें प्रथम और शुभ कर्मका अवलोकन करके इष्टाही रममाण हों ।

४८२ सज्जनोंका पालनकर्ता इन्द्र अकेला होने परभी कभी एकाध मौकेपर शत्रुसेनापर आक्रमण करने जाता है । प्राय वह तजस्वी वीरोंकी साथ ल विरोधियोंसे जूझने प्रयाण करता है । प्रथम अपनी आयोजना उनसे कहुकर और सशक एकत्रिन कर्तव्य निर्धारित करके पश्चात्ही वह विष्टयुद्धप्रणालीना अवलम्ब करता है निवने फलस्वरूप शत्रुसेना तितरपितर हुषा करती है ।

टिप्पणी— [ ४८१ ] ( १ ) ब्रह्मान् = ज्ञान, स्तोत्र का-व, बुद्धि धन, सूर्य, भद्र । ( २ ) मनसा = मन, विचार, कल्पना, युक्ति नेत्र, दृष्टा । ( ३ ) ध्रज ( यती ) = जाना, हिलना हिलाना । ( ४ ) अन्तरिक्ष श्येनान् इव = ( देखो महद्बलके अत्र १६, १५१, ३८९ ) । [ ४८२ ] ( १ ) माहिन = बड़ा, प्रबलवता, प्रशसनीय । ( २ ) शुभान = शोभायमान, सुतोभित ।

महर् [ हि ] १४



४८३ ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासुः शुष्मं इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थे—मा हरी वहतस्ता नो अच्छे ॥४॥ [३२५३]

(४८३) ब्रह्माणि । मे । मतयः । शम् । सुतासः । शुष्मः । इयति । प्रभृतः । मे । अद्रिः ।

आ । शासते । प्रति । हर्यन्ति । उक्था । इमा । हरी इति । वहतः । ता । नः ।

अच्छे ॥४॥

४८४ अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुष्ममानाः ।

महोभिरतो उप युज्महे न्यन्द्रं स्वधामनु हि नो वभूथ ॥५॥ [३२५४]

(४८४) अतः । वयम् । अन्तमेभिः । युजानाः । स्वक्षत्रेभिः । तन्वः । शुष्ममानाः ।

महोऽभिः । एतान् । उप । युज्महे । नु । इन्द्रं । स्वधाम् । अनु । हि । नः । वभूथ ।

॥५॥

अन्वय - ४८३ मे ब्रह्माणि मतयः सुतासः शं, प्र-भृतः मे शुष्मः अद्रिः इयति, आ शासते, उक्थ प्रति हर्यन्ति, इमा हरी नः ता अच्छे वहत ।

४८४ अतः वयं अन्तमेभिः स्व-क्षत्रेभिः युजानाः तन्वः शुष्ममानाः महोभिः एतान् नु उप युज्महे, हि (हे) इन्द्र ! नः स्व धां अनु वभूथ ।

अर्थ—४८३ (मे) मेरे ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र. मेरे ( मतयः ) विचार तथा ( सुतासः ) निचोडे हुए सोम-रस सभी ( शं ) सुखकारक हो हाथमें ( प्र-भृतः ) सुदृढ दंगसे पकडा हुआ (मे) यह मेरा ( शुष्मः ) शत्रुका शोषण करनेवाला प्रभावी ( अद्रिः ) वज्र (इयति) शत्रुपर जा गिरता है और इसीलिए सभी लोक ( आ शासते ) मेरी प्रशंसा करते हैं तथा मेरे ( उक्था ) काश्योंकाभी ( प्रति हर्यन्ति ) गायन करते हैं । ( इमा हरी ) ये दो गोडे ( नः ) हम ( ता अच्छे ) उन यक्षस्थलोंतक ( वहतः ) ले चलते हैं ।

४८४ (अतः) इसीलिए ( वयं ) हम ( अन्तमेभिः ) अपने समीपकी ( स्व-क्षत्रेभिः ) स्वर्गीय शूरताओं से ( युजानाः ) युक्त होकर । तन्वः शुष्ममानाः । शरीर सुदोभित करके इस ( महोभिः ) सामर्थ्य से पूर्ण ( एतान् ) कृष्णसर्पोंको अपने रथोंमें ( नु उप युज्महे ) जोतते हैं । ( हि ) क्योंकि हे ( इन्द्र ! ) इन्द्र ! ( नः स्व धां ) हमारी दार्ढ्यता तुझे ( अनु वभूथ ) अनुभव ही है ।

भावार्थ—४८३ वीगेके काव्य सुरिचारको प्रोत्साहन देते हैं। वीर सैनिक मीठे एवं उरवाहवर्धक सोमरसका पान करें। त्रिपर वीररथोंका गायन होता हो उधर जनता चली जाय, और उसे सुन ले। वीर अपने समीप ऐसे इयिचार रखें कि, जो शत्रुके थकको शुष्क कर डालें तथा उनका विनाशभी कर दें।

४८४ वीर क्षत्रिय अपनी शूरतासे सुडाते हैं। मौका आतेही वे सज्ज होकर शत्रुभोंपर धावा करनेके लिए रथोंसे सवार रहन हैं। उनका सेनापति भी उनकी शक्ति के अनुषार उन्हें कार्य देता है।

टिप्पणी— [४८४] (१) स्व-क्षत्रेभिः= अपने क्षत्रिय वीगेके साथ, अपने क्षत्रियोंके साथ । (क ० १।१९५ देवो ।) इस पदसे स्पष्ट सूचना मिलती है कि, मरु क्षत्रियवीरही हैं ।

४८५ कः स्या वीं मरुतः स्रुधासीद् यन्मामेकं समघत्ताहृहृत्यै ।

अहं ह्युग्रस्तविपस्तुर्विष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥ [३२५५]

(४८५) कं । स्या । वः । मरुतः । स्रुधा । आसीत् । यत् । माम् । एकम् । समऽअर्धत्त । अहिसहृत्यै ।

अहम् । हि । उग्रः । तविपः । तुर्विष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमम् । वधुऽस्नैः ॥६॥

४८६ भूरिं चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पाँस्वैभिः ।

भूरीणि हि कृणवामा शत्रिष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम् ॥ ७॥ [३२५६]

(४८६) भूरिं । चकर्थ । युज्येभिः । अस्मे इति । समानेभिः । वृषभ । पाँस्वैभिः ।

भूरीणि । हि । कृणवाम । शत्रिष्ठ । इन्द्र । क्रत्वा । मरुतः । यत् । वशाम् ॥७॥

अन्वयः—४८५ (हि) मरुतः । अहि-हृत्ये यत् मां एकं समघत्त स्या च स्व-धा क आसीत् ? अहं हि उग्र-  
तविपः तुविष्मान् मान् विश्वस्य शत्रोः वध स्नैः अनमम् ।

४८६ (हे) वृषभ ! अस्मे युज्येभिः समानेभिः पाँस्वैभिः भूरि चकर्थ, (हे) शत्रिष्ठ इन्द्र !  
( वयं ) मरुतः यत् वशाम्, क्रत्वा भूरीणि वृणवाम हि ।

अर्थ—४८५ हे (मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( अहि-हृत्ये ) शत्रुको मारते समय ( यत् ) जो शक्ति ( मां  
एकं ) मेरे अकेले के निरूढ़ तुम ( समघत्त ) सब मिलकर एकजित कर चुके हो, ( स्या ) वह ( व ) तुम्हारी  
( स्व-धा ) शक्ति जो ( वय आसीत् ) भला निधर है ? ( अहं हि ) मैं भी ( उग्र- ) शूर, ( तविप- )  
बलवान् तथा ( तुविष्-मान् ) वेगपूर्वक हमले करनेवाला हूँ, अतः ( विश्वस्य शत्रोः ) सभी शत्रुओंको  
( वध-स्नैः ) वज्रके आघातों से ( अनमं ) झुका चुका हूँ, उनपर मैं विजयी बन चुका हूँ ।

४८६ हे ( वृषभ ! ) बलवान् इन्द्र ! ( अस्मे ) हमारे लिए ( युज्येभिः ) योग्य एवं ( समानेभिः )  
सदृश ( पाँस्वैभिः ) प्रभावोत्पादक सामर्थ्यों से तू ( भूरि चकर्थ ) बहुत पराक्रम कर चुका है। हे ( शत्रिष्ठ  
इन्द्र ! ) बलिष्ठ इन्द्र ! ( मरुतः ) हम वीर मरुत् ( यत् वशाम् ) जिसे चाहते हैं उसे अपने निजों ( मत्वा )  
कार्यक्षमता तथा पुरुषार्थ से हम अवश्यही ( भूरीणि ) अधिक गुण तथा विपुल ( वृणवाम हि ) करके  
दिपाते हैं ।

भावार्थ— ४८५ वृद्धिगत होनेवाले शत्रुपर जादा करने समय अपनी सारी शक्ति एकही स्वामने केन्द्रित करती  
वादिप । संपूर्ण शक्ति एकरित वर शत्रुदलपर आक्रमण का सूत्रवात करना ठीक है । अपना बल, वीर्य, तथा श्रान्ता  
बढाकर समस्त शत्रुओं को परास्त करना चाहिये ।

४८६ सेनापति अपनी सामर्थ्य बढाकर अत्यधिक पराक्रम करे और सैनिक भी जो करना छो, उसे अपनी  
शक्तिसे करके बतलायें । [ यदि सैनिक तथा सेनापति दोनों इस भाँति उरलाठी, पुरपार्थी तथा पराक्रमी हों और यदि  
वे एक विचारसे प्रेरित हो कर्तव्यकर्म निभाने लगे, तो उनके विजयी होनेमें क्या संशय है ? ]

टिप्पणी— [ ४८५ ] ( १ ) अ-हि = जिसका बल घटना नहीं हो ऐसा बलिष्ठ शत्रु, वृष विरोधन त्रोटोत्राला  
शत्रु । ( २ ) वध-स्नैः ( अमनैः ) ( अम् धेयण ) = वज्रके आघात, शरयुके निमित्त प्रयोग, अस्त्रप्रयोग ।

[ ४८६ ] ( १ ) मरु = वर, उग्र, शक्ति, सामर्थ्य, पुङ्गव, इन्द्र, स्वपेशा, योग्यता । ( २ ) युज्यन्व  
योग्य, जो ठीक हो ।

४८७ वर्षीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविपो चभूवान् ।

अहमेता मनवे विश्वचन्द्राः सुगा अपश्चक्र वज्रवाहुः ॥८॥ [३२५७]

(४८७) वर्षीम् । वृत्रम् । मरुतः । इन्द्रियेण । स्वेन । भामेन । तविपः । चभूवान् ।

अहम् । एताः । मनवे । विश्वचन्द्राः । सुगाः । अपः । चक्र । वज्रवाहुः ॥८॥

४८८ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्तु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥ [३२५८]

(४८८) अनुत्तम् । आ । ते । मघवन् । नकिः । नु । न । त्वावान् । अस्ति । देवता ।

विदानः ।

न । जायमानः । नशते । न । जातः । यानि । करिष्या । कृणुहि । प्रवृद्ध ॥९॥

अन्वयः— ४८७ (हे) मरुतः ! स्वेन भामेन इन्द्रियेण तविपः चभूवान्, वज्र-वाहुः अहं वृत्रं वर्षीं, मनवे एताः विश्व-चन्द्राः अपः सु-गाः चक्र ।

४८८ (हे) मघवन् ! ते अन्-उत्तं नकिः नु आ, त्वावान् विदानः देवता न अस्ति, (हे) प्र-वृद्ध ! यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः न जातः नशते ।

अर्थ—४८७ हे (मरुत ! ) वीर मरुत ! (स्वेन भामेन इन्द्रियेण) अपने निजी तेजस्वी इन्द्रियों से (तविपः) चलवान् (चभूवान्) हुआ और ( वज्र-वाहुः ) हाथमें वज्र धारण करनेवाला ( अहं ) मैं ( वृत्रं वर्षीं ) घेरनेवाले शत्रुका वध करके ( मनवे ) मानवमात्रके लिए एताः ये ( विश्व-चन्द्राः ) सयको आल्हाद देनेवाले ( अप ) जलौघ सवको ( सु-गाः चक्र ) सुगमतापूर्वक मिलते जायँ, ऐसा प्रबंध कर चुका ।

४८८ हे ( मघवन् ! ) इन्द्र ! ( ते ) तुम्हारी ( अन्-उत्तं ) प्रेरणा के बिना ( नकिः नु आ ) कुछ भी नहीं होने पाता । ( त्वावान् ) तुम्हारे समकक्ष ( विदानः देवता ) ज्ञाता देव ( न अस्ति ) दूसरा कोई विद्यमान नहीं है । हे ( प्र-वृद्ध ! ) अत्यन्त महान् इन्द्र ! ( यानि करिष्या ) जो कर्तव्यकर्म तू ( कृणुहि ) निभाता है, उन्हें दूसरा कोई भी न जायमानः [ नशते ] जन्म लेनेवाला नहीं कर सकता, अथवा ( न जातः नशते ) उत्पन्न हुआ पुरुष भी नहीं कर सकता ।

भाषार्थ— ४८७ अपना इन्द्रियमार्थ वज्रकर वीर पुरुष हाथमें हाथियार लेकर जटप्रवाहकी स्वच्छन्द गतिमें बाधा डालनेवाले शत्रु का वध करके सभी मानवोंके हितके लिये अत्यावश्यक जीवनोपयोगी वज्र हरएक को बड़ी आसानीसे मिल सके, ऐसी व्यवस्था कर दे । [ इस शौभिक लोकहितकारक कार्य करना बलिष्ठ वीरोंका कर्तव्यही है । ]

४८८ वीरके लिये अजेय कुञ्ज भी नहीं है । वीर जानकारी प्राप्त करके जानी बने और वह ऐसे कार्य शुरु कर दे कि, जिन्हें निष्पन्न करना अभी तक असम्भव हुआ हो या भागे चलकर कोई दूसरा कर लेगा, ऐसी संभावना न दीज पड़ती हो ।

टिप्पणी— [ ४८७ ] ( १ ) सुगाः अपः = ( सु-गाः ) सुगमतापूर्वक मिल सके ऐसे जटप्रवाह, जिसमें खलबली भवती हो, ऐसा प्रवाह ।

[ ४८८ ] ( १ ) अ नुत्त(नुद् मेरे) = अशेषित, अजेय अन्-उत्त = ( उद्-उन्द् क्लेशने ) जो अ भिगोया नश हो, शिपपर आक्रमण न हुआ हो । ( २ ) विदानः ( विद् ज्ञाने ) = ज्ञानी । ( ३ ) प्र-वृद्ध = महान्, बलिष्ठ, अनुभवी ।

४८९ एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।

अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदंश एषाम् ॥१०॥ [३२५९]

(४८९) एकस्य । चित् । मे । विऽभ् । अस्तु । ओजः । या । नु । दधृष्वान् । कृणवै । मनीषा ।

अहम् । हि । उग्रः । मरुतः । विदानः । यानि । च्यवम् । इन्द्रः । इत् । ईशे । एषाम् ॥१०॥

४९० अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मै नरः श्रुत्यं ब्रह्मं चक्र ।

इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वै तनूभिः ॥११॥ [३२६०]

(४९०) अमन्दत् । मा । मरुतः । स्तोमः । अत्र । यत् । मे । नरः । श्रुत्यम् । ब्रह्मं । चक्र ।

इन्द्राय । वृष्णे । सुऽमखाय । मह्यम् । सख्ये । सखायः । तन्वै । तनूभिः ॥११॥

अन्वयः— ४८९ मे एकस्य चित् ओजः विभु अस्तु, या मनीषा दधृष्वान् कृणवै नु, (हे) मरुतः । अहं हि उग्रः विदानः यानि च्यवं एषां इन्द्रः चित् ईशे ।

४९० (हे) नरः मरुतः ! अत्र स्तामः मा अमन्दत्, यत् मे श्रुत्यं ब्रह्मं चक्र, वृष्णे सु-मखाय मह्यं इन्द्राय, (हे) सखायः ! सख्ये तनूभिः तन्वै ।

अर्थ— ४८९ (मे एकस्य चित्) मेरे अकेलेकाही (ओजः) सामर्थ्य (विभु अस्तु) प्रभावशाली बनता रहे। (या मनीषा) जो इच्छा मैं (दधृष्वान्) अन्तःकरणमें धारण कर लूँगा, वह (कृणवै नु) सच-सुचही पूर्ण करूँगा। हे (मरुतः) धीर मरुतो ! (अहं हि) मैं तो (उग्रः) शूर तथा (विदानः) ज्ञानी हूँ और (यानि च्यवं) जिनके समीप मैं जाऊँगा, (एषां) उनपर (इन्द्रः इत्) इन्द्रकी हैसियतमेंही (ईशे) प्रभुत्व प्रस्थापित कर लूँगा।

४९० हे (नरः मरुतः ! ) नेता धीर मरुत् ! ( अत्र ) यहाँ तुम्हारा ( स्तोमः ) यह स्तोत्र ( मा अमन्दत् ) मुझे हार्पित कर रहा है। ( यत् ) जो यह तुम ( मे ) मेरा ( श्रुत्यं ब्रह्मं ) यज्ञस्वी स्तोत्र ( चक्र ) बना चुके हो, वह ( वृष्णे ) वलयान तथा ( सु-मखाय ) उत्तम सत्कर्म करनेहारि ( मह्यं इन्द्राय ) मुझ इन्द्रके लिएही किया है। हे ( सखायः ! ) मित्रो ! तुम सचमुच ( सख्ये ) मेरी मित्रता के लिए अपने ( तनूभिः ) शरीरों से मेरे ( तन्वै ) शरीरका संरक्षण करते हो।

भावावर्थ— ४८९ बीरके अन्तस्त्रलमें यह महशवाकांक्षा सदैव जागृत एवं उग्ररन्त रहे कि उसका बल परिणामकारक हो। वह त्रिस आयोजनाकी रूपरेषा निर्धारित करे, उसे लगनके साथ पूर्ण कर ले। अपना ज्ञान तथा शौर्य वृद्धिगत कारके निधारी चला जाय, उधरही प्रमुख तथा भ्रमरन्ता जनकर अत्यन्त कर्मण्य बने।

४९० बीरोंके कार्यमें पाये जानेवाले यज्ञोवर्णन को सुनकर धीर सैनिक अतीव प्रसन्न हो उठते हैं। धीरों को धीरोंकी सहायता अवश्य मिलती है।

४९१ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनैद्यः श्रव एषो दधानाः ।

संचक्ष्यां मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छुदयाथा च नूनम् ॥१२॥ [३२६१]

(४९१) एव । इत् । एते । प्रति । मा । रोचमानाः । अनैद्यः । श्रवः । आ । इष्यः । दधानाः ।

सुम्सचक्ष्यं । मरुतः । चन्द्रवर्णाः । अच्छान्त । मे । छुदयाथा । च । नूनम् ॥१२॥

४९२ को न्वत्रं मरुतो मामहे वः प्र यातनु सखीरच्छां सखायः ।

मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म क्रतानाम् ॥१३॥ [३२६२]

(४९२) कः । नु । अत्रं । मरुतः । ममहे । वः । प्र । यातनु । सखीन् । अच्छ । सखायः ।

मन्मानि । चित्राः । अपिवातयन्तः । एषाम् । भूत । नवेदाः । मे । क्रतानाम् ॥१३॥

अन्वयः— ४९१ ( हे ) चन्द्र-वर्णाः मरुतः ! एव इत् रोचमानाः अ-नेद्यः श्रवः इष्यः आ दधानाः एते मा प्रति सं-चक्ष्य मे नूनं अच्छान्त छुदयाथा च ।

४९२ ( हे ) सखायः मरुतः ! अत्र कः नु वः ममहे ? सखीन् अच्छ प्र यातन, ( हे ) चित्राः ! मन्मानि अपि-वातयन्तः एषां मे क्रतानां नवेदाः भूत ।

अर्थ— ४९१ हे ( चन्द्र-वर्णाः मरुतः ! ) चन्द्रमाके तुल्य वर्णवाले घोर मरुतो ! ( एव इत् ) सचमुचही ( रोचमानाः ) तेजस्वी, ( अ-नेद्यः ) अनिन्दनीय तथा ( श्रवः इष्यः आ दधानाः ) कीर्ति एवं अन्न धारण करने-हारे ( एतं ) ये विख्यात घोर ( मा प्रति ) मेरी ओर ( सं-चक्ष्य ) भली भाँति निहारकर अपने यशोद्वारा ( मे नूनं ) मुझे सचमुच ( अच्छान्त ) हर्षित कर चुके, उसी भाँति अब भी ( छुदयाथा च ) प्रसन्न करो ।

४९२ हे ( सख यः मरुतः ! ) प्यारे मित्र मरुत-वीरो ! ( अत्र यहाँ ( कः नु ) भला कौन ( वः ) तुम्हारा ( ममहे ) सम्मान कर रहा है ? तुम ( सखीन् अच्छ ) अपने मित्रोंकी ओर ( प्र यातन ) चले जाओ । हे ( चित्राः ! ) आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले वीरो ! तुम ( मन्मानि ) मननीय धर्मों के समीप ( अपि-वातयन्तः ) योगपूर्वक जाकर पहुँच जानेवाले-श्रेष्ठ धन प्राप्त करनेवाले और ( एषां मे क्रतानां ) इन मेरे सत्कर्मों के ( नवेदाः भूत ) जाननेहारि गनो ।

भाषार्थ— ४९१ वीर मरुतों का वर्ण चन्द्रवत् आकाशद्वाराक है । वे तेजस्वी हैं और निर्दोष अस्त्री समृद्धि करते हुए निष्कलंक यश पाते हैं । कभी कभी उनका पराक्रम इतना उग्ररूप रहता है कि उमीके फलस्वरूप वे अपने सेनापति का यश भी अपने यशसे ढक्के देते हैं और दूसरे उसे आनंदित भी करते हैं ।

४९२ वीरोंका गौरव एवं सम्मान चतुर्दिक् होता रहे । वे अपने मित्रोंके निकट जाकर उनको रक्षा करें । वे ऐसा पराक्रम कर दिखलाए कि जनता अक्षयमें आ जाय और निर्दोष बनने धन कमाकर सरल भाग्योद्देही यशस्विता किस प्रकार पाई जा सकती है, सो भली प्रशार जान लें ।

टिप्पणी— [ ४९१ ] ( १ ) चन्द्र वर्णाः= चन्द्रमाके तुल्य वर्णवाले, ( चन्द्र=सुरगं; सुरगंके रंगसे युक्तः ) [ मरुदेवता मंत्र २०९ देखिए ] यहाँ ' हिरण्य-वर्णां' पद उपलब्ध है । ऋ० १।१००।८ में ' श्विरनेभिः ' पदसे मरुतोंके शुभ्र-वीर वर्ण की सूचना मिलती है । साधारणतया ऐसा जान पड़ता है कि वीर-मरुत गौरवीय वीर पड़ते थे । ] ( २ ) अच्छान्त ( छुद याथा )= डक दिया, आनन्द दिया । ( ३ ) चक्षु ( स्वकापी याचि )= देखा, बोलना ।

[ ४९२ ] ( १ ) क्रतु = सरल षोडश, मध्य, यज्ञ, पवित्र कार्य, प्रिय भाषण, सत्कर्म । ( २ ) नवेदस्= जाननेद्वारा ( सायगभाष्य ) [ मरुदेवता मंत्र ५ ५५।८; २०२ तथा ऋ० १०।३।१३ देखिए ]

४९३ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु—रसाञ्चके मान्यस्य मेधा ।

ओ पु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे—या ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥ [३२६३]

(४९३) आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारुः । अस्मान् । चके । मान्यस्य । मेधा ।

ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रम् । अच्छे । इमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः ।  
अर्चत् ॥१४॥

( ऋ० १।१।३।३-६ ) [दन्द्रदेवता मंत्र ३२६५-६८]

४९४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तु—त स्तुतो मघवा शंभविष्टः ।

ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥ [३२६५]

( ४९४ ) स्तुतासः । नः । मरुतः । मृळयन्तु । उत । स्तुतः । मघवा । शम्भविष्टः ।

ऊर्ध्वा । नः । सन्तु । कोम्या । वनानि । अहानि । विश्वा । मरुतः । जिगीषा  
॥३॥

अन्वयः— ४९३ ( हे ) मरुतः ! दुवस्यात् मान्यस्य कारुः मेधा न दुवसे अस्मान् आ चके, विप्रं अच्छे  
ओ सु वर्त्त, जरिता वः इमा ब्रह्माणि अर्चत् ।

४९४ स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु, उत स्तुतः शंभविष्टः मघवा, ( हे ) मरुतः । नः अहानि  
कोम्या वनानि सन्तु जिगीषा ऊर्ध्वा ।

अर्थ— ४९३ हे ( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! तुम ( दुवस्यात् ) पूजनीय या संमाननीय हो, अतः (मान्यस्य)  
मान्य कवि की ( कारुः मेधा ) कुशल बुद्धि ( न ) अथ तुम्हारा ( दुवसे ) सत्कार करने के लिए ( अस्मान् )  
हमें ( आ चके ) सभी प्रकारसे प्रेरणा करती है, इसलिए तुम इस ( विप्रं अच्छे ) ज्ञानी की ओर ( ओ  
सु वर्त्त ) प्रवृत्त हो जाओ- आओ । ( जरिता ) यह स्तोता-उपासक-वः इमा ब्रह्माणि तुम्हारे इन स्तोत्रों-  
काव्यों-का ( अर्चत् ) गायन करता आ रहा है ।

४९४ ( स्तुतासः मरुतः ) सराहना करनेपर ये वीर मरुत् ( नः मृळयन्तु ) हमें सुख दें ( उत )  
और ( स्तुतः ) प्रशंसा करनेपर ( शंभविष्टः ) आनन्द देनेहारा ( मघवा ) इन्द्र भी हमें सुख दे । हे  
( मरुतः ! ) वीर मरुतो ! ( नः विश्वा अहानि ) हमारे सभी दिन ( कोम्या ) काम्य, ( वनानि ) वनराजि  
के सुख आनन्ददायक ( सन्तु ) दों और हमारी ( जिगीषा ) विजयकी लालसा ( ऊर्ध्वा ) उच्च कोटिकी  
यनी रहे ।

भाषार्थ— ४९३ ये वीर सम्माननीय हैं, इसलिए कवियोंकी बुद्धि उनके समुचित वर्णन के लिए सचेष्ट रहा करती  
है । वीरभी ऐसे कवियोंका आदर करें और उनके काव्योंका श्रवण करें ।

४९४ वीर मरुत् और इन्द्र हमें सुखी बना दें । हमारा प्रथक दिन उज्ज्वल, रमणीय तथा सरकार्य में लगा  
दुःख होनेके कारण आनन्ददायक हो और हमारी विजयच्छा अत्यन्त उच्च दर्जेकी हो जाय ।

टिप्पणी— [ ४९३ ] ( १ ) [ दुवस्यात् ( हवोः ) = हे शर्वे पञ्चमी । ] दुवस्यः = माननीय, पूजनीय । ( २ ) जरिता  
( जू जरते = सुखाना, स्तुति करना ) = स्तुति करनेहारा, स्तोता, उपासक ।

[ ४९४ ] ( १ ) कोम्य = कमनीय, शृङ्गीय, रमणीय, उज्ज्वल ( Polished, lovely ) । ( २ ) वन् =  
सम्मान देना, इच्छा करना, चाहना । वन = इष्ट, इच्छा करनेके योग्य, वन ।

४९५ अस्माद्दहं तद्विपादीयमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चक्रुमा मृळता नः ॥४॥ [३२६६]

(४९५) अस्मात् । अहम् । तद्विपात् । ईर्षमाणः । इन्द्रात् । भिया । मरुतः । रेजमानः ।

युष्मभ्यम् । हव्या । निशितानि । आसन् । तानि । आरे । चक्रुम । मृळत । नः ।

॥४॥

४९६ येन मानासश्चितयन्त उस्ना व्युष्टिषु शर्वसा शश्वतीनाम् ।

स नो मरुद्भिर्वृषभु श्रवां घा उग्र उग्रेभिः स्वविरः सहोदाः ॥५॥ [३२६७]

(४९६) येन । मानासः । चितयन्ते । उस्नाः । विस्उष्टिषु । शर्वसा । शश्वतीनाम् ।

सः । नः । मरुत्सभिः । वृषभु । श्रवः । घाः । उग्रः । उग्रेभिः । स्वविरः । सहः ॥५॥

दाः ॥५॥

अन्वयः— ४९५ (हे) मरुतः ! अस्मात् तद्विपात् इन्द्रात् भिया अहं ईर्षमाणः रेजमानः, युष्मभ्यं हव्या नि-शितानि आसन्, तानि आरे चक्रुम, नः मृळत ।

४९६ मानासः उस्नाः येन शवसा शश्वतीनां व्युष्टिषु चितयन्ते, उग्रेभिः मरुद्भिः (हे) वृषभ उग्र ! स्वविरः सहो-दाः सः नः श्रवः घाः ।

अर्थ— ४९५ हे (मरुतः ! ) घोर मरुतो ! (अस्मात् तद्विपात् इन्द्रात्) इस बलिष्ठ इन्द्रके (भिया) भयसे (अहं) मैं भयभीत होकर (ईर्षमाणः) दौड़ने तथा (रेजमानः) कांपने लगा हूँ । (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या) दृष्टिप्याप्त (नि-शितानि आसन्) मली भौंति तैयार कर रखे थे, पर (तानि) वे उसके भयसे (आरे) दूर (चक्रुम) कर दिये, वे उसे दिये जा चुके हैं, इसलिए अब (नः मृळत) हमें क्षमा करते हुए सुखी बनाओ ।

४९६ (मानासः) माननीय (उस्नाः) सूर्यकिरण (येन शवसा) जिम सामर्थ्य से (शश्वतीनां व्युष्टिषु) शाश्वतिक उप कालों में जनताको (चितयन्ते) जागृत करते हैं, उसी सामर्थ्य से युक्त और (उग्रेभिः) शूर (मरुद्भिः) घोर मरुतों के साथ विद्यमान हे (वृषभ उग्र ! ) बलवान तथा शूर घोरश्रेष्ठ इन्द्र ! (स्वविरः) यथोवृद्ध तथा (सहो-दाः) बल देनेवाला (सः) वद तू (नः) हमें (श्रवः घाः) कीर्ति तथा अन्न प्रदान कर ।

भावार्थ— ४९५ वीरोंका पराक्रम तथा प्रभाव इस भौंति हो कि, परिचित लोगभी उसे निहारकर सहम जायें; फिर शत्रु यदि दूर जायें तो उसमें क्या भाव्यं ?

४९६ इन वीरोंकी सहायता से हमें अन्न तथा यश मिले ।

टिप्पणी— [४९५] (१) नि-शित (नो तनूहरणे) = तोड़ने किया हुआ, (हयियार) । (२) ईष्ट (गति-दिसादशनेषु) = जाना, वध करना, देखना ।

[४९६] (१) मानः= भाव, सम्मान, परिमाण । (२) श्रवः= चेतना देना, जागृत करना, देखना, निहारना, जानना । (३) उच्छ (वसु विवासे) = बेल, गौ, किरण । (४) व्युष्टिः=प्रभाव, वैभवशालिता, स्तुति, वैश्वर्य ।

४९७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।

सुप्रकृतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥ [३२६८]

(४९७) त्वम् । पाहि । इन्द्र । सहीयसः । नृन् । भवं । मरुत्सभिः । अवयातहेळाः ।

सुप्रकृतेभिः । ससहिः । दधानः । विद्याम् । इपम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥६॥

इन्द्रामरुतो ( इन्द्रदेवता मंत्र ३२६९ ) ।

अंगिरसपुत्र तिरश्ची या मरुत्पुत्र द्युतान ऋषि । ( ऋ० ८।९६।१८ )

४९८ द्रप्समपश्यं विपुणे चरन्त सुपहरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नभो न कृष्णमवतस्थिवांसुमिष्यामि वो वृणो युध्यताजौ ॥१४॥ [३२६९]

(४९८) द्रप्सम् । अपश्यम् । विपुणे । चरन्तम् । उपहरे । नद्यः । अंशुमत्याः ।

नभः । न । कृष्णम् । अवतस्थिवांसम् । इष्यामि वः । वृणोः । युध्यता आजौ ॥१४॥

अन्वयः— ४९७ (हे) इन्द्र ! त्वं सहीयसः नृन् पाहि, मरुद्भिः अवयात-हेळाः भव, सु-प्रकृतेभिः ससहिः दधानः, (वयं) इपं वृजनं जीर-दानुं विद्याम् ।

४९८ अंशुमत्याः नद्यः उपहरे विपुणे द्रप्सं चरन्तं, नभः न कृष्णं, अपश्यम्, अवतस्थिवांसं इष्यामि, (हे) वृणोः ! वः आजौ युध्यत ।

अर्थ— ४९७ हे (इन्द्र ! ) इन्द्र ! (त्वं) त् (सहीयसः नृन्) शत्रुओंका पराभव करने का बल प्राप्त करने वाले हमारे सदृश लोगों की (पाहि) रक्षा कर; (मरुद्भिः) धीर मरुतों के साथ हमपर (अवयात-हेळाः) क्रोध न करनेवाला घन और (सु-प्रकृतेभिः) अत्यन्त शानी धीरों के साथ (ससहिः) शत्रुदलके परास्त करनेकी सामर्थ्य (दधानः) धारण करके हमें (इपं) अन्न, (वृजनं) बल तथा (जीर-दानुं) शीघ्र विजयप्राप्ति (विद्याम्) प्राप्त हो, ऐसा कर ।

४९८ (अंशुमत्याः नद्यः) अंशुमती नामक नदीके समीप उपहरे विपुणे) एकान्त में विद्यमान यहिड स्थानमें (द्रप्सं चरन्तं) शीघ्र गानि से घूमनेवाले (नभः न कृष्णं) अंधेरे की नार्द बहुतरा काले-कलूटे शत्रुको (अपश्यं) मैं देख चुका। ऐसी उस सुगुप्त जगह (अवतस्थिवांसं) रहनेवाले उस दुदमन को (इष्यामि) मैं दृढ निकालता हूँ। हे (वृणोः ! ) बलवान धीरो ! (वः) तुम उस शत्रुके साथ (आजौ) युद्धभूमि में (युध्यत) लड़ते रहो ।

भावार्थ— ४९७ परमपिता परमात्मा इन लोगोंका परिपालन करना है जो अपनेमें शत्रुदलको परास्त करनेवाले बल का संवर्धन करते हैं । इस कार्यमें शानी धीरोंकी सहायता उसे बार बार होती है। उनके प्रचण्ड बलके सहारे समूची प्रजा अन्नपशुदि तथा बल एवं विजयका लाभ प्राप्त करती है ।

४९८ प्रथम शत्रुके निवासस्थान तथा आश्रय आदिकी भली भौति जानकारी उपलब्ध करनी चाहिए और पश्चात्ही उसपर धावा करना चाहिए ।

टिप्पणी— [४९७] (१) प्रकृत (किं ज्ञाने रोगावनयने च) = ज्ञान, बुद्धि, शोभा । सु-प्रकृत = दर्शनीय, शानी, रोग दूर हटानेवाला । (२) जीर-दानु = मरुदेवता मन्त्र १७२ देखिए ।

[४९८] (१) द्रप्स (दु गतौ = शीटना, आक्रमण करना) = दंडनेवाला, आक्रमणकर्ता, सोमबिंदु, सोमरस । (२) विपुण = विभिन्न, परिवर्तनशील, तरह तरह का (३) उपहरे = एकान्त स्थान, ऊबड़काथड जगह ।



# मरुतोंके मंत्रोंके ऋषि

## और उनकी मंत्रसंख्या ।

मन्त्र-संख्या	कुल मंत्र	मन्त्र क्रमांक	कुल मंत्र
१ इय वासुन् धात्रेय	२१७-३१७-१०१ ४२७- १	१४ अवर्वा	४३४ ४३६- ३ ४५७-४६४- ८= ११
२ अग्रस्तो मैनावरणि	४२७-४५६- ८= ११० १५८-१७७- ४० ४८०-४९७- १८= ५८	१५ एवयामरदात्रेय	३१८-३२६- ९ ४४०-४४६- ७
३ मैत्रावरुणिर्षसिष्ठ	३४५-३७४- ५०	१६ मृगारः	३२७-३३३- ७
४ कथे घँर.	६- ४५- ४०	१७ शयुर्व हस्तपरय.	१- ४- ४
५ पुनवत्स काव्य	४६ ८१- ३६	१८ मधुच्छन्दा वैश्वमित्र	४७१ ४७६- २= ६
६ गोतमी रुद्रगणः	१०३- ५६- ३४ ४२८- १= ३५	१९ प्रजा	४३०-४३३- ४
७ सोमरिः काव्यः	८०-१०७- २६ ४७४- १= २७	२० गाथिनो विद्व मित्र.	२१४ २१६- ३ ४२४- १= ४
८ तृत्समद शानक	११८ २१३- १६	२१ सत्यर्षय ( ऋषयः )	४२५-४२७- ३
९ स्यूनर ईमर्मांग्र	४०७ ४२२- १६	{ (१) भरद्वाज, (२) वसिष्ठ, (३) गोतम, (४) अत्रि,	
१० नोषा ग तमः	१०८-१००- १५	(५) विश्वामित्र, (६) जमदग्नि, (७) वसिष्ठ ।	
११ मेघ तिथि काव्य.	५- १ ४६५ ४७३- ९	२२ शन्तातिः	४३० ४३९- ३
१२ विटु वृत्तदक्षो वा आषिरस	४७७-४७९- ३= १३	२३ परुच्छेपो दैवोदासि	१५७- १
१३ वाटंगमयो भरद्वाज	३३४-३४४- ११	२४ प्रजापति.	४२३- १
		२५ अज्ञेया	४४७- १
		२६ वसुधुत धात्रेयः	४४८- १
		२७ अ द्विगतरस स्तरधी,	
		युत नो वा मारत.	४२८- १

४९८

## मरुतोंका संदर्भ ।

( ऋग्वेद के वेद-संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषदादि ग्रंथोंमें अथे हुए, परंतु मरुदेवताके मंत्रसंग्रहमें संगृहीत न किये गये मंत्रोंमें और वाक्योंमें मरुतोंका संदर्भ बनानेवाला वाक्यांश इस तरह है—

### ऋग्वेदसंहिता ।

मंडल सू० म०

मंडल सू० म०

- १००। ५ मरुत्वना इन्द्रेण सं अममत । ( ऋग्वेद )
- २३।१० मरुतः सोमर्ष तपे हवामहे । ( विद्मे देवा )
- ११ मरुताँ एति धृगुष्या । ”
- १२ मरुताँ मृळयन्तु न । ”
- ३१। १ मरुताँ अ वायु-शुश्रुष्य भजायन्त । ( अग्नि )
- ४०। १ उप प्र वन्तु मरुतः । ( अश्विनपरणि )
- २ मरुतः सुर्वर्ष आ दर्षत । ”
- ४४।१४ मरुतः स्तोम मृचन्तु । ( अग्नि )

- ५२। १ मरुतः अनु अमदन । ( इन्द्र )
- १५ मरुत. आजौ अर्चय । ”
- ८०। ४ खला मरुत्वतीरव । ”
- ११ मरुतयो वृन् अवपीत । ”
- ८९। ७ मरुतः पृथिमातरः । ( विद्मे देवाः )
- ९०। ४ मरुतः चियन्तु । ”
- ९३।१२ मरुताँ हेको अद्भुतः । ( अग्नि )
- १००।१-१५ मरुत्वान् नो भवत्वित्त्र ऊती । ( इन्द्रः )

- १०१।१-७ मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे । (इन्द्र)
- ८ मरुत्वः परमे सख्ये । ”
- ९ मरुद्भिः सादयस्व । ”
- ११ मरुदस्ते त्रस्य वृचनस्य गोपाः । ”
- १०७। २ मरुतो मरुद्भिः शर्म यथा । (विश्वे देवा)
- १११। ४ मरुतः सेमपातये हुवे । (ऋभव)
- ११४। ६ मरुतां उच्यते वच । (इन्द्र)
- ९ मरुतां सुप्र राव । ”
- ११ मरुत्वान् रुद्रः नः हव शृणोतु । ”
- १२२। १ रोदस्वो मरुतोऽस्तोपि । (विश्व देवा)
- १२८। ५ मरुतां न भजाम । (अग्नि)
- १३३। ४ मरुतः वधणाभ्य अननय । (वायु)
- १३६। ७ मरुद्भि स्वयशसः मसीमाहि । (लिंगेष्वा)
- १४१। ९ मरुत्सु भरती । (तिशो देव्य)
- १२ मरुत्वते इन्द्राय हव्य कर्मन । (समाहाकृत्य)
- १४३। ५ मरुतामिव स्वन । (अग्नि)
- १६१।१४ मरुत दिवा यन्ति । (ऋभव)
- १६०। १ मरुतः परिरयन् । (अध)
- १६५।१५ मरुतः एष व म्नेम । (मरुत्सु इन्द्र)
- १६९। १ मरुतां चिकित्वान् इन्द्र । (इन्द्र)
- २ मरुतां पृतुतिर्हासम ना । ”
- ३ अन्व मरुतो जुनन्ति । ”
- ५ मरुतो नः सुळश्नुतु । ”
- ७ मरुतां आयतां उपदिः मृषे । ”
- ८ रदा मरुद्भि शुश्रुष । ”
- १७०। २ मरुतो भ्रातर तव । ”
- ५ इन्द्र । त्व मरुद्भिः मवदस्व । ”
- १७३।१० मरुतः । गी वन्दते । ”
- १८०। २ धिग्या मरुत्तमा । (अधिना)
- १८६। ८ मरुतो वृद्धसना । (विध दवा)
- १९। ३। ३ मरुतां शर्षे आ वह । (इन्द्र)
- ३०। ८ मरुत्वतीं शत्रून् जेषि । (सरस्वती)
- ३३। १ मरुतां सुप्र एतु । (इन्द्र)
- ६ मरुत्वान् रुद्र मा उग्मा ममन्द । ”
- १३ मरुतः । वा व भेयजा । ”
- ४१।१५ मरुद्गणा । मम हव ध्रुत । (विश्वे देवा)
- ३। ४। ६ मरुत्वां इन्द्र । (उपास नक्ता)
- १३। ६ मरुद्बधः अग्ने न ग शोच । (अग्नि)
- १४। ४ मरुत सुप्रमर्षन् । ”
- १६। २ मरुतः ग्य सखत । (अग्नि)

- २९।१५ मरुतामिन् प्रयाः । (अग्नि)
- ३२। ३ इन्द्र । मरुत ते शोच अर्षन्ते । ”
- ४। शर्षे मरुत य आसन् । ”
- ३५। ७ मरुत्वते तुभ्य हव्ये रात । (इन्द्र)
- ९ इन्द्र । मरुतः आ भव । ”
- ४७। १ मरुत्वान् इन्द्र । ”
- २ इन्द्र । मरुद्भिः सोम पिव । ”
- ३ इन्द्र । मरुतः आ भव । ”
- ४ इन्द्र । मरुद्भिः सोम पिव । ”
- ५ मरुत्वन्त इन्द्र हुवेम । ”
- ५०। १ मरुत्वान् इन्द्र । ”
- ५१। ७ मरुत्व इन्द्र सेम पाहि । ”
- ८ मरुद्भिः सोम पाहि । ”
- ९ मरुतः अमन्दन् । ”
- ५२। ७ मरुद्भिः सोम पिव । ”
- ५४।१३ मरुतः ऋषिमन्त । (विश्वे देवा)
- २० मरुतः शर्म यच्छ तु । ”
- ६२। २ मरुद्भि मे हव शृणु । (इन्द्रायरणी)
- ३ असे रथि मरुतः । ”
- ४। १। ३ विश्वानुपु मरुत्सु वेद । (अग्निवर्णी)
- २। ४ मरुत अग्ने वट । (अग्नि)
- ३। ८ दवा मरुतां शर्षांवा । ”
- २१। ३ मरुत्वान् इन्द्र आ यातु । (इन्द्र)
- २६। ४ मरुतो विरस्तु । (इधेन्)
- ३४। ७ मरुद्भिः पाहि । (ऋभव)
- ११ मरुद्भिः स मवय । ”
- ३९। ४ मरुता भद्र नाम अमन्महि । (दधिना)
- ५५। ५ मरुता अवासि । (विश्वे देवा)
- ५। ५।११ मरुद्गव स्वाहा । (समाहाकृत्य)
- २६। ९ मरुतः सीदन्तु । (विश्वे देवा)
- २९। १ मरुत त्वा अर्षन्ति । (इन्द्र)
- २ मरुत इन्द्र अर्षन् । ”
- ३ मरुतो म सुपुतस्य पया । ”
- ६ मरुत इन्द्र अर्षन्ति । ”
- ३०। ६ मरुत अर्षे अर्षन्ति । ”
- ८ मरुद्बध रोदसी चक्रिया हव । ”
- ३१।१० मरुतः ते तविषे अर्षन्तु । ”
- ३६। ६ धुनस्य व मरुता द्योषा । ”
- ४१। ५ मरुतः राय दर्वन्त । (विश्वे देवा)
- १६ मरुतो अ लक्ष्मी । ”
- ४३।१० मरुतो वक्षि जातवेद । ”

- ४५। ४ मरतो वचन्ति । ( विद्ध्ये देवा )  
 ४६। ३ मरतः हुवे । " "  
 ६०। १ मरुतां नाम ऋष्याम् । ( मरतः, आत्मा मरुती वा )  
 २ मरतो रथेषु तस्थु । " "  
 ३ मरतः या फाल्गव । " "  
 ५ मरुद्भ्यः सुदुष पथि । " "  
 ६ मरतः दिवि ष्ट । " "  
 ७ मरतो दिवो वह्न्ये । " "  
 ८ अग्र ! मरुद्भिः साम पित्र । "
- ६३। ५ मरुत रथ युवते । ( मित्रावरुणौ )  
 ६ मरुत सुमायया वनत । " "
- ८३। ६ मरुतः ! वृष्टिं ररात्रि । ( पर्जन्य )
- ६। ३। ८ शर्ये वा वो मरुतां ततप । ( अग्नि )  
 ११। १ अत्र ! य वो मरुतां न प्रयुक्ते । "  
 १७। ११ मरुत य वर्षा । ( इन्द्र )  
 २१। ९ मरुत इष्वानम नो वाग । ( विधे देवा )  
 ४०। ५ मरुद्भिः पाहि । ( इन्द्र )  
 ४४। ५ सामन्त्राद् वृषभो मरुत्वान् । ( सोम )  
 ४७। १८ मरुतां अनाह । ( रथ )  
 ४९। ११ मरुत आ गन्त । ( विधे देवा )  
 ५०। ४ मरतो अग्रम देवान् । " "  
 ५ ध्रुवा हव मरुतो यद्द वाथ । " "  
 ५२। २ मरुतः ! य न आतिमन्वते । " "  
 ११ मरुद्भ्यः सोम जुपन्त । " "
- ७। ०। ५ मरुत यक्षि । ( आग्ने )  
 १८। ५ मरुत इम रासत । ( इन्द्र )  
 ३१। ८ त्वा मरुत्वतीं परितुवत् । " "  
 ३७। १० यम मरुतः अधिना ( र ) । "  
 ३४। २४ ऋतु विधे मरुतो षिष्टि । ( विधे देवा )  
 २५ अमत्यम मरुतां उपये । " "
- ३५। ९ वा नो भवन्तु मरुतः । " "  
 ३६। ७ मरुत नो अरन्तु । " "  
 ९ मरुतः ! अथ व ऋक् । " "  
 ३९। ५ मरुता मादयन्तां । " "  
 ४०। ३ नम्रा अरतु मरुत । " "  
 ४२। ५ मरुत्सु यदास तृषीन । " "  
 ५१। ३ मरुतश्च पिथ नः पात । ( आ देवा )  
 ८२। ५ मरुद्भिर्मम गुममय उर्वते । ( इन्द्रावरुणौ )  
 ९३। ८ मरुत परे रचव । ( इन्द्राणी )  
 ९६। २ वा नो वीश्वे विना मरुत्सखा । ( सरस्वती )

- ८। ३। २१ य मे इरिन्द्रो मरुतः । ( कौर्याणः पाकस्थामा )  
 १२। १६ मरुत्सु मन्दसे । ( इन्द्रः )  
 १३। २८ मरुत्वतीं विधो अभि प्रय । "  
 १८। २० वृद्धरुथ मरुतां । ( आ देवाः )  
 २१ मरुतो यत न छिदः । "  
 २५। १० मरुतः उरप्यतु । ( विधे देवा )  
 १४ तन्मरुत ( वृषामदे ) । ( मित्रावरुणौ )  
 २७। १ ऋचा य मि मरुत । ( विधे देवा ) [ काठ० १०। ४६ ]  
 ३ मरुत्सु विश्वभानुषु । " "  
 ५ ऋचा गिरा मरुतः । " "  
 ६ अभि पिथा मरुतः । " "  
 ८ आ प्र चात मरुतः । " "
- ३५। ३ मरुद्भिः सचा भुवा । ( अधिनी )  
 १३ मरुत्वन्ता जरितुर्वच्छता हव । "  
 ३६। २-६ मरुत्सो इन्द्र सपते । ( इन्द्र )  
 ४१। १ मरुद्भ्यो अर्च । ( वरुण )  
 ४६। ४ यं मरुतः पान्ति । ( इन्द्र )  
 १७ मरुतां इयधसि । " "
- ५४। ३ गृष्यन्तु मरुतो हव । ( विधे देवा )  
 ६३। १० स्वाम मरुतो वृधे । ( इन्द्र )  
 ७६। १ मरुत्वन्तं न वृजसे । ( इन्द्र )  
 २-३ इन्द्रो मरुत्सखा । " "  
 ४ मरुत्वता इन्द्रेण जितं । " "  
 ५-६ मरुत्वन्तं इन्द्र हवामहे । " "
- ७ मरुत्सो इन्द्र । " "  
 ८ मरुत्वते ह्यन्ते । " "  
 ९ मरुत्सखा इन्द्र पिब । " "
- ८३। ७ इता मरुतो अधिना । ( विधे देवा )  
 ८९। १ मरुत ! इन्द्राय गाथत । ( इन्द्र )  
 २ मरुद्भ्यः देवमन् सख्याय वेमिरे । "  
 ३ मरुतो ब्रह्मर्षत । " "
- ९६। ७ मरुद्भिः रत्र सद्य ते अस्तु । "  
 ८ मरुतो व नृधाना । " "  
 ९ तिम्रावृधं मरुतामनीक । " "
- ९। २५। १ मरुद्भ्यो वापये नदः । ( पवमान सोम )  
 ३३। ३ मरुद्भ्यः सोमा अर्पन्ते । " "  
 ३४। २ मरुद्भ्यः सोमो अर्पति । " "  
 ५६। ३ मरुतः मधं व्यर्षन्ते । " "  
 ६१। १२ मरुद्भ्यः परि दव । " "  
 ६४। २९ मरुत्वते इन्द्राय पवस । " "

- २४ मरुतः पवमानस्य विवन्ति । ( पवमानः सेमः )  
 २५।१० मरुत्वने पत्न्यम् । " "  
 २० मरुद्भ्यः सोमो अर्पति । " "  
 ६६।२६ हरिपत्न्यो मरुद्गणाः । " "  
 ७०। ६ मरुतामिव मन्त्रः कानदेशति । " "  
 ८१। ४ मरुतः नः आ गच्छन्तु । " "  
 ९६।१७ मरुतः यत्रि सुम्भनि । " "  
 १०७।१७ मरुत्वते सोमः मुनिः । " "  
 २५ मरुत्वन्तो म मराः । " "  
 १०८।१४ यस्य मरुतः विद्याम् । " "  
 १०। १३। ५ मरुत्वते गण क्षरन्ति । ( हरिर्पति )  
 ३३। १ मरुतः हुवे । ( विधे देवः )  
 ४ मरुतां गर्भं अर्शामति । " "  
 ३७। ६ मरुतां हवं वृष्यन्तु । ( सुभः )  
 ५२। २ मरुतो मा जुनन्ति । ( विधे देवाः )  
 ६३। ९ मरुतः स्वल्पे हवामहे । " "  
 १४ मरुतां यं अर । " "  
 १५ मरुतो राधे दधातन । " "  
 ६४।११ मरुतां गमा उपस्तुभिः । " "  
 १२ मरुतः मेपितं अददात । " "  
 १३ मरुतो युक्तीषय । " "  
 ६५। १ मरुतः महिमानमीरयन । " "  
 ६६। २ मरुद्गणे मन्म पीमति । " "  
 ४ मरुतः अवये हवामहे । " "  
 ७०।११ ओम् । अन्तरिक्षात् मरुतः आ यद् ।  
 ( स्वाहास्वयम् )  
 ७३। १ मरुतः इन्द्रं अर्पन् । ( इन्द्रः )  
 ७५। ५ अतिसन्धा मरुद्भ्यो । ( नद्यः )  
 ७६। १ मरुतो रोदनी अनघन । ( प्राणाः )  
 ८४। १ युपिता मरुत्वः । ( मनुः )  
 ८६। ९ मरुत्सया इन्द्रः । ( इन्द्रः )  
 ९२। ६ मरुतो विष्वद्वयः । ( विधे देवाः )  
 ११ मरुतो विष्णुरदिरि । " "  
 ९३। ४ मरुतः । ( विधे देवः )  
 १०३। ८ मरुतो यन्तु अर्षम् । ( इन्द्रः )  
 ९ मरुतां शर्षः उदम्पार । " "  
 ११३। ३ मरुतः इन्द्रं अर्पन् । " "  
 १२२। ५ मरुतः त्वां मर्जयद् । ( अग्निः )  
 १२६। ५ मरुद्गीन्द्रं हुवेम । ( विधे देवाः )  
 १२८। २ मरुत विह्वे सन्तु । " "  
 १३७। ५ शार्ङ्गं मरुतां गणः " "

- १५७। ३ मरुद्भिः इन्द्रः अम्मकं स विना भृता(विधे देवाः)  
 (२) सामवेदसंहिता ।  
 ४४५ अर्चन्त्यकं मरुतः स्वर्गाः । ( इन्द्रः )  
 (३) अथर्ववेदसंहिता ।  
 यं० सू० मन्त्रः  
 २। १२। ६ अतोव यो मरुतो मन्वते नो मरुत् । ( मरुतः )  
 २९। ४ मरुद्भिः इन्द्रः प्रदितो न आगन् । ( याव पृथिवी,  
 विधे देवाः मरुतः, अ पः । )  
 ५ विधे देवा मरुत ऊर्जमापः [ धत ] "  
 ३। ३। १ सुजन्तु त्वा मरुतो विधेदेवतः ( अग्निः )  
 ४। ४ विधे देवा मरुतस्त्वा ह्यन्तु । ( अधिनो )  
 १२। ४ उधन्तु मरुतो धनेन । ( शान्ते एतः )  
 १७। ९ विधेदीरनुमना मरुद्भिः । ( सीता )  
 १९। ६ देवा इन्द्रय्येष्टा मरुतां यन्तु सेनया । ( विधे-  
 देवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः । )  
 ४। १६। ४ पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य ( अनन्तान् )  
 १५।१५ यं यन्तुं चित्तो मरुता मन इच्छन् । ( पितरः )  
 ५। ३। ३ इन्द्रवन्तो मरुतो गम विह्वे सन्तु । ( देवाः )  
 २४।२० मरुतां पिता पयानामधिरतिः । ( मरुतां पिता )  
 ६। ३। १ पातं न इन्द्रायुष्मादितिः पान्तु मरुतः । ( इन्द्रा-  
 पूरणां, अदितिः, मरुतः इत्यादयः । )  
 ४। २ अग्निः पान्तु मरुतः । ( अग्निः, मरुतः  
 इत्यादयः । )  
 ३०। १ रीनाशा आगन् मरुतः मुचन्वतः । ( घामी )  
 ४७। २ विधे देवा मरुत इन्द्रो अम्मन् न जग्मुः ।  
 ( विधे देवाः )  
 ७४। ३ मरुद्भिः इन्द्रा अर्शुपयानाः । ( शान्तस्वयम् )  
 ९२। १ सुजन्तु ता मरुतो विधेदेवतः । ( इन्द्रः )  
 ९३। ३ विधे देवा मरुतो विधेदेवतः यथा नो  
 प्रायश्चयम् । ( विधे देवाः, मरुतः । )  
 १०४। ३ इन्द्रो मरुत्यानादानमग्निरे-यः इणेतु नः ।  
 ( इन्द्राग्नी, सोम इन्द्रश्च । )  
 १०७। ५ इन्द्रो मरुत्यान् स ददातु तन्मे । ( विधेकर्मा )  
 १२५। ३ इन्द्रस्योक्तो मरुतामनीधम् । ( पन्वतिः )  
 १३०। ४ उन्मादयन् मरुत उन्वतरिक्ष मादय । ( स्मरः )  
 ७। २५। १ विधे देवा मरुतो यद् मर्षः । [ अम्मन् ] ।  
 ( स विना )  
 ३४। २ सं मा भिन्वन्तु मरुतः [ प्रजया धनेन ] । ( शार्ङ्गः )  
 ५२। ३ पदक्षिणं मरुतां सोममृषाम् । ( इन्द्रः )



- २०।३० बृहदिन्द्राय गायत मरतो बृहन्तमम् । (इन्द्रः)
- २१।१९ सररवनी भारती मरतो विराः वयः दधुः ।  
(विद्यो देव्यः)
- २७ मरतः स्तुताः इन्द्रे वयः दधुः । (इन्द्र, मरतः)
- २२।२८ मरद्भ्यः स्वाहा । (मरतः)
- २३।४१ अहोरापि मरतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ।  
(अधः)
- २४। ४ पृथिः तिरधीनपृथिः ऊर्ध्वपृथिः ते मारताः ।  
(प्रजापत्यादयः)
- १६ सान्तपनेभ्यः मरद्भ्यः, गृहमोधिभ्यः, मरद्भ्यः,  
क्रीडिभ्यः मरद्भ्यः, रवतवद्भ्यः मरद्भ्यः  
प्रयमज नालभते । (प्रजापत्यादयः)
- २५। ४ मरतां सप्तमी । (शादादयः)  
६ मरतां स्वन्धा विधेया देवाना प्रथमा कानसा ।  
(शादादयः)
- २४ इन्द्र ऋयुत मरतः परिचयन् । (अधः)  
४६ अदि र्इन्द्रः सगणो मरद्भिरस्यभ्यं भेषजा  
करत् । (विधे देवाः)
- २६।१७ स नः इन्द्राय मरद्भ्यः परि स्य । (सोमः)
- २९।५४ इन्द्रस्य वज्रो मरतामनीकम् । (रयः)  
५८ मारुतः कन्मायः । (पशवः)
- ३०। ५ क्षत्राय राजन् मरद्भ्यो वरयम् । (सविता)
- ३३।४५ आदित्यान्मारुतं गग्म् । (आद्युयामिः) ।  
(विधे देवाः)
- ४७ इना मरतो अधिना ।  
४८ सार्धः प्रयन्त मारुतोति विणो ।  
४९ मरुत ऊतये हुवे ।  
६३ विभेन्द्र सोमं सगणो मरद्भिः । (इन्द्रः)  
त. आ ३।२७।१
- ६४ अवर्धभिन्द्रं मरुतादिचदत्र । (इन्द्रः)  
[ कठ ४।३४ ]
- ९५ देवास्त इन्द्र सत्याय वेगिरे बृहद्भानो मर-  
द्भ्यः । (इन्द्रः)
- ९६ प्र य इन्द्राय बृहते मरतो प्रदान्त । (इन्द्रः)
- ३४।१२ तव मते नवगो विप्रनापरोऽजायन्त मरुतो  
आजहृष्ययः । (अग्निः)
- ५६ उप प्र वन्तु मरतः सुदानयः । (मरुतप्रपतिः)  
[ कठ. १०।४७ ]
- ३७।१३ ग्वाहा मरुद्भिः परि मीयरण । (पार्थः)

त. आ. ४।५।५, ५।४।९

- ३९। ५ मारतः ऋधन् । (प्रायश्चित्तदेवताः )  
६ मरतः सप्तमे अहन् । (सवित्रादयः )  
९ वजेन मरतः । (प्रजापतिः )

## (५) काठक संहिता ।

शं नः सोचा मरुधोऽगो । काठ २।९७  
मरुतः स्तनधितुना हृदयमाग्निहृन्दन् । काठ ८।५  
इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो प्रतेन दधे । काठ ८।८  
मारत्यामिक्षा बारव्यामिक्षा कय एकपालः । काठ. ९।६  
मरद्भ्यः रीडिभ्यः प्रातस्तगुप्तपालः । काठ. ९।१६;  
श. २।५।३।२०

अग्निभिर्मरतः । कठ. ९।३८  
मरुतो यद्द को दिवो यूयमह्मनिन्द्रं वः । काठ ९।६८  
सयोभिरायाय मारुतं प्रियत्वं चर्हं निर्वपेत् । काठ. १०।१८  
पृथ्या वै मरुतो जातः वाचो वाय्या वा  
पृथिव्या मारुतास्तजाता एतन्मरतो स्वं पयः ।  
क्षत्रं वा इन्द्रो वि मरतः क्षत्रायैव विप्रमनु नियुनक्ति १०।१९  
मारुतस्य मारुतीमनुर्धन्द्राय यजेत् ।  
विद्वं मरुतो भागधेयेनैवैनाष्टमयति ।  
अगह्यो वै मरद्भ्यदसतमुद्वणः पृथीन् प्रीक्षत् ।  
तानिन्द्रायालभतं तं मरुतः पुष्टा वज्रमुधर भ्यवपत् ।  
इन्द्रो मरुद्भिर्कृतुषा वृणोतु । काठ. १०।३६  
मारुतं चर्ह निर्वपेत् । काठ. ११।१

इन्द्रो मरुद्भिः । (उत्कामत्) । कठ ११।५, २४।२३  
इन्द्राय मरुत्वते एक दमत्रप लम् । काठ. ,,  
तस्य मारुती याज्य जुगाक्ये रवातम् । कठ. ११।६  
उप प्रेत मरतः स्वतवसः । कठ ११।१२; २०।४७  
मरुतां प्राणस्त ते प्राणं ददतु । काठ. ११।१३  
इन्द्रेण दत्तं प्रयत्तं मरुद्भिः । काठ. ११।१४  
मारुतं चर्हं सौर्यमेकत्रपालम् । काठ. ११।३१  
रमयता मरुतदेवमधिनाम् । काठ. ११।५७  
वैराजं मरुतां एकवरी । काठ. ११।१४  
ऐन्द्रामारुतं पृथितास्यमालभेत । काठ. १३।७  
मरुतां पितृदत्तं तद् गृणीमः । काठ १३।२८  
मरुतः सताश्रव्या शन्वरीमुद्वजयन् । काठ. १४।२४  
,, ,, उणिगहसुद्वजयन् । १४।२५

ये देवा मरुत्क्षेत्राः । कठ. १५।३  
 मरुत्क्षेत्राः पश्चान्मुखो रक्षोः स्वहा । ॥  
 मरुतामोजरस्थ । कठ. १५।८  
 मरुतो देवता विद् । कठ. १५।९  
 मरुतो देवता । काठ. १७।१२; ३९।४५,  
 मरुत्क्षेत्रीयमुक्त्वाभ्युपयाम्य मरुत्क्षेत्रम् । कठ. १७।२१  
 मरुत्क्षेत्रे देवा अधिपतयः । वाठ. ,, वा. ८।९।१।८  
 अग्निमारुते ऽन्धे अन्धधाय । काठ. ,, ,,  
 आदित्या अक्षं मरुतोऽक्षम् । कठ. २१।२, वा. ४।३।३  
 ११२  
 यद्विधानं मारुता अनुहन्ते । काठ. २१।३३  
 उपाशु मारुताऽनुहोति । ,, ,,  
 गणश एव मरुत्क्षेत्रपति । ,, ,,  
 क्षत्रं वा एव मरुतां विद् । २१।३४  
 यन्नेनेति दीपयति मरुत्क्षेत्रम् । ,, ,,  
 शुभे नु स्तोमं मरुतो यद्द वो विषः । काठ २१।४४,  
 क. ८।७।११  
 मरुत्क्षेत्रीयैः ते तेऽधिपतयः । वाठ २१।१६  
 यन् प्रायणोर्षं मरुतां देवाविद्या देवविद्याम् । काठ २३।२०  
 यन्मरुत्क्षेत्रीयैः पद भवति । ,,  
 रवस्ति रथे मरुतो दधातन । ,,  
 मरुत्क्षेत्रे विद्यमानेषु । काठ २६।३७  
 इन्द्रो वृत्रमहन् मरुत्क्षेत्रीयं मरुत्क्षेत्रीयं स्तोत्रं भवति  
 मरुत्क्षेत्रीयमुक्त्वाभ्युपयाम्य मरुत्क्षेत्रीयाः । काठ. २८।६  
 प्रविहतिरत्र प्रथमो मरुत्क्षेत्रीयोऽप्यवति । ,,  
 वज्रमेव प्रथमेन मरुत्क्षेत्रीयैः निच्छते । ,,  
 तृतीयेन ये द्वितीयमरुत्क्षेत्रीयैः रत्स्य गृणीयन् । ,,  
 वीर्यं वै मरुतो वीर्यैर्नैनं वधेयन्ति । ,,  
 स मरुत्क्षेत्रीयैरेव वृत्रमहन्सत्य मरुत्क्षेत्रेऽनूक्तं न देवम् ।  
 वाठ. २८।६  
 यत्वं वै मरुतः । कठ. २९।२४  
 मरुतः सुधा वृष्टिं नयन्ति । काठ. १६।३१  
 मरुतः द्वितीये सवने न जहृः । काठ. ३०।२७  
 ये निर्वो एव प्रजाना तं मरुतोऽभ्युपयन्त्याः । काठ. ३६।२  
 यत् हि मरुतो निरवत्या एव मरुतोऽन्धो  
 प्राग्भवेत्तेन सादमवत्स्ये । काठ ३६।२; ३७।४-६  
 तरय मरुतो हव्यं च्यवमत्त । कठ. ३६।९

मरुत्क्षेत्रीयानोवेन स वृत्रमर्भं त्यतिष्ठन् । वाठ. ३६।१५  
 तं मरुत एयं क्वांतरथैरभ्येयन्त । काठ. ३६।१५  
 स एतं मरुत्क्षेत्रीयो भागं निरवपन् तं मरुतो वीर्यय  
 समतपन् । ( काठ. ३६।१५ )  
 ते मरुत्क्षेत्रीयो गृहमेधिभ्योऽनुहवुः । काठ. ३६।६;  
 वा. २.५।१।४,९

तं मरुतः पविर्कृतन्त । काठ. ३६।१८  
 ते मरुतः क्रीडान् क्रीडतोऽप्यवपन् । ,, ,,  
 तं मरुतोऽप्यकीडन् । ३६।१९  
 मारुतो वृधिरेशा । काठ. ३७।४  
 अथैव मारुत एकविंशतिकपालः । काठ ३७।६,८  
 त्रिगणे मरुतस्तुतन्म् । काठ. ३८।१२६  
 अनुपन्त मरुतो यज्ञमेतम् । काठ ४०।९८

### (६) ब्राह्मण-ग्रन्थ ।

मरुतो रश्मयः । ताण्ड्य. १४।२।२९  
 ये ते मारुताः ( पुरोडाशाः ) रश्मयस्ते । शं० ९।३।१।२५  
 युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्वेदेव दत्ते युञ्जन्तु त्वा देवा इत्ये-  
 वनदाह ( मरुतः = देवाः— अमरकोषे ३।३.५८ )  
 वा० ५।१।४।९

गणशो हि मरुतः । तां. १९।१।४।२  
 मरुतो गणना पतयः । तै. ३।१।१।४।२  
 सप्त हि मारुतो गणाः । शं० ५।४।३।१।७  
 सप्त गणा वै मरुतः । तै. १।६।२।३; २।७।२।२  
 सप्तसप्त हि मारुता गणाः शं० ९।३।१।२।५ [कठ० २१।१०]  
 मारुतः सप्तकपालः ( पुरोडाशाः ) । ता. २१।१०।२३  
 [ काठ. ९।४, २१।१०; ३।७।३ ]  
 मारुतस्तु सप्तकपालः ( ,, ) । शं० २।५।१।१।२  
 मारुतः सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति । शं० ५।३।१।६  
 मरुतो वै देवानां भृथिष्ठाः । ता. १४।१।२।९; २१।१।४।३  
 मरुतो हि देवानां भृथिष्ठाः । तै० २।७।१।०।१  
 मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षमजना इन्द्राः । कां. ७।८  
 विशो वै मरुतो देवविशः । शं० २।५।१।२।२; ३।९।१  
 १।७-२८. ऐ. १।१०

मरुतो वै देवानां विषाः । ऐ. १।९; तां. ६।१०।२०;  
 १८।१।१।४। काठ. ८।८ ]  
 अनुतादो वै देवना मरुतो विद् । शं० ४।५।१।१।६  
 विद् वै म तः, तै० १।८।३।३; २।७।२।२ [कठ० २९।  
 ९; ३७।३ ]  
 विशो मरुतः । शं० २।५।१।६, २७, ४।३।३।६  
 [ काठ० ३८।१।१८ ]

विशो वै मरुतः । श० ३।२।१।१७  
 मरुतो हि वैश्यः । तं २।७।७।२ [ काठ० ३।७।४ ]  
 पशवा वै मरुतः । ऐ० ३।६२ [ काठ० २।६।२६ ;  
 ३६।२, ३६ ]  
 अन्नं वै मरुतः । तं १।७।३।५ ; १।७।५।२ ; १।७।७।३  
 प्राणा वै मरुताः । श० ९।३।१।७  
 मरुता वै प्रावाणः । तां ९।२।१४  
 मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम् । तं १।४।६।२  
 अणु वै मरुतः शिनाः ( शिनाः ) । वी० ५।४  
 अणु वै मरुतः त्रितः ( त्रिताः ) । गो० उ० १।२२  
 आपो वै मरुतः । ऐ० ६।३० ; कौ० १।२।८  
 मरुतोऽग्निमिममयन् । तस्य नान्तस्य हृदयमचिन्दन्  
 साऽशनिरभवत् । तं १।१।३।२२  
 मरुतो वै वर्षस्यसते । श० ९।१।२।५ [ काठ० १।१।३२ ]  
 पद्भ्यः पार्श्वैर्वा मारुतैर्वा वर्षासु । श० १३।५।४।२८  
 इन्द्रस्य वै मरुतः वी० ५।४।५  
 अथेनं ( इन्द्रं ) ऊर्ध्वाया दिशि मरुतश्चाग्निरसथ देवा ..  
 ...अन्वयिष्यन् .. पारमेष्ठ्याय म हारिज्याया धिपत्याय स्वाव-  
 द्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८।१७  
 हेमन्तेनपुना देवा मरुतस्त्रिणयं (स्तोमे) स्तुतं बलेन शकरीः  
 सद्यः । हविरेन्द्रे वयो दधुः । तं २।६।१९।२  
 मरुतो वासतर्यः । तां २।१।१४।१२  
 पङ्क्तिरज्यो मरुतो देवता ष्टावन्गौ । श० १०।३।२।१०  
 मरुत्सोमो वा एषः । तां १।७।१।३  
 मरुतो ह वै धीडिनो वृन्-हृदिप्यन्तमिन्द्रम गतं तमभितः  
 परि चिकीर्तुर्महयन्तः । श० २।५।३।२०  
 ते ( मरुतः ) एवं ( इन्द्रं ) अथकीडन् । तं १।६।७।५  
 इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः । वी० ५।५  
 ज्यो वै मरुतः क्रीडिनः । गो० उ० १।२३  
 मरुतो ह वै सान्तपना मध्यन्दिने वृन्-सन्नेषुः स सन्ततो-  
 ऽननेव प्राणन् परिर्दानः शिदधे । श० २।५।३।३  
 इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनः । गो० उ० १।२३  
 घोरा वै मरुतः स्वतवसः । वी० ५।२, गो० उ० १।२०  
 प्राणा वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३।६६  
 सवनसतिष्व मरुत्वतीयग्रहः । वी० १।५।१  
 पवमानं कथं वा एतयन्मरुत्वतीयम् । ऐ० ८।१ः  
 वी० १।५।२  
 तदेतद्वान्रमेवोक्थं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रो वृन्महन् ।  
 वी० १।५।२

तदेतद्वृत्तनाजिदेव सूक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रः वृत्तन  
 सजयत् । वी० १।५।३  
 सथेप मरुत्सोम एतेन वै मरुतोऽपरिमितो पुष्टिमापुष्य-  
 क्षपरिमिता पुष्टि पुष्यति य एव वेद । तां १९ १४।१  
 अन्तरिक्षालोको वै मरुतो मरुतां गणः । श० ९।४।२।६  
 तद्य गर्वं मरुत्वतीयं भवति । ऐ० ३।६६  
 वृष्टिबन्धिदं मरुत इति मारुतमयंनभेदे । ऐ० ३।१८  
 मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति, मरुत्वतीयं सूक्तं शंसति,  
 मरुत्वतीयां निविदं दधति, मरुतां सा भक्तिः  
 मरुत्वतीयसुक्थं शरत्वा मरुत्वतीयया यजति ।  
 ऐ० ३।२०

तन्मरुतो धून्वन् । ऐ० ३।१४  
 तस्माद्द्विधानरथिणामिमारुतं प्रतिपद्यते । ऐ० ३।३५  
 प्रमादधेति य आभिमारुतं शंसति  
 इन्द्रोऽगस्त्यो मरुतस्ते समजानत । ऐ० ५।६६ ;  
 मरुतो यस्य हि क्षय इति मारुतं धेतिरदन्तक्षयम् ।  
 ऐ० ५।११  
 " " " पोता यजति । ऐ० ६।१०  
 त उ मारुत आपो वै मारुतः । ऐ० ६।३०  
 " " मेव शंसिष्येति । " "  
 पुरस्तान्मारुतस्थाप्यस्याथा इति । " "  
 तेऽज्ये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । ऐ० ७।९  
 अज्ये मरुत्वते रवाहा ।

मरुतश्च त्व हिरण्यश्च देवा अतिछन्दसा छन्दसा रोहन्तु ।  
 ऐ० ८।१२, १७  
 मरुतश्चाग्निरसश्च देवाः यद्भूमिद्वैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्य-  
 सिचन् । ऐ० ८।१४ ; १९  
 मरुतः परिवेष्टारो मरुतस्थावसन् गृहे । ऐ० ८।२६,  
 श० १।३।५।४।६  
 मारुती दक्षिणाजगितार्यं न्येन मारुतो भवति ।  
 श० २।५।२।६०  
 तद्वासा मरुतः पाप्मानं विमेषिरे । श० २।५।२।२४  
 प्रजानां " " विमथ्यते । " "  
 स एतामैन्द्रो मरुत्वतीमजयत् । श० २।५।२।२७  
 मारुत्यां तं वारुणामवदधानि । श० २।५।२।३६



मरुद्गोऽनुवृहाति । श० २।५।२.३८  
 अस्थै मारुतै पयस्वायं द्विरवयति । ”  
 मरुतो यजेति । ”  
 तस्य च मरुत्वतीयान् गृहति । श० ४।३।३।१, १, ४।४  
 १।०  
 इन्द्रायैव मरुत्यते गृहीयान् । श० ४।३।३।१०  
 नापि मरुद्गोः स यदापि मरुद्गो गृहीयात् । ”  
 इन्द्रमेवातु मरुत आभजति । ”  
 मरुतो वाऽइन्द्रवधेऽपमन्य तस्सुः । श० ४।३।३।६  
 विशा मरुद्भिः स यथा विनयस्य कामाया श० ४।३।३।१५  
 अथ मरुद्गोः उज्जयेभ्यः । श ५।१।३।३  
 येऽएव के च मारुतयौ स्याताम् । ” ”  
 उ-शे मरुत उपामन्यत । श० ५।३ ५।१४  
 न यदेव मारुत ऋथस्य तदेवैतेन प्रीणाति । श० ५।४।३।१७  
 अथ पृथानो विचित्रगर्भो मरुद्गो आलभते । श० ५।५ २।९  
 आदित्यो पश्च न्मरुत उत्तरत । श० ८।६।३।३  
 मरुतो देवतर्षावन्ती । श० १०।३।२।१०  
 अन्व न्या मरुत । श० १३।४।०।१६  
 विश्वे देवा मरुत इति । श० १४।४।२।२४  
 अथ यन्मरुत स्वतवतो यजति, घोरा वै मरुत. स्वतवसः ।  
 शो० उ० १।२०  
 अथ मरुद्गोः सान्तपणेभ्यः । श० २।५।३।३  
 त मरुद्गो देवविष्टभ्यः । ऐ १।१०  
 मरुत्वां इन्द्र म द्वा । ऐ ५।६  
 मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरं । ऐ० ४।२९, ३१, ५।१  
 एतधन्मरुत्वतीयं पवमाने वा । ऐ० ८।१  
 एतद् मरुत्वतीयं समदम् । ऐ ८।२  
 मरुत्वतीयमेव गृहीत्वा । श ४।३।३।३  
 निविद्ध दधातीति मरुत्वतीयम् । श १३।५।१।९  
 मरुत्वतीयं ह द्योर्गर्भभूय । गो पृ ३।५  
 त्रिमुभा मरुत्वतीयं प्रत्वपयत । गो. उ ३।१२  
 विश्वे देवा अद्रवन् मरुतो ह्येन नाजहुः । ऐ० ३।२०  
 म य दिने यन्मरुत्वतीयस्य । ऐ. ३।२८  
 मरुत्वतीयः प्रगाथ । ऐ ४।२९  
 मरुत्वतीयस्य प्रतिपदं मह । ऐ ५।४  
 मरुत्वतीयस्य प्रतिपादजन्यथा । ऐ ५।६

मरुत्वतीयस्य प्रतिपदन्तः । ऐ. ५।१०  
 मरुत्वतीये तृतीये सवने । गो. उ ३।२९, ४।१८  
 यक्ष्यं मरुत्वतीयात् । ”  
 मरुद्गोऽमे सहस्रसत्तमः । श ११।४।३।१९

### ( ७ ) आरण्यक ग्रन्थ ।

वातवन्तो मरुद्गणा । तै आ १।४।२  
 इहैव चः स्वतपस । मरुत सूर्यत्वच ।  
 शर्म सप्रया आवृणे । तै आ. १।४।३  
 वैश्वानराय धिषणा भिसा भिमारुतस्य । ऐ आ १।५।३  
 प्रयज्यवो मरुत इति मारुतं समानोदकम् । ”  
 चतुर्विंशान्मरुत्वतीयस्याऽऽतान । ऐ आ. ५।१।१  
 जनिष्ठा उग्र इति मरुत्वतीयम् । ”  
 सस्थिते मरुत्वतीये होता । ”  
 मरुतः प्राणैरिन्द्र बलेन । तै आ २।१८।१  
 प्रति हासं मरुतः प्राणान् दधति । ”  
 अभिपूज्यतामभिप्रताम् । य तवता मस्ताम् ।  
 तै आ. १।१५।१

मस्तां च विद्वांसाम् । तै आ १।२७।६  
 वातवता मस्ताम् । तै आ १।१५।१  
 सुतान एव मारुतो मरुद्भिरुत्तरतो रोचय । तै आ ५।५।०  
 वाद्युकेतन्मरुत्वतीयं प्रतिपयते । ऐ. आ १।०।०

### ( ८ ) उपनिषदादि ग्रन्थ ।

तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन सुखेन । छान्दोग्य ३।९।१  
 मस्तामवैको भूत्वा । ”  
 मस्तामेव तावदाधिपत्या रथाराज्यं पयेता । ”  
 विश्वे देवा मरुत इति । बृहदा १।४।१२  
 मरुद्भिः सोम पिब वृजहन् । महानारा २।०।२  
 मरुद्भ्रात्रेति निधुतोऽसि । मैत्रा. २।१  
 तस्मै नमस्कृत्या मरुदुत्तरायण गतः । मैत्रा ६।३०  
 मरुतः पथादुयन्ति । मैत्रा ७।३  
 सवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराट् । नृ पूर्व २।१  
 मरीचिर्मस्तामसि । म गो १।०।२१  
 अदिनौ मरुतस्तथा । म गो. ११।६  
 मरुतशोष्यपाथ । म गो. ११।२९

# मरुतोंके मंत्रोंमें विद्यमान सुभाषित ।

वीरोंका धर्म तथा वीरोंके कर्तव्य ।



इसके पहले हम मरुतोंके मंत्रोंका सरल अर्थ दे चुके । यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि, उन मंत्रोंमें जो प्रमुख कल्पना है, उसे हम जान लें । उस केन्द्रभूत कल्पनाकी जानकारी पानेके लिए यहाँपर हम उन मंत्रोंके सर्वसाधारण प्रतिपादनोंको मूल शब्दोंके साथ देकर सरल अर्थ बताना चाहते हैं । मरुतोंका वर्णन करते हुए वीरोंके संघर्षमें जो साधारण धारणाएँ उस उक्त स्थानपर प्रमुखतया दीख पड़ती हैं, उन्हींका संग्रह यहाँपर किया है । मंत्रमें पाया जाने-वाला वाक्यही यहाँ लिया है । विशेष वर्णनात्मक शब्दोंका प्रयोग नहीं किया है और जिस मौलिक कल्पनाको व्यक्त करनेके लिए मंत्रका चयन हुआ, उसी मूलभूत कल्पना की स्पष्टता जितने कम शब्दोंमें हो सकती है, उतनेही शब्द यहाँ ले लिये हैं । बहुधा प्रारम्भिक अन्वय उषोंका रस रखा गया है, पर जिससे सर्वसाधारण बोध प्राप्त होगा, ऐसा वाक्य बनाने के लिए पर्याप्त शब्द चुन लिये हैं । यद्यपि यह वर्णन मरुतोंकाही है, तथापि इन सुभाषितोंमें वह केवल मरुतोंकाही नहीं रहा है । मरुतोंका विशेष वर्णन इतानेके कारण हमें यह सर्वसामान्य उपदेश मिल जाता है । ऐसा कहा जा सकता है कि, समूचे मानवोंको हम भौतिक नीतिका उपदेश दिया गया है । इसी दृष्टिसे वेदप्रतिपादित सर्वसाधारण धर्मका ज्ञान हो सकता है । हमके लिए ऐसे चुने हुए सुभाषितोंका बड़ा अच्छा उपयोग हो सकता है । पाठकोंको अगर उचित जगह, वो मंत्रोंके अन्य शब्दभी यथोचित जगहकी पूर्तिके लिए वे रखें । पाठकोंकी सुविधाके लिए मंत्रोंके क्रमोंका प्रारम्भमें दिये हैं और उन मंत्रोंके श्रवणदादि वेदोंमें पाये जानेवाले पत्र भी आगे दिये हैं ।

हम भौतिक स्वल्पाय करनेसेही वेदका सच्चा आशय समझ लेना सुगम होगा, ऐसी हमारी आशा है ।

[ विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि । ]

(१) यक्षियं नाम दधाना । ( ऋ. १।६।४ )  
पूजनीय नाम धारण करे । [ उच्च कोटिका यज्ञ पाना चाहिए । ]

पुनः गर्भत्वं एरिरे । ( ऋ. १।६।४ )  
( वीरोंको ) बार बार गर्भवासमें रहना पड़ता है ।  
[ पुनर्जन्मकी कल्पना का भासास यहाँपर अवश्य होता है । ]

स्व-धां अनु ( ऋ. १।६।४ )  
अपनी धारक शक्ति बढ़ाने के लिए या भन्न पानेके लिए [ प्रयत्न करना चाहिए । ]

(२) देवयन्तः श्रुतं विद्वक्षुं अनुपत । ( ऋ. १।६।६ )  
देवत्व पानेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको उचित है कि,  
वे धनकी योग्यता जाननेवाले विख्यात वीरोंके काव्यका गायन करें ।

(३) अनयद्यैः अभिद्युभिः गणे सहस्यत् अर्चति ।  
( ऋ. १।६।८ )

निर्दोष एवं तेजस्वी वीरोंको साथ ले शत्रुदलका पराभव करनेहारि दलकी वह पूजा करता है । [ ऐसे बलको वह अपनेमें बढ़ाता है । ]

[ कण्वपुत्रा मेधातिथि ऋषि । ]  
(४) पौत्रात् ऋतुना पियत । ( ऋ. १।१।५२ )  
पवित्र पात्रमेंसे ऋतुकी अनुकूलता देखकर पीनेयोग्य वस्तुओंका सेवन करो ।

यज्ञं पुनीतन । ( ऋ. १।१।५३ )  
यज्ञ के कर्म को अधिक पवित्र करो ।  
[ घोरपुत्रा कण्व ऋषि । ]

(६) अनयणं शर्धं अभि प्र गायत ( ऋ. १।३।७१ )  
जो मानस्यं पारस्वरिक मनोमालिन्य वा धैर्यभावकी न

बढ़ने दे उसका वर्णन करो।

(७) स्वमानवः वाशीभिः क्षत्रिभिः साकं अजायन्त ।  
( ऋ. १।३।७२ )

तेजस्वी वीर अपने दृधिवालों को साथ रखकर सुसज्ज बने रहते हैं। [ सदैव वटिशब्द रहना वीरोंका तो कर्तव्यही है। ]

(८) यामन् चित्रं नि ऋञ्जते । ( ऋ. १।३।७३ )

युद्धभूमिमें हमला करते समय वीर सैनिक बड़ी विवक्षणा धरता दशांता है।

(९) देवत्तं शस्त्रं शार्धाय, धृष्यये, त्वेष्युस्त्राय प्रगायत ।  
( ऋ. १।३।७४ )

देवताओंका स्तोत्र, बल बढ़ानेके लिए, दायुका विनाश करनेके लिए और तेजस्वी बननेके हेतु गाते रहो। [ ऐसे स्तोत्र पढ़नेसे या गानेसे उपयुक्त गुणों की वृद्धि होगी। ]

(१०) गोपु अर्ध्व्यं दार्धः प्रशंस; रसस्थ जम्भे धवृधे ।  
( ऋ. १।३।७५ )

गौत्रोंमें जो श्रेष्ठ बल विद्यमान है, उसकी मराहना करी, गोरसके सेवनसे मानवोंमें यह बढ जाता है।

(११) धृतयः नरः । ( ऋ. १।३।७६ )

अनुसेनाको विचलित करनेवाले [ जो वीर हैं, ] वे नेता होते हैं।

(१२) उग्राय यामाय पर्यनः जिहीत । ( ऋ. १।३।७७ )  
दायुमेंनागर जब भीषण धाया होता है, तब पहाड़तक दौलने लगता है। [ वीर सैनिक इसी भाँति दुश्मनोंपर चढ़ाई करें। ]

(१३) यामेषु अज्मेषु पृथिवी भिया रेज्जते ।

( ऋ. १।३।७८ )

दायुदलपर चढ़ाई करते समय भूमि काँप उठती है। [ वीर सिपाही इसी प्रकार दायुओंपर आक्रमण कर दें। ]

(१४) दायः द्विता अनु । ( ऋ. १।३।७९ )

बलका उपयोग दो स्थानोंमें करना पड़ता है, [अर्धान् जो शस्त्र हुआ है, उसका संरक्षण तथा नये धनकी प्राप्तिके लिए शर सैनिकोंका बल त्रिभक्त होता है। ]

(१५) अज्मेषु यातवे काष्ठाः उत् अलन्त ।

( ऋ. १।३।८० )

दायुपर हमले करनेके समय हलचल करनेमें कोई रुकावट

या बाधा न हो, इसलिए सभी दिशाओंमें भली भाँति मार्ग बनवाने चाहिए। [ यदि आनेजानेके लिए अच्छी सड़कें हों, तो दुश्मनोंपर किए हुए आक्रमणोंमें सफलता मिलती है। ]

(१६) यामभिः, दीर्घं पृथुं अमृधं नपातं, च्याचयन्ति ।  
( ऋ. १।३।७९ )

वीर सैनिक अपने प्रभावी आक्रमणोंमें बड़े, नष्ट न होनेवाले एवं बहुतकालतक टिकनेवाले दायुकोभी अत्यन्त विचलित तथा विकम्पित कर डालते हैं।

(१७) जनान् गिरान् अचुच्यवाँतन, (तत्) यलम् ।  
( ऋ. १।३।७९ )

जिसकी सहायतासे दायुके वीरोंको भयया पहाड़ोंकी भी अपररूप करना संभव है, वही यल है।

(१९) शीर्भं प्रयात । ( ऋ. १।३।७९ )

शीप्रतासे बलें।

आशुभिः शीर्भं प्रयात । = वेगवान साथनोंकी सहायतासे बहुत जल्द गमन करी।

(२०) विश्वं आयुः जीवसे । ( ऋ. १।३।७९ )

पूर्ण आयुतक जीवित रहनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(२१) पिता पुत्रं न हस्तयोः दधिष्ये । ( ऋ. १।३।८१ )  
जैसे पिता अपने पुत्रको अपने हाथोंसे उठा लेता है,

उसी प्रकार [वीर पुरुष जनताका] मानवना या आधार दे दें।

(२२) घः गावः फ्य न रण्यन्ति । ( ऋ. १।३।८२ )

तुम्हारी गीर्षु किधर जानेपर दुःखी बन जाती है ? [ वह देगो, वह तुम्हारे दुश्मनोंका स्थान है, ऐसा निश्चित समझ लो। ]

(२३) सुम्ना क्व ? सुविता क ? सौभगा क ?

( ऋ. १।३।८३ )

आपके सुख, धैर्य, पेश्वर्धं भला कहाँ है [ देखो क्य वे तुम्हारे समीप हैं या दायु उन्हें छीन ले गये हैं। ]

(२४) पृश्निमातरः मर्तासः, स्तोता अमृतः ।

( ऋ. १।३।८४ )

भूमिकी माता समझनेवाले वीर यद्यपि मर्य हैं, तोभी जो उनके संग्रहमें काश्य बनते हैं, वे अमर बनते हैं। [मातृभूमिके उपामकोंका इतना सदरूप है, वे स्वयं तो अमर बनते ही हैं, पर उनका काश्य यदि कोई बना दें, तो वे कवि भी अमर हो जाते हैं। ]

(२५) जरिता यमस्य पथा मा उप गात् । (क ११२८१५)  
 कवि कदापि भौतको पट्टगानेवाली रादमे नहीं चलेगा ।  
 [ जो कवि बीरोका वर्णन करनेके लिए घोररमपूर्ण वाक्य  
 का सृजन करेगा, वह अवश्य अमर बनेगा । ]

(२६) दुर्हणा निर्ऋतिः नः मो सु वर्धात् । (क ११२८१६)  
 विनाश करनेवाली दुर्दशाके कारण हमारा नाश न होने  
 पाय । [ हय विषयमे शासको को अलग्ना मगक रहना  
 चाहिए । ]

दुर्हणा निर्ऋति तृणया पर्दाष्ट । (क० ११२८१७)  
 विनाशका हृद्य तपस्विन करनेवाली दु. स्थिति भोग-  
 लाससे बढ़ती जाती है और उसी कारण उसका विनाश  
 हुआ करता है । [ भोगकालामे सुखसाधनोंकी शृद्धि होती  
 है और अन्तमे उसी की वजहसे वे विनष्ट होते हैं । ]

(२७) त्वेया अमचन्तः धन्वन् मिहं रूपवन्ति ।  
 (क. ११२८१७)

तेजस्वी तथा बलवान वीर रोगिस्तानसे एव मदस्थयोगे  
 भी जलको उपपन्न का दिवन्ति है । [ पारपसे सुखकी प्राप्ति  
 हुआ करती है । ]

(३०) मदतां स्वनात् पार्थिवे सश मानुषाः प्र थरेजन्त ।  
 (क ११२८१७०)

मानैतक सडे रहकर लटनेवाले वीर सैनिकोंकी दहाह  
 से पृथ्वीपर विद्यमान स्थान तथा सजी मानवकोंपने लगते  
 हैं । [ वीरोंको चाहिए कि वे इसी भाँति गूरता दर्शायें । ]

(३१) वीरुपाणिभिः जलिद्रयामभिः रोधस्वर्ताः  
 अनु यात । (क ११२८१७१)

बाहुयक बड़ाकर, विप्लवा दूर करते हुए उसाहपूर्वक  
 प्रयाहमेसे भी आगे बढे । [ निरुमाही बनकर चुपचाप  
 हाथपर हाथ धरे न बैठे । ]

(३२) व. रथाः नेमयः अश्वासः अभीशव. स्थिराः  
 सुमंस्त्रताः । (क ११२८१७२)

गुम्हारे सभी नाथन मुट्ट तथा धर्ये सरकारों से  
 संपन्न हो [ तभी गुम्हें सफलता मिलेगी । ]

(३३) गिरा ब्रह्मणः पतिं अच्छा वद् । (क. ११२८१७३)  
 अरनी वाणीसे जानी पुर्दोंकी सरहना करो ।

(३४) आस्ये श्रुंकां मिसीटि । (क ११२८१७४)  
 शीघ्र कवि बनो, गोदीली वेगमे तन ही मत छोडकरना

ररो, [ काव्यरचना हम भाँति सहज ही होने पाय । ]  
 गाय-ध्रं उक्थ्यं गाय ।

विषसे गानेवालेकी रक्षा हो, ऐसे काव्योंका गायन करते  
 रहे । [ व्यर्थही मनमाने काव्योंका गायन करना उचित  
 नहीं । ]

(३५) त्वेपं पनस्युं अर्किणं घन्दस्व । (क ११२८१७५)  
 तेजस्वी, वर्णन करनेयोग्य तथा प्लव धीरकीही प्रणाम  
 करो । [ चाहे जित नीच व्यक्तिके सामने धीन सुक्याय न  
 जाय । ]

अस्मे इह वृद्धाः असन् ।  
 हमारे समीप वृद्ध रहें ।

(३७) वः आयुधा पराणुदे स्थिरा वीरु सन्तु ।  
 (क ११२९१२)

गुम्हारे हथियार शत्रुभोंको मार भगानेके लिए स्थिर एव  
 पर्याप्त रूपसे मुट्ट रहें । [ तुम सदैव हम विषयमें सतर्क  
 रहो कि, गुम्हारे हथियार दुश्मनोंके आयुधोंसेभी अपेक्षाएव  
 अधिक कार्यक्षम एव प्रभावी रहें । ]

युष्माकं ताविर्पा पर्नायसी अस्तु, मायितः मा ।  
 गुम्हारी शक्ति सराहनीय रहे, पर गुम्हारे कपटी शत्रुकी  
 वैसी न हो । [ हमेशा गुम्हारी अपेक्षा दुश्मनों की शक्ति  
 घटिया दर्जकी रहे, हमलिये मावधानसे रहा करो । ]

(३८) स्थिरं परा दत्त, गुरु वर्तयथ । (क ११२९१३)  
 जो शत्रु स्थिर हुआ हो, उसे दूर हटाकर विनष्ट करो । तथा  
 बडे भारी शत्रुको भी बकर खानेतक युमा दो [ उसे पदच्युत  
 कर दो, शत्रुको कही भी स्वाधी बननेका अवसर न दो । ]

वनिन वि याधन, पर्यतानां आशा वि याधन ।  
 जगल तोडकर पहाडी भूविगागोंमेंसेभी विशेष टग की  
 सजकें उन्मुक्त रखो । [ यातायातके साधनोंमे वृद्धि करो । ]

(३९) रिशाद्रम. ' भूश्यां शत्रुः व' न विचिदे ।  
 (क ११२९१४)

हे शत्रुलके विध्वंसक वीरो ! हम भूमदलपर गुम्हारा  
 कोई शत्रु न रहे, देया करो ।

आधुपे नविपी, तना अस्तु ।  
 पर करनेवाले लोगोंका विनाश करनेका चल बढता  
 रहे ।

(४०) सर्वथा विद्या प्रो भारत । ( ऋ १।३।१५ )

समूची प्रजाके साथ उन्नतिको प्रसन्न करो । [ मधकी प्रगतिमें व्यक्ति अपनी उन्नति मान ले । ]

(४१) वः यामाय पृथिवी आ अश्रोत्, मानुष अर्थाभ्यन्त । ( ऋ १।३।१६ )

तुम्हारे आक्रमणकी भावाज सारी पृथ्वी सुन लेवी है, धर्याए एक छोरसे दूसरे छोरतक आक्रमणका समाचार पहुँचना है, अतः मानवोंको अत्यन्त भय प्रतीत होता है । [ वीरोंके हमलेमें इसी भाँति भीषणता पर्याप्त मात्रामें रहनी चाहिए । ]

(४२) तनाय कं अव. आवृणीमहे । ( ऋ १।३।१७ )

हम चाहते हैं कि, जिस सरक्षणसे बालबच्चोंका सुख बचे, वही हमें मिल जाए ।

विभ्युपे जससा गन्त ।

जो भयभीत हुआ हो उसके समीप अपनी सरक्षण शक्तियोंके साथ चले जाओ । [ जो भयभीत हुए हों, उन्हें तसल्ली देनी चाहिए । ]

(४३) अभ्य शयसा ओजसा ऊतिभि वि युयोत ।

( ऋ १।३।१८ )

शत्रुके अभूतपूर्व भीषण प्रहारोंको अपने बलसे, सामर्थ्यसे एवं सरक्षक शक्तियोंसे दटा दो, दूर कर दो ।

(४४) असामि दद, असामिभि. ऊतिभि. न आगन्तन । ( ऋ० १।३।१९ )

पूर्ण रूपसे दान दो, अपनी संपूर्ण, अत्रिकल शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ । [ सरक्षण करनेके लिए जाते समय पूर्ण सिद्धता अपनी चाहिए । कहींभी अपराधन या श्रुति न रहे । ]

(४५) असामि ओज. शय. विभूध । ( ऋ १।३।१९० )

संपूर्ण दानमें अपना बल तथा सामर्थ्य बढ़ाकर धारण करो ।

द्विपे द्विपं सृजत ।

शत्रुपर शत्रुकी छोड़ो । [ एत शत्रुसे दूसरे दुश्मनको लडाकर घेना प्रयत्न करो कि, दोनों शत्रु हतबल एवं परास हों । ]

[ वण्यपुत्र पुनर्वसुस ऊपि । ]

(४६) पर्वतं तु विराजथ । ( ऋ ८।७।१ )

पर्वतोंमें आनन्दपूर्वक रहो । [ पहाड़ों मुक्तकोंभी

जानेजानेका अभ्यास करना चाहिए । पार्वतीय भूविभागोंके भीहृदयसे तनिकभी न हटते हुए यहाँपर विराजमान होना चाहिए । ]

(४७) तविपीयवः ! यामं अचिध्वं, पर्वता नि जहासत । ( ऋ ८।७।२ )

बलवान वीर जिस समय शत्रुसेनापर भावा करनेके लिए अपना रथसुसज्ज करते हैं, तब पर्वतभी काँप उठते हैं । [ ऐसी दृष्टामें मानव तो अवश्यही मारे डरके धरथर काँपने लगेंगे, इसमें क्या आश्चर्य ? ]

(४८) पृश्निमातर' उदीरयन्त, पिप्युषीं इपं धुधन्त । ( ऋ ८।७।३ )

मातृभूमिकी सेवा करनेहारो वीर जब हलचल मचाने लगते हैं, तब वे पुष्टिकारक अन्नकी यथेष्ट सृष्टि करते हैं ।

(४९) यत् यामं यान्ति, पर्वतान् प्रवेपयन्ति । ( ऋ ८।७।४ )

जब वीर सैनिक दुश्मनोंपर आक्रमण करते हैं, तब वे मार्गपर पड़े हुए पहाड़ोंतक को हिला देते हैं [ वीरोंका आक्रमण इसी भाँति प्रबल हो । ]

(५०) यामाय विधर्मणे महे शुप्माय गिरिः सिन्धव' नि येमिरे । ( ऋ ८।७।५ )

वीरोंके आक्रमणों एवं प्रबल सामर्थ्योंके परिणामस्वरूप मारे भयके पहाड़ एवं नदियाँभी नष्ट बन जाती हैं । [ शत्रु शुक जायँ इसमें क्या सहाय ? ]

(५१) वाथा' यामेभिः स्नुना उदीरते । ( ऋ ८।७।७ )

गरजनेवाले वीर अपने रथोंसे पर्वतों के सिन्हातक पार कर चले जाते हैं । [ वीरोंके लिए कोई स्थान अगाध नहीं है । ]

(५२) यातवे ओजसा पन्थां सृजन्ति । ( ऋ ८।७।८ )

वीर पुष्ट्य जानेके लिए अपनेही बल एवं सामर्थ्यके सहारे मार्गोंका सृजन करते हैं ।

ते मानुभिः वि तस्थिरे ।

ये तैगोंसे युक्त होकर विदोष स्थिरता पाते हैं । [ वे प्रथम तेजस्वी बनते हैं और तेजस्वी होनेसे स्थायी बन जाते हैं । ]

(५३) दमे मदे प्रचेतस. रथ । ( ऋ ८।७।९ )

तुम अपने रथोंमें आनन्दित बननेके लिए विदोष कुट्टिमें

युक्त होकर रहो। [ अपना चित्त संस्कारसंपन्न करनेसे तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा। ]

(५८) मद्च्युतं पुरुषं विश्वधायसं रयिं नः  
आ ह्यर्त। (ऋ. ८।७।१३)

शत्रुका गर्व हटानेवाले, सबके लिए पर्याप्त, सबकी धारणपुष्टि करनेकी क्षमता रखनेवाले धनकी आवश्यकता हमें है। [ इसके विपरीत जिससे शत्रुको हर्ष हो, जो सबके लिए अपर्याप्त एवं अल्प जैसे, सबकी धारक शक्ति को जो घटा दे, ऐसा धन यदि हमें सुप्त भी मिल जाय तोभी उसका स्वीकार नहीं करना चाहिए। ]

(५९) गिरीणां आधि यामं अचिध्वं, इन्दुभिः  
मन्दध्वे। (ऋ. ८।७।१४)

जब पर्वतोंपर जाते हो, तब वहाँ उपलब्ध होनेवाले सोमरसोंसे तुम हृष्ट बनते हो। [ पहाड़ों स्थानोंमें पाये जानेवाले सोम का रस पीकर आनन्दकी उपलब्धि होती है। ]

(६०) अदाभ्यस्य मन्मभिः सुम्नं भिक्षेत।  
(ऋ. ८।७।१५)

जो वीर न दब जाते हों, उनके संबंधमें किये कार्योंसे सुख पानेकी चाह करना चाहिए। [ शत्रुसे भयभीत होनेवाले मानवका बखान जिसमें क्रिया हो ऐसे कार्योंके पटनसे या मृजजनसे सुखकी प्राप्ति होना सुतरां असंभव है। ]

(६१) पृथ्निमातरः स्वानिभिः स्तोमैः रथैः  
उदीरते। (ऋ. ८।७।१७)

मातृभूमि के भक्त भाषणोंसे, वशोंसे तथा रथादि साधनोंसे ऊँचे स्थानको पाते हैं। [ अपनी प्रगति कर लेते हैं। ]

(६२) पिप्युपीः इयः वः वर्धान्। (ऋ. ८।७।१९)

पुष्टिकारक अन्न तुम्हारी वृद्धि करें। [ तुम्हें पौष्टिक अन्न एवं भोज्य पदार्थ सदैव उपलब्ध हों। ]

(६३) ऋतस्य शार्धान् जिन्वथ। (ऋ. ८।७।२१)

सत्यके बलों को प्रोत्साहित करो। [ सत्य का बल प्राप्त करो। ]

(६४) त्ये यज्ञं पर्वशः सं दधुः। (ऋ. ८।७।२२)

वे वीर यज्ञको हर रातमें नहीं भौंते जोड़कर प्रबल

तथा सुदृढ कर देते हैं। [ वीर संनिक अपने हथियारोंको प्रबल तथा कार्यक्षम बना रहें। ]

(६५) वृष्णि पौंस्यं चक्राणाः अराजिनः पुत्रं  
पर्वतान् पर्वशः वि ययुः। (ऋ. ८।७।२३)

अपना बल बढ़ानेवाले ये संघनासक [ जिनमें कोई राजा नहीं रहता है, ऐसे ये वीर ] शत्रुको तथा पहाड़ोंको तिलतिल तोड़ डालते हैं। पहाड़ों गडों को भी छिन्नभिन्न कर डालते हैं।

(६६) युध्यतः दुपमं अनु आवन्। (ऋ. ८।७।२४)

युद्ध करनेवाले वीरके यत्नकी रक्षा तुमने की है।

(७०) विजुद्धस्ताः अभिद्यवः शीर्षन् ध्रिये हिर-  
ण्ययीः शिप्राः व्यजत। (ऋ. ८।७।२५)

विजलीके समान धमकनेवाले हथियार धारण करनेवाले वीर अपने मस्त्रकोंपर स्वर्णलठवियुक्त शिरोवेष्टन शोभाके लिए धर देते हैं।

(७१) हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन।  
(ऋ. ८।७।२७)

सुवर्णके आभूषणोंसे सजाये हुए घोड़े साथ लेकर हमारे समीप आओ। [ घोड़ोंपर स्वर्णके गहने लादनेतक अश्वीम वैभव रहे। ]

(७४) नरः निचक्रया ययुः। (ऋ. ८।७।२९)

नेताके पदको सुशोभित करनेवाले ये वीर पहियोंसे रहित [ बर्कमय भूविभागोंपर से चलनेवाली ] गाडीमें बैठकर जाते हैं।

(७५) नाघमानं विप्रं मारुकोभिः गच्छाथ।  
(ऋ. ८।७।३०)

सहायताकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी पुरुषके समीप सुख-वर्धक साधन साथ ले चले जाओ। [ सजनोंका सुख बढ़ाओ। ' परित्राणाय साधूनां० । ' गीता, ४।८ ]

(७७) यज्ञहस्तैः हिरण्यवाशीभिः सहो अग्निं  
सु स्तुपे। (ऋ. ८।७।३२)

शस्त्रधारी एवं आभूषणों से अलंकृत वीरोंके साथ रहनेवाले अग्नि की सराहना करता हूँ।

(७८) वृष्णः प्रयज्यून चित्रवाजान् सुविताय सु  
था यवृत्याम्। (ऋ. ८।७।३३)

बलिष्ठ, पूजनीय एवं सामर्थ्यवान वीरोंको धनप्राप्ति के [ कार्यमें सहायता के ] लिए बुलाता हूँ। [ हमारे समीप

भा जानेके लिए उनका मन धाड़पित करता हूँ ]  
 (७९) मन्थमानाः पशानासः गिरयः नि जिहते ।  
 (ऋ. ८।७।३४)

[ इन बीरोंके सम्मुख ] पड़ेउड़े लंचे शिखरवाले पहाड़ भी अपनी जगह से हट जाते हैं । [ बीरोंके सामने पर्वत-शेणोत्कण्टिक नहीं सकली हैं । ]

(८०) अन्तरिक्षेण पततः चयः धासात्. आ वहन्ति । (ऋ. ८।७।३५)

आकाशमार्गसे जानेवाले वाहन अलगमृद्धि करनेवाले घोर सैनिकोंको दृष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं । [ वीर सैनिक विमानोंमें बैठ यात्रा करते हैं । ]

(८१) ते भानुभिः वि तस्थिरे । (ऋ. ८।७।३६)  
 वे वीर पुरुष तजसे युक्त होकर स्थिर मन जाते हैं ।

[ कण्वपुत्र सोभरि ऋषि । ]

(८२) स्थिरा चित् नमयिष्णवः मा अप स्यात ।  
 (ऋ. ८।२०।१)

जो शत्रु अच्छे ढंगसे स्थायी हुए हों उन्हें भी मुकाने-वाले हम वीर हमसे दूर न हो जाओ । [ बिजयी वीर हमारे समीप ही रहें । ]

(८३) सुदीतिभिः वीर्युपधिभिः आ गत ।  
 (ऋ. ८।२०।२)

आगत सौक्ष्म्य, प्रबल हथियार साथ से दूधेर आओ ।

(८४) शिमीवतां उग्रं शृष्ण विप्र । (ऋ. ८।२०।३)  
 उग्रोद्योगी वीरोंके प्रचण्ड गलकी सहसाको हम भी भीति जानते हैं ।

(८५) यत् पृज्यं ह्यीपानि वि पापतन् । (ऋ. ८।२०।४)  
 जब वे वीरसैनिक चले जाते हैं, तब शत्रु [अर्थात् आश्रय-स्थानों] का पतन हो जाता है । [ शत्रु अपने स्थानसे हट जाते हैं । ]

(८६) अजमन् अच्युता पर्यतासः नानदति, यामेषु भूमिः रजते । (ऋ. ८।२०।५)

[ वीरोंकी शत्रुदलपर की हुई ] चडाइयोंके समय अडिग एवं अटल पर्वतक रूपमान हो उठते हैं और पृथ्वीभी विकम्पित होती है । [ वीरोंको उचित है कि, वे हसी भाँति प्रभावशाली एवं सदा कलदायी आक्रमणोंका साँगाता लगा देयें । ]

(८७) अमाप यत्तये यत्र याहोऽजसः नरः स्वक्षांसि-  
 तनूप् आ देदिशते, चाँः उत्तरा जिहीते ।  
 (ऋ. ८।२०।६)

जब सेना की हलचलके लिए अपने बाहुबलसे तुम्हारे वीर जिधर अपनी साँगो तकि केन्द्रित तथा एकत्रित करते शत्रुपर धावा कर देते हैं उधर ऐसा जान पड़ना है कि, नानों आकाश स्वयं दूर होते जा रहा है [अर्थात् उन वीरोंकी प्रगति अबाध रूपसे वीरोंके लिए एक और सङ्कल सुखी हो जाती है । ]

(८८) त्वेषाः अमचन्तः नरः महि श्रियं वहन्ति ।  
 (ऋ. ८।२०।७)

तेजस्वी, बलयुक्त तथा नेता होने हुए वीर अत्यधिक रूपसे सोभाव्यमान दीख पड़ते हैं ।

(८९) गोवन्धवः सुजातासः महान्तः श्रेष्ठे भुजे-  
 स्परसे । (ऋ. ८।२०।८)

गौको पहरने समान माननेवाले कुलीन वीर अन्न, भोग एवं श्रुति देते हैं ।

(९०) ध्रुपप्रयासे धृष्णे श्राधोय हव्या प्रति भरध्वम् ।  
 (ऋ. ८।२०।९)

प्रबल आक्रमण करनेवाले बलिष्ठ वंशोंको पर्यस्त अन्न दे दो, ताकि उनका बल मृद्धिगत हो । [ बिना अन्नके सैन्यका बल तथा प्रतिकारक्षमता टिक नहीं सकेगी । ]

(९१) ध्रुपश्वेन रथेन नः आ गत । (ऋ. ८।२०।१०)

बलिष्ठ अश्व जिसको लौचिते हों, ऐसे रथपर बैठकर हमारे समीप आओ ।

(९२) एषां समानं अङ्घ्रि, याद्द्रुपं क्रेष्टयः दधि-  
 द्युतति । (ऋ. ८।२०।११)

दूर वीरोंकी चरख (एकदिव) मराना है, तथा दूरकी सुनाओपर दाख जागमगा रहे है ।

(९३) उग्रासः तनूप् नकिः येतिरे । (ऋ. ८।२०।१२)

वीर पुरुष अपने लीनोंकी पर्वोह नहीं करते हैं, [अर्थात् बिना किसी शिष्टक या द्विविचलितके वे उक्तासते युद्धों में वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं और अपने प्राणोंका स्वर्गमें डाल देते हैं । ]

रथेषु स्थिरा धन्वानि, आयुधा, अर्नायेषु अधि धियः॥  
 वीरोंके रथोंपर सुदृढ, न हिलनेवाले एवं स्थायी धनुष्य

और हथियार रखे जाते हैं तथा वहीं वीर रणभूमिमें सफलता पाते हैं।

(९१) क्षत्र्यतां त्वेषं नाम सहः एकम् । (ऋ ८।२।०।१३)

इन शाश्वत वीरोंके तेज, यद्वा एवं सामर्थ्यमें अद्वितीय यथा पाई जावी है।

(९५) धुनीनां चरम न । (ऋ ८।२।०।१४)

शत्रुको विकम्पित करनेवाले वीरोंमें कोई भी निम्न श्रेणीका या हीन नहीं है।

एषां दाना महता । = इनके दान बड़े भारी होते हैं, [ ये अपने प्राणोंका बलिदान करनेके लिए उद्यत होते हैं, यही इनका बड़ा दान है। प्राणोंसे अपंगसे बढ़कर भला और क्या दान हो सकता है ? ]

(९६) ऊतिषु सुभगः आस । (ऋ ८।२।०।१५)

सुखित्तममें यद्वा भारी श्रीभार्य छिया रहता है।

(९९) वस्यसा हृदा उप आवयृध्वम् । (ऋ ८।२।०।१८)

उदार अन्तःकरणपूर्वक हमारा समीप धाकर समृद्धि यदाओ।

(१००) चर्कृपत् मा सु अभि गाय । (ऋ ८।२।०।१९)

हल चलानेवाले; कृषियान गौओंको गिहाने के लिए सुर गीत गाया करता है।

यून वृष्ण पायकान् नरिष्टया गिरा सु अभि गाय = नवयुवाक, तथा बलवान और पवित्रता करनेवाले वीरोंका नया काव्य मलीभौति सुगीली आवाजमें गाने रहो।

(१०१) विश्वास पुत्सु मुष्टिहा हव्य (ऋ ८।२।०।२०)

सभी सैनिकोंमें मुष्टिघोड़ा सम्माननीय होता है।

सहाः सन्ति तान् वृष्णः गिरा चन्द्रस्व ।

जो वीर सैनिक शत्रुबल का नाश करनेपरभी अपनी जगह अटल एवं अडिग हो खड़े रहते हैं, उन बलवान वीरोंकी सराहना अपनी वाणीसे करो तथा उनका अभिवादन करो।

(१०२) सजात्येन सयन्धव मिथ रिहतेः (ऋ ८।२।०।२१)

सजातीय एवं बाधन परस्पर मिल जुलकर रहें।

(१०३) मर्तं चः भ्रातृत्वं उपायाति, आपित्वं सदा

निधुवि । (ऋ ८।२।०।२२)

साधारण कोटिका मनुष्य भी तुमसे भईपारिका पतंग कर सकता है, क्योंकि तुम्हारी मित्रता सर्वत्र अचल एवं स्थिर रहा करती है।

मस्तु (हिं) २७

(१०४) माकृतस्य भेषजं वा वल्लत । (ऋ ८।२।०।२३)

वायुमें जो आंधीगुण विद्यमान है, वह हमें ला दो। [ वायुमें तेज इटानेकी वाक्ति विद्यमान है। ]

(१०५) याभि ऊतिभिः अवथ, शिवाभिः मयः भृत ।

(ऋ ८।२।०।२४)

जिन शक्तिगोते तुम रक्षा करते हो, उन्हीं तुम वाक्ति-गोते हमारा सुख बढ़ाओ।

(१०६) सिन्धौ अस्मिन्थां समुद्रेषु पर्वतेषु भेषजम् ।

(ऋ ८।२।०।२५)

सिन्धु नदी, समुद्र एवं पर्वतोंमें आंधीगोते हैं। [ उन आंधीगोतोंकी जानकारी प्राप्त करके रोग इटाने चाहिए। ]

(१०७) विश्वं पश्यन्तः, तनूप आ विभूय, आतुरस्य

रपः क्षमाः विहुतं हर्कतः । (ऋ ८।२।०।२६)

विश्वान् निरीक्षण करो, शरीरोंकी हृष्टपृष्ठ यथाओ, रोग-से पीड़ित व्यक्तियोंके दोष दूर करो और दृष्ट हुए भागको ठीक करो या जोड़ दो।

[ गीतमयुत्र नोधा ऋषिः । ]

(१०८) वृष्णे, सुमराय, वेपसे, शार्धाय सुवृक्तिं प्र

भर । (ऋ १।६।४।१)

बल, सत्कर्म, ज्ञान एवं सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिए काव्य करो।

(१०९) ऋष्यास उक्षण असु राः अरेपसः पात्रकासः

शुचयः सत्यानः दिव जशिरे । (ऋ १।६।४।२)

उच कोटिके, महान्, सत्कार्यके लिए अपने जीवनका बलिदान करनेवाले, पापरहित, पवित्र, शुद्ध एवं सत्यमान जो हो, वे स्वर्गसे पृथगीय आयें हैं, ऐसा समझना चाहिए।

(११०) अजराः धर्मोद्यनः अधिगायः हल्हा चित्तु मजमना प्र च्यावयन्ति । (ऋ १।६।४।३)

क्षण न होनेवाले, अनुदा शत्रुओंकी इटानेवाले, दान-सेनापर धरार्ह करनेवाले वीर सैनिक स्थिर शत्रुओंकी भी अपने बलसे हिला देते हैं।

(१११) अंसेषु ऋष्य निमिम्भुः नरः स्वधया जशिरे ।

(ऋ १।६।४।४)

कथेपर राज रत्नेवाले और नेताके पदपर आधिष्ठित वीर पुरुष अपने बलसे विरुधत होते हैं।

(११२) ईशानकृतः धुनय धूतयः रिशादसः परिजय



दिव्यानि ऊषः दुहन्ति । ( ऋ. १।६।१५ )

राष्ट्रनामकोटा सूत्रन करनेवाले, शत्रुको हिला देने, स्थापत्य करने तथा विनष्ट कर डालनेकी क्षमता रखनेवाले और उसे घेरनेवाले वीर दिव्य मौका दुग्धानय दुहकर दूधका सेवन करते हैं । [मौनिसौमिके भोग पाते हैं ।] (११३) सुदानयः आभुव विदधेपु घृतवत् पयः पिन्यन्ति । ( ऋ. १।६।१६ )

उत्तम दान देनेहारे प्रभावशाली वीर युद्धभूमिमें घृतमिश्रित दूधवा सेवन करते हैं । [ दूधमें घी की मिलावट करनेपर वह शक्तिवर्धक एवं बलदायक पेष होता है । ]

(११४) महिपासः मायिनः स्वतवसः रघुप्यदः तविपीः अयग्ध्वम् । ( ऋ. १।६।१७ )

बड़े कुशल, तेजस्वी तथा वेगसे जानेहारे वीर अपने यज्ञोपवीत उपांग करते हैं ।

(११५) प्रचेतस सुांपशः विश्वेदसः क्षप जिन्मन्तः शवसा अहिमन्यवः ऋषिभिः सवाधः सं इत् ।

( ऋ. १।६।१८ )

ज्ञानी, सुन्दर, धनिक, शत्रुविनाशक, सबको सुखी यगनेकी इच्छा करनेहारे, बलवान एवं उग्रवाही वीर अपने द्विपदार साथ लेकर पीहित एवं दुःखी लोगोंको सुपगमाधान देनेके लिए इच्छा होकर चले जाते हैं ।

(११६) गणश्रिय नृपाचः अहिमन्यवः शूरा घन्धुरेपु रथेषु आतस्थौ । ( ऋ. १।६।१९ )

समुदायके कारण सुहानेवाले, जनताकी सेवा करनेहारे एवं उग्रसे भरे हुए वीर अच्छे रथोंमें बैठकर गमन करते हैं ।

(११७) रथिभिः विश्वेदसः समोऋस तविपीभिः संमिद्राः विराट्पानः अस्तारः अनन्तशुष्माः वृपरादयः नरः गभस्त्योः इतु दधिरे । ( ऋ. १।६।२० )

घनादय, वैभवशाली, एक घरमें निवास करनेवाले, बलमय, स्वामर्षपूर्ण, शक्तिमान, शत्रुपर, शत्रु कँकनेवाले धीर अच्छे ढंगसे अलकृत वीर अपने कर्षोपर बाण एवं शूरी धारण करते हैं ।

(११८) अयासः स्वस्तुनः भुवच्युतः दुभकृतः भ्राजत्क्रष्टयः पर्यन्तान् पथिभिः उज्जिप्रते । ( ऋ. १।६।२१ )

प्रगतिशील, अपनी इच्छा से हलचल करनेवाले, सुदृढ़ दुर्मनोकी भी अपद्रव करनेकी क्षमता रखनेवाले और शत्रु

कोई धर नहीं सकता ऐसे तेजस्वी शत्रु धारण करनेहारे वीर पहाड़ोंकी भी अपने द्विपारों से उडा देने हैं ।

(११९) घृपुं पावकं विचर्याणि रजस्तुरं तवसं पृपणं गणं सश्रुत । ( ऋ. १।६।२२ )

युद्धमें प्रवीण, पवित्रता करनेहारे, ध्यानपूर्वक हलचलोंका सूत्रगत करनेवाले, अपनी वेगवान गतिके कारण धूलिको प्रेरित करनेवाले, वलिष्ठ एवं सामर्थ्ययुक्त वीरोंके संघको समीप बुलाओ ।

(१२०) घः ऊती यं प्रायत, सः शवसा जनान् अति । ( ऋ. १।१६।२३ )

तुम अपने संरक्षणोपे जित पुरुषको सुरक्षित बना देते हो, वह सभी लोगोंमें श्रेष्ठ बनता है ।

अर्वाङ्गिः वाजं नृभिः घना भरते, पुप्यति । वह बुद्धिसवारीकी सहायतासे अन्न प्राप्त करता है, वीरोंकी सहायतासे पौरुषपूर्ण कार्य करके धनवैभव पाता है और पुष्ट बनता है ।

आपृच्छयं क्रतुं आ शेति ।

वर्णन करनेयोग्य पुरवार्य करके यज्ञस्वी बनता है ।

(१२१) चक्षुःस्यं, पूंसु दुष्टरं, युमन्तं, गुप्यं घनस्पृतं, उक्थयं, विश्वचर्याणि तांके तनयं घत्तन ।

( ऋ. १।६।२४ )

पुरुषार्थी, युद्धोंमें विजयी बननेवाला तेजस्वी, समर्थ, धनवान, वृणनीय, समूची जनताका हितकर्ता पुत्र होवे ।

(१२२) अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं, ऋतीपाहं शूशुवांसं रथि घत्त । ( ऋ. १।६।२५ )

हमें स्थिर वीरोंसे युक्त, शत्रुओंके पराभव करनेमें क्षमतापूर्ण धन प्रदान करो ।

[ रहगणपुत्र गोतमऋषिः । ]

(१२३) सुदंससः सतयः स्तनचः यामन् द्रुम्मन्ते विदधेपु मदन्ति । ( ऋ. १।८।१ )

सत्कर्म करनेहारे एवं प्रगतिशील वीर सुपुत्र शत्रुदलपर धारा करते समय सुगोभित दील पढ़ते हैं और युद्धस्थलमें बड़े ही हर्षित हो उठते हैं ।

(१२४) अकं अचन्तः पृक्षिमातरः श्रियः अथि दधिरे, महिमानं आदात् । ( ऋ. १।८।२ )

पूकही पूजनीय देवताकी उपासना करनेहारे मातृभूमिके

भक्त धीर अथवा यश यदाते हैं और बटपनको पा लेते हैं।

(११५) गोमातर विश्वं अभिमातिनं अप याधन्ते ।  
( ऋ १।८५।३ )

गोकुलो माता समझनेवाले धीर सभी शत्रुओंका परामर्श करते हैं तथा उन्हें दूर हटा देते हैं ।

(११६) सुमस्तासः ऋष्टिभिः विश्राजन्ते, मनोजुवः  
वृषमातासः रथेषु पृथ्वीः अयुधैः, अच्युता चित्  
ओजसा प्रच्यवयन्तः । ( ऋ १।८५।४ )

अच्छे कर्म करनेवाले धीर पुरुष या सैनिक अपने इति-  
यागोंसे सुहाते हैं। मगकी नाईं वेगवान, सांघिक यज्ञसे  
युक्त वे धीर अपने रथोंमें घोड़ियों को जोत लेते हैं और  
अपनी शक्तिसे जो शत्रु भटल तथा अदिग प्रतीत होने हैं,  
उन्हें अपश्य पर डालते हैं ।

(११७) याजे अत्रिं रंहयन्तः ( ऋ १।८५।५ )

अन्नके लिए वे धीर पहाड़कीभी विचलित कर डालते  
हैं ।

(११८) रघुप्यदः सप्तयः च, आ वहन्तु । ( ऋ १।८५।६ )  
पेगपुत्रक दौड़नेवाले घोड़े तुम वारांको यहाँपर ले  
आओ ।

रघुपत्यानः याहुभि प्र जिगात ।  
क्षीणतासे प्रयाण करनेवाले तुम लोग अपने बाहुपलसे  
प्रगति करो ।

यः उरु सद्ः कृतं= बड़ा घर तुम्हारे लिए बना  
रहा है ।

यदिः आ सद्दित, मध्य अन्धस मादयध्वम् ।  
आसनोंपर बैठा और मिट्टासभरे अन्न का सेवन करके  
प्रसन्न बनो ।

(११९) ते स्वतवसः अवर्धन्त । ( ऋ १।८५।७ )  
वे धीर सैनिक अपने यत्नसे वृद्धिगत होने रहते हैं ।  
महिल्यना नाकं आ तस्थुः ।

अपने बटपनसे धीर पुरुष स्वर्गमें जा बैठते हैं ।

धिष्णुः वृषण मद्च्युतं थावत् ।

देव बलिष्ठ तथा प्रसन्नोत्ता धीरोंकी रक्षा करता है ।

जिसका मन आनन्दमयितामं दूयना उतरता हो उसकी  
रक्षा परमात्मा करता है ।

(१२०) नृराः युमुधय अशस्यवः पृतनासु येतिरे ।  
( ऋ १।८५।८ )

शूर योद्धा यशस्विता पानेके लिए युद्धमें विजयार्थ  
प्रयत्न करते रहते हैं ।

त्वेपसंदशः नरः विश्वा भुवना भयन्ते ।

तेजस्वी धीरासे सभी भयभीत हो डटते हैं ।

(१२१) स्नपाः त्वष्टा सुकृतं यज्ञं अवर्तयत्, नरि  
अपांसि पतये धत्ते । ( ऋ १।८५।९ )

अच्छे कुशल कारीगरने सुवह अधिवार बना दिया और  
एक अत्यन्त धीर पुरुषने युद्धमें विजय श्रुता प्रदर्शित  
करनेके लिए उसे हाथमें उठा लिया ।

(१२२) ते ओजसा ऊर्ध्वं अवर्तं मुमुद्रे, ददृहाणं  
पर्वतं विभिदु । ( ऋ १।८५।१० )

उन धीरोंने पहाड़ोंपर विद्यमान जलको नीचे घर्जित  
कर दिया और उसके लिए बीचमें रुकावट पड़ी करनेवाले  
पर्वतको भी तोड़ डाला ।

(१२३) तथा दिशा अततं जिष्टं मुमुद्रे ।

( ऋ १।८५।११ )

उस दिशामें टेंडीमेंही रहसे वे पानी को ले गये ।

(१२४) नः सुधीरं रथिं धत्त । ( ऋ १।८५।१२ )

हमें अच्छे धीरोंसे युक्त धन दे दो । [ निम्न धनमें धीर-  
भार न हो, वह हमें नहीं चाहिए । ]

(१२५) यस्य क्षये पाथ, स मुगोपातमो जनः ।

( ऋ १।८५।१३ )

जिसके प्रभुमें देवतायाग रक्षाका भार उठा लेने है, वह  
गौआंछा परिपालन अच्छे ढंगसे करनेवाला बन जाता है ।  
[ अर्थात् वह सचका भली भौति सरक्षण करता है । ]

(१२६) विप्रस्य मनीनां क्षुण्णत । ( ऋ १।८६।१ )

ज्ञानी को सुचारु को क्षुण्णत ।

(१२७) यस्य वाजिनः निभं अनु अतक्षत, सः गोमानि  
यजे गन्ता । ( ऋ १।८६।२ )

जिसके बल ज्ञानीके अनुकूल होने हैं वह ऐसे गोद्वेष  
चला जाता है कि, जहाँ पर गौआंकी भरमार हो । [ वह  
गोधनसे युक्त बनता है, यथेष्ट धन पाता है । ]

(१२८) धीरग्य उर्ध्वं शम्पते ।

( ऋ १।८६।३ )

वीरकी सराहना की जाती है।  
(१३९) यः पभिवुवः अस्य विश्वाः चर्षणीः  
जाधोपन्तु। (क. १।८६।५)

जो वीर शत्रुका पराभव करनेकी क्षमता रखता है, उसका वाश्य सभी लोग सुन लें।

(१४०) चर्षणीनां अघोभिः वयं वदाशिम।  
(क. १।८६।६)

रिसानोंकी संरक्षणआयोजनाओं से पालित बनकर हम दान दिया करते हैं। [ यदि कृपक सुरक्षित रहें, तो सभी प्रगतिशील हो सकते हैं, दरिद्रताको दूर भगा सकते हैं। ]

(१४१) यस्य प्रयांसि पर्यथ, सः मर्यः सुभगः  
पस्तु। (क. १।८६।७)

जिसके प्रयत्नोंसे तुम भोग भोगते हो, वह मनुष्य सौभाग्यवान एवं धन्य है।

(१४२) दशमानस्य स्वेदस्य येनतः कामस्य विद्।  
(क. १।८६।८)

शोषनापूर्वक और पसीनेसे तर हो जानेतक जो कार्य करना हो, उसकी आकांक्षाओंको तुम जान लो। [ उसकी उपेक्षा न करो। ]

(१४३) यूयं तत् आविष्कर्त, विद्युता महित्वना रक्षः  
विधयत। (क. १।८६।९)

तुम अपने उस बलसे प्रकट करो और विद्युत् जैसी घटी शक्तिसे दुष्टका विनाश करो।

(१४४) गुप्तं तमः गृहत्, विश्वं अग्निं वि यात,  
ज्योतिः कर्त। (क. १।८६।१०)

अंधेरोंको दूर हटा दो, सभी पेटुओंको बाहर भगा दो और सबको प्रकाश दिखाओ।

(१४५) प्रतवक्षसः प्रतयसः विराट्शानः अनानता  
पविधुराः ऋजीभिण जुष्टमासः नृतमासः वि  
शानजे। (क. १।८७।१)

तनुओंका विनाश करनेहारो, चलमंपन्न, योगी, शीशु न सुनानेवाले, निद्र, सरल, जिनकी सेवा अपवधिक मात्रामें लोग करते हैं तथा जो अति उरुच कोटिके नेत्रा मननेकी क्षमता रखते हैं, ऐसे वीर तेजसे जगभगाया करते हैं।

(१४६) केन चित्पथा ययिं अचिध्वम्।  
(क. १।८७।२)

किसीभी राहसे शत्रुदलपर की जानेवाली चढाईके पथपर आकर इकट्ठे बनो।

(१४७) यत् शुभे युञ्जते, अजमेपु यामेपु भूमिः प्र  
रेजते। (क. १।८७।३)

तुम जब शुभ कार्य करनेके लिए तैयार होते हो, तब शत्रुसेनापर चढाई करते समय भूमि धरधर काँप उठती है।

ते धुनयः धूतयः भ्राजदृष्टयः महित्वं पनयन्त।  
ये शत्रुको टिका देनेवाले तथा शस्त्रधारी वीर अपनी मठरव प्रकट करते हैं।

(१४८) सः हि गणः स्वयुन् तविपीभिः आवृतः  
अया ईशानः सत्यः कृणयावा अनेद्यः घृषा अविता।  
(क. १।८७।४)

वह धीरोंका समुदाय अपनी निजी प्रेमासे कर्म करनेहारों, सामर्थ्ययुक्त, अधिकारी मननेयोरव, मत्यनिष्ठ, ऋण शुभानेवाला, अनिन्दनीय एवं चलवान है, अतः सबकी रक्षा करता है।

(१५०) ते अमीरवाः प्रियस्य धाम्नः विद्रेः (क. १।८७।५)  
वे निद्र वीर आदरका स्थान प्राप्त करते हैं।

(१५१) क्राष्टिमद्भिः रथोभिः आ यात, सुमायाः इषा  
नः आ पस्तत। (क. १।८७।६)

शस्त्रोंसे सुमज्ज रथोंमें बैठकर वीर सैनिक इधर पधारे और अच्छी कारीगरी बढाकर विपुल अन्न के साथ हमारे समीप आ जायें।

(१५२) रथतूर्भि अश्वैः शुभे आ यान्ति, स्वाधिति-  
यान् भूम जहन्त। (क. १।८७।७)

रथ खींचनेवाले घोड़ोंके साथ वीर सैनिक शुभ कार्य करनेके लिए आ जाते हैं और शस्त्रधारी बनकर घृणीपर विघ्नमान शत्रुओंका नाश करते हैं।

(१५३) श्रिये कं यः तनूपु पाशीः, मेधा ऊर्ध्वा  
कृणयन्ते। (क. १।८७।८)

जो वीर सपत्ति तथा सुख पानेके लिएही दारद धारण करते हैं, वे वीर अपनी बुद्धिको उरुच कोटिकी बना देते हैं।

(१५४) अर्कैः ब्रह्म कृणयन्तः। (क. १।८७।९)  
शोभा से ज्ञानकी वृद्धि करो।

(१५५) अयोर्द्वान् त्रिधावतः वराहन् पश्यन्,  
योजनं, न भवेति । ( ऋ १।८।१५ )

तीक्ष्ण हथियार छेकर शत्रुदलपर चढाई करनेवाले एवं प्रमुख शत्रुओंका उधे करनेवाले वीरोंको देखकर जो आवे-  
जता की जाती है, वह मधुसूक्ती भूषण होती है ।

(१५६) गभस्वयो स्थर्षा अनु प्रति स्तोमति ।  
( ऋ १।८।१६ )

वीरोंके वाहुओंमें सामर्थ्य जिस धनुषपातमें हो, उन्हीं  
अनुपातमें इनकी मरणा होती है ।

[ दिवोदासपुत्र पदच्छेष ऋषिः ]

(१५७) तानि सना पांस्या असत् मो सु अभि भूयन् ।  
( ऋ, १।१३१.८ )

ये वीरोंकी शान्ति शक्तिमें हमसे दूर न हों ।

अस्मत् पुरा मा जारिषु ।

हमारे नगर ऊबड़ न हों ।

[ मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ऋषिः ]

(१५८) रभस्ताप जन्मने तविपाणि कर्तन ।  
( ऋ १।१६६।१ )

पराक्रान्तपुत्र जीवन मिठे, इमलिपु यहाँका सम्पादन  
को ।

(१५९) घृष्यय विद्वेषु उपनीळन्ति ।  
( ऋ १।१६६।२ )

शत्रुओंसे संघर्ष करनेवाले वीर बुद्धिपूर्ण मं क्रोध करके  
हैं । [ शत्रुओंमें जिस भौति लोग आसक्त होते हैं उन्हीं  
परफर ये वीर योद्धा रणोत्तमोंसे मानों खेल सम्पन्नकर निरत  
होते हैं । ]

नमस्त्रिंशं अस्ता नक्षन्ति, स्वतवस एविष्टतं  
न मर्धन्ति ।

अग्ने बरसे, नक्ष होनेवालों की रक्षा करनेवाले ये  
वीर धरणी सामर्थ्यके सहारे अस्त्रदान करनेवाले का मात  
गर्ही करते ।

(१६०) ऊमासः द्वाशुभे रायः पोषं अरासत ।  
( ऋ १।१६६।३ )

रक्षक वीर दाताओंको अन्न एवं पुष्टि प्रदान करते हैं ।

(१६१) एवांसः त्रिषीभिः अत्रयत, ह्ययतासः प्राध्र-  
जन्, प्रयतासु ऋषिषु विभ्रा मयन्ते, व. याम. चिद्रः ।  
( ऋ १।१६६।४ )

योगपूर्वक आक्रमण करनेवाले वीर धरणी शक्तियोंसे  
सशका प्रतिपालन करते हैं अपने आपकी सुरक्षित रखकर  
शत्रुदलपर धावा करते हैं । जिस समय ये अपने हथियारों  
को सुव्यवस्थित करते हैं, तब सभी सहम जाते हैं क्योंकि इनका  
आक्रमण पडाही भोषण होता है ।

(१६२) त्वेपयामाः नर्याः यत् पर्वतान् नदयन्त दिव-  
पृष्ठं अधुच्यतुः, व अज्मन्विश्वः घनस्पाति भयते ।  
( ऋ १।१६६।५ )

वेगसे हमले करनेवाले तुम लोग, जोकि जनताके हितके  
विपु आक्रमण कर बैठते हो, जिस समय पर्वतपर से  
गमजते हुए गमन करते हो, तब दर्या का दृष्टभाग  
स्पन्दित हो उठता है और तुम्हारी हृदय पडाईके नीचेपर  
समूचे वनशक्ति भी अडभीत हो जाते हैं ।

(१६३) यथा घः त्रिविर्दती दिव्युत् रद्विति, (तत्र)  
शूयं सुचेतुना अरिष्टग्रामाः न सुमति पिपर्तन ।  
( ऋ १।१६६।६ )

जब तुम्हारा तीक्ष्ण एवं दम्भानेदार हथियार शत्रुसे  
डुक्क डुक्के कर देता है, तब भीषण मराममें तुम अपनी  
चित्त नाश स्वकर और अपने नगर सुरक्षित रखकर हमारी  
शुद्धि की शक्तिको बढ़ाते हो ।

(१६४) अनवधराधसः अलातुणामः अहं प्राचन्ति,  
(तानि) वीरस्य प्रथमानि पांस्या विदुः ।  
( ऋ १।१६६।७ )

जिनसे धनको कोई लीन नहीं मरता, जो हुदमनों को  
पूरी तरह से विनष्ट कर डालते हैं, ऐसे वीर उपासनीय  
देवताकी पूजा करते हैं और उन वीरोंके प्रमुख यक्ष एवं  
वीर्य उन्हीं समय प्रकट होत हैं ।

(१६५) य अभिहुनेः अघात् आयत, तं दातभुजिभिः  
पूर्मि रक्षत । ( ऋ १।१६६।८ )

जिसे नाश या पावसे तुम बचाते हो उनकी रक्षा  
सेकरीं उपनोगमापनोंसे तुम गड या दुर्गोंसे तुम करते  
हो । [ इसे पूर्वतया निर्भय बना देते हो । ]

(१६६) वः रथेषु विश्वानि भद्रा, वः अंसेषु त्रिपाणि  
आहिता, प्रपेषु य द्य, व अक्ष चक्रा समयौ  
त्रिवर्णैः । ( ऋ १।१६६।९ )

तुम्हारे रथोंमें बलवान्कारक साधन रखे हैं, तुम्हारे  
कंधोंपर आयुध हैं, प्रयास करते समय तुम अपने सभी

खानेकी चीजें रखते हो; तुम्हारे रथोंके पहिये उचित अवसरपर उचित ढंगसे घूमते हैं। [ तुम शत्रुभोंपर ठीक मौके पर ठीक तरह हमले करते हो। ]

(१६७) नरैषु तद्गुण भूरीणि भद्रा, वक्षसु रुक्माः, असेषु रभसासः जङ्घाः, पविषु अधि क्षुराः, अनु श्रियः वि धिरे। ( ऋ १११६६११० )

मानवोंके हितकर्ता बीलोंके बाहुओंमें बहुतसी दक्षिणें हैं, जो कि कल्याणकारक हैं, वक्षस्थलपर सुइयोंके हार हैं, कंधोंपर धीरभूषण हैं उनके चर्मों की धारा अत्यन्त तीक्ष्ण है। ये सभी घातें बीलोंकी सुन्दरता बढ़ाते हैं।

(१६८) विभ्रज विभूतय दूरेच्छदाः मन्द्राः मुजिह्वा आसभिः स्वरितारः परिस्तुभः। ( ऋ १११६६१११ )

ये धीर सामर्थ्यसंपन्न, ऐश्वर्यशाली, दूरदर्शी, हर्षित, सुन्दर वक्ता हैं, अतः अत्यन्त सराहनीय हैं।

(१६९) दानं दीर्घं व्रतं, सुवृते जनाय त्वजसा शराध्वम्। ( ऋ १११६६११२ )

दान देना बीलोंका बड़ा व्रत है, पुण्यकर्मकर्ता को ये धीर दान देते हैं।

(१७०) जामित्वं शंसं, साकं नरः मनवे शंसनैः श्रुष्टिं भाष्य, आ चिकिषिरे ( ऋ १११६६११३ )

बीरोका चषुवेम अत्यन्त सराहनीय है। ये धीर एकत्रित रहकर अपने प्रयत्नों से सयरा सरक्षण करते हैं और दोष दूर दूरते हैं।

(१७१) जनासः पूजने या ततनन्। ( ऋ १११६६११४ )

धीर बुद्धश्रेष्ठमें भवना सैन्य फैलाते हैं।

(१७२) इया तन्ये यया आ यासिष्टि ( ऋ १११६६११५ )

अपसे शरीरमें सामर्थ्य पैदा हो।

इषं पूजनें जीरदानुं विद्यामि।

ऋष, बल एव शीघ्र विजय मिल जाए।

(१७३) सुमाया अवोभिः आ यान्तु। ( ऋ १११६७१२ )

कुशल धीर अपने सरक्षणके साधनोंमें युक्त हो पधारें।

एषां नियुतः समुद्रस्य पारे धनयन्त।

इनके पीछे (सुदलवार) समुन्द्रके पार चले जाकर धन प्राप्त करें।

(१७४) सुधिता कृष्टिः सं मिम्यक्ष ( ऋ १११६७१३ )

अपनी तलवार इन बीलोंके समीप रखती है।

मनुष्यः योषा न गृहा चरन्ती विद्व्या सभावती। मानवोंकी महिलाओंकी नाईं वह परदेमें रखा करती है। ( मियानमें छिपी पड़ी रहती है ), पर उचित अवसरपर ( सभावती ) वह सभामें प्रकट होती है, वैसेही वह तलवार युद्धके समय बाहर आ जाती है।

( १७८ ) एषां सत्यः महिमा अस्ति, वृषमनाः अहंयुः सुभागाः जर्नाः वहते। ( ऋ १११६७१७ )

इन बीलोंकी महिमा बहुत बड़ी है। उनपर जिसका वित्त केन्द्रित हुआ हो, ऐसी अहमहमिकापूर्वक आगे बढ़नेवाली और सांभारवसे युक्त खी वीरप्रजाका सूजन करती है।

(१७९) अच्युता धृशणि च्यवन्ते, अपद्रास्तान् चयते दातिवारः चयुधे। ( ऋ १११६७१८ )

ये धीर सिधरीभूत शत्रुओंको डिला देते हैं, अपद्रास्तोंको एक ओर हटा देते हैं और दानीपन बड़ा देते हैं।

(१८०) शयस अन्तं धान्ति आरात्तात् नहि आपुः। ( ऋ १११६७१९ )

बीलोंके चलकी धाड़ समीप या दूरसे नहीं मिलती है। धृष्ण्या शयसा शूशुवांसः धृपता द्वेषः परिस्थुः। शत्रुनिष्पन्नक, उत्साहपूर्ण मनसे वृद्धगत होनेवाले धीर अपनी प्रचण्ड सामर्थ्य से शत्रुओंको घेर लेते हैं।

( १८१ ) अथ वय इन्द्रस्य मेष्टाः, वयं श्वः। ( ऋ १११६७११० )

आज हम परमरिता परमात्माके प्यारे हैं, उसी प्रकार बल भी हम प्यारे बनकर रहें।

पुरा वयं महि अनु द्युन् समयै वोचमहि।

पहले से हमें बहपन मिले, इसलिये हरदिके संग्राममें घोषणा करते आये हैं।

श्रुशुक्षाः नरां नः अनु स्यात्।

वह पशु मूर्खी मानवजातिमें हमारे अनुकूल बने।

( १८२ ) यक्षायज्ञा समना तुतुर्वणिः। ( ऋ १११६८११ )

हर कर्ममें मनही सतुलित दगा ( तिकिके निकट ) श्वरापूर्वक पहुँचानेवाली है।

धिर्यधिर्यं देवया दधिधे।

हर विधा में देवताविवेक भ्रम जागन करो।

सुधिताय अपसे सुपृक्तिभिः आ यपृन्त्याम्।

मयकी सुदयतिके लिये तथा सुरक्षाके लिये अच्छे मार्गों से शीरोको बारबार घुलाता हूँ।

(१८४) ये स्वजाः स्वतवसः धृतयः, र्षं सर  
अभिजायन्त । ( ऋ. ११६८१२ )

जो इयंरूपि से कार्य करते हैं, अपने बलसे युक्त  
होने हैं और शत्रुको विचलित करा देनेकी क्षमता भवते  
हैं, वे धनधाध्य एवं तेजस्विता पानेके लिएही उत्पन्न होते  
हैं ।

( १८५ ) अंसेषु रारभे, दस्तेषु कृतिः संदधे ।

( ऋ. ११६८१३ )

(बीरोंके) कंधोंपर हथियार तथा हाथोंमें तलवार रहती है ।

( १८६ ) स्वयुक्ताः दिवः अथ आ ययुः ।

( ऋ. ११६८१४ )

स्वयं ही शकर्ममें लुट जानेवाले वीर स्वयं से भूमडल-  
पर उतर पड़ने हैं ।

अरण्यः तुविजाताः भ्राजदृष्टयः दृळ्हानि  
अनुच्ययुः । ( ऋ. ११६८१५ )

निष्कलंक, बलिष्ठ, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले  
भी सुदृढ शत्रुओंको भी वदभ्रष्ट कर डालने हैं ।

( १८७ ) ऋषिचिद्युतः इषां पुढमैषाः । ( ऋ. ११६८१५ )

बाहों से सुनोभित शीत पड़नेवाले वीर अन्नप्राप्तिके  
लिए बहुतही प्रेरणा करनेवाले होते हैं ।

( १८९ ) घः सातिः रातिः अमघती स्वर्धती त्रेषा  
विपाका पिपिष्वती भद्रा पृथुञ्जयी जज्ञती ।

( ऋ. ११६८१७ )

तुम्हारी सेवा एवं देन बलवान, सुरदायक, तेजस्वी,  
परिवक्त्र, शत्रुबलका विध्वंस करनेवाली, कषयाणकारक,  
जपिष्णु तथा दुश्मनों से जुझनेवाली है ।

( १९१ ) पृश्निः महेते रणाय अयासां त्वेषं अतीकं  
असूत । ( ऋ. ११६८१८ )

माशुभूमिने बड़े भारी युद्धके लिए शूरोंके तेजस्वी  
सैन्यका सृजन दिया ।

सप्सरासः अन्व्यं अजनयन्त ।

संघ बनाकर हमले चढ़ानेवाले वीरोंने बड़ी भारी एवं  
अनोखी शक्ति प्रकट की ।

( १९३ ) तुराणां सुमतिं भिक्षे । ( ऋ. ११७१११ )

शीघ्रही विजयी बननेवाले वीरोंकी सवशुद्धि की इच्छा  
या चाह में करता हूँ ।

हेळः नि घत्त =

द्वेष एक ओर करो । वैरको शाकमें रटा दो ।

( १९५ ) यामः चित्राः, ऊती चित्रा । ( ऋ. ११७२११ )

वीरोंका शत्रुबलपर जो आक्रमण होता है, वह अन्धा  
है और उनका संरक्षण भी अन्धा अनोखा है ।

सुदानयः अहिभानयः ।

यं वीर बड़े ही उत्कृष्ट दानी हैं तथा इनका तेज भी  
कभी नहीं घटता ।

( १९७ ) दृणस्कन्दस्य शिवा परिबृहत् । ( ऋ. ११७२१२ )

तिनके की नाई अपनेभाप विनष्ट होनेवाली प्रजाका  
विनाश न होने पाय, ऐसी आयोजना करो ।

जीवसे ऊर्ध्वान् फर्त ।

शीघ्रकालतक जीवित रहनेके लिए उन्हें तृणपदपर  
अधिष्ठित करो ।

[ शुनरुपुज गृहस्तमद क्षपि । ]

( १९८ ) वैष्यं शर्धेः उप सुये । ( ऋ. १२३०११ )

दिव्य बलही में प्रशाना करता हूँ ।

सर्ववीरं अपत्यसाचं श्रुत्य रयिं दिवे दिवे  
नशामहे ।

सभी वीर तथा अपत्योंसे युक्त वीर वीरिं प्रदल करने-  
वाला धन हमें प्रति दिन मिलना रहे ।

( १९९ ) घृणु-भोजसः तविपीभिः अर्चिनः शुशुचानाः  
गाः अप अवृण्यत । ( ऋ. २१३४११ )

शत्रुका पराभव करनेहारे, सामर्थ्यके कारण पूज्य बने हुए  
तेजस्वी वीर गौर्भोंको (शत्रुके कारागृह से) छुड़ा देते हैं ।

( २०१ ) अश्वान् उक्षन्ते, आशुभिः आजिप तुरयन्ते ।  
( ऋ. २१३४१२ )

वीर दैनिक घोड़ोंको बलिष्ठ बनाने हैं और घोड़ोंपर बंध-  
कर वे युद्धमें त्वरापूर्वक चले जाते हैं ।

हिरण्यशिप्राः समन्ययः दविष्यतः पृश्नं याथ ।

स्वर्णिल शिरोवेष्टन पहननेवाले, लामारी तथा शत्रुको  
त्रिकम्पित करनेवाले वीर अन्नको प्राप्त करते हैं ।

( २०२ ) जीरदानयः अनवधराधसः ययुनेषु धूर्धः  
विश्या भुयना आ ययशिरै । ( ऋ. २१३४१४ )

शीघ्र विजयी बननेहारे, ऐसा धन समीप रखनेहारे  
कि जिमको कोईभी छीन नहीं सकता ऐसे वीर उत्तम  
सभी कर्मोंमें प्रयुक्त जगह बैठकर सबको आश्रय देते  
हैं ।

(२०३) इन्धन्वाग्निः रक्षादूधभिः धेनुभिः आ गन्तान् ।  
(ऋ २३४१५)

द्योतमान और बड़े बड़े धनवाली गौओंके दूधकी साथ  
लिये हुए इधर आओ ।

(२०४) धेनुं ऊधनि पिप्यत, वाजपेदासं धियं कर्त ।  
(ऋ २३४१६)

गौके दूधकी मात्रा बढ़ाओ और ऐस करम करो कि  
अससे पुष्टि पाकर मरुता बड़े ।

(२०५) इयं दात, घृजनेपु कारये सर्नि मेधां अरिष्टं  
दुपरं सहः ( दात ) । (ऋ २३४१७)

अन्नका दान करो । सुदमं कुशलतापूर्वक कर्तव्य करने-  
हारको देन, बुद्धि और विनष्ट न होनेवाली अजेय शक्तिका  
प्रदान करो ।

(२०६) सुदानवः रुपमवक्षस, भगे अश्वान् रथेषु  
आ युजते जनाय । ह्रीं इप पिन्वते । (ऋ २३४१८)

उत्तम दान देनेहारि, छातीपर स्वर्णहार धारण करनेवाले  
वीर भौतिक ऐश्वर्यके लिये जब अपने रथोंको अश्व जोतते हैं  
[ सुदके लिए तैयार बनते हैं ] तब जनताको त्रिपुल अन्नका  
दान देते हैं ।

(२०७) रिपः रक्षत, तं तपुषा चक्रिया आभि वर्तयत,  
अदासः घघः आ हन्तान् । ऋ २३४१९)

शत्रुओंसे हमारी रक्षा करो, उन शत्रुओंको तप ये हुए  
चक्र नामक दाखसे भिद्व करो और पैदल दुरमनका बध कर  
हालो ।

(२०८) तत् चित्रं याम चेतिते । (ऋ. २३४११०)

वह अनूठा आक्रमण रात्र रूपसे दीख पड़ता है ।  
वापयः पृथ्व्या. ऊध. दुहु ।  
मित्र गौके धनका दोहन करते हैं [ और उस दुग्धका पान  
करते हैं ] ।

(२११) क्षोणीभिः अरणेभिः अजिभि क्रतस्य सद्नेपु  
ववृषु. अन्त्यन प्राज्ञसा सुबुध्द्रं सुपेदासं वषे  
दधिरे । (ऋ २३४११२)

केनरिया घरदी पहने हुए वीर ब्रह्मंडरुमें सम्मानपूर्वक  
घैरतें हैं और अपने विनोप बरसे सुन्दर छवि धारण कर लेते  
हैं [ अर्थात् सुहाने लगते हैं ] ।

(२१२) अवरान् चक्रिया अयसे अभिप्रेये आ वर्तत ।  
(ऋ २३४११४)

श्रेष्ठ वीरोंको जनमे रक्षणार्थं वीर अर्थात् कर्मकी पूर्तिके  
लिए समीप छाता हूँ ।

ऊतये मदि चरुयं इयानः ।  
अपने रक्षणके लिए वीर बड़े स्थान या गृहको प्राप्त होना  
है ।

(२१३) अंह. वति प रयथ, निद सुञ्चथ, ऊतिः  
अर्माची सुमतिः शो सु जिगातु । (ऋ २३४११५)

पापसे बचाओ, निन्दन न सुनाओ । परक्षण तथा सुबुद्धि  
हमारे निकट आ पहुँचे ।

[ गार्ग्यपुत्र विश्वामित्र ऋषि । ]

(२१४) वाजाः तचित्रीभिः प्र यन्तु, शुभं संमिन्नाः  
पृपतीः अयुक्षत, अद् भ्याः विन्वेदसः वृहदुक्षः  
परैतान् प्र वेपयन्ति । (ऋ २३४१४)

बलिष्ठ वीर अपने बलोंके साथ शत्रुदलपर घटाई करे,  
लोकद्वगणके लिए इष्ट होकर वे अपने घोड़ोंको रथमें  
जोत दें ( वे तैयार हों ) न दृष्टनेवाले वे वीर सब शत्रु  
एव बलोंसे युक्त हो परैततुदय स्थिर शत्रुओंकोभी कैप देते  
हैं ।

(२१५) चयं उग्रं त्वेयं अयः आ ईमहे । (ऋ २३४११५)

हम उग्र, नेजररी संरक्षक मामर्षकी इच्छा करते हैं ।  
ते वर्षनिर्णिजः स्वामिनः सुदानवः ।

वे वीर स्वदशी बरदी पहननेवाले हैं और बड़े भारी वक्ता  
तथा विद्वयात दानी हैं ।

(२१६) गणं गणं व्रातं व्रातं भामं वोजः ईमहे ।

(ऋ २३४१६)

हर वीरमनुदायमें सांघिक बल तथा वोज पनपने लगे  
यही हमारी चाह है ।

अनवभ्रराधसः धीराः विदयेषु गन्तारः ।  
जिनका धन कोईभी छीन नहीं सकता, ऐसे वे वीर रण-  
भूमिमें जानेवाले ही हैं ।

[ अत्रिपुत्र इयावाभ्य ऋषि । ]

(२१७) यक्षियाः धृष्णया अनुन्वधं अत्रेघं अयः  
मदन्ति (ऋ. ५१२११)

पूजनीय धीर, दशदुर्गक परानर करनेहारी शक्तिसे  
सुक शोकर, धैर्यभारहित बस पाकर प्रमत्तचेता हो जाते  
हैं।

(२१८) ते धृष्णुया स्थिरस्य दाससः सखायः सन्ति।  
(ऋ ५।५२।२)

वे धीर दशदुर्गकी बज्रिणी उदात्तेवाले तथा स्त्रीकी  
बलके सहायक हैं।

ते यामन् शश्रुतः धृपद्भिः तमनां वा पान्ति।  
ये दशुपर आक्रमण करते समय दास्यत बिज्रयी यामर्ध  
से स्वयं ही चारों ओर रक्षाका प्रबंध करते हैं।

(२१९) ते स्पन्द्रासः उक्षणः दार्घरीः अति म्यन्दन्ति।  
(ऋ ५।५२।३)

वे दशदुर्गको मारे डरके स्तब्ध करनेवाले तथा बलिष्ठ  
है धीर वीरताके कारण रात्रिके समय भी दुश्मनोंपर घावा  
कर देते हैं।

महः मग्महे।  
इम धीरोंके तेजका मनन करते हैं।

(२२०) विश्वे मानुया युवा मर्त्य रिपः पान्ति,  
धृष्णुया स्तोमं वर्धामहि। (ऋ ५।५२।४)

सभी धीर मानवी स्वर्गमेंमें दशुओं से मानवोंको  
सुरक्षित रखते हैं, इतीक्षिप इम उव धीरोंके शौर्यपूर्ण  
काय सारणमें रखते हैं।

(२२१) अर्हन्तः मुदानवः अस्वामिशपसः दिघः नर।  
(ऋ ५।५२।५)

पूजनीय, दानधूर तथा संपूर्णतया बलिष्ठ धीर तो स्व-  
सुख स्वर्गके नेता धीर हैं।

(२२२) रुफमैः युधा क्रुष्याः नरः क्षर्षीः पनान्  
अरुक्षत, भानुः तमना अर्त। (ऋ ५।५२।६)

इसो तथा शुद्ध शक्तिमेंसे विभूषित बड़े भारी नेता  
धीर अपने शत्रु इन दशुओंपर छोड़ते हैं, तब उनका छेज  
स्वयं ही उनके निकट चला जाता है। [ वे तेजस्वी दीख  
पड़ते हैं। ]

(२२४) सत्यशयसं क्रुभ्यसं शर्धः उच्छंस, स्पन्द्राः  
नरः शुभे तमना प्रयुधत। (ऋ ५।५२।८)

सत्य बल से युक्त, आक्रामक सामर्थ्यकी सराहना करो।  
युको विकल्पित करनेवाले वे धीर अच्छे कर्मोंमें स्वयंही  
सुद जाते हैं।

मर (हि.) १८

(२२५) रथानां पश्या भोक्षसा अति म्यन्दन्ति।

(ऋ ५।५२।९)

जपने स्वर्गके पादियों से तीन गार्भक स्वर्गकीमी उच्छ-  
बिच्छिन्न कर जाते हैं।

(२२६) आपथयः विपथयः वन्त पथाः अनुपथा-  
विस्तारः पथं धाहते। (ऋ ५।५२।१०)

समीपवर्धी, त्रिषोषी, गुह तथा अहृक्क इत्यादि विभिन्न  
मार्गोंसे प्रयोग करनेवाले धीर जपना वज्र विरह्य करके  
सुम करनेके क्षिपु अक्षका बदन करते हैं।

(२२७) नरः नियुतः परावताः ओहते, चित्रा रूपाधि  
वृहया। (ऋ ५।५२।११)

नेता धीर समीप वा दूर रहकर बलके क्षिपु शय घोकर  
जाते हैं, उय उमव उमके शरीर रूप बड़ेही दर्शनीय  
दीप्त पड़ते हैं।

(२२८) कुमन्यवः उत्सं आनुतुः, ऊमा छलि रिषे  
भासन्। (ऋ ५।५२।१२)

मातृभूमिकी पूजा करनेहारे धीर जनाउठकोंका उज्ज  
करते हैं; वे संरक्षक धीर शौखोंको चौधियाते हैं।

(२२९) ये क्रुष्याः क्रुधिविद्युतः कथयः वेधस सन्ति,  
नमस्य, गिरा रमय। (ऋ ५।५२।१३)

जो धीर बड़े तेजस्वी आयुष धारण करनेहारे, जानी  
तथा कथि है, इनका अभिवादन वा नमन करना धीर  
मपनी वाणी से उन्हें इतने रखना चाहिए।

(२३०) भोजसा धृष्णवः धीमिः स्तुताः।  
(ऋ ५।५२।१४)

जपनी सामर्थ्यके दशुका विनाश करनेहारे धीर बुद्धि-  
पूर्णक प्रसासित होनेयोग्य हैं।

(२३१) एषां देवान् अञ्ज सुरिभिः यामभृतेभिः  
अक्षिभिः दाना सच्येत। (ऋ ५।५२।१५)

इन देवी धीरोंके समीप जानी तथा आक्रमणकी वेशमें  
विक्रयत और गणवेद से विभूषित धीर दान छेदर पड़-  
ते हैं।

(२३२) गां पृश्निं मातरं प्रचोचन्त। (ऋ ५।५२।१६)

वे धीर कह चुके हैं कि, गौ तथा भूमि हमारी माता  
है।

(२३३) भुतं गभ्यं राघः, अदव्यं राघः निमुजे।  
(ऋ ५।५२।१७)



विद्यवात गोक्षत तथा भयभ्रमको मर्जा मूर्ति घोकर  
सुखरूप स्वता है ।

(२३६) मर्याः अरेपसः नरः पदयन् स्तुधि ।

( ऋ. ५।५।१। )

इन मानवी निशेष वीरोंको देखकर प्रथमा कणो ।

(२३७) स्वमानयः अजिपु याजिपु अशु रुफमेपु

दाविपु रथेषु धन्वसु आयाः ( ऋ. ५।५।१। )

तेजस्वी वीर गणवेश पहनकर घोड़े, माला, हार, कजं-

कार, रथ एवं धनुष्यबाण भोग्य करते हैं ।

(२३८) जीरदानवः मुदे रथान् अनुदधे ।

( ऋ. ५।५।१। )

स्वतः विजयी बननेहार वीर आत्मन्दके लिए रथोंपर  
चढ़ते हैं ।

(२३९) सुदानयः नरः द्वाभ्युपे यं कोशं आ अशु-

क्यसुः, धन्वना अनुयन्ति । ( ऋ. ५।५।१। )

दानी एवं नेता वीर उदार पुत्रके लिए जो वनमाण्डार  
साकर करते हैं, इन्हींका वंश धनुर्बारी बनकर प्रमाण  
करते हैं ।

(२४०) शर्धे शर्धे मातं-मातं गणं-गणं सुसालिभिः

धीतिभिः अनुक्रामेम ( ऋ. ५।५।१। )

प्रत्येक सेनाके विभागतके साक भवते अशुसायनसहित  
जके विचारों से युक्त होकर हम क्रमशः चढ़ते हैं ।

(२४१) तोकाय तनयाय अक्षितं घान्यं धीजं यद्वधे,

यिश्वायु सौभाग्यं अस्मभ्यं धत्सन् । ( ऋ. ५।५।१। )

बाणधन्वोंके लिए नष्ट न होनेवाला भाग्य तुम कामो  
और धीर्षं जीवन तथा सौभाग्य हमें प्रदान करो ।

(२४२) स्तितिभिः अययं हित्वा, अरानीः तिरः निदुः

धतीयाम, योः सं उर्वि भेषजं सद्द ह्याम ।

( ऋ. ५।५।१। )

पदयागकारक भावनेसे दोष दूर करके शत्रुओं तथा  
गुप्त निम्नियों को दूर दूर है और दृढतासे पाके आनेवाला  
सौभाग्य एवं तेजस्विता वधानेवाला भीषण हम प्राप्त  
करें ।

(२४३) यं प्रायष्ये, सः मर्त्यः सुदेयः समद्, सुवीरः

असति । ( ऋ. ५।५।१। )

वे वीर निमग्न संरक्षण करते हैं, वह अत्यन्त तेजस्वी,  
महाशुभ वीर बन जाता है ।

ते स्याम= हम प्रभुके प्यारे हों

(२४४) पूर्वान् कामिनः सर्वाङ्गं ह्य । ( ऋ. ५।५।१। )

पदसे परिचित विद्यामित्रोंको हम अपने समीप बुलाते  
हैं ।

(२५०) स्वमानय शर्धाय चायं प्रानज ।

युस्रभ्रवसे महि नृग्नं आर्चत ( ऋ. ५।५।१। )

तेजस्वा वरुका वर्णन करो और तेजस्वी वंश पामेवाके

वीरोंको बड़ी मारी देन देकर वनका साकार करो ।

(२५१) तविषा-घयोषुधः अश्वयुजः परिज्यः ।

( ऋ. ५।५।१। )

बलिष्ठ, बयोवृद्ध एवं घोड़ोंको रथोंमें मोतनेवाके वीर  
प्रायों और संभार करते हैं ।

(२५२) नरः मद्मदिघवः पर्वतच्युतः ह्याहुनिपृतः

स्तनयदमाः रभसा उदोजसः मुहुः चित् ।

( ऋ. ५।५।१। )

इयिचारोंसे लम्बनेवाके वीर नेता पर्वतोंको भी टिकाने-  
वाके तथा बलसे युक्त और वर्णतीय सामर्थ्यसे पूर्ण एवं  
बेगवान हैं हमलिये विशेष बलिष्ठ होकर बारबार हमके  
करते हैं ।

(२५३) धृतयः शिफसः यत् अफत्स् अहानि अन्त-

रिक्षं रजांसि अज्ञानं दुर्गाणि वि, न रिप्यथ ।

( ऋ. ५।५।१। )

शत्रुओंको टिकानेवाके वीर बलवान हो जब रातदिन  
अन्तरिक्ष, वृक्षमय भूमिभाग एवं बौद्ध स्थलोंमें से चके  
पाते हैं, तब वे यथावटकी अशुभूति म कें । [ हृत्पती शक्ति  
वन्से बह भाप । ]

(२५४) तत् योजनं वीर्यं धीर्घं महित्वनं ततान, यत्

धामे आगुमात्तशोचियः अनभवदां गिरिं नि अयातन ।

( ऋ. ५।५।१। )

सुदृढी आयोजना, शाक्रम, बटा मारी पौरुष बहुतरी  
केल युक्त है, जब तुम शत्रुपर चढाई करते हो, तब वक्त  
सुदृढी तेज घटता नहीं, किन्तु त्रिधर मोटेपर बैठकर सामा  
भी दूमर प्रतीत हो उचर भी, बिकट पहाडपरभी तुम  
भाक्रमण करही सकते हो ।

(२५५) शर्धेः अभाजि, अरमतिं अनु नेपथ ।

( ऋ. ५।५।१। )

सुदृढी वक्त विचोतित हो बडा है, आराम न करते हुए

सुम अनुकूल मार्गसे अपने अनुयायियोंको के बढो ।

(१५६) यं सुपूढय स न जीयते, न हन्यते, न क्षेयति, न व्यथते, न रिप्यति । ( ऋ. ५।५४।७ )

धीर जिवको सहायता पहुँचाने हैं, वह न पराजित होता है, न किसी से माराही जाता है, न बिनष्ट होता है, न दुर्भाग्य बनता है और न क्षीणभी होता है ।

(१५७) प्रामजितः नरः हनासः अस्वरन् ।

( ऋ. ५।५४।८ )

शत्रुके दुर्गोंको क्षीतकर अपने शर्मान करनेवाले धीर सब बेगड़े दुश्मनोंपर चढाई कर डाकते हैं, तब वे बड़े भारी गर्वना करते हैं ।

(१५८) ह्यं पृथिवी अन्तरिक्ष्याः पृथ्याः प्रवत्सतीः ।

( ऋ. ५।५४।९ )

धीरोंके सिद्ध हुए पृथ्वीपरके तथा शस्त्ररिक्षके मार्ग मालु होते जाते हैं ।

(१५९) सभरसः स्वर्नरः सूर्ये उदिते मद्ध्य. क्षिधतः अग्नाः न अधयन्त, सद्यः भध्वनः पारं अद्रनुध ।

( ऋ. ५।५४।१० )

बहुते धीर सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं । उनके शौचनेवाले घोड़े सबतक थक नहीं खाते, तभीतक वे अपने स्थानपर पहुँच जायें ।

(१६०) अंतेषु ऋष्टयः परसु खाद्ययः, यक्षःसु रुफमा, गभस्तयोः विश्रुतः शीर्षसु शिप्राः । ( ऋ. ५।५४।११ )

धीर सैनिकोंके कंधोंपर आड़े, पैरोंमें तोड़ बलस्थलपर सुयर्गहार, हाथोंमें तलवार और मल्लरूप विरोधेहन विद्यमान हैं ।

( १६१ ) अगृभीतशोचियं रुशन् पिप्पलं विभूनुध, पृजना समच्यन्त, अतिवियमन्त । ऋ. ५।५४।१२ )

अक्षत तेजस्वी, परिपक्व फलको पूस हिंकार प्राप्त करो, ( प्रयत्नपूर्वक कष्ट वा घामो ) बलोंका संवरण करो और तेजस्वी बनो ।

(१६२) रथ्यः वयस्वस्तः रायः स्याम, न युच्छति सहाक्षिणं वरन्त । ( ऋ. ५।५४।१३ )

हमारे मार्ग भय तथा धर्मके युक्त हों, न नष्ट होनेवाला हजारोंगुना धन दे हों ।

(१६३) न्यूनं स्फार्हीरं रथिं, सामविप्रं ऋषिं अचय, भरताय अर्थन्तं चाजं, राजानं धृष्टिमन्तं धत्य ।

( ऋ. ५।५४।१४ )

बर्णन करनेयोग्य वीरोंसे युक्त धन हमें हो, सामगायन करनेवाले तत्त्वज्ञानोंकी रक्षा करो, लोगोंके पोषणकारोंको बोधे देकर परांत भयभी दे दो और उन्नी प्रकार नरेशको बैभबवाजी बना दो ।

(१६४) सद्य् द्रविणं यामि, येन नूनं धमि ततनाम ।

( ऋ. ५।५४।१५ )

वह धन चाहिए, जो सभी लोगोंमें विभक्त किया जा सके ।

(१६५) ध्याजहृष्टयः रुफमवक्षसः वृद्धत् वयः दधिरे, सुयमंभिः आशुभिः अश्वैः ह्यन्ते । ( ऋ. ५।५४।१६ )

चमकील इधियार धारण करनेहारे धीर यक्षस्थलपर खण्डमुद्रा रखनेवाले धीर बहुतया भय समीप रजत हैं और भकी भौंति विजाये हुए घोड़ोंपर बैठकर जाते हैं ।

रथाः शुभं यातां अनु अतुत्सत ।

गुम्हारे रथ सुम कार्य के लिए जानेवालोंके मार्गोपा भुमपण करें ।

(१६६) यथा विद्. स्वयं त्रिपिं दाधिध्वे, महान्तः उर्विया मुहत् विराजथ । ( ऋ. ५।५४।१७ )

जैके तुम ज्ञान पाकर स्वयंही बलका धारण करते हो, धतः तुम सचमुच बड़े हो और अपनी मातृभूमिकी सेवा के लिए जामुन रहकर बहुत ही सुदारे हो ।

(१६७) सुभ्यः साकं जाताः साकं उक्षिताः नरः

धिये प्रतरं वावृषुः । ( ऋ. ५।५४।१८ )

बलके लुब्धीन, सधमें रहकर सामुदायिक ढगड़े अपने बल प्रकट करनेहारे धीर सबकी प्रगतिके लिएही अपनी सक्ति बढाते हैं ।

(१६८) वः महित्वनं आभूयेण्यं, असान् अमृतत्वे द्ध्यातन । ( ऋ. ५।५४।१९ )

तुम्हारा बहुधन तुम्हारे लिए भूयणावह है, हमें तुममें रखो ।

(१७०) यत् अथ्वान् धूर्तुं अयुग्मं हिरण्यवान् अत्तान् प्रत्यमुग्धं विश्वाः स्फुध. वि अस्यथ । ( ऋ. ५।५४।२० )

जब तुम घोड़ोंको रथके समभागमें जोधते हो और अपने सुवर्ण ढगड़ोंको पहनते हो, तब तुम समूचे शत्रुओंको सुदूर भगा देते हो ।

(१७१) वः पर्वताः नद्यः च न वरन्त, यत्र अचिध्वं तत् गच्छथ. द्यावापृथिवी परि चाथत ।

( ऋ. ५।५४।२१ )

तुम धीरोंके मार्गमें पढ़ाव था नविहीं रजकवट नहीं छाक लकड़ी है । विषर तुम्हें चढ़ाई करनी दो, उधर मजेमें चले जानो । छाकासले के भूमितक मन चाहे उधर तुम दूधले चले ।

(२७२) पूर्व, नूतनं, यत् उच्यते, दास्यते, तस्य नवे-  
दसः भवथ । ( ऋ. ५।५।५८ )

जो हज्जमी बढिया और घररबीब है, चाहे वह गुलाना वा गया हो, तुम उससे ठीक ठीक परिचित रहो ।

(२७३) असम्भयं बहुलं द्रामं वियन्तन, नः मृज्जत ।  
( ऋ. ५।५।५९ )

इमें बहुत सुस दे दो और इमें भानन्दित करो ।

(२७४) यूयं अहमान् अंहतिभ्यः वस्यः अल्ल निः  
नयत । वषे रयीणां पतयः स्वाम ( ऋ. ५।५।५९ )

इमें हुदवासे हुदवासेके लिए तुम, उपनिवेद बताने योग्य स्मरण की ओर इमें के चले और ऐसा प्रबंध करो कि, हम धनके बाधिपति हों ।

(२७५) शार्ङ्गन्तं रुक्मेभिः क्षाजिभिः पिष्टं गणं अथ  
थिदा भव ह्ये । ( ऋ. ५।५।६१ )

गुनुचन्द्रक और कामूचणसे शरङ्गहन धीरोंके दणकी प्रजाके हितके लिए इधर लुकाओ ।

( २७६ ) आदासः भीमसंहराः वृदा चर्षे ।  
( ऋ. ५।५।६२ )

बर्षातके योग्य और भीषण शरीरत्वाके इन धीरोंको अंतःकरणपूर्वक वृद्धिगत करो, [इसे भीमकाय तथा सराद-  
नीब धीर विम प्रकार बढने जगें, ऐसी लगन से बढसखा  
करो ।]

(२७७) मौल्लहुमती पराहता मदन्ती अस्मत् आ  
पति । ( ऋ. ५।५।६३ )

सेदहृदक और जिसे कष्ट पराभूत नहीं कर सके, ऐसी बड़ सेना सदृश हमारी धीरदी बढती चली भा रही है ।

यः अमः शिमीवान् दुष्टः भीमयुः ।  
हुम्भारा वह भीषण है, क्योंकि कार्यकुशल कष्ट भी तुम्हें  
भेद नहीं सकत ।

(२७८) ये योजस्ता यामभिः अदमानं गिरिं स्वयं  
पर्यन्तं प्रस्थापयन्ति । ( ऋ. ५।५।६४ )

जो धीर अपने सामर्थ्य से आत्ममय द्वाके पर्यन्तके और  
अदमानको धुनेवाले पहाड़ोंको घोट देवे हैं ।

(२७९) समुक्षितानां एषां पुरुतमं अपूर्ण्यं ह्ये ।  
( ऋ. ५।५।६५ )

इकट्टे पड़े हुए इन धीरोंके इस बचे अपूर्ण दणकी मैं  
सरादना करता हूँ ।

(२८०) रथे अरपीः, रथेषु रोहितः अजिरा वटिष्ठा  
हरी वोळहवे धुरि युद्धमध्यम् । ( ऋ. ५।५।६६ )

तुम रथमें छाक रंगवाळी हिनियाँ, रथोंमें छुष्णसार  
और वेगवान, खीचनेकी क्षमता रखनेवाले घोड़े रथ होनेके  
लिए रथमें जोतते हो ।

(२८१) अरयः तुषिस्वनिः दर्शतः वाजी इह पायि स्म  
यः यामेषु चिरं गा फरत्, तं रथेषु प्रचोदत ।  
( ऋ. ५।५।६७ )

रत्नगंडा, दिनदिनानेवाळा सुन्दर घोडा यहाँपर जोत  
रखा है । अब भाकमण करनेमें देरी न करो, रथमें बैठकर  
उसे हँकना शुरू करो ।

(२८२) यस्मिन् सुरणानि, अवस्युं रथं ययं आ  
हुवामहे । ( ऋ. ५।५।६८ )

जिसमें रमणीय वस्तुएँ रखी हैं ऐसे यदास्त्री रथकी  
सरादना हम कर रहे हैं ।

(२८३) यस्मिन् सुजाता सुभगा मौल्लुपी महीयते,  
तं यः रथेषु त्वेषं पनम्युं शर्षे आहुवे ।  
( ऋ. ५।५।६९ )

जिसमें अश्वे भाग्ययुक्त तथा प्रशंसनीय दक्षिका महत्त्व  
प्रकर होता है, उस तुम्हारे रथमें शोभायमान, गेवस्त्री, स्तुत्य  
बलकी मैं सरादना करता हूँ ।

(२८४) सजोपसः हिरण्यस्थाः सुधिताय आगन्तन  
( ऋ. ५।५।७१ )

तुम पृच्छी क्याउसे प्रभावित होकर और सुवर्णके  
रथमें बैठकर हमारा हित करनेके लिए इधर पधायो ।

(२८५) पृष्टिमातरः वादीमन्तः क्रष्टिमन्तः मनीषिणः  
सुधन्वानः शुपमन्तः निपङ्गिणः स्वध्वाः सुरथाः सु-  
आयुधाः शुभं वियाथन । ( ऋ. ५।५।७२ )

गृणिको माताजी नाई अ दशपूर्वक लेखनेदार धीर हुडार  
तथा अले लेखर, मननशील पनकर, बढिया धनुष्यबाण  
एवं तीणर साथमें देकर उलूह घोड़े, रथ और हथियार  
प्राण कर जनताका हिय करनेके लिए चले जाते हैं ।

(२८६) यस्मिन् वाशुपे पर्वतान् धूम्रुथ । घः यामनः भिया  
धना निजिह्वीते । यत् शुभे उग्रः पृथतीः अयुधध्रं,  
पृथिवीं क्रोपयथ । ( ऋ. ५।५।५३ )

उद्गार मानकोंको घन देनेके लिए तुम पदादीं तक को  
हिया देते हो, तुम्हारी चपटके भय से सब कोपने लगते  
हैं, यद्यपि यद्यपि करनेके लिए तुम जैसे शूर वीर अपने रथ-  
को घन्नेवादीं हिरनियों जोड़ देते हो, तब समूची पृथ्वी  
बोलना बहती है ।

(२८७) घातस्वियः स्रुतदशः सुपेदासः पिशाङ्गाभ्याः  
धरणाभ्याः श्रेतेपसः प्रत्यक्षसः मदिना उरधः ।  
( ऋ. ५।५।५४ )

तेजस्वी, समान रूपवाले, भाकरूपक रूपवाले, भूरे और  
छादिमामय बोधे रखनेवाले, दोषरहित तथा दाशुवी विगष्ट  
कानेवाले वीर अपने महाग्रन्थसे चहुँत घटे हैं ।

(२८८) अक्षिमन्तः सुदानवः स्वप-संघदाः अन्वध्र-  
राघसः जनुषा सुजातासः हृषमवक्षसः अर्काः अमृतं  
नाम भोजिरे । ( ऋ. ५।५।५५ )

गणवेश पदतकर उद्गार, सेनस्वी, घन सुरक्षित रखने-  
वाले, कुलीन परिवारमें पैदा हुए, गलेमें रत्नसुश्रुतिमित  
हार वाले हुए, स्वर्णहृण तेजस्वी प्रवीत रोनेवाले, वीर  
भरर यज्ञ वाले हैं ।

(२८९) घः अंसयोः ऋष्टयः, चान्नोः सटः श्रेजः बले  
धधिहिवे, शोषन्तु नृमणा, रथेषु विभ्या आयुषा,  
तन्धु श्रीः आधि पिपिशे । ( ऋ. ५।५।५६ )

तुम्हारे कंधोंपर भाँसे, बौद्धोंमें बल, मारर गाँसे, रथोंमें  
सभी धाशुष और शरीरपर शोभा है ।

(२९०) मोमन् अश्वयन् रथयन् सुधीरं चन्द्रयन्  
राधः नः दद, नः प्रशस्तिं कृणुत, वः अयसः भर्क्षीय ।  
( ऋ. ५।५।५७ )

गौधों, मोधों, रथों, वीरसुधों से तुम वीर विदुष्य सुधों  
से पूर्ण अन्न हूँगे हो, हमारे वैभयको बढ़ाओ और तुम्हारा  
संरक्षण हमें मिलता रहे ।

(२९१) तुषिमघासः ऋतवाः सत्यधृतः कवयः युवानः  
पृथुश्रुमाणाः । ( ऋ. ५।५।५८ )

चहुँत वैभयवाले, नश्य जावनेवाले, ज्ञानी, बुद्धक तथा  
बद्धवान् वनो ।

(२९२) साराजः आश्वभ्याः अमवत् चहन्ते, उत  
अमृतस्य हँशिरे, एषां नव्यसीनां तवियमन्तं गणं  
मृष्ये । ( ऋ. ५।५।५९ )

स्वर्भवासक होते हुए ये वीर जगद जानेवाले घोड़ोंपर  
चढ़कर वा गेते घोड़े जोतकर पैदापूर्वक प्रयाण करते हैं,  
भारपत्रन पाते हैं । इनके स्तुत्य और बद्धवान् तंत्रकी  
शुक्ति करता है ।

(२९३) ये मयोभुवः, माह्रिवा अगिताः तुविराघसः  
नूनं तवसं खादिहस्तं धुनियतं मायितं दातिवारं  
स्वेषं गणं चंदस्व । ( ऋ. ५।५।६० )

सुप्त देनेवाले, प्रियका बद्धपत्रन मारीम हो ऐसे, सिद्धि  
पानेवाले वीर हैं उनके बलिष्ठ भाभूपणबुद्धक, बलुकी  
दिला देनेवाले, कृपक, उद्गार, तेजस्वी संघको प्रणाम  
करते ।

(२९४) यूयं जनाय इयं विभ्रतष्टं राजानं जनयथ  
युष्मत् सुष्टिहा चाहुजुतः पतिः सुष्मत् सद्ध्यः  
सुवीरः पतिः । ( ऋ. ५।५।६१ )

तुम जनताके लिए ऐसे नरदत्ता पत्रन करते हो, जो  
घटे बडे प्रयातिताके काने कानिका भादी पते । तुम जैसे  
वीरोंमें से ही विशेष चाहुजुतसे युक्त सुष्टिनोदा (Boser)  
दा, विनयात हो उठता है और तुममें से ही अष्टे घोषों-  
को समीप रखनेवाला श्रेष्ठ वीर जनताके सम्मुख भा  
उपस्थित होता है ।

(२९६) अन्वराः अन्वाः उपमासः रमिष्टाः पृशोः  
पुषाः स्वया मत्या सं मिमिष्टुः । ( ऋ. ५।५।६२ )

समान पदानों रखनेवाले, सत्यपनीय, समान कदवाले,  
वेगदाकी और माधुसूक्तिके सुदुष्ट होते हुए ये वीर अपने  
विधातोंसेही परस्पर मोहसे पतान् रगतें हैं ।

(२९७) यत् पृथताभिः अर्थैः वल्लिपविभिः रथेभिः  
मावासिष्ट, आपः शोदन्ते, वनानि रिजते, धीः  
अच्यन्तदत्तु । ( ऋ. ५।५।६३ )

जब धरनेवाले जोड़े वीरका सुदक परिवासे तुम रथोंमें  
भाकरू हो तुम शाकरण शुरू करते हो, उत समय पानोंमें  
भादी लकवली हो जाती हैं, घन विनष्ट होते हैं और  
भाकाशनी दहाने लगता है ।

(२९८) पर्षां यामन पृथिवीं प्रथिष्ट, स्वं दायः पुः  
अभान् धुरि चाशुचुने । ( ऋ. ५।५।६४ )

इनके आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमिभी क्षयति तथा प्रमिद्धि हो चुकी वा भूमि समतल हो गयी । उनका एक प्रकट हुआ और हमसब चढ़ानेके समय उन्होंने अपने घोड़े रथोंमें बाँधे थे ।

(३००) सुविताय दावने प्र सफरन्, पुथिव्यै द्रतं प्रभरे, अध्वान् उक्षन्ते, रजः आ तयपन्ते, स्वं भानुं अर्णवः अनुग्रथयन्ते । ( ऋ ५।५।११ )

सबका द्वित तथा सषष्ठी मद्द करने के लिए इस कार्यका प्रारंभ हो चुका है । मातृभूमिका खोर पचो, घोड़े जोत रको, अन्तरिक्षमेंसे दूर चले जाओ और अपना तेज समुद्र यात्राओंसे चारों ओर फैलाओ ।

(३०१) एषां जमात् भियसा भूमिः पजति । दूरेदृश ये एमभि चितयन्ते ते नरः विदथे अन्तः महे पतिरे ( ऋ ५।५।१२ )

इन धीरोंके बलसे उत्पन्न नयादृक भावसे मूमन्दक धारां उदता है । जो दूरदर्शी धीर अपने पैरोंसे पदचपने धाते हैं, ये बुद्धिमें महत्त्व पानेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं ।

(३०२) रजस- विसर्जने सुभ्यः ध्रियसे चेतथ । ( ऋ ५।५।१३ )

धैर्य धार करनेके लिए अच्छे धीर बरकर वे पृथर्व तथा वैभव बलानेके लिए प्रयत्नशील बनते हैं ।

(३०३) सुविताय दावने प्रभरथ्ये, स्य भूमिं रेजथ । ( ऋ ५।५।१४ )

अच्छे पृथर्वका दान करनेके लिए तुम उसे घटोते हो । इसलिये तुम पृथ्वीकीभी विचक्षित कर छाड़ते हो ।

(३०४) सपन्नवः प्रयुधः प्रयुयुधुः । नरः सुवृध- पपृधुः । ( ऋ ५।५।१५ )

परस्पर आत्मानसे रहकर बड़े अच्छे योद्धा लड़ाईमें निरत होते हैं और ये नेता हमेशा बढ़ते रहते हैं ।

(३०५) ते अज्येष्ठा अक्षनिष्ठासः अमध्यमासः उद्भिद्ः नहसा विवापृधुः । जनुपा सुजातासः पृश्निमातरः दिवः मर्या नः अच्च आजिगातन । ( ऋ ५।५।१६ )

इन धीरोंमें कोईभी भेद नहीं है, कोई निषेध द्वेषका नहीं और न कोई भेदही अंगीकार है । उद्यतिके लिए सख्योंके जाबजो तोड़नेवाले थे धीर अपने अन्दर विद्यमान दृढत्वनसे बढ़ते हैं, कुलीन परिवारोंमें उत्पन्न और मातृभूमि की रक्षाकरनेवाले दिव्य मातृप हमारे मध्य आकर

निवास करें ।

(३०६) ये श्रेणीः ओजसा अन्तान् मृहतः सानुनः परिपन्तुः । एषां अश्व्यासः पयंतस्य नमनून् प्राचुच्ययुः । ( ऋ ५।५।१७ )

ये धीर कतारमें रहकर पैगपूर्वक पृथ्वीके दूसरे ओरतक या बड़े बड़े पहाड़ोंपरमी चले जाते हैं । इनके घोड़े पहाड़-केभी टुकड़े कर छाड़ते हैं ।

(३०७) एते दिव्यं कौशं आचुच्ययुः । ( ऋ ५।५।१८ )

ये धीर दिव्य भाण्डारको चारों ओर उबटक देते हैं, माने सारे धनका विभजन यतुर्दिष्ट कर देते हैं, ताकि कदाभी विषमता न रहे ।

(३०८) ये एकएकः परमस्याः परावतः आयय । ( ऋ ५।५।१९ )

ये धीर एककेही अल्प-सुवृत्तों प्रदेशोंके चले आते हैं ।

(३१०) एषां जघने चोदः, नरः सफयानि वियमुः । ( ऋ ५।५।२० )

जब इन योद्धोंकी जवापर बाधक छगता है (सब से अपनी जीपें तानने लगते हैं) परन्तु ऊपर बैठनेवाले धीर उनका विशेष निमन करते हैं, (उन योद्धोंको अपनी जाँघोंसे पकड़ रखते हैं) ।

(३१२) ये आशुभिः वदन्ते, अत्र अश्वानि दधिरे । ( ऋ ५।५।२१ )

जो धीर घोड़ोंपर बहकर द्राघं ननुभोंपर हमका कर देते हैं, वे बहुत संपत्ति धारण करते हैं ।

(३१३) धिया रथेषु आ विभ्राजन्ते । ( ऋ ५।५।२२ )

ये धीर अपनी सुपमासे रथोंमें चारों ओर चमकते रहते हैं ।

(३१४) स गणः युवा त्येपरथः, अनेयः, शुर्मयावा, श्रमतिष्कृतः । ( ऋ ५।५।२३ )

यह धीरोंका संघ नवयौवनसे पूर्ण, तेजस्वी और आभामय रथमें बैठनेवाला, शर्मिन्दीगय, अच्छे कार्योंके लिए दृढबल करनेवाला तथा सदैव विजयी है ।

(३१५) धृतयः ऋतजाताः अरेपसः यत्र मदन्ति कः चेद् ? ( ऋ ५।५।२४ )

पायुकी शिखा देनेवाले, सपके लिए मघेष्ट निर्याप धीर किम अगद सहयं रहते हैं, अन्ना कोई कद सकता है ? वा कोई धान केता है ?

(११३) यूयं इत्था मत्तं प्रणेताः यामहृतिषु धिया धोताः ।  
( ऋ. ५।६।१।५ )

तुम इस भाँति मानवोंको ठीक राहसेके चखनेवाले हो ।  
मतः इमहा करते समय अगर तुम्हें पुकारा जाय, तो तुम  
जानबूझकर लपर प्यान हो ।

(११७) रिशावसः काम्या घसूनि नः आवपृतन ।  
( ऋ. ५।६।१।६ )

बनुविनाशकर्ता तुम वीर हमें अभीष्ट धन छौटा दो ।  
[ अत्रियुत्र एययामरुत् क्रयि । ]

(११८) यः मलयः महे विष्णवं प्रयन्तु ।  
( ऋ. ५।८।७।१ )

तुम्हारी बुद्धियों बड़े भारी व्यापक देवकी भीर प्रवृत्त  
हैं ।

सधसे धुनिप्रताय शयसे शर्धाय प्रयन्तु ।  
विसने मत छिवा हो कि, मैं बलिष्ठ शत्रुओंको दिहाकर

सदेव वृंगा ऐसे वीरके भेगपूर्ण सामर्थ्यका वर्णन करनेके  
लिए तुम्हारी बालियाँ प्रवृत्त हैं ।

(११९) ये महिना प्रजाताः, ये च स्वयं विद्वाना प्र  
जाताः, (तेषां) तत् शयः क्रत्या न आधृषे, मह्ना  
अपृष्टासः ।  
( ऋ. ५।८।७।२ )

वे वीर महेश्वरके कारण प्रसिद्ध हुए हैं, अपने ज्ञानसे  
विक्रमाल हुए हैं । उनके बड़े पराक्रमके कारण उनके बलकी  
कोई परास नहीं कर सकता है और अपने अन्दर विद्यमान  
महेश्वरके कारण शत्रु उनपर हमले करनेका साहस नहीं कर  
सकते ।

(१२०) सुनुकानः सुभ्यः, येषां सधस्ये इरी न आ ईष्टे,  
अन्नय. न स्वचिद्युतः धुनिनां प्र स्पन्द्रासः ।  
( ऋ. ५।८।७।३ )

वे वीर अत्यन्त तेजस्वी एवं बड़े हैं, उनके घरमें (अपने  
क्षेत्रमें) उनपर अधिकार प्रस्थापित करनेवाला कोई नहीं ।  
वे अग्निपुत्र तेजस्वी हैं और अपने तेजसे मारक शत्रुओंको  
भी दिहाकर गिरा देते हैं ।

(१२१) सः समानस्नात् सदसः निःचक्रमे, विनहसः  
दोवृधः विस्पर्थसः जिगाति ।  
( ऋ. ५।८।७।४ )

यह वीरोंका संघ अपने समान निवासस्थलसे एकही  
समय बाहर निकल पाया, हुए बढानेकी भारी ताकिये

बुद्ध पे वीर पारस्परिक होइ वा स्वर्षी कोठकर पराक्रम  
करनेके छिये धाने बढने फगे ।

(१२२) यः अमयान् वृषा त्वेयः ययिः तयिपः स्यनः  
न रेजयत्, सान्तः स्वरोचियः स्थारदमानः हिरण्य-  
याः सु-भायुधासः इष्मिणः श्रज्वत ।  
( ऋ. ५।८।७।५ )

तुम वीरोंका बलबुद्ध, समर्थ, तेजस्वी, घेगवान, प्रभा-  
वकी शब्द तुम्हारे अनुवाधियोंकी भयभीत न करे । तुम  
शत्रुका पराभव करनेहार, तेजस्वी सुवर्णसंकारोंसे शिभू-  
त, बढिया दधियार रखनेवाले तथा शलभाइदार साथ  
रखनेवाले वीर प्रगतिके लिए प्रगतितांक बनले हो ।

(१२३) यः महिमा अपारः, त्वेपं शयः अघतु, प्रसित्ती  
संढशि स्वातारः स्यन, शुशुक्रांसः नः निदः  
उरुष्यत ।  
( ऋ. ५।८।७।६ )

तुम्हारी महिमा अपार है, तुम्हारा तेजस्वी बल हमारी  
रक्षा करे, शत्रुका हमला हो जाय, तो तुम ऐसी जगह रहो  
कि, हम तुम्हें ऐसा सकें, तुम तेजस्वी वीर हो, स्वभिपू निद-  
कोंसे हमें बचाओ ।

(१२४) सुमयाः तुविद्युम्नाः अघन्तु । दीर्घि पृथु पाथीयं  
सञ्च पप्रथे । अद्भुत-पनसां अजमेपु महः शर्धासि  
था ।  
( ऋ. ५।८।७।७ )

बाल्ये कर्म करनेहार, महातेजस्वी वीर हमारी रक्षा करें ।  
नूनंउत्तर विद्यमान हमारा घर प्रवृद्ध वीरोंके कारण  
विक्रमाल हो चुका है । इन पावले वीरों पर रहनेवाले  
वीरोंके आक्रमणके समय बड़े बल दिताई देने लगने हैं ।

(१२५) समन्ययः विष्णोः महः सुयोतन, दंसना  
सनुतः द्वेषासि थप ।  
( ऋ. ५।८।७।८ )

उत्तमोंके वीर व्यापक परमात्माकी शक्तिसे  
अपना संबंध जोड़ दें, अपने पराक्रमसे गुप्त शत्रुओंको दूर  
हटा दें ।

(१२६) वि-ओमनि ज्येष्ठासः प्रचेतसः निदः दुर्धतयः  
स्यात ।  
( ऋ. ५।८।७।९ )

विशेष रक्षाके अवसरपर श्रेष्ठ उदरनेवाले ज्ञानी वीर  
निदक शत्रुओंके लिए भजेयें हैं ।

[ शुहस्पतिपुत्र शंयुक्रयि । ]  
(१२७) सवदुर्धां धेनुं उप आ अजघ्यं. धनपस्फुरां  
खजज्वम् ।  
( ऋ. ६।१८।१।१ )

उत्तम वृध देनेवाली गौको प्राप्त करो और दुष्टते समय  
दरबलक न करनेवाली गौको हनुक छोड़ दो ।

(३२८) या स्वभानवे शोधाय भृशुभ्यु भवः पुश्रत, मुराणां मूर्च्छाके सुम्नैः पवयावरी । (ऋ. ६।४।१२)

जो गौ, तेजस्वी बीरीके संघको भमर साकि देनेवाला दूध देती है, वह शीघ्रतया कार्य करनेवाले बीरीके मुराके लिए अनेक प्रकारसे संरक्षण करनेवाली बनती है ।

(३२९) भरद्वाजाय विभ्यदोहसं धेनुं चिपमोजसं ह्यं च अवधुश्रुत । (ऋ. ६।४।१३)

जो भद्रका दान पूर्णतया करता है, उसे चित्रिया हुआध गौ और पुष्टिकारक भद्र यथेष्ट दे दो ।

(३३०) सुक्रतुं माचिनं मन्द्रं सृप्रमोजसं आदिशे स्तुपे । (ऋ. ६।४।१४)

अच्छे कर्म करनेवाले, कुशल, आनन्दवर्धक, भद्र देनेवाले बीरीकी मैं स्तुति करता हूँ, ताकि वह हमारा अन्धापच-प्रदर्शक धने ।

(३३१) त्वेयं अनर्घाणं शर्धः वसु सुधेवाः, यथा चर्घाणिभ्यः सद्दसा आकारिपत्, गूळहा वसु आधि-कारत् । (ऋ. ६।४।१५)

तेजस्वी शत्रुदहित बल तथा धन मिळ जाय, उसी प्रकार सारे मानवर्गको इजाराँ प्रकारके धन मिळें और लिपा पडा धन मकट हो ।

(३३२) वामस्य प्रनीतिः सनुता धामी । (ऋ. ६।४।१६)

धन प्राप्त करनेकी प्रणाली सत्य एवं प्रशस्त रहे, तोही ठीक ।

(३३३) त्वेयं दाघः घृत्रहं ज्येष्ठं । (ऋ. ६।६।१)

तेजस्वी बल शत्रुका मारक इहरे, तोही बह ज्येष्ठ है ।

[ षूद्रस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि । ]

(३३५) अरेणयः नृगणैः पांस्येभिः साकं भूयन् । (ऋ. ६।६।१२)

निष्पाव बीर बुद्धि तथा सामर्थ्यसे पूर्ण बने रहते हैं ।

(३३७) अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः अयाः जनुपः न ह्यन्ते, धिया तन्म्यं अनु उक्षमाणाः शुक्यः जायं अनु नि डुहे । (ऋ. ६।६।१४)

समाजमें रहकर दोषोंको हटाते हुए पवित्रताका भूजन करते हुए बीर अपनी हृदयबलोंसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं। वे धनसे अपने शत्रुओंको बलिष्ठ बनाते हुए, युद्ध पवित्र होते हुए सबका आनन्द बढ़ाते रहते हैं ।

(३३८) येषु घृष्णु, मक्षु अयाः, ते उग्रान् अवयासत् । (ऋ. ६।६।१५)

जिनमें शत्रुविनाशक बल है और जो शूरवीरोंको दमला करते हैं, ऐसे बीर सैनिक शत्रुओंको पददण्डित कर देते हैं। मक्षे ही ये भीषण हैं ।

(३३९) ते दाघसा उग्रा घृष्णुसेनाः युजन्त इत् । एषु अमवत्सु राशोचिः रोषः न आ तस्थी । (ऋ. ६।६।१६)

वे अपने बलसे बड़े घूर तथा साहसी सैनिक साथ लेकर दमला घटानेवाले बीर हमेशा तैयार रहते हैं। इन बलिष्ठ बीरीकी राहमें रुकावट टार सके, ऐसा तेजस्वी प्रतिस्पर्धी कोई नहीं मिळता ।

(३४०) घः यामः अनेनः अनभ्यः अरथीः धजति । जनवसः अनभांशुः रजस्तूः पथ्याः विपाति । (ऋ. ६।६।१७)

शत्रुदारा रथ निर्दोष है और घोड़ों तथा सारथिकों न रहने-परमी वेगपूर्वक जाता है। रक्षणके साधन या छनामके न रहनेपरमी वह रथ गर्द घटाता हुआ राहपरसे चला जाता है ।

(३४१) वाजस्रातौ यं अवध, अस्य वर्ता न, तरुता नास्ति । सः पायं दती । (ऋ. ६।६।१८)

खड़ाईमें जिसे घुम बचाते हो, उसे घेरनेवाला कोई नहीं, विनष्ट करनेवालाभी कोई नहीं और वह युद्धमें शत्रुओंके शत्रुओंको फोट देता है ।

(३४२) ये सहसा सहांसि सहन्ते, मखेभ्यः पृथिवी रेजते, स्वतघसे तुराय विभ्रं अर्कं प्रभरध्वम् । (ऋ. ६।६।१९)

जो अपने बलोंसे शत्रुदलके आक्रमणोंको रोकते हैं, उन पृथ्वी बीरीके सामने यह पृथिवी परभर कीपने लगती है। इन बलिष्ठ तथा धरापूर्वक कार्य करनेवाले बीरीकीही करादना करो ।

(३४३) त्विपीमन्तः तुपुच्यवसः विद्युत् अर्धत्रयः पुनयः भाजत्-जन्मानः अपृष्टाः । (ऋ. ६।६।२०)

तेजस्वी, वेगपूर्वक जानेवाले, प्रकाशमान, पूज्य, शत्रुको हिलानेवाले बीर हैं, जिनका पराभव करना शत्रुके लिए घूमर है ।

(३४४) वृधन्तं भ्राजदष्टिं आधिवसि । शर्धाय उग्राः  
शुचयः मनीषाः अस्पृध्नन् । ( ऋ ६।१६।११ )

बढ़नेवाले तथा तेजःपूर्ण इधियार धारण करनेवाले वीर  
स्वागतके लिए संबंधी योग्य हैं । बल बढ़ानेका हेतु सामने  
रक्त ये वीर पवित्र सुक्षिते युक्त हो, पारस्परिक होष वा  
स्पर्धाभिं क्रमे रहते हैं ।

[ मित्रावरणपुत्र वसिष्ठश्रुतिः । ]

(३४५) स्वपूभिः मिथः अभिवपन्त । घातस्वनतः  
धस्पृध्नन् । ( ऋ ७।५६।३ )

अपने पवित्र विचारोंके साथ ये वीर एकदुःखे होते हैं और  
भीषण गर्जना करते हुए एक दूसरेसे स्पर्धा करते हैं ।

(३४६) वीरः तिण्या चिकेत, मही पृथ्वि ऊच्य जभार  
( ऋ. ७।५६।४ )

सुदिमान वीर गुप्त धातोंको घात सकता है। बड़ी गौ अपने  
छेबके दूधसे इन वीरोंका पोषण करती है ।

(३४७) सा धिद् सुधीरा सनात् सहन्ती नृम्णं पुष्य-  
न्ती अस्तु । ( ऋ ७।५६।५ )

यह प्रजा भण्डे वीरोंके युक्त होकर हमेशा शत्रुका  
परामर्श करनेवाली तथा बल बढ़ानेवाली हो जाय ।

(३५०) यामं येष्ठाः, शुभा दोभिष्ठाः, श्रिया संमिदलाः,  
भोजोभिः उग्राः । ( ऋ ७।५६।६ )

ये वीर हमला करनेके लिए जानेवाले, बलकारोंसे  
विभूषित, कांतियुक्त तथा सामर्थ्य से भीषण हैं ।

(३५१) धः ओजः धर्मं, शर्धांसि स्थिरा, गणः तुधि-  
मान् । ( ऋ ७।५६।७ )

शुभ वीरोंका बल भीषण है, तुम्हारी शक्तिर्षी स्थायी हैं  
और सब सामर्थ्यवान् हैं ।

(३५२) धः शुष्मः धुध्रः, मनांसि क्रुध्मी, धृष्णोः दार्ध-  
स्य शुनिः । ( ऋ. ७।५६।८ )

तुम्हारा बल दोषरहित तुम्हारे मन क्रोधयुक्त और  
तुम्हारी शत्रुनाश करनेकी शक्ति वेगयुक्त है ।

(३५५) सु-आयुधास इभिष्ठाः मुनिष्ठाः स्वयं तन्वः  
शुम्भमानाः । ( ऋ ७।५६।११ )

बड़िया इधियार धारण करनेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे  
और अपने शरीरोंको बनावसिंहारद्वारा सुशोभित करने-  
वाले ऐसे ये वीर मरत हैं ।

(३५६) ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः  
ऋतेन सत्यं वायन् । ( ऋ ७।५६।१२ )

महा (हिं) २९

सत्यसे चिपकनेवाले, पवित्र जीवन धारण करनेवाले  
पवित्र, शुद्ध वीर सरल राहसे सपाईं प्राप्त करते हैं ।

(३५७) अंसेपु खादयः, चक्षःसु रुक्माः उपशिधि-  
याणाः, रुक्षानाः आयुधैः स्वर्धां अनुपच्छमानाः ।

( ऋ ७।५६।१३ )

रुधोंपर आभूषण, छातीपर हार छटकानेवाले, बेतेजस्वी  
वीर इधियार लेकर अपना बल बढ़ाते हैं ।

(३५८) धः युज्या महंसि प्रेरते, नामानि प्र तिरथ्यं,  
एतं सहस्रियं दस्यं गृहमेधीयं भागं जुपध्वम् ।

( ऋ ७।५६।१४ )

शुभ वीरोंके मौलिक बल प्रकट होते हैं, अपने यशोंको  
बढ़ाओ, इन सहस्रों गुणोंसे युक्त घरेलू यात्रिक प्रसादका  
सेवन करो ।

(३५९) वाजिनः विप्रस्य सुवीर्यस्य रायः मक्षु दातः ।  
अन्यः अरावा यं वादभत् । ( ऋ ७।५६।१५ )

बलवान् ज्ञानोंके बढिया धीर्ययुक्त धन तुम्हारे दे दो,  
नहीं तो दूसरा कोई शत्रु शायद उसे छिन के जाय ।

(३६०) सु-अञ्जः शुध्नाः प्रकीर्त्तिनः शुभयन्त ।  
( ऋ ७।५६।१६ )

ये वीर गतिमान, दोभाषमान, साकशुधो वीर खिजाई  
पने हुए हैं ।

(३६१) दनास्यन्तः सुमेके परिघस्यन्तः मृळयन्तु ।  
( ऋ ७।५६।१७ )

शत्रुविनाशक, स्थायी सद्गारा देनेवाले वीर जनताको  
सुख दे दें ।

(३६२) ईधतः गोपा अस्ति, सः अद्रुपायी ।  
( ऋ ७।५६।१८ )

जो प्रगतिशील लोगोंका परक्षण करनेवाला हो, वह  
मनमें एक बात वीर बाहर कुञ्ज और ऐसा वर्ताव नहीं  
करता है ।

(३६३) तुरं रमयन्ति, इमे सहः सहस्रः आनमन्ति,  
इमे शसं वसुप्यतः नि पाग्ति, अरुणे शुभ ड्येयं  
दधन्ति । ( ऋ ७।५६।१९ )

ये त्वरापूर्वक कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं, अपने  
सामर्थ्य से बलिष्ठोंको शुभाते हैं, धीरगाथाओंके गायन-  
कर्ताको बधाते हैं और दशांते हैं कि, वे शत्रुपर भारी  
क्रोध करते हैं ।



(३६४) इमे रभ्रं जुनन्ति, भूमिं जुपन्त, तमांसि  
अपसायध्वम् । ( ऋ. ७।५६।२० )

ये वीर पत्नियोंके निवृत्त जैसे जाते हैं, उसी प्रकार भीष्म-  
सैन्धवे सभीप भी चले जाते हैं । वे भँवंग वृत् करते हैं ।

(३६५) घः सुजातं यत् इँ अस्ति, स्पाहँ यस्वये नः  
भामजतन । ( ऋ. ७।५६।२१ )

तुम्हारे सभीप जो ठहरे कोटिका घन है, उस रघुदण्डीय  
छंपलिसँ इन्में सहभागी करो ।

(३६६) यत् शूराः जनासः यक्षीषु औपर्षीषु विक्षु  
मन्युभिः सं हनन्त, अघ पृतनायु नः त्रासारः भूत ।  
( ऋ. ७।५६।२२ )

जब वीर सैनिक नदियोंमें, वनोंमें तथा जनताके मध्य  
चले जाताहै तो शत्रुद्वारा दूट पड़ते हैं, तब इन युद्धोंमें तुम  
दुनारे रक्षक बनो ।

(३६७) उग्रः पृतनासु साब्हा, अर्वा घाजं सनिता ।  
( ऋ. ७।५६।२३ )

जो उग्र स्वरूपवाला वीर है, वह कर्वाहमें शत्रुओंको  
जोतवा है और बोधाभी युद्धमें अपना ब्रह्म दर्शाता है ।

(३६८) यः वीरः अस्तु-र जनानां विधर्ता शूष्मी  
अस्तु । येन क्षुक्षितये श्वपः तरेन, अध स्थं शोकः  
अभि स्याम । ( ऋ. ७।५६।२४ )

जो वीर अपना जीवन बर्षित करके जनताका संरक्षण  
करता है, वह बलवान बन जाता है । इसकी सहायतासे  
प्रजाका अन्धता विनाश हो, धर्मविद् समुद्रकीभी वीरकर  
पक्षे जायँ और अपने घरपर सुखपूर्वक रहे ।

(३६९) यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।  
( ऋ. ७।५६।२५ )

तुम हमारा रक्षा हमेशा कल्याणकारक मागोंसे करते  
रहो ।

(३७०) यत् उग्राः धयास्तुः, ते उर्वी रेजयन्ति ।  
( ऋ. ७।५७।१ )

जो उग्र दृढनर्णपर प्राणा करते हैं, वे सुनिकी दिक्का देते  
हैं ।

(३७१) एकैः आयुधैः तनूभिः यथा आजन्ते न  
पलायद् धन्ये । विश्वपिशाः पिशानाः शुभे समानं  
आग्निं कं वा धक्वन्त । ( ऋ. ७।५७।२ )

मायाओं, दधियारों तथा शरीरोंसे ये वीर सैनिक  
भित्त पर नुशाने लगाते हैं, जैसे दूसरे कोट्टी नहीं लग-  
नापाते हैं । मछी भाँति साश्रितकार करनेवाले वे वीर

अपनी शोभाके लिए समान वीरभूषा सुखपूर्वक कर लेते  
हैं ।

(३७४) अनवघामः शुचयः पायकाः रणन्त, नः  
सुमतिभि प्रावन, न चाजेभि-पुष्यसे प्र तिरत ।  
( ऋ. ७।५७।५ )

प्रदानर्णव, शुद्ध, पवित्र बनकर वीर रममाण होते हैं ।  
अपने अचट्टे पिनातोंने उमारी रक्षा कीजिए और अज्ञोंसे  
गुह्य मित्र प्राप्त, इन् हेतु सारे संबन्धोंसे पार ले चलो ।

(३७५) नः प्रजायै अमृतस्य प्रदात, सूनुता रायः  
मथानि जिगृत । ( ऋ. ७।५७।६ )

हमारी संतानके लिए अमृतरूपी भक्ष दे दो, जानन्व-  
दारक धन तथा सुखवैभवका भी दान करो ।

(३७६) विष्ये सर्षताता सूरीन् अचष्ट ऊर्ता आजिगत ।  
ये त्मना शतितः वर्धयन्ति । ( ऋ. ७।५७।७ )

ये सारे वीर इस यज्ञमें ज्ञानियोंके यमीप भीधे अपनी  
संरक्षक शक्तिप्रतिदत्त भा जायँ, क्योंकि ये स्वयंही सैकड़ों  
मानवोंका संवर्धन करते हैं ।

(३७७) यः दैव्यस्य धासः तुयिष्मान्, सार्क-उक्षे  
गणाय प्राच्यत, ते अघंशात् निर्कतैः क्षोदन्ति ।  
( ऋ. ७।५८।१ )

जो दिव्य स्थान ध्यानता हैं, उस सामुदायिक बलसे  
शुद्ध वीरोंके रक्षकी पूजा करो । वे वीर धंशनासरूपी भीषण  
घातलिसँ इन्में बचाते हैं ।

(३७९) गतः अधवा जन्तुं न तिराति । नः स्पाहार्ताभिः  
ऊतिभिः प्र तिरेत । ( ऋ. ७।५८।३ )

जिस मार्गपर वीर चक्क चुके हों, वहाँ किसीकोभी कष्ट  
नहीं पहुँचता है, ( सभी उधर प्रसन्न हो उठते हैं ) । रघु-  
वीर रक्षणों से हमारा संवर्धन करो ।

(३८०) युष्मा-ऊतः विप्रः शतस्थी सहस्री, युष्मा-  
ऊतः अर्था सहस्रिः, युष्मा-ऊतः सन्नार वृत्रं हन्ति,  
तत् देष्णं प्र अस्तु । ( ऋ. ७।५८।४ )

वीरोंके संरक्षणमें रहकर ज्ञानी पुरुष सैकड़ों तथा सह-  
स्रायि बनगँधे प्राप्त करता है, वीरोंका संरक्षण मित्रनेपर  
शोकः विजयी करता है और वीरोंकी रक्षा पानेपर नरेशकी  
शत्रुका पराभव करता है । वीर पुरुष इन्में यह दान हैं ।

(३८१) श्रेयः आरात् चित् सुयोत ( ऋ. ७।५८।५ )  
घबराह शत्रु दूर है, तभीतक उसका विनाश करो ।

(१८४) यः द्विषः तरति, सः क्षयं प्रतिरते ।

( ऋ. ७।५।१२ )

जो शत्रुका परामय करता है, वह अपने विनाशके परे चले जाता है, माने सुरक्षित बन जाता है ।

(१८६) यस्यै अराध्व, घः ऊतिः पृतनासु नष्टि मर्धति ।

( ऋ. ७।५।१४ )

जिसे तुम अपना संरक्षण देते हो, उनका विनाश बुझाने तुम्हारे संरक्षणोंसे नहीं होता है ।

(१८९) तन्वः शुम्भमानाः हमासः मदन्तः आ अपसन्, विश्वं शर्धः मा अभितः निसेद । ( ऋ. ७।५।१७ )

अपने शरीरोंका मुझनेवाले ये वीर हंसपंछियोंकी तरह कतारमें रहकर प्रसन्नतापूर्वक रांघार करते आ पहुँचे हैं । उनका यह मारा बल मेरे चारों ओर संरक्षणार्थ रहे ।

(१९०) यः दुर्हृणायुः न चित्तानि अभि जिघांसति सः दुहः पाशान् प्रतिमुचीष्ट, तं हम्भना हन्तन ।

( ऋ. ७।५।१८ )

जो दुष्ट शत्रु हमारे अन्त करणोंमें चोट पहुँचना है तथा पारस्परिक द्वेषके भाव हममें फैलायेगा, उसे तुम मार बाढो ।

(१९१) युष्माकं ऊती आगत, मा अपभूतन ।

( ऋ. ७।५।१९० )

तुम अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ और हमसे दूर न हो जाओ ।

(१९४) विश्वु वितिष्ठध्वं, ये वयः भूत्यः नकुभिः पनयन्ति, ये रिपः दधिर, रक्षसः इच्छत, गृभायत, खंविनष्टन । ( ऋ. ७।९।२।१८ )

प्रजाओंके मध्य निवास करो, जो वेगवान बनकर शत्रुओंके समय हमके चढाते हैं, तथा जो दृष्टान्तों मन्था देते हैं, उन राक्षसों को दूँहकर पत्रह लो और उनका विनाश करो ।

[ निन्दु वा अंगिरसपुत्र पूतदक्ष ऋषिः । ]

(१९५) माता गौः धयति, युक्ता रथानां यक्तिः ।

( ऋ. ८।१।१ )

गोमाता दूध देकाती है, उस दुग्धसे संयुक्त हो वीर रथोंके संचालक बनते हैं ।

(१९७) नः विश्वे शर्यः कारधः सदा तत् सु धा गृणन्ति । ( ऋ. ८।१।२ )

हमारे सभी श्रेष्ठ कारीगर सदैव हम वत्तम बरबदी मन्दी भीति सराहना करते हैं ।

(४००) प्रात गोमतः अस्य सुतस्य जौपं मत्सति ।

( ऋ. ८।१।४ )

सुपथ गौका दूध मिखाकर तयार भिये हुए इस सोमरमका पान करनेपर भानन्दयुक्त उरसाह घण्टा है ।

(४०२) पूतदक्षसः सूरयः म्रिघः शर्यन्ति ।

( ऋ. ८।१।७ )

बलवान, ज्ञानवान तथा शत्रुविनाशक वीर हमारी शौर भाते हैं ।

(४००) द्रुमधर्चतां महानां अयः अद्य घृणे ।

( ऋ. ८।१।८ )

सुन्दर एवं बड़े वीरोंकी रक्षाकी मे आज याचना करता हूँ ।

(४०२) ये विश्वापार्थिवानि आपप्रथन्, सोमपीतये ।

( ऋ. ८।१।९ )

जिन्होंने सोरे पार्थिव क्षेत्रोंका विस्तार किया है, उन वीरोंको सोमपानके लिए मैं बुलाता हूँ ।

(४०४) पूतदक्षसः सोमस्य पीतये ह्ये ।

( ऋ. ८।१।१० )

बलिष्ठ वीरोंको सोमपानके लिए बुलाता हूँ ।

[ भृगुपुत्र स्युमरदिम ऋषिः । ]

(४०७) अर्हणे अस्तोपि, न दोमसे । ( ऋ. १०।१।१ )

जो योग्य हैं, उनकाही स्तुति करता हूँ, यदि पहरी दोमटाग वा मजबूतके कारण कनी सराहना न करूँगा ।

(४०८) मर्यातः धिये अज्ञानि अरुणतत, पूर्वाः क्षयः न अति ।

( ऋ. १०।१।२ )

ये वीर सोमाके लिए मणधेस पहनते हैं । पहरेसेही पानक या दधार, तनु हर्षे पराएन नहीं कर सकते ।

(४०९) ये रमना पर्हणा प्र सिरिरे, पातस्वन्तः पतस्यः धः रिदादस अभिधवः । ( ऋ. १०।१।३ )

जो अपनी शक्तिके घटे बन जाते हैं, ये वीर बलवान, महसंजीव शत्रुविनाशक एवं तेजस्वी होते हैं ।

(४१०) युष्माकं पुत्रे मही न विधुष्यति, धयष्यति, प्रयस्वन्तः सदाद्यः आगन । ( ऋ. १०।१।४ )

तुम वीरोंके पैरोंके नीचेकी भूमि धिके काँगपीदी नहीं, किन्तु स्तम्भमान हो उठती है । उदात्तेला वीरोंके एष्य तुम सभी इष्ट हो इष्टर पचारी ।

(४११) यूयं ऋषयदासः रिदावसः परिशुपः  
प्रसितासः । ( ऋ. १०।७।५ )

तुम यदास्वी, शत्रुनाशक, पोषक तथा हमेदा तैयार रह-  
नेवाले वीर हो ।

(४१२) यूयं यत् पराकात् प्रवहध्वे, महः संघरणस्य  
राध्यस्य चस्वः विदानासः, सजुतः द्वेषः आरात्  
चित् श्रुयोत् । ( ऋ. १०।७।११ )

तुम जब दूरसे वेगपूर्वक भाते हो, तो बड़े स्वविराने-  
योग्य बढिया धनका दान करो और वृर रहनेवाले द्रोहाभों-  
को दूरसेही खदेड़ ढाओ ।

(४१३) यः मानुषः द्वादशत्, स्वः रेवत् सुवीरं धयः  
दधते, देवानां अपि गोपीये धस्तु । ( ऋ. १०।७।७ )

जो मानव दान देता है, वह धन एवं वीरोंसे पूर्ण भक्त-  
को पात्र है और वह देवोंके गौरवपानके गौकेपर उपरिधत  
रहनेयोग्य बनवा है ।

(४१४) ते ऊमाः यस्त्रियासः शंभविष्टाः, रथतः महः  
चकामाः नः मनीषां अधन्तु । ( ऋ. १०।७।८ )

वे रक्षा करनेहारे वीर पूजनीय तथा सुख देनेवाले हैं ।  
रथमेंसे त्वरापूर्वक जानेहारे वे वीर महत्व- पाते हैं । वे  
हमारी भाकांक्षाओंकी रक्षा करें ।

(४१५) विप्रासः सु-आध्यः सुभ्रसः सुसंहशः  
धरेपसः । ( ऋ. १०।७।११ )

वे वीर ज्ञानी, अच्छे विचारवाले बढिया कर्म करनेहारे,  
प्रेक्षणीय और निष्पाप हैं ।

(४१६) ये शकमयक्षसः स्वयुजः सद्यक्तयः, ज्येष्ठाः  
सुदामाणः ऋतं यते सुनीतयः । ( ऋ. १०।७।१२ )

जो वक्षःशय्यपर माटा धारण करनेवाले, अपनी अन्तः-  
सफूर्तिसे काममें लुटनेवाले, तुरन्त रक्षाका भार उठानेवाले  
तथा श्रेष्ठ सुख देनेवाले वीर होते हैं, वे स्वीधी राहपरसे  
चटनेवालेको उच्च कोटिवा मार्ग दिखाते हैं ।



(४१७) ये धुनयः, जिगतन्वः, विरोकिणः, चर्मण्वन्तः,  
शिमीवन्तः, सुरातयः । ( ऋ० १०।७८।३ )

ये वीर शत्रुदलको विकंपित करनेहारे, वेगसे आगे  
बढनेवाले, तेजस्वी, कवचधारी, शिरोवेष्टनसे युक्त हैं तथा  
बड़े अच्छे दानी भी हैं ।

(४१८) ये सनाभयः, जिगीवांसः शूराः, अभिद्यवः,  
वरेयधः सुस्तुभः । ( ऋ० १०।७८।४ )

ये वीर एकही केन्द्रमें कार्य करनेहारे, विजयेषु शूरा,  
तेजस्वी, अभीष्ट प्राप्त करनेहारे हैं, इसलिये स्तुतिके संबंधमें  
योग्य हैं ।

(४१९) ये ज्येष्ठासः, आशायः, दिधिपयः सुदानयः,  
जिगतन्वः विद्वरूपाः । ( ऋ० १०।७८।५ )

ये वीर श्रेष्ठ, स्वरापूर्वक कार्य करनेहारे, तेजस्वी, उदार,  
बड़े वेगसे जानेवाले हैं तथा अनेक रूप धारण करनेवाले  
भी हैं ।

(४२०) सूरयः, आदर्शिरासः, विश्वहा, सुमातरः,  
कीळयः यामन् त्विषा । ( ऋ० १०।७८।६ )

ये वीर विद्वान्, शत्रुको फाड़नेवाले, सभी दुश्मनोंका  
वध करनेवाले, अच्छी माताके पुत्र खिलाडी तथा चवाई  
करतेसमय सुहाते हैं ।

(४२१) अञ्जिभिः वि अश्रियतन्, ययियः, भ्राजहृष्टयः,  
योजनानि ममिरे ( ऋ. १०।७८।७ )

वीरभूयों से मुझनेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे, तेजस्वी  
इधियार धारण करनेहारे ये वीर कई योजन दौड़ते चले  
जाते हैं ।

(४२२) अस्मान् सुभगान् सुरतान् कणुत ।  
( ऋ० १०।७८।८ )

हमें उल्टूट भाग्यसे युक्त तथा अच्छे रानोंसे पूर्ण करो ।  
( वीर भली भाँति रक्षा करके जनताको धनधान्य से युक्त  
करें । )

(४२३) रिशादसः ह्यमामहे । ( वा. य. ३।४४ )  
शत्रुके विनाशकर्ता वीरोंकी सराहना करते हैं ।

मफ्ल ( हिं. ) २९ (अ)

(४२४) पृश्निमातरः, शुभं-यावानः, विद्वेषु जग्मयः  
मनवः, सूरचक्षसः, अवस्ता नः इह आगमन् ।  
( वा. य. २।५२० )

मातृभूमिके उपासक, अच्छे कार्यके लिए जानेवाले,  
पुद्गलोंमें आगे बढनेवाले, विचारशील, सूर्यतुल्य तेजस्वी,  
अपनी शक्तिके साथ हमारे निकट इधर आ जायें ।

(४२५) यदि आशायः रथेषु भ्राजमानाः आवहन्ति,  
तत्र श्रवांसि कृण्वते ।  
( साम० ३।५६ )

जहाँपर स्वरासीक रथी वीर चले जाते हैं, वहाँ वे भाँति-  
भाँतिके धन प्राप्त करते हैं ।

(४२६) नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि ।  
( अथर्व० १।२६।८ )

हमारे शरीरोंको और पुत्रपौत्रोंको सुखी करो ।

(४२७) पृश्निमातरः उग्राः यूयं शनून् प्रमृणीत ।  
( अथर्व १३।१।३ )  
मातृभूमिके उपासक वीरो ! तुम शत्रुओंका विनाश करो ।

(४२८) उग्राः यूयं ईदशे स्थ, अभि प्र इत, मृणत,  
सहृद्ध्यं, इमे नाथिता- अमीमृणन् । एपां  
विद्वान् दूतः प्रत्येतु ।  
( अथर्व० ३।१।२ )

तुम शूर हो और ऐसे बड़े युद्धमें कार्य करते रहते हो,  
शत्रुपर आक्रमण करो, दुश्मनका वध करो, उसे परास्त  
करो, सेनापति से युक्त ये वीर दुश्मनोंका वध कर डालें ।  
इनका जो दूत विद्वान् हो, वही शत्रुसेना के समीप चला  
जाए ।

(४२९) सेनां मोहयतु, ओजसा म्रन्तु, स्वक्षूंषि  
आदत्तां, पराजिता पतु ।  
( अथर्व० ३।१।६ )

शत्रुसेनाको मोहित करो, वेगपूर्वक हमले करो, शत्रु-  
सेनाकी टाटिके पेर लो, वह परास्त होकर दौड़ती चली  
जाए ।

(४३५) असौ परेषां या सेना ओजसा स्पर्धमाना  
अस्मान् अभ्येति, तां अपघ्नतेन तमसा  
विध्यत, यथा एषां अन्य- अन्यं न जानति ।  
( अर्थव० ३।२।६ )

यह जो शत्रुसेना वेगपूर्वक चढाऊपरी करती हुई हम-  
पर दृढ़ पडती है, उसे तमस्-अज्ञसे विध डाले, जिससे वे  
किंकर्तव्यमूढ होकर एक दूसरेको पहचान न सकें। ( इस  
भाँति शत्रुसेनापर हमले करने चाहिए। )

(४३६) पर्वतानां अधिपतय- अस्मिन् कर्मणि मा  
अवन्तु । ( अर्थव० ५।२।१६ )  
पर्वतोंके रक्षणकर्ता वीर इस कर्मके अवसरपर मेरी  
रक्षा करें।

(४३७) यथा अयं अरया असत्, प्रायन्ताम् ।  
( अर्थव० ५।३।३१ )

जिस प्रकारसे यह मानव निर्दोषी होगा, उसी ढंगसे  
दुश्मका संरक्षण करो।

(४३८) यत् पजध, तत्र ऊर्जे सुमतिं पिन्धय ।  
( अर्थव० ६।२।२।२ )

जिधरभी तुम चले जाओ, उधर बल तथा सुमतिकी  
वृद्धि करो।

(४३९) ते नः अंहसः मुञ्चन्तु, हमं वाजं अयन्तु ।  
( अर्थव० ५।२।७।१ )

वे वीर सैनिक हमें पापसे बचाएँ और हमारे इस बल-  
का संरक्षण करें, ( दण्डको बचावें )।

(४४१) पृथिमातृन् पुरो द्वेषे । ( अर्थव० ५।२।७।२ )  
मातृभूमिकी वपासना करनेहारे वीरोंकी मैं अप्रपूजाका  
सम्मान देता हूँ।

(४४२) ये कवय धेनूनां पयः ओषधीनां रसं अर्चतां  
अये हन्यथ ते नः शग्माः स्वोनाः भयन्तु ।  
( अर्थव० ५।२।७।३ )

जो ज्ञानी वीर गोनुरध और औषधियोंका रस पी लेते  
हैं तथा घोड़ोंका वेग पाते हैं, वे वीर हमें सामर्थ्य देकर  
शुल देनेवाके हों।

(४४३) ते ईशानाः चरन्ति । ( अर्थव० ५।२।७।४ )

वे वीरसैनिक अधिपति या स्वामी बनकर संसारमें  
सञ्चार करते हैं।

(४४४) ते कौलालेन घृतेन च तर्पयन्ति ।  
( अ० ५।२।७।५ )

वे अन्नरस और घृतसे सबको तृप्त करते हैं।

(४४६) तिग्मं अर्नाकं सहस्वत् विदितं, पृतनासु  
उग्रं स्तौमि । ( अर्थव० ५।२।७।७ )

दुरोंकी सेना विरोधियोंका परामव करनेमें विख्यात है;  
शुद्धके समय यह पराक्रम कर दिखलाती है, इसलिये मैं  
इनकी सराहना करता हूँ।

(४४७) ते सगणाः, उरक्षयाः, मानुषासः सान्तपनाः  
मादयिष्ययः । ( अर्थव० ७।८।२।३ )

वे वीरसैनिक संघ बनाकर रहते हैं, बड़े घरमें निवास  
करते हैं, मानवोंका हित करते हैं, शत्रुओंको परित्याग देते  
हैं और अपने लोगोंको प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

(४५०) ये मुखेषु रथेषु आतस्युः, वः भिया पृथिवी  
रेजते । ( अ० ५।६।०।२ )

ये वीर मुखदायी रथोंमें बैठकर यात्रा करते हैं और इन  
के भयसे पृथ्वीतक काँप उठती है।

(४५१) ऋष्टिमन्तः यत् सधयश्चः श्रीळ्य, धवध्वे ।  
पर्वतः विभाय । ( अ० ५।६।०।३ )

तलवार जैसे हथियार लेकर जब तुम दृक्छे हो खेचना  
शुरू करते हो, तब तुम दौड़ते हो, ऐसी दशामें पहाड़तक  
भयभीत हो जाता है।

(४५२) रैवतासः यरा ह्य हिरण्यै तन्वः अभिपिपिधे,  
धेयांसः तवसः धिये रथेषु, सत्रा तनूपु महांसि  
चाकिरे । ( अ० ५।६।०।४ )

चनपुत्र दूहड़ोंकी नाईं ये वीर अपने शरीर सुवर्ण-  
कणों से विभूषित करते हैं, तब धेव, बल और वरा  
रथमें बैठनेपर इनके शरीरोंपर दील पड़ते हैं।

(४५३) अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते ध्रातरः  
सौमनाय सं वावृधुः । (ऋ० ५।६०।५)

ये वीर परस्पर आतृभाव से बतोंव रखते हुए अपना  
रुच्यर्थ बचानेके लिए मिलजुगकर प्रयत्न करते हैं और यह  
हसोलिए संभव है चूँकि इनमें कोईभी श्रेष्ठ नहीं या कनिष्ठ  
भी नहीं, अर्थात् सभी समान हैं ।

(४५४) यत् उत्तमे मध्यमे अयमे स्थ, अतः नः ।  
(ऋ० ५।६०।६)

उत्तम, मध्यमे या निम्न स्थानमें जहाँ कहींभी तुम हो,  
वहाँसे तुम हमारे निकट चले आओ ।

(४५५) ते मन्दसानाः धुनयः रिदादसः वामं घत्त ।  
(ऋ० ५।६०।७)

ये हर्षित रहनेवाले वीर, शत्रुको पदघट्ट करते हैं और  
उनका धष करते हैं । वे हमें श्रेष्ठ धन दे दें ।

(४५६) शुभयद्भिः गणत्रिभिः पाद्यकेभिः विभ्य-  
मिन्वेभिः आयुभिः मन्दसानः । (ऋ० ५।६०।८)

शोभायमान संपर्के कारण सुनोभित होनेवाले वीर  
सबको पवित्र करनेहारे, उासाहपूर्ण एवं दीर्घ जीवनसे  
युक्त होकर सबको आनन्दित करो ।

(४५७) अदारसूतु भयतु । (अथर्व० १।२०।१)  
शत्रु अपनी परनीके निकटनी न चला जाए, (श्रीघरी  
विनष्ट हो ।)

नः मृडत= हमें सुख दो ।

अभिमाः नः मा विदत् । शत्रु हमें न मिले ।

अशस्तिः द्वेष्या वृजिना नः मा विदन् ।

अकीर्ति और निन्दनीय पाप हमारे समीप न आवें ।

(४६७-४७२) अद्रुहः, उग्राः, ओजसा अनाष्टृष्टासः,  
शुभ्राः, घोरवर्षसः, सुक्षत्रासः, रिदादसः ।  
(ऋ. १।१९।३-८)

ये वीर किसीसे विद्रोह नहीं करते, दूर हैं, बहुत बल-  
वान होनेके कारण कोई हन्हें पराभूत नहीं कर सकता है,  
गौर वर्णवाले तथा दृढ़दाकार शरीरवाले हैं, अच्छे क्षात्र-

बलसे युक्त होनेके कारण ये शत्रुका पूर्ण विनाश कर  
देते हैं ।

(४७९) दुःमोसः नः मा ईशत । (ऋ. १।२३।९)  
दुरासामका शासन हमपर कभी प्रस्थापित न हो ।

(४८०) सययसः सनीळाः समान्या वृषणः शुभा  
शुष्म अचन्ति । (ऋ. १।१६।११)

समान अवस्थाके, एक घरमें रहनेवाले, समान ढंगसे  
सम्माननीय होते हुए ये बलवान वीर शुभ हृष्टासे बलकी  
पूजा करते हैं ।

(४८४) वयं अन्तमेभिः स्वक्षत्रेभिः युजानाः,  
तन्वं शुम्भमानाः महोभिः उपयुज्महे ।  
(ऋ. १।१६।५।५)

हम वीर अपनेनें विद्यमान निजी शूरतासे युक्त होकर  
अपने शरीरको शोभायमान करते हैं तथा सामर्थ्यका  
उपयोग करते हैं ।

(४८५) अहं हि उग्रः, तविषः तुयिष्मान्  
विश्वस्य शत्रोः चघ्नैः अनमम् ।  
(ऋ. १।१६।५।६)

मैं दूर तथा बलिष्ठ हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओं को  
छुड़ा दिया है । इस कार्यको हथियारोंसे पूर्ण कर डाला  
है ।

(४८६) युज्येभिः पँस्येभिः भूरि चकर्थ ।  
(ऋ. १।१६।५।७)

उचित सामर्थ्यके सहारे तुमने बहुत सारे पराक्रम कर  
दिलाने हैं ।

क्रत्वा भूरीणि कृणवाम हि= पुरवार्ष एवं प्रयागों  
की सहायतासे हम बहुत कार्य करके दिललायेंगे ।

(४८७) स्वेन भामेन इन्द्रियेण तविषः यभूवान् ।  
(ऋ. १।१६।५।८)

अपने तेजसे और इन्द्रियोंकी शक्तिसे मैं बलवान हो  
सुका हूँ ।

(४८८) ते अनुत्तं नकिः नु आ, त्वावान् विदानः  
न अस्ति; यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः  
न जातः नदाते । (ऋ. १।१६।५।९)

बेरी प्रेराणाके बिना कुठभी नहीं अस्तित्वमें आता  
तेरे समान दूमर कोई ज्ञानी नहीं है; जिन कर्तव्योंको  
रू करता है, उन्हें पूर्ण करना किसी भी जन्मे हुए तथा  
जन्म लेनेवाले मानवके लिए असंभव है ।

(४८९) मे एकस्य ओजः विशु, या मनीषा दधुष्यान्,  
कृण्वै नु । अहं हि उग्रः विदानः । यानि  
च्यवं, पयां ईद्रे । (ऋ. १।१६।१०)

मेरे अकेलेका सामर्थ्य बहुत बड़ा है । जो इच्छा मनमें  
उठ खड़ी होती है, उसीके अनुसार कार्य करके दतांता हूँ ।  
मैं शूर और ज्ञानी भी हूँ तथा जिनके समाप पहुँचता हूँ  
उनपर प्रभुत्व प्रस्थापित करता हूँ ।

(४९४) विश्वा अहानि नः कोम्या चनानि सन्तु ।  
जिर्गापा ऊर्ध्वा । (ऋ. १।१७।१३)  
हमेसा हमारे लिए ये धन कमनीय हों तथा हमारी  
विज्ञापेक्षा ऊंची हो जाए ।

(४९६) उग्रभिः स्थविरः सहोदाः नः श्रवः घाः ।  
(ऋ. १।१७।१५)  
शूर वीर सैनिकोंसे युक्त होकर और हमें बल देकर  
हमारी कीर्ति बढ़ा दे ।

(४९७) त्वं सह्यीयमः नून पाहि । (ऋ. १।१७।१६)  
तू बलवान वीरोंका संरक्षण कर ।

अवयातहेळाः सुप्रकेतेभिः ससहिः दधानः इयं  
वृजनं जीरदानुं विद्याम ।  
क्रोध न करते हुए उत्तम ज्ञानी वीरोंसे सानर्थ्यवान  
बनकर हम अन्न, बल तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त करें ।

(४९८) आजौ युध्यत । (ऋ. ८।१६।१४)  
युद्धमें लड़ते रहो ( पीछे न दौड़ो ) ।

यहाँतक हम देख चुके हैं कि, महर्षीका वर्णन करते हुए  
मरुदेवताके मंत्रोंमें सर्वसाधारण क्षात्रधर्मका चित्रण किस  
भौतिक हुआ है । पाठक इस विवरणसे जान सकेंगे कि,  
महर्षीके मंत्र पढ़नेसे क्षात्रधर्मकी जानकारी कैसे प्राप्त हो  
सकती है । इसी वर्णनको ध्यानमें रखते हुए इस महर्षीके  
काव्यमें वीरोंका जो स्वरूप बतलाया गया है, उसका उल्लेख  
प्रस्तावनामें किया है, उसको वहाँ पाठक देख सकते हैं ।

## मरुत्-देवताके मंत्रोंमें नारी-विषयक उल्लेख ।

(२८) वरुं न माता सिपक्ति । ( ऋ. १।२।८।८ )

माता जिस प्रकार बाह्यक को अपने समीप रखती है, उसी प्रकार ( बिजली भेद्युक्तके समीप रहती है ) ।

(२९३) प्र ये शुभ्रमग्ने जनयो न संसपन ( ऋ. १।८।५।१ )

प्राग्विशोक एवं भागे घटनेकी पूर्ण क्षमता रखनेवाले वीर मरुत् ( बाहर यात्राके लिए जाते समय ) नारियोंके मुख अपने भापको सुबोधित तथा बलेंकृत करते हैं ।

(२९७) प्र एषामज्जमेपु ( भूमिः ) विधुरेव रेजते ।

( ऋ. १।८।७।३ )

इन वीरोंके भविष्यवान् इमकोंमें भूमिक बनावध एवं लसदाय महिलाके समान घरघर कौंप उठती है ।

(२६९) रथीयन्तीव प्र जिहीते ओपधिः ।

( ऋ. १।१३।९।५ )

सारी ओपधियाँभी रथमें बैठी नारीके समान विर्रंषित हो उठती है ।

(२७७) मुहा चरन्ती मनुषो न योषा । ( ऋ. १।१६।७।३ )

शान्तःपुरमें संचार करती हुई मानवी महिलाकी नाई ( वीरोंकी लक्ष्यार कभी कभी अक्षयमी रहती है । )

(२७५) साधारण्या इव महत सं मिमिक्षुः ।

( ऋ. १।१६।७।४ )

साधारण कोटिकी नारीके साथ मानव जिस तरह वरुं रखते हैं, उसी प्रकार (मनुष्यों की जमीनपर) मरुत्ोंने वरुं कर लीकी ।

(२७६) चिसितस्तुफा सूर्या इव रथं आ गान् ।

( ऋ. १।१६।७।५ )

केच सँवारकर भौं भौंति नृदा बाँधी हुई सूर्यासाधिश्रीके समान ( रोदसी=भूमि या विद्युत् ) [ वीरोंकी पत्नी ] रथके निकट भा पहुँची ।

(२७७) धा अस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमि-

त्सं विदधेपु पजां । ( ऋ. १।१६।७।६ )

तुम वययुवक वीर सदैव सद्घासमें रहनेवाली, बलिष्ठ युवतीको- निज पत्नीको- शुभ मार्गमें- यज्ञमें स्थापन करते हो- के भाते हो ।

(२७८) यत् इं युवमनाः अहंसुः स्थिरा खित् जनीः

( ऋ. १।१६।७।७ )

घटते सुभागाः ।

यह पृथ्वीतक इनके पीछे चलनेवाली, बलिष्ठोंपर मन केन्द्रित करनेवाली पर वीरपत्नी होनेकी तीव्र कालसा करनेवाली सीमाययुक्त प्रजा धारण करती है- उपलब्ध करती है ।

(२९०) मित्रं न योषणा ( मारुतं गणं अच्छ ) ।

( ऋ. ५।५२।१४ )

युवती जिस प्रकार प्रिय मित्रके समीप चली जाती है, ठीक उसी प्रकार (वीर सैनिकों के संपर्क समीप चले जावो ।

(२९८) भर्ता इव गर्भं स्वं इत् शवः धुः ।

( ऋ. ५।५।८।७ )

पति जिस भाँति कोमें गर्भकी स्थापना करता है, वैसीही इन वीरोंने अपना निजी बल (राष्ट्रमें) प्रस्थापित किया है ।

(३१०) वि सक्थानि नरो यमुः, पुत्रहृद्ये न जनयः ।

( ऋ. ५।६।१।३ )

पुत्रको जन्म देने समय नारियोंकी अँबापूँ जिस प्रकार तानी जाती है, वैसीही तानी हुई अक्षयंपाशांका नियमन वे वीर करते हैं ।

(४१०) शिक्षत्याः न क्रौञ्चाः सुमातरः ।

( ऋ. १।०।७।८।६ )

उलूह माताओंके निरोगी बालकोंकी नाई वे वीर सैनिक छिन्नाही भावले पूर्ण हैं ।

(४३२) माता इव पुत्रं छन्द्यांसि पिपुत ।

( अथर्व० ५।२६।५ )

माता जिस प्रकार अपने बालकोंका संगोपन करती है, उसी प्रकार हमारे मंत्रोंका- इष्टांशोंका संगोपन करो ।

(४३९) नुन्दाना रटहा, मुत्रा कम्पा इव, परं पत्या इव जाया एजाति ।

( अथर्व० ६।२३।३ )

कडकनेवाली बिजली, नवयुवती युवकको प्राप्त करती है उसी प्रकार तुम और पतिमे भाँकित नारीके समान विकंपित होती हो ।

(४५७) अदारखत् भवतु देव सोम । (अथर्व० १।२०।१)

हे तेजस्वी सोम । हमारा वापु अपनी खीखीनी न भिंके, वेमा प्रबंध वा दो ।



# मरुद्देवता-पुनरुक्त-मन्त्राः ।

मरुत्पुनरुक्तमन्त्राः

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।६।९)

[ ४ ] वतः परिजमनाऽऽ गहि द्विषो वा रोचनादधि ।  
रुमस्मिन्नुग्रहे गिरः ॥ ९ ॥

प्रसङ्गः काण्वः । उषा । असुष्टुप् । (ऋ. १।४।११)

उषो भेदेभिःऽऽ गहि द्विषादधि रोचनादधि ।

शुद्धवर्णप्लव उष त्वाः सोमिनो गृधम् ॥ १ ॥

इष वाश आश्रयः । मरुतः । बृहती । (ऋ. १।५।१)

[ ५७५ ] अमे वार्षन्तमा यमं पिदं रज्ज्वेभिराजिभिः ।

विशो भव मरुतामप इषे द्विषादधि रोचनादधि ॥१॥

सर्वतः काण्वः । अश्विनौ । असुष्टुप् । (ऋ. ८।८।७)

द्विषादधि रोचनादधि आ नो गन्तं खर्विदा ।

योमिर्व स प्रवेत्तसा खेमेभिर्गर्भानधुता ॥ ७ ॥

मेधातिथिः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।१५।२)

[ ५ ] मरुतः पिबत कुरुता सोनाद् यत् पुनीतान ।

यूर्धं हि छा सुदानवः ॥ २ ॥

पुनर्वसुः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१२)

[ ५७ ] यूर्धं हि छा सुदानवो रमा कुरुषणो दमे ।

उत्तं प्रचतसो मरे ॥ १२ ॥

ऋषिः भारद्वाजः । विषेवताः । उणिक् । (ऋ. ६।५।१५)

यूर्धं हि छा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिषयः ।

रुतो नो अपरहा यूर्धं नो स अमा ॥ १५ ॥

पुनर्वसुः काण्वः । विषेवताः । गायत्री (ऋ. ८।८।१५)

यूर्धं हि छा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिषयः ।

अपा विदं उत ह्रुवे ॥ ९ ॥

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३।७)

[ ९ ] प्र सः वार्षानं ह्रुवये खेषसुराव शुभिके ।

देवत्वं प्रह्नं गायत ॥ ४ ॥

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।३।२।७)

प्र स उमाव निरुरेऽप्याद्याव प्रस भिजे ।

देवत्वं प्रह्नं गायत ॥ २७ ॥ (ऋ. २०६)

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री । (ऋ. १।३।७।१-५)

[ ६ ] प्रीळं वः शार्घो मारुतं अनवर्गं रथेऽमम् ।

कथ्या यमि प्र गायत ॥ १ ॥

[ १० ] प्र वीसा गोप्वध्वं प्रीळं यच्छर्षो मारुतम् ।

जन्मे रसस्य शशुषे ॥ ५ ॥

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३।७।८)

[ १३ ] वेपामग्नेषु पृथिवी जुहुर्वो देव विदरतिः ।

शिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

घोमरिः काण्वः । मरुतः । सुष्टुप् । (ऋ. ८।२।०।५)

[ ८६ ] अश्व्युता शिव् वो अश्वमता नान्द्रति पर्वतासो वनवशिताः ।

शूमिषामेषु रेजते ॥ ५ ॥

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३।७।११)

[ १३ ] त्वं सिद् वा शोषे युं विदो नगतमश्वम् ।

प्र च्याषयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

इशावाश्र आश्रयः । मरुतः । बृहती (ऋ. ५।५।६।५)

[ २७८ ] नि ये रिणन्तोवता नृधा गावो न दुर्गुरः ।

सन्मानं किरुवर्षं पर्वतं गिरिं प्र च्याषयन्ति यामभिः ॥ ४४ ॥

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३।७।१२)

[ १७ ] मरुतो यद्द वो वलं जर्जो अशुच्यवीतन ।

गिरौरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पुनर्वसुः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।११)

[ ५६ ] मरुतो यद्द वो दिवः सुत्रायन्तो ह्यधामहे ।

आ हू अ उष गन्त ॥ ११ ॥

रुतो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३।७।१३)

[ २१ ] कन्द नूनं कथमिषः पिता पुत्रं न हत्वयोः ।

दधिषे वृक्षार्हियः ॥ १ ॥

पुनर्वसुः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३।१)

[ ७६ ] कन्द नूनं कथमिषो यदिद्रमहातान ।

घी वः सखिल ओहते ॥ ३१ ॥

कण्वो घोरः । मरुतः । बृहती (श्र. १।३९।५)

[४०] प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।  
 श्री भारत मरुतो दुर्मदा इव देवास्तः सर्वया विद्या ॥५॥  
 वसुधैव कुटुम्बकः । विवेदेवाः । गायत्री (श्र. ५।२६।९)  
 एवं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वह्णः ।  
 देवास्तः सर्वया विद्या ॥ ९ ॥

पुनर्वसुः काण्वः । मरुतः । गायत्री (श्र. ८।७।४)

[४१] वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।  
 यद् वामं सान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

कण्वो घोरः । मरुतः । सतोपृहती (श्र. १।३९।६)

[४१] उपो रथेषु पृथतीर्युग्ध्वं प्रथिवीवृत्ति रोहितः ।  
 आ वो वामाव पृथिवी चिदश्रोद् अनीभवन्त मानुषाः ॥६॥  
 गीतमो राष्ट्रगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (श्र. १।८५।५)

[४३] प्र यद् रथेषु पृथतीर्युग्ध्वं वाजे अद्रि मरुतो रंहयन्तः ।  
 उतावृषस्य वि स्थन्ति धाराः चर्मोदभिर्धुन्दन्ति भूम ॥९॥  
 पुनर्वसुः काण्वः । मरुतः । गायत्री (श्र. ८।७।२८)

[७३] यदेवा पृथती रथे प्रथिवीवृत्ति रोहितः ।  
 सान्ति मुद्रा रिणकपः ॥८॥

कण्वो घोरः । मरुतः । सतोपृहती (श्र. १।३९।७)

[४२] आ वो मरु तनाय कं रुद्रा अजो वृणीमहे ।  
 गन्ता नूनं नोऽपसा यथा सुरेया कण्वाय भिष्मुये ॥७॥  
 कण्वो घोरः । पृषा । गायत्री (श्र. १।४२।५)  
 आ तां ते दत्त मनुमः पूषन्नयो वृणीमहे ।  
 येन पितृनुचोदयः ॥५॥

नोधा गीतमः । मरुतः । जगती (श्र. १।६४।४)

[१११] त्रिभिरभिभिर्षयुये व्यशते वक्षःसु रुक्मां अधि वेतिरे  
 शुभे । अंतेष्वेषां नि मिश्रुर्धृष्टयः सार्कं जसिरे स्वधर्मा  
 दिवो नरः ॥४॥

इवाषात्र आश्रयः । मरुतः । जगती (श्र. ५।५४।१)

[१६०] अंतेषु ष ऋष्टयः पण्ड यादवो वक्षःसु रुक्मा मरुतो  
 शुभः । अमिभ्राजसो विदुतो गभस्त्वोः शिश्रः शीर्षेऽ  
 रथे वितता हिरण्ययोः ॥११॥

नोधा गीतमः । मरुतः । जगती (श्र. १।६४।६)

[११३] विञ्चन्वयो मरुतः मुद्राजयः पयो पूषन्नद् विदेषेवाभुयः ।  
 अलं न मिहे विवदन्वि वाश्रिनृगुगं दुहन्ति स्तनय-  
 त्तमक्षितम् ॥६॥

द्विरमन्त आश्रिसः । पुनमानः शोमः । जगती  
 (श्र. ९।७२।६)

अमुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कवि पयथोऽपतो  
 मनीषिणः । रागी रातो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योगा  
 सवने पुनर्भुयः ॥६॥

नोधा गीतमः । मरुतः । जगती (श्र. १।६४।१२)

[११९] पृष्टं पावकं पनिनं विचर्याणि रंभ्रस्य सृष्टं हवसा  
 गृणीमसि । रजस्तुरं तपसं भारुतं गणश्रीविणं दृपणं  
 ताचत त्रिये ॥११॥

बाह्रस्पयो भारद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (श्र. ६।६६।११)

[३४४] तं वृषन्तं भारुत प्राजदरिह रुद्रस्य सृष्टं हवसा  
 विचये । दिवाय सार्पाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप  
 रुद्रा वापृषन्त ॥११॥

नोधा गीतमः । मरुतः । जगती (श्र. १।६४।१२)

[१२०] प्र नू स मतेः शपसा जनी अति तरयी ष छनी मरुतो  
 यमावत अर्बुक्रियांजं भरते धना नृभिः राष्ट्रगणं  
 धनुसा र्हेति सुप्यति ॥१३॥

वगस्त्वो गंगारुणः । मरुतः । जगती (श्र. १।१६६।८)

[१६५] शतभुजिभिलमभिदुतेरपाण पुनां रक्षता मरुतो  
 यमावत । जनं यमुद्रासावयो विरथिद्यतः पाथना संसात्  
 तानयस्य पुष्टियु ॥८७

गृगमदः शौनकः । भाग्यरगतिः । जगती (श्र. २।२६।१३)

स दृजनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते  
 धना नृभिः । देवानां यः पितरमा विषाघति ध्रुवामना  
 हविषा श्रद्धानरपिषु ॥३॥

मुनेदाः शीरीषः । इन्द्रः । जगती (श्र. १।०।१४।७।८)

स इन्तु रायः सुयुतस्य चाकनगर्दो वो अर्य रथं विपेगति ।  
 त्वाहृषी मषवन् दाश्वकरो मरु स वाजं भरते धना  
 नृभिः ॥४॥

ने तमो राष्ट्रगणः । मरुतः । जगती (१।८५।२)

[१२४] त उक्षित वो मदिमानमाशत शिषि हरागो अपि  
 चक्रिरे नदः । अर्चन्तो अर्चं जनदन्त इन्द्रिसमति प्रियो  
 दधिरे वृश्रिमासतः ॥२॥

शुक्रः वाग्दः । द्वाश्वकरो । जगती

(श्र. ८।५९। पाठ. ३१। २)

निषिष्यतीरोषधौ राय आस्तामिन्द्राकणा मदिमानमाशत ।

या सिखरू रजसः पारे आधना ययोः शुभुर्नकिरादेव  
 शोहते ॥२॥

ने तमो राहुगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १८५५५)  
 [१२७] प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे धादि मरुतो  
 रंहयन्तः ।

उत्तारयस्य विध्यन्ति धाराश्चमंबोदभिर्द्युन्दमित भूम् ॥५॥

षण्णो धंरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ. १।३१५६)  
 [४१] उषो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वदति रोहितः ।  
 वा वो यामाय पृथिवी चिदध्रोद् अभीभयन्त मानुषाः ॥६॥  
 पुनर्वसतः षाण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७१२८)

[७३] यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वदति रोहितः ।  
 यान्ति गुत्रा रिणत्रयः ॥२८॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५१८)

[१३०] शरा इवेद् युगुधो न जगमयः अक्स्यवो न पृतनासु  
 देतिरे । भयन्ते विश्वा भुधना मरुद्भयो राजान इम  
 र्वेषसंरसो नरः ॥८॥

धगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (ऋ. १।१६६१४)

[१६१] वा ये रजांसि त्विषीभिरेव्यत प्र ष एषसः स्वपतासो  
 धाप्रजन् । भयन्ते विश्वा भुधनानि हर्म्या चित्रो  
 वो याम प्रयत्तारुष्टिषु ॥४॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५५९)

[१३१] त्वष्टा यद् धञ्जे सुष्टत हिरण्यवं सहस्रमृष्टि स्वपा अवतयत् ।  
 पता इन्द्रो नर्यपासि कर्तवैऽहन् घृञ्चं निरपामीञ्जव-  
 ण्वयम् ॥५॥

सव्य आधिरसः । इन्द्रः । जगती (ऋ. १।५६५५)

वि यन्तिरो धरणमचसुतं रजोऽतिरिषो दिव आतासु बर्हणा  
 स्वर्गाहले वनमद् इन्द्र हर्षाहन् घृञ्चं निरपामीञ्जो  
 अण्वयम् ॥९॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६३३)

[१३७] उत वा यस्य बाजिनोऽनु विपमसप्त ।  
 स गन्ता गोमति प्रजे ॥३॥

वैमित्रो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । सतोबृहती

नाक्ः सुदासो रथं पर्यस न रौरमत् । (ऋ. ७।३२१०)

इन्द्रो वस्याविना यस्य मरुतो गमन् स गोमति प्रजे ॥१०॥

वसोऽश्वम् । इन्द्रः । सतोबृहती (ऋ. ८।४६३९)

वो दुष्टरो विश्ववार अवाप्तो वाजेऽप्यति तरता ।

स नः शविष्ठ सवना वसो गदि गमेम गोमति प्रजे ॥९॥

भुष्टिषुः षाण्वः । इन्द्रः । बृहती

(ऋ. ८।५१ [वा. ३] । ५)

वो नो दाता वसुनानिन्द्रं तं हृमये वयम् ।

विप्रा हस्य सुमति नवीयसीं गमेम गोमति प्रजे ॥५॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६५४)

[१३८] अस्य वीरस्य वदंति सुतः सोमो दिविष्टिषु ।

उक्थं मदश्च दास्यते ॥ ४ ॥

कुरुसुतिः षाण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।७११९)

विबेन्द्र मरुतसा सुतं सोमं दिविष्टिषु ।

वञ्चं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पतिः । गायत्री (ऋ. ४।४९११)

इदं वामारथे हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।

उपथं मदश्च दास्यते ॥१॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६५५)

[१३९] अस्य श्रेयस्वामुषो विश्वा यक्षर्षणीरमि ।

सूरं विद् सञ्जुपीरियः ॥ ५ ॥

वामदेवो गौतमः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ४।७।४)

धामुं दूतं विषस्वतो विश्वा यक्षर्षणीरमि ।

धा जञ्चः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

गुत्रो विधचर्षणीराज्ञेयः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ५।२३।१)

अग्ने सहन्तमा भर युम्नस्य प्राप्तदा रयिम् ।

चिदया यक्षर्षणीरभ्यासा वाजेषु साचहत् ॥१॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८७।४)

[१४०] स हि रवस्य वृषदयो युवा गणोऽया ईशानसत्विषीभि

राहतः । असि सत्य ऋणयावानेवोऽस्या धियः

प्राविताभा वृषा गणः ॥४॥

गृत्समदः क्षीनकः । ब्रह्मरस्पतिः । जगती (ऋ. २।२३।११)

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्पन्ता वाञ्छुं पृतनासु सासृदिः ।

असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिह्मिता बोलु-

हार्षणः ॥ ११ ॥

अगरलो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१६८।९)

[१९६] शमत् पृथिर्मदते रणाव र्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

उं अथराषोऽप्यनन्ताभनमादित् स्वधामिषिदां पर्य  
पदयन् ॥ ९ ॥

मुवन थाप्य, साधनी वा भीवनः । विधेरेवाः ।

द्विपदा त्रिष्टुप् (ऋ २०।१५५।५)

प्रत्ययनसंमनयन्त्वाभिरादित् स्वधामिषिदां पर्यप-  
दयन् ॥ ५ ॥

भगरत्तो भैत्रावकणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ३।१६८।१०)

[ ११२ ] एष घः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्धस्य  
मान्यस्य फारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे यपां विद्याभेपं पूजनं जीर-  
दानुम् ॥ १० ॥

[ १७९ ] एष घः ... जीरदानुम् । (ऋ. ३।१६९।१५)

[ १८२ ] एष घः ... जीरदानुम् । (ऋ. ३।१७०।११)

भगरत्तो भैत्रावकणिः । मरुतानिन्द्रः । त्रिष्टुप्

एष घः ... जीरदानुम् ॥ १५ ॥ (ऋ. ३।१७५।१५)

गुरुसमदः ( भाद्रिरसः शीनद्वेजः पथाद् भाग्नः )

शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. २।२०।११)

[ ११८ ] तं घः शार्धं मास्तं ह्यप्रगुमिरोष मुषे नमसा दैव्यं  
जनम् ।

यया रधि सर्ववीरं वतामदा अपव्यवाचं धुःसं दिषे दिषे ॥ ११ ॥

इयानाथ धात्रेयः । मरुतः । ककुप् (ऋ. ५।५२।१०)

तं घः शार्धं इयाना र्धेयं गणं मारुतं नन्वधीनाम् ।

भनु प्र वन्ति वृष्टवः ॥ १० ॥

गुरुसमदः ( भाद्रिरसः शीनद्वेजः पथाद् भाग्नः )

शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।३५।८)

[ १०९ ] पृथे ता विश्वा मुषना वनक्षिरे मित्राय वा यदमा  
जीरदानवः । पृषददवास्तो अनवधराधस्त ऋद्धिप्यासो  
न वयुनेषु धूर्पदः ॥ ४ ॥

ग विनो विधासिन्न । मरुत । जगती (ऋ. ३।२६।६)

[ ११६ ] भातंभातं गणगणं गुहासितभिरभेर्मां मरुतामोज  
ईमहे ।

पृषददवास्ता अनवधराधस्तो गन्तारो यक्षं विदधेयु  
वीरा ॥ ६ ॥

गानिनां विधासिन्न । मरुतः । जगती (ऋ. ३।२६।६)

[ ११६ ] भातंभातं गणगणं गुहासितभिरभेर्मां मरुतामोज  
ईमहे । पृषददवास्तो अनवधराधस्तो गन्तारो यक्षं  
विदधेयु वीराः ॥ ६ ॥

गुरुसमदः ( भाद्रिरसः शीनद्वेजः पथाद् भाग्नः )

शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. २।३५।१४)

[ १०९ ] पृथे ता विश्वा मुषना वनक्षिरे मित्राय वा यदमा  
जीरदानवः । पृषददवास्तो अनवधराधस्त ऋद्धिप्यासो  
न वयुनेषु धूर्पदः ॥ ४ ॥

इयानाथ धात्रेयः । मरुत । शनुष्टुप् (ऋ. ५।५२।१०)

[ १२० ] मरुतु यो रधीमहि स्तोमं यक्षं च घृष्टुया ।  
विधे ये मानुषा गुहा यन्ति मर्यं रिवाः ॥ ४ ॥

नरदाजो महिस्त्वयः । धामि । गावती (ऋ. ६।१।१२-२)

प्र घ सन्नायो अगधे स्तोमं यक्षं च घृष्टुया ।

अर्थं गाव च नैषते ॥ ११ ॥

इयानाथ धात्रेयः । मरुतः । वयुष्टुप् (ऋ. ५।५२।१०)

[ १४३ ] तं वः शार्धं रगाणो खेव गणं मारुतं नन्वर्षी-  
नाम् ।

भनु प्र वन्ति वृष्टवः ॥ १० ॥ (ऋ. ५।५८।१)

[ १०९ ] तनु नूनं तेषिधीमस्तोमेषां स्तुभे गणं मारुतं नन्व-  
र्षीनाम् ।

व शापदा भमवद वरुत उवेक्षिरे वयुनरव तारत्वः ॥ १ ॥

इयानाथ धात्रेयः । मरुतः । स्तोपृष्टो (ऋ. ५।५३।१६)

[ १४३ ] छुदि भौषानस्तुवतो वास्य वासि रणन् गाघो  
न यधसे ।

वत पूर्वो ह्य सखाँनु ह्य गिरा गुर्धं दि क्रामिनः ॥ १६ ॥

निमद ऐन्द्रः प्राजापयो वा, वसुहृदा वसुहृ ।

सोमः । भास्तरपृष्कि (ऋ. १०।२५।१)

मद यो धापि वातय मनो दधमुत क्रमुत् ।

गघा रो वल्ले अन्धसो वि यो नदे

रणन् गाघो न यचसे विवधसे ॥ १ ॥

इयानाथ धात्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५५।११)

[ १६० ] असेषु घ ऋष्टयः पर्यु व्वादयो वक्ष्यु रुक्मा मरुतो रधे  
नुम आतिप्राजसो विद्युतो गभदयो ।

शिमाः शिर्षसु वितता द्विरण्ययीः ॥ ११ ॥

सुपर्णः सः पाप । मरुतः । वावती (ऋ ८।७।१५)  
 त्रिभुवस्ता आभियव शिमाः शीर्षान् द्विरण्ययी ।  
 शुभा अमृत त्रिभे ॥१५॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।५१)  
 [२५५] प्रदण्यते मरुतोऽभ्राजद्वयो बृहद्वयो दधेरे रुक्मवक्षसः ।  
 ईयन्ते भूषे सुयमेभिराग्नि शुभं यातामनु रथा  
 अमृतसत ॥१०

[२६६] म्यव पथिष्वे...  
 शुभं यातामनु रथा अमृतसत ॥१॥

[२६७] अरु जातः  
 .. शुभं यातामनु रथा अमृतसत ॥३॥

[२६८] अ भूषेय वो  
 . शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥४॥

[२६९] उदारवयः मरुत  
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥५॥

[२७०] यदघार धूर्षु .  
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥६॥

[२७१] न पर्वता न नदी  
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥७॥

[२७२] यः पू र्वं  
 . शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥८॥

[२७३] वृष्टा नो ..  
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥९॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।५३)  
 [२६७] अरु जातः शुभ अमृतसता त्रिभे चिदा प्रतर  
 अमृतसतः ।

विरेञ्जि मूर्धस्येव रश्मय शुभ यातामनु रथा  
 अमृतसतः ।

मरुतो वैमद्वयः । अग्निः । वावती (ऋ १०।१।१४)  
 प्रप नशमे तथ दानिष्ठीवर्षमिल दास्यदेधृतवत्तमासदः ।  
 न ते चिदिन उषसामिवतये ऽपय मूर्धस्येव  
 रश्मयः ॥३॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।५५)  
 [२७३] वृष्टत नो मरुतो मा वधिष्ठनाऽस्मभ्य शर्म बहुल  
 वि यन्तन ।

वाधि स्तोत्रस्य सख्यस्य शातन शुभ यातामनु  
 रथा अमृतसत ॥९॥

वाधिवा आरदाथः । विभे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ १।५।१५)  
 संपित वृषिभि मातरभुगमे भ्रातर्वसवे मृळता नः ।  
 विभे आदित्या आदिते सनोवा अस्मभ्यं शर्म बहुलं  
 वि यन्तन ॥५॥

स्यमरुतीमर्भागंधः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ १०।७।८)  
 [४७१] शुभागाणो देवाः कृष्णो सुरनानसान्स्तोतुव मरुतो  
 वायुधानाः ।

वाधि स्तोत्रस्य सख्यस्य शातन सनादि वो  
 रनधेवानि सन्ति ॥८॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ ५।५।५०)  
 [२७४] वृमस्मान् नयत वसो अच्छा निरहृतिभ्यो मरुतो  
 यथाना ।

उषस्य नो इम्वदाति वज्रमा घयं स्याम पतयो  
 . रयीणाम् ॥१०॥

धामदेवो रं तम । वृहस्पति । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।५।०।१६)  
 एवा वित्रे विश्वदेवच वृष्ये यज्ञैर्बर्धेम नमसा इविभिः ।  
 वृहस्पते ह्यप्रजा भारं कन्तो घयं स्याम पतयो रयी-  
 णाम् ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वृहती (ऋ. ५।५।११)  
 [२७५] आमे दार्धन्ता गण विष्ट रुक्मेभिरत्सिभिः ।  
 विशो मय मरुतामभ ह्ये दिघश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

प्ररख्यः कश्यः । उषा । वसुष्टुप् (ऋ १।४।११)  
 उषो भेभिरा गदि दिघश्चिद्रोचनादधि ।  
 वदन्वहणस्तव उप त्वा घोमिनो गृहम् ॥१॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वृहती (ऋ. ५।५।१४)  
 [२७८] नि वे रिणन्त्योऽस्य वृषा गावो न दुर्धरः ।  
 आसनं चिन् स्वर्षं पर्वतं गिरीं प्रच्यायन्ति  
 यामभिः ॥४॥

कश्यो चर । मरुतः । वावती (ऋ १।१।११)  
 [२६] एव चिद्व वा र्दं र्षं पृथु मिदो नपातमाम् ।  
 म र्याययन्ति यामभिः ॥११॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वृहती । (ऋ ५।५।१६)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

इवावाथ आत्रेयः । मरुतः । वावती (ऋ ५।५।१५)  
 [२८०] सुष्यं ह्यहर्षी रथे सुह्यं रथेयु रोहित ।  
 सुष्यं रथी अजिया घुरि घाब्द्वहे घाब्द्विष्टा घुरि  
 घोब्द्वहे ॥६॥

मेघातिथिः काश्यः । विधे देवा (विधेदेवै सहितोऽग्निः) ।  
गायत्री ( ऋ १११५१२ )

युक्त्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोदित ।  
ताभिर्देवो हवा बह ॥१२॥  
पदच्छेपो वैशोधाधि । बायु । मरुतश्चि ( ऋ १११३५१ )  
बायुयुक्त्वा रोदिता बायुररुणा बायु रथे अजिरा धुत्वि  
चोल्हद्वये चक्षिष्ठा धुत्वि चोल्हद्वये ।  
प्र बोधया पुरधि चार आ सततामिन ।  
प्र चक्षय रोदसी पासयोषसः ॥१३॥

श्यावाथ भाश्रेयः । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ ५५७५७ )  
[११०] गोमरुथावद् रथयन् ह्यनार नन्वन्वत् राधो मरुतो द्वा  
नः ।

प्रशालि नः कृणुत रश्मिवासो भक्षोय घोऽवसो  
द्वैरुथस्य ॥७॥  
शामदेघो गौतमः । इन्द्र । त्रिष्टुप् ( ऋ ५१२११० )  
एवा वाथ इन्द्र रास्य रासाहन्ता ह्यत्र वरिदः पूषेभ ।  
पुष्टदुत क्त्वा नः दामिष राधो भक्षोय तेऽवसो  
द्वैरुथस्य ॥१०॥

श्यावाथ भाश्रेयः । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ ५५७५७ )  
[१११] ह्ये नरो मरुतो मृळता नस्तुयोमघासो  
अमता ऋतवा ।  
सत्ययुतः कवयो युवानो बुद्धिर्व्यो बुद्धु  
क्षमाणा ॥८॥

[११२] ह्ये नरो मरुतो  
मृहदुक्षमाणाः ॥८॥

श्यावाथ भाश्रेय । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ ५५७५७ )  
[११३] एमुन्न तविष मन्तमेषा रतुष गण मायत नव्यसी  
नाम् ।  
य अथथा अमवद् अहन्त उतोशिरै अयुतस्य स्वराज ॥१  
बन्धुप् ( ऋ ५५३११० )  
[११३] स षः शर्ष रथानां खेप गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।  
अनु प्र वन्ति वृष्टयः ॥१०॥

एववामरुथाश्रेय । मरुत । अतिप्रमती ( ऋ. ५१८७१९ )  
[११५] प्र ये ज्ञाता महिना ये क्तु स्वय प्र जिघ्रता ह्यवत  
एववामरुथ ।  
क्त्वा तद्द भो मरुतो नाशे शपो दाना मद्वा तदेवा  
मृष्टातो वापत्र ॥१५॥

पोमरि वायवः । मरुतः । सतो विराट् ( ऋ ८१५०१४ )  
[११५] तान् धन्दस्य मरुतस्तो उपस्तुहि तेषा दि धुनाम् ।  
अराणा न चरमस्तदेवा दाना मद्वा तदेवाम् ॥१४॥

एववामरुत्वाश्रेयः । मरुतः । अतिप्रमता ( ऋ ५१८७१५ )  
[११६] ह्यनो न भोऽममान् रेणवद्वृषा त्वेभो दधिराविष  
एववामरुत्वा ।

वेना अहन्त अत एवतोषिष स्यारमनो द्विरुथया  
स्वायुधास इग्मिणः ॥२॥  
मैत्रानरुणिर्वाशिष्ठ । मरुत । द्विपदा विराट् ( ऋ ७५५६११५ )  
[११५] स्वायुधास इग्मिणः गुनिवा वन स्वय त व  
शुभमानाः ॥११॥

बाईस्वलो मरुदाण । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ ६१६६१७ )  
[११६] वपुर्तं त भिक्षिषे चिदस्तु समान न म धा प यमात्म् ।  
मर्त्येभ्य बद् दोहते पीपाय सत्तुक्तुक्तु बुद्धु पृथिक्थ ॥१  
शामदयो गौतम । वसि । त्रिष्टुप् ( ऋ ५१३११० )  
ऋतेन दि ष्मा वृषभधिक्ष पुनो धमि पयता पृष्टेन ।  
अरुपन्दमानो अचरद्वयाभा इषा शुक्र बुद्धे पृथिक्थः  
॥१०॥

बाईस्वलो मरुदाण । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ ६१६६१८ )  
[११७] नास्य वर्तान तयता अरिस्त मरुता यमत्रथ  
वाजसानो ।  
तोके ना गोप्पु तनये यमपुष्टु स मज वर्ता पाय थव  
यो । १६

एववामरुत्वाश्रेय । मरुत । अतिप्रमती ( ऋ ५१८७१८ )  
उप अत्र पृथीत इति राजभिर्भये चिन् मुक्ति दधे ।  
नास्य वर्तान तयता मरुदाण गार्भे अरिस्त वसिष्ठा ॥८॥  
एषा धानाकः । विधे देव । त्रिष्टुप् ( ऋ १०१२५११७ )  
य देवासाऽवयथ वाजसातौ य शाय न य विपुयात्सह ।  
भो वा गाधीन न भवत्य नेद ते स्याम दववातय तुरासः  
॥ १६ ॥

ययः प्रतः । विधे देवा । अगती ( ऋ १०१३३१०८ )  
यं देव सोऽवयथ वाजसातौ य श्याता मरुतो हिते धने ।  
प्रातर्वावाण रथमिन्द्र घान विपरिष्यन्ता रुद्रमा स्वराणे ॥१४॥  
मरुदाणो बाईस्वलो । इन्द्र । त्रिष्टुप् ( ऋ ६२५५५ )  
श्रीो वा गृत् वनेतो दाररेतमृत्वा तदधि यत्तु ह्युषेत ।  
तोके ना गोप्पु तनये यमपुष्टु वि न्दवी उर्वराणु  
अवेते ॥ १६ ॥

बाह्यैः स्यो भरद्वाजः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ६।६६।११ )  
 [३४४] सं वृष्यन् मास्तं भ्राजदष्टिं रद्रस्य सूनुं इक्षसा  
 विवच ।

दिनः सार्धं लुचवो ननीवा शिरवो वाप उग्रः शसुधन्  
 ॥ ११ ॥

नोषा गौतमः । मरतः । जगती ( ऋ. १।१५।१२ )  
 [३४५] स्रुं पावर्कं वगिनं विवर्गिं रद्रस्य सूनुं इक्षसा  
 गृणीमधि ।

रजस्तुरं तन्नम मास्तं गगसुर्विभं वृष्यं सद्यत शिषे ॥११॥

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । द्विपदा विराट्  
 ( ऋ. ७।५६।११ )

[३४५] स्वासुधास इध्मिणः सुनिष्ठा उत स्वयं तन्मः  
 सुम्भम नाः ॥११॥

एवयामरन् ॥ त्रैयः । मरतः । अति षगती ( ऋ. ५।८७।५ )

[३४६] स्वयो न वजमान् रेजयद् वृषा त्वेषो यविस्तानि  
 एवयामरन् ।

वेनाः सद्दन्त एजन्तं स्वरोन्निषः स्वारदमानोः क्षिरधयाः  
 स्वासुधास इध्मिणः ॥५४

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।५६।२२ )

[३४७] मृदि चरु नरतः पित्राशुनयानि वा नः सद्यन्ते पुरा  
 चिन् ।

मरद्विष्टमः प्रतनासु सद्दहा महद्विष्टिस् सनिता  
 चाजमर्षा ॥२३॥

सुगहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ६।३२।२ )  
 त्वा ह्यिन्द्रायसे विधाचो हवन्ते चर्षद्वयः शरसातौ ।

स्वं विभेभिर्भिर्णरिणावस्त्वे त इन् सनिता चाजमर्षा  
 ॥२३॥

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।५६।२५ )

[३४९] सत्र इन्द्रो वरुणो मिथोऽत्रिराप ओषधीर्षं  
 निनो जुपन्त  
 शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे गृयं पात स्वस्तिभि  
 सदा नः ॥२५॥

भैत्रावरुणिविष्टः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।३४।२५ )  
 तन्न इन्द्रो ..

.. सदा नः ॥२५॥

वसुष्णो वागुदः । विश्वे देवाः । जगती ( ऋ. १।१६।१९ )  
 यात्रापृथिवी अगदभाभि घताप ओषधीर्विनिनानि  
 यज्ञियाः ।

भन्तरिश्च स्वरा वसुष्णये नशं देवासस्तन्वी नि मास्तुः ॥२४॥

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।५७।४ )

[३४९] श्रयक् या नो मरतो दिवुदस्तु यद् च जागः  
 पुरुषता कराम ।

ना वस्वस्वामि सुमा यजना अस्मे घो धस्तु  
 सुमतिश्चानिष्ठा ॥४॥

घृहो वामवनः । पितरः । त्रिष्टुप् ( ऋ. १।१५।६ )  
 भात्या आसु दक्षिणतो निपद्येयं यज्जमभि गृणीत विश्वे ।  
 मा द्विष्टिः पितरः केन चिधो यद् च जागः पुरुषता  
 कराम ॥४॥

भैत्रावरुणिविष्टः । अथिनो । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।७।५ )

सुध्रवासा विदधिना पुरुषपभि क्रमाणि चधाये ऋषिणाम् ।  
 प्रति प्र शतं नरमा वनयास्ते चामस्तु सुमतिश्च-  
 निष्ठा ॥५॥

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।५७।७ )

[३४९] शा स्वतागो मरुतो विश्व ऊती अरुधा चर्वसूरी-  
 न्सर्वतासा जिगत ।

वे नरामना क्षतिनो नर्षयन्ति गृयं पात सस्तिभिः  
 सदा नः ॥७॥

मत्रिर्जं म । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ५।४३।१० )

शा नामभिर्मरुतो वशि विधाना रूपेभिर्जातयेदो हुवानः ।  
 वन गिरो नरेतुः सुधृतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व  
 ऊती ॥१०॥

भैत्रावरुणिविष्टः । मरतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।५८।३ )

[३४९] इह पयो मयवत्सो दधात जुजोषभिर्नरतः सुधृति  
 नः ।

गतो नाष्वां वि विरति अन्तं प्र णः स्पार्हाभिरुतिभि-  
 स्तिरेत ॥३॥

भैत्रावरुणिविष्टः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ( ऋ. ७।८४।३ )

हृत्तं नो यज्ञं विदयेयु वारं हृत्तं मग्नाणि सृष्टि प्रसारता ।  
 उपो रथिदेवन्तो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरुतिभिर्हि-  
 रेतम् ॥ ३ ॥

मैत्रावरुणिवर्षिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ५।५।६ )

[ ३८२ ] प्र या याधि सुदुतिर्मघोनामिदं सूफं मरुतो जुषन्त ।  
आराब्धिद् द्वेषो वृषणो युषोत वृषं पात खरितभिः  
यदा नः ॥६॥

गर्षो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ( ऋ. ६।७।१३ )

तसा वषं ह्यमती वसिषस्यापि अरे सौमनसे स्वाम ।

स युनामा स्वर्षो इन्द्रो असे आराब्धिद् द्वेषः रासुतयु-  
षोतु ॥६६॥

मैत्रावरुणिवर्षिष्ठः । मरुतः । सतो वृहती ( ऋ. ७।५।१२ )

[ ३८४ ] गुष्माफो देवा अवसाद्दनि मिय ईजानस्तरति  
द्विषः ।

प्र स क्षयं तिरते धि महीरियो यो वो वराय  
दाशति ॥ २ ॥

कुम्भ आश्रितः । ऋमघः । जगती ( ऋ. १।१।१०।७ )

ऋमूर्ध इन्द्रः रायसा नवीवावमुक्वोभिर्वसुभिर्वसुद्विः ।

पुष्माफं देवा अवसाद्दनि मियोमि तिष्ठेम पुंसुतति-  
सुम्भताम् ॥७॥

गर्षो वरायतः । विश्वे देवाः । सतो वृहती ( ऋ. ८।१।१।६ )

प्र स क्षयं तिरते धि महीरियो यो वो वराय  
दाशति ।

प्र प्रज गिर्जावसे धर्मगरपरिष्ठः सर्व एषते ॥३६॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१ )

[ ४६ ] प्र यन् चस्त्रिष्टुभं मरुतो निमो भसरत् ।  
वि पर्वतेषु राजय ॥१॥

विश्वेभ्य आश्रितः । इन्द्रः । अगुष्टुप् ( ऋ. ८।६।१।१ )

मम चस्त्रिष्टुभमियं मन्वहारावेन्द्रवे ।

पिषा यो मेघघातये पुरंवा पिषातति ॥१॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२ )

[ ४७ ] यदङ्ग तविपीयवो यामं शुभ्रा अविध्यम् ।  
नि पर्वता अहासत ॥२॥

पातः काश्यः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।६।१।६ )

यदङ्ग तविपीयस इन्द्र प्रजाणि क्षितीः ।

गहो भवार चोन्नवा ॥३६॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१ )

[ ५९ ] अधीव वद् गिरिणा यामं शुभ्रा अविध्यम् ।  
सुनानमैन्द्रश्च इन्द्रुभिः ॥१४॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।३ )

[ ४८ ] उशेरवन्त वायुनिर्वाथासः सुधिमत्तरः ।

शुभ्रन्त पिप्पुपीमियम् ॥३॥

नारदः काश्यः । इन्द्रः । उष्णिक् ( ऋ. ८।१।३।२५ )

पर्षस्या तु पुरुष्टम ऋषिपुताभिस्तृतिभिः ।

शुक्ष्मस्य पिप्पुपीमियमशा च नः ॥३५॥

माराशिक्षा काश्यः । इन्द्रः । वृहती ( ऋ. ८।५।४ [वाल्.०.६]।७ )

रातित क्षयं आशिय इन्द्र आशुर्जनानाम् ।

वासाक्षयस्य मभवन्तुपावसे शुक्ष्मस्य पिप्पुपीमियम् ॥७॥

भामहीशुराश्रितः । परमानः सोमः । गायत्री

( ऋ. ९।६।१।५ )

बाश्रिणः सोम सं गवे शुक्ष्मस्य पिप्पुपीमियम् ।

वर्षा यद्विषुक्कम् ॥३५॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।४ )

[ ४९ ] यपन्ति मरुतो निदं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।

यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥४॥

कव्यो भीरुः । मरुतः । वृहती ( ऋ. १।३।१।५ )

[ ४० ] प्र वेपयन्ति पर्वतान् नि विभन्ति ववरतीन् ।

श्रो आरत मरुतो दुर्गदा दव देवासः सर्वया विदा ॥५॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।८ )

[ ५३ ] सजन्ति रदिमोजसा पन्था सर्वेष्य पातये ।

ते भानुभिर्वि तस्त्रिधरे ॥८॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।३६ )

[ ८१ ] अमिहिं ज्ञानि पूर्व्यच्छन्दो न सूरौ अविषा ।

से भानुभिर्वि तस्त्रिधरे ॥३६॥

पुनर्वसुः काश्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१० )

[ ५५ ] त्राणि सराति वृक्षयो दुद्दुहे वज्रिणे मशु ।

जरां कन्धमशुदिग्म् ॥३०॥

त्रियमेभ्य आश्रितः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।३।१।६ )

इन्द्राय नाम आश्रितं दुद्दुहे वज्रिणे मशु ।

वज्र शीमुपहरे वि ३८ ॥६॥



- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।११ )  
 [५६] मरुतो यद्द वो दिवः सुम्नायन्तो दनामदे ।  
 सा वृ न उप गन्तव ॥११॥  
 कश्चो घौरः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. १।१।१२ )  
 [१३] मरुतो यद्द वो बलं जनीं अलुच्यवांतन ।  
 गिरौरुच्यवांतन ॥१२॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१२ )  
 [५७] यूयं हि ष्टा सुदानयो ददा क्तमुद्युगो दमे ।  
 उत प्रचेतसो मरे ॥१३॥  
 मेघातिथिः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. १।१।५।२ )  
 [५] मरुतः पिपत क्तुवा पोवाद् यत् पुनीतन ।  
 यूयं हि ष्टा सुदानयः ॥१४॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१३ )  
 [५८] आ नो रयिं मदच्छुतं पुरुक्षुं विश्वघायसम् ।  
 वृषतां मरुतो विव. ॥१३॥  
 प्रजातिथिः काश्वः । कविकनी । गायत्री ( ऋ. ८।५।१।५ )  
 अस्ते आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।  
 पुरुक्षुं विश्वघायसम् ॥१५॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१५ )  
 [६०] एतायतश्चिदेयां सुम्नं भिक्षेत मरुतः ।  
 भादाभ्यस्य मन्मभि ॥१५॥  
 दरिम्बिठैः काश्वः । आदित्याः । चण्डिन् ( ऋ. ८।१।८।१ )  
 इद्द ह नूनमेयां सुम्नं भिक्षेत मरुतः ।  
 अदित्यानामपुस्यै सवीमति ॥१॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२० )  
 [६५] अ नूनं मुदानवो मदधं वृषवाहिवः ।  
 प्रह्ला को वा सपर्यति ॥२०॥  
 प्रगाथः काश्वः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।१।४।७ )  
 अ स्य उपभो युवा तुविमोवो अनादतः ।  
 प्रह्ला कस्तं सपर्यति ॥७७॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२२ )  
 [६७] ससु त्थे महतीरपः सं क्षोणीं ससु सूर्यम् ।  
 सं यज्ञं पर्वतो द्यु ॥२२॥

भाहुः काश्वः । इन्द्रः । सतोवृहती ।  
 ( ऋ. ८।५।२ [ बाल. ५ ] १० )  
 तमिन्द्रो रामो वृहतीरधुवत सं क्षोणीं ससु सूर्यम् ।  
 सं शुमासः सुचयः सं गवाधिरः सोमा इन्द्रममदिदुः  
 ॥२०॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२३ )  
 [६८] वि वृचं पर्वतो ययुर्बि पर्वतो अराजिगः ।  
 चवाणा वृष्य पौरवम् ॥२३॥  
 कश्यः काश्वः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।६।१३ )  
 यदस्य मन्तुर्ध्वनीद्वि वृचं पर्वतो रजन् ।  
 धपः चसुदमैरयद् ॥१३॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२५ )  
 [७०] विद्युश्चा अविशवः शिप्राः शीपेन् विरप्ययीः ।  
 गुप्रा इमङ्गत त्रिये ॥२५॥  
 दशवाद्वा आत्रेयः । मरुतः । जगती ( ऋ. ५।५।१।१ )  
 [२६०] शंशेषु व कष्टयः पत्तु खादशो मधःसु दन्मा मरुतो  
 रथे गुमः ।  
 अमिप्राजक्षो विद्युतो गमस्योः शिप्राः शीपेसु वितता  
 विरप्ययीः ॥११॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२६ )  
 [७१] उशना यत् परावत उशो रन्प्रमदातन ।  
 योनें वक्रदृग्भिया ॥२६॥  
 पस्च्छेपो दैकोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ( ऋ. १।१३।०।९ )  
 सूरदचक्रं प्र वृद्जात भोजस्य प्रतिये वाचमरणो मुषा-  
 यतीशान आ सुवायति ।  
 उशना यत् परावतोऽजगन्नुगे वपे ।  
 सुम्नाभि विश्वा मनुपेव तुर्वगिरहा विदेषव तुर्वणिः ॥९॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।२८ )  
 [७३] यदेषां वृषती रथे प्राष्टिर्वहति रोहितः ।  
 यासि शूद्रा रिणजवः ॥२८॥  
 कश्चो घौरः । मरुतः । वृहती ( ऋ. १।३।१।६ )  
 [८१] उपो रथेषु वृषतीर्युग्भवे प्राष्टिर्वहति रोहितः ।  
 आ वो नामाव वृथिनी चिदभोदवीमन्त मापुषाः ॥६॥

पुनर्वसतः काश्वः । मरुतः । गावत्री ( ऋ. ८।७।३१ )

[७३] कच्छ नूनं कघप्रियो यदिन्द्रमजज्ञातन ।

को वः सखित्व कोहते ॥३१॥

कषो यौरः । मरुतः । गावत्री ( ऋ. १।३।८।१ )

[९१] कच्छ नूनं कघप्रियः पिता पुषं न वृत्तयोः ।

दधिमे वृक्षप्रद्विषः ॥३१॥

पुनर्वसतः काश्वः । मरुतः । गावत्री ( ऋ. ८।७।३५ )

[८०] आदणयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।

घातारः स्तुवते वयः ॥३५॥

गात्रीगतिः शुनःशेषः स कृत्रिमो वैश्यामियो देवरातः ।

वहणः । गावत्री ( ऋ. १।१५।७ )

वेदा यो वीमां पदभन्तरिक्षेण पतताम् ।

वेद नावः समुद्रियः ॥७॥

सोमरिः काश्वः । मरुतः । ककुप् ( ऋ. ८।१०।५ )

[८६] वाद्युता चिद् नो अजमघा नाजदति पर्वतासो वनरपतिः ।

भूमियमिपु रेजते ॥५॥

कषो यौरः । मरुतः । गावत्री ( ऋ. १।३।७।८ )

[१३३] वैशामज्मेषु वृथिवी जुशुवो इव भिरपतिः ।

भिवा यामेषु रेजते ॥८॥

सोमरिः काश्वः । मरुतः । सतोवृहती ( ऋ. ८।१०।८ )

[८९] गोभिर्वाणो अज्यते सोमरीणां रथे कोशे द्विरण्ययो ।

गोवन्धवः सुजाताम इवे भुजे मरुतो नः स्परते जु ॥८

सोमरिः काश्वः । अश्विनी । ककुप् ( ऋ. ८।१२।१५ )

वा हि वृहतमथिना रथे कोशे द्विरण्यये वषण्वत् ।

सुधायां वीवरीरियः ॥९॥

सोमरिः काश्वः । मरुतः । उत्तोवृहती

( ऋ. ८।१०।१४ )

[९५] ताव वन्दस्व महमस्तो उप स्तुहि तेषं हि धुननाम् ।

भराणां न परमस्तदेवां दाना महा तदेयाम् ॥१६॥

एववाभरुद्वेषः । मरुतः । अतिजयती ( ऋ. ५।८।७।२ )

[३१९] प्र वे जाता महिना ये च तु स्वयं प्र विचना कुत

एवयामरु ।

कषा तद् वो महतो नाश्वे श्वो दाना महा तदेया-

मपृष्टासो नात्रयः ॥९॥

सोमरिः काश्वः । मरुतः । श्वीवृहती ( ऋ. ८।१०।११ )

[१०७] विषं पश्यन्तो विमुषा तन्प्रा तेना नो अधि

योचत ।

शना रथो मरुत आतुस्व न इष्कर्ता विहुतं पुनः

॥ १६ ॥

मरुतः वाग्मदाः, तान्त्रो मैत्रावरुणिः, वद्वो वा मरुता

जालनदाः ।

आश्विनाः । गावत्री ( ऋ. ८।१०।१६ )

यद्रः श्रान्ताय सुन्वते घहयमसि यच्छर्दिः ।

तेना नो अधि योचत ॥३॥

मेघातिथि-मेघातिथी वाणो । इन्द्रः । वृहती

( ऋ. ८।१।१२ )

व श्वते विदभिश्चिषः पुरा जनुभ्य आतुदः ।

संपता अग्नि मयवा पुत्रसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः

॥१२॥

विन्दुः पूतदधो वा आश्विनः । मरुतः । गावत्री

( ऋ. ८।१५।३ )

[३९७] तत् सु नो चिन्धे अयं आ सदा गृणन्ति

कारयः ।

मरुतः सोमपतिषे ॥३॥

शंभुनाईस्पत्यः । मरुतः । अश्विपु ( ऋ. ६।४।५।३३ )

तत् सु नो चिन्धे अयं आ सदा गृणन्ति कारयः ।

बृधुं सदृशदातमं सुदि सदृशसातमम् ॥३३॥

मेघातिथिः काश्वः । विषे देवाः । गावत्री ( ऋ. १।२।३।१० )

विद्यान देवा इवामहे मरुतः सोमपतिषे ।

उषा हि शुधिमातरः ॥३३॥

विन्दुः पूतदधो आश्विनः । मरुतः । गावत्री

( ऋ. ८।१५।१६ )

[४०३] आ ये विद्या पार्थिवानि पप्रयन् रोचना दिवः ।

मरुतः सोमपतिषे ॥९॥

विन्दुः पूतदधो वा आश्विनः । मरुतः ।

गावत्री ( ऋ. ८।१५।१४ )

[३९८] अस्ति सोमो अयं सुतः विबन्धस्व मरुतः ।

उत खराणो अथिना ॥६॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।११ )  
 [५६] मरुतो यद्द घो दिवः हुन्नावन्तो इवामदे ।  
 आ त् न ख्य गन्तव ॥११॥  
 कष्यो घोरः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. १।३७।१२ )  
 [१७] मरुतो यद्द घो वत् जतो भसुच्यवर्तन ।  
 गिरोरुच्यवर्तन ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१२ )  
 [५७] यूयं हि ह्य सुदानवो रता कसुसुगो दमे ।  
 उत प्रवेतसो मदे ॥११॥  
 मेधातिभिः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. १।१।५२ )  
 [५] मरुतः पिपत कसुना पोरान्द वसं पुनातन ।  
 यूयं हि ह्य सुदानवः ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१३ )  
 [५८] धा नो रयि मरुच्युतं पुरुषं विश्वघायसम् ।  
 वसतो मरुतो दिवः ॥११॥  
 मरुतिभिः काव्यः । घोरिनी । गायत्री ( ऋ. ८।५।५५ )  
 भस्ये वा वदतं रयि शतवन्त सहस्रिणम् ।  
 पुरुषं विश्वघायसम् ॥१५॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१५ )  
 [६०] एतावतदिवेषां सुमन् मिश्रेत मत्यः ।  
 भवाभ्यस्य मन्मभि ॥१५॥  
 शरिम्भिः काव्यः । आदित्याः । उषिण् ( ऋ. ८।१।८१ )  
 दद ह नृमेषां सुमन् मिश्रेत मत्यः ।  
 आदित्यानामप्यर्थं खविमभि ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१६ )  
 [६१] व नूनं मुदाकरो मरुया वृचवाहैषः ।  
 प्रह्ला कोत वा सपर्यति ॥१७॥  
 प्रगायः काव्यः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।१।१७ )  
 व स्य उपभो युवा तुविप्रोषो भगानतः ।  
 प्रह्ला कस्तं सपर्यति ॥७१॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१२ )  
 [६७] ससु त्वे महतीरपः सं क्षोणी ससु सूर्यम् ।  
 सं पत्रं पर्वतो र्दु ॥६२॥

वायुः काव्यः । इन्द्रः । सतोवृती ।  
 ( ऋ. ८।५२ [ वाक्. ४ ] । १० )

समिन्त्रो एवो वृद्धीरधुषण सं क्षोणी ससु सूर्यम् ।  
 सं गुहासः पुनयः सं गवाधिरः सोमा इन्द्रममन्दिपुः ॥१०॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१३ )  
 [६८] वि वृत्रं पर्वशो वसुभिं पर्वतो अराजिनः ।  
 पराणा वृष्णि पौरुणम् ॥१३॥  
 वस्यः काव्यः । इन्द्रः । गायत्री ( ऋ. ८।६।११ )  
 वदस्य मन्सुरावनीहि वृत्रं पर्वशो वजन् ।  
 वपः ससुदमेरयत् ॥१३॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१५ )  
 [७०] विपुडला अभिवचः शिप्राः शीपेन् द्विरण्ययीः ।  
 शुभ्रा म्वज्रत श्रिये ॥१५॥  
 दत्तावद्व्य कात्रेयः । मरुतः । जगती ( ऋ. ५।५।५११ )  
 [२६०] क्षेप्यु व कटवः पत्तु खादयो वद्यःसु रत्ना मरुतो  
 रये शुभ्रः ।  
 नमिप्रावत्रो विपुतो वमस्वो शिप्राः शीपेन्सु विवता  
 द्विरण्ययीः ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१६ )  
 [७१] उशना यत् परावत उदयो रन्ममयातन ।  
 धोनं वरुद्वमिवा ॥१६॥  
 पदच्छेपो दीनोदासिः । इन्द्रः । अलाष्टिः ( ऋ. १।१३.०१ )  
 सूर्यवत् प्र वृज्यात ओजसा प्रपित्वे वाचमह्यो सुषा-  
 यतोशान वा सुषापति ।  
 उशना यत् परावतोऽवगन्त्यये क्वे ।  
 सुम्नानि विदना मनुषेव तुर्वेणिरडा विशेव्येव तुर्वेणः ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।१८ )  
 [७३] वदेवां पृथती रये प्रष्टिवंहति रोहितः ।  
 गन्ति सुभ्रा रिगन्तपः ॥१८॥  
 कष्यो घोरः । मरुतः । वृद्धी ( ऋ. १।३।१६ )  
 [४१] उषो रयेषु पृथतीर्युष्वं प्रष्टिवंहति रोहितः ।  
 वा नो गताय पृथिनी निदधोऽधीमरुन्त मायुवाः ॥६॥

पुनर्वसः काण्वः । महतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।३१ )  
 [७३] कद्ध नूनं कधमियो यदिन्द्रमजशतन ।  
 को षः सखिरव ओहते ॥३१॥

कण्वो घौरः । महतः । गायत्री ( ऋ. १।३।८१ )  
 [११] कद्ध नूनं कधमियः पिता पुषं न इत्तयोः ।  
 एभिषे वृकवर्दिषः ॥१॥

पुनर्वसः काण्वः । महतः । गायत्री ( ऋ. ८।७।३५ )  
 [८०] आङ्गयाधानो बह्मन्तरिक्षेण पततः ।  
 घातारः स्तुवते वयः ॥३५॥  
 भात्रीगतिः जुम शेषः स इत्रिमो भंगामित्रो देवरातः ।  
 बहणः । गायत्री ( ऋ. १।३।५० )  
 देवा वो नीना पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।  
 वेद नावः समुद्रियः ॥७॥

सोमरिः काण्वः । महतः । ककुप् ( ऋ. ८।२।१५ )  
 [८६] बह्युता यिद् वो अजमसा नानदति पर्वतासो मनरपतिः ।  
 भूमिर्पामिषु रेजते ॥५॥  
 कण्वो घौरः । महतः । गायत्री ( ऋ. १।३।७८ )  
 [१३] देवामजमेषु पृथिवी जुजुवाँ इव विशपतिः ।  
 भिया यामिषु रेजते ॥८॥

सोमरिः काण्वः । महतः । सतोवृहती ( ऋ. ८।२।१८ )  
 [८९] गोभिर्पानो अजयते सोमरीणां रथे कोशो द्विरप्यये ।  
 गोबन्धवः सुजातास इषे मुजे महान्तो नः स्परते नु ॥८॥  
 सोमरिः काण्वः । अधिनी । ककुप् ( ऋ. ८।२।१९ )  
 आ हि इदतमधिना रथे कोशो द्विरप्यये उषम्वतू ।  
 जुजाथां गोभरीरिषः ॥५॥

सोमरिः काण्वः । महतः । सतोवृहती  
 ( ऋ. ८।२।१५ )  
 [९५] ताव वन्दस्व महतस्तौ उप स्तुहि तेषां हि धुननाम् ।  
 अराणां न धरमस्वदेपां दाना मद्वा तदेपाम् ॥१५॥  
 एवयामरुधात्रेयः । महतः । आतिजगती ( ऋ. ५।८।७२ )  
 [१२९] प्र ये जाता महिना ये न नु स्वयं प्र विद्याना हुवत  
 एवयामरु ।  
 कल्पा तद् वो महतो नाशये णवो दाना मद्वा तदेपा-  
 मभृष्टासो नाद्रवः ॥१॥

सोमरिः काण्वः । महतः । सतोवृहती ( ऋ. ८।२।१८ )  
 [१०७] विष्यं परवन्तो विमुषा तन्वन्ता तेना नो षधि  
 योचत ।

शमा रथो महत आतुरम्य न इक्षुतां चिहुतं पुनः  
 ॥ २६ ॥

मस्वः कामदः, मान्वो मैत्रारुणिः, बह्वो वा मत्स्वा  
 जातनदाः ।

आदित्याः । गायत्री ( ऋ. ८।६।१६ )  
 यद्वा भ्रान्ताय मुन्वते घळयमसि यच्छदिः ।  
 तेना नो षधि योचत ॥६॥

मेघातिथि-मेघवातिथी कण्वो । इन्द्रः । वृहती  
 ( ऋ. ८।१।१२ )

व ऋते विद्यभिर्धनः पुरा जन्मभ्य आतृयः ।  
 संघाता अग्नि मघवा पुक्वसुरिष्कर्तां चिहुतं पुनः  
 ॥१२॥

विन्दुः पूतदक्षो वा आत्रिरसः । महतः । गायत्री  
 ( ऋ. ८।९।५३ )

[३९७] तत् सु नो विश्वे अयं आ सदा गृणन्ति  
 कारवः ।

महतः सोमर्पतये ॥३॥  
 शंभुर्वाहस्पत्यः । महतः । अतृहुप् ( ऋ. ६।४।५।३३ )  
 तत् सु नो विश्वे अयं आ सदा गृणन्ति कारवः ।  
 श्रुं सदस्वदातमं सुरिं घडस्वदातमम् ॥३३३॥

मेघातिथिः काण्वः । विषे देवाः । गायत्री ( ऋ. १।२।३।१० )  
 विद्यान देवान् इनामदे महतः सोमर्पतये ।  
 उषा हि पृथिमातरः ॥३३३॥  
 विन्दुः पूतदक्षो आत्रिरसः । महतः । गायत्री  
 ( ऋ. ८।९।५।९ )

[४०३] आ ये विश्वा पार्थिवाति पप्रमन् रोचना दिवः ।  
 महतः सोमर्पतये ॥९॥

विन्दुः पूतदक्षो वा आत्रिरसः । महतः ।  
 गायत्री ( ऋ. ८।९।५।४ )

[३९८] अस्ति सोमो अयं सुतः विवन्त्यस्व महतः ।  
 उत्त स्वराजो अधिना ॥४॥

भद्रमौमः । इन्द्र । उष्णि- ( ऋ १।२०।२ )  
 दृषा धना दृषा मने दृषा सोमो धाय सुत ।  
 वयसिन्द्र दृषामर्बुवरात्म ॥२॥

विन्दु पृतन्धा वा आरिस । मरुत ।  
 गायत्री ( ऋ ८।१५।८ )

[४०१] कदा अथ महाना दत्त नाम्नो घृणे ।  
 तन्ना च दस्मधर्मम् ॥८॥  
 द्यवाऽऽ सात्रा । इन्द्रायो । गयत्रा ( ऋ १।३८।१० )  
 भाद्द गरन्तम वताऽऽरन्त गयत्रयो घृणे ।  
 वाभ्यां गायत्रमध्वत ॥१०॥

विन्दु पृतन्धा वा आरिस । मरुत ।  
 गयत्रा ( ऋ ८।१५।१०-१२ )

[४०४] स्यात्तु पृतन्धम वा वा मरुतो हुवे ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥२०॥

[४०५] त्वारु तु व । अ रोदर्श तन्मभुर्मयतो हुवे  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥

[४०६] य जु मास्म गण गिरिशा वषण हुव ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥  
 मेघ त्तिप काण्व । मरुत । गयत्र ( ऋ. १।२२।१ )  
 प्रतयुना वि च धय ननावह गच्छताम ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥१॥

मघा तये काण्व । इन्द्रायु । गयत्रा ( ऋ १।२३।२ )  
 उग दव दिविस्वृताद्वताम् हवामद ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥१॥

नामदवो गीन्म । इन्द्रावृरस्वतो ।  
 गायत्रा ( ऋ ४।४१।५ )

इन्द्रावृरस्वत वय सुत वा महवामदे ।  
 अस्य सोमस्य पीतये । ॥  
 गरुडायो वाहस्य व । इन्द्राय । अनुष्टुप् ( ऋ ९।११।१० )  
 इन्द्राय उक्थव हमा तेषामर्बुवाधुता ।  
 विद्राभिर्गभिरा यन्मस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥  
 इन्द्रायो वषण । इन्द्राय । गयत्रा ( ऋ ८।१५।६ )  
 इन्द्राय नम मानव माचन्त इवामदे ।

अस्य सोमस्य पीतये । ६॥  
 बाहुवृक्ष भद्रये । मित्रानस्वतो । गयत्रा ( ऋ ५।७१।१ )  
 उप न सुताता गत वरुण मित्र द सुधमः ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥

स्वमरादसमागव । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ १।०।७।१२ )  
 [४११] य यद् वहध्मे मरुत पराकाद् मूय महः सपरणस्व वरुण ।  
 विदालामा वसवो राव्यस्याऽऽराधिद् द्वेय सनुत-  
 सुंयोत ॥६॥

गगा भारद्वाज । इन्द्र । त्रिष्टुप् ( ऋ ६।४७।३३ )  
 तस्य धय सुमती यक्षियस्या प भदे र्भ मनसे स्वाम ।  
 य मुत्रामा स्वर्षो हय्यो वरुणे आराधिद् द्वेय सनुत  
 सुंयोत ॥११॥

स्वमरदिमर्भागव । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ १।०।७।१८ )

[४१४] ते हि यज्ञेषु यक्षियास ऊमा अ दि येन नाम्ना  
 शभविष्ठा ।

त मोऽवतु रयत्संन वा महथ यामज्यधरे चकानाः ॥८॥  
 वसिष्ठो मैत्र वरुणि । विरे दधा । त्रिष्टुप् ( ऋ ७।३१।४ )  
 ते हि यज्ञेषु यक्षियास ऊमा वयस्य विधे अभि  
 सति देवा  
 तौ अश्वर उरुतो य यज्ञे शुष्टी भग नासत्या पुरधेम् ॥४॥

स्वमरदिमर्भागव । मरुत । त्रिष्टुप् ( ऋ १।०।७।१८ )

[४१२] सुमागाला दवा कृत उरन्तानस्मास्त्वो गूर मरुतो  
 वावृधानाः ।

अधि स्तोत्रस्य सचयस्य गात सन दि वो ररन  
 नेवाग्नि स ॥८॥

द्वयाऽऽ लात्रेय । मरुत । जगती ( ऋ ५।५५।९ )  
 [२७३] मरुत नो मरुतो मा यक्षियताऽऽरमभ्य बहुल शम वि  
 वत्तन ।

अधि स्तोत्रस्य राख्यस्य नातनं शुभ यातामनु  
 रथा अनुसत ॥५॥